चाहिये। ऊपर से भी शर्करा बिछाना चाहिये। पीछे मर्त्तबान का मुँह बन्द करके कपड़मिट्टी से लेप करके दो-तीन मास तक रख देना चाहिये। इतने में पत्तियाँ घुलकर एक रस बन जायँगी। इसमें सुगन्धित वस्तुयें भी मिला सकते हैं।

शर्बत

शर्बत बनाने की विधि यह है कि एक सेर पानी में ½ सेर खाँड़ डालकर एक तार की चासनी कर लेना चाहिये और फिर ठण्डी होने पर निर्जल परन्तु शुद्ध बोतलों में भरकर रख देना चाहिये। ऊपर से ढक्कन या डाट लगाकर रख देना चाहिये।

जिस स्थान पर किसी वनस्पति का शर्बत बनाना होता है, उस स्थान पर वनस्पति के पत्तों का स्वरस या फल का रस अथवा मूल अथवा पंचांग का काढ़ा करके उसमें ऊपर के परिमाण में खाँड़ मिलाकर चासनी पका लेनी चाहिये।

इस विधि से ब्राह्मी के पत्तों का स्वरस निकालकर, उसमें शर्करा मिलाकर ब्राह्मी का शर्बत बनाया जाता है। अनार के फलों का रस निकाल-कर, उसमें खाँड़ मिलाकर शर्बत बनाते हैं।

परन्तु बाज़ार में एक और विधि शर्बत बनाने की प्रचलित है। इसमें खाँड़ का शर्बत बनाकर एसेन्स या उसका अर्क मिला दिया जाता है। उदाहरण के लिये—गुलाब या केवड़े का शर्बत बनाना हो, तो उसमें गुलाब का एसेन्स या उसका अर्क मिला दिया जाता है। प्रायः यह सब शर्बत इसी विधि से बनाये जाते हैं। लोग तकलीफ नहीं करते कि स्वरस या काढ़ा करें, फलों का रस महँगा पड़ता है। इसलिये ऊपर की विधि बरती जाती है।

क्षार

क्षारों की विधि यह है कि जिस वस्तु का क्षार बनाना हो, उसको जलाकर दो या तीन बार पानी में धो देना चाहिये। पीछे से इस पानी को गरम करना चाहिये। उबालते-उबालते पानी उड़ा देना चाहिये। नीचे से सफेद क्षार ले लिया जाता है।

अपामार्ग-क्षार—अपामार्ग के पंचांग को छाया में जलाकर इसकी राख करके क्षार निकाल लेना चाहिये। मात्रा १ से ४ बाल।

गुण—उष्ण, भेदन, कफघ्न तथा गुल्मघ्न, मूत्रल।

नारिकेल-क्षार—पानीवाले हरे नारियल में छेद करके, उसमें नमक भरकर, कपड़मिट्टी करके धूप में सुखाना चाहिये। फिर अग्नि की आँच में पकाना चाहिये। पीछे से इस नारियल को पीसकर, शीशी में भरकर रखना चाहिये। मात्रा $\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{2}$ तोला। पिप्पली-चूर्ण के साथ खाने से सब प्रकार की शूल मिटती है।

यव-क्षार—जौ के पंचांग को लेकर इसको छाया में सुखा देना चाहिये। पीछे क्षार-विधि से क्षार बनाना चाहिये। मात्रा—१ से ३ बाल।

गुण—कफघ्न और मूत्रल।

वज्र-क्षार—संचल, जौखार, साम्भर, काँच, सैन्धव, टंकण, सर्जक्षार इन सबको बराबर भाग में लेकर आक के दूध तथा थोर के दूध में तीन दिन तक भावना देनी चाहिये। पीछे धूप में सुखाकर इनको आक के पान में लपेटकर, शराव में भरकर शराव सम्पुटों को आग में गजपुट में फूँक देना चाहिये। स्वांग शीतल होने पर इसमें सोंठ, मिर्च, पिप्पली, त्रिफला, जीरा, अजवायन, चित्रक ये सब समभाग लेकर चूर्ण करके मिला देना चाहिये। इसका नाम वज्रक्षार है। मात्रा—८ माशा।

अनुपान—जठराग्नि बढ़ाने के लिये छाछ में देना चाहिये।

उपयोग—उदर-रोग, शोथ, गुल्म, अग्निमान्द्य, अरुचि, प्लीहा, यकृत आदि के रोगों में।

घृत

घृतपाक की परीक्षा यह है कि जब घृत का रङ्ग निर्मल हो जाय, सारा कल्क नीचे बैठ जाय, घृत नितर आये और कल्क हाथ पर लगाने से चिपके नहीं, नांही बिखर जांय, बल्कि बत्ती बन सके, तब समझना चाहिये कि पाक होगया है। शास्त्र में लिखा है कि जब घी की झाग मर जाय, तब समझना चाहिये कि पाक होगया है।

अमृताघृत—अधकचरी गिलोय १६ तोला, पानी ६४ तोले इनका काढ़ा करना चाहिये। जब चतुर्थांश बाकी रहे, तब कपड़े में से छान करके इसमें घी ५ तोले, गिलोय का कल्क १॥ तोला और दूध २० तोला मिलाकर पीछे से मीठी आँच पर पकाना चाहिये। जब घी बाकी रहे, तब छानकर उतार लेना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—वातरक्त, कुष्ठ आदि रोग में।

त्रिफलाघृत—हरड़, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक का रस; यदि हरड़ न मिले, तब सूखी हुई वस्तुयें लेकर प्रत्येक का काढ़ा ६४ तोला, बासक-रस ६४ तोला, भाँगरे का रस ६४ तोला, बकरी का दूध ६४ तोला, गाय का घी ६४ तोला तैयार रखना चाहिये। पीछे से त्रिफला, पिप्पली, द्राक्षा, चन्दन, सेंधा नमक, बलामूल, काकोली, क्षीर काकोली, (अभाव में असगन्ध) शतावरी, सोंठ, शर्करा, सफेद कमल, लाल कमल, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहटी, इन सब वस्तुओं को एक-एक तोला लेकर इनका कल्क, मिलाकर मीठी आँच पर घृत पकाना चाहिये। जब रंगत में पीलापन आ जाय, तब छानकर बरणी में भरकर रखना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—आँख के रोगों में, रतौंधीपन में, कामला में।

अमृतप्राशघृत— घृत ४ सेर, बकरी का मांस १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शोष १६ सेर; अश्वगन्धा १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शोष १६ सेर, बकरी का दूध ९६ सेर। मूर्च्छार्थ—केसर ४ तोला। कल्क द्रव्य—बला, गेहूँ, अश्वगन्धा, गिलोय, गोखरू, त्रिकटु, धनिया, त्रिफला, कस्तूरी, कौंच-बीज, मेदा, महामेदा, कुटज, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहरिद्रा, प्रियंगु, मजीठ, तगर पादुका, तालीश, इलायची, तेजपत्र, दालचीनी, नागकेशर, जायफल, रेणुका, सरल जावित्री, छोटी इलायची, कमल, अनन्तमूल,

जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि, गूलर प्रत्येक दो तोला। पाक शेष होने पर जब घृत बन जाय, तब उसमें शर्करा १ सेर मिला लेनी चाहिये।

उपयोग—स्नायविक, बलकारक, मस्तिष्क-पोषक, शुक्रजनक, पुष्टि-कारक, क्षयनाशक, नष्ट-शुक्र की उत्कृष्ट औषधि है।

अनुपान—ईषदुष्ठादधि वा अल्प परिमान मधु।

अशोक घृत—घृत ४ सेर। क्वाथार्थ—अशोक की छाल ५ सेर, जल १६ सेर, शोष ८ सेर, जीरा २ सेर, जल १६ सेर। तण्डुलोदक ४ सेर, बकरी का दूध ४ सेर, किंशुक रस ४ सेर। कल्कार्थ—जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुल-हट्ठी, पियाल, फाम्पसा, रसौंत, अशोकमूल, शतावरी, द्राक्षा प्रत्येक ४ तोला। पाक शेष होने पर चीनी १ सेर मिलाकर पाक करना चाहिये।

अश्वगन्धा घृत—घृत ४ सेर। क्वाथार्थ—अश्वगन्धा साढ़े बारह सेर, जल १६ सेर, छाग-मांस २५ सेर, जल १२८ सेर, शोष ३२ सेर। कल्कार्थ—काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, कौंच, इलायची, मुलहठी, द्राक्षा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, पिप्पली, वला, शतावरी, विदारी, मिलित १ सेर। पाक-शेष होने पर चीनी आध सेर मिलाकर पाक करना चाहिये।

उपयोग—धातु-दौर्बल्य, पुरुषत्व-हानि, बल-वीर्य-मेधा-पुष्टिकारक।

चैतस घृत—घृत ४ सेर। क्वाथार्थ—शनबीज, निशोथ, एरण्ड-मूल, दशमूल, रासना, पिप्पली, सहिजनमूल प्रत्येक १६ तोला, जल ६४ सेर, शोष १६ सेर। कल्क—विदारी, मुलहठी, मेदा, महामेदा, काकोली, चीनी, खजूर, द्राक्षा, शतावरी, गोखरू, राखालशारा, त्रिफला, बहेड़ा रेणुका, देवदारु, एलुवा शालपर्णी, तगर, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, दोनों शारिवा, प्रियंगु, नीलोत्पल, इला-इची, मजीठ, दन्ती-मूल, अनार, नागकेसर, तालीसपत्र, मालती फूल, विडङ्ग पृश्नपर्णी, कूठ, चन्दन, पद्माख।

उपयोग—अपस्मार-रोग में, हिस्टीरिया में, मूर्छा वायु में, उन्माद और मृगी रोग में।

छागलाद्य घृत—घृत १६ सेर; क्वाथार्थ—नपुंसक छाग-मांस १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। दशमूल प्रत्येक सवा सेर, जल ६४ सेर,

शेष १६ सेर। अश्वगन्धा साढ़े बारह सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। बला १२½ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। शतावरी रस १६ सेर, दूध १६ सेर। कल्कार्थ—जीवन्ती, मुलहठी, द्राक्षा, काकोली, क्षीर काकोली, कमल, मोथा, लाल चन्दन, रास्ना, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, अनन्तमूल, श्यामा, मेदा, महामेदा, कुटकी, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहरिद्रा, प्रियंगु, त्रिफला, तगर, तालीश, इलायची, देवदारु, पद्माख, रेणुका, विडङ्ग, जीरा प्रत्येक ४ तोला। ताम्रपात्र में पाक करना चाहिये। पाकशेष होने पर २ सेर शर्करा मिलाना चाहिये।

उपयोग—वात-व्याधि में, स्नायविक निर्बलता में, उन्माद में, मृगी में।

धात्री घृत—घृत ४ सेर, आमलकी रस ४ सेर, विदारी रस ४ सेर, शतावरी रस ४ सेर, दूध ४ सेर, तृणपंचमूल, क्वाथ ४ सेर। कल्क—इलायची, लौंग, त्रिफला, बला, सरल, देवदारु, जटामांसी प्रत्येक ६ तोला। पाक के समाप्त होने पर इसमें मुलहठी, निशोथ, यवक्षार और वृद्धदारक-मूल प्रत्येक ८ तोला और शर्करा १ सेर मिलाकर रख ले। ठण्डा होने पर १ सेर शहद भी मिला देना चाहिये।

उपयोग—पुरातन प्रमेह, श्वेत प्रदर, बहुमूत्र आदि रोगों में उत्कृष्ट-औषधि है।

पंचतिक्त घृत—घृत ४ सेर; क्वाथार्थ—नीमछाल, कण्टकारी, पटोल-पत्र, गिलोय, वासक-छाल प्रत्येक ८० तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। क्वाथार्थ—त्रिफलामिलित १ सेर।

उपयोग—वात-रक्त, गण्डमाला में।

फलकल्याण घृत—घृत ४ सेर। शतावरी रस ४ सेर, दूध १६ सेर। कल्क—मजीठ, मुलहठी, कूठ, त्रिफला, चीनी, बलामूल, मेदा, क्षीर विदारी, अश्वगन्धा, अजवायन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हींग, कुटकी, नीलोत्पल, कुमुद, द्राक्षा, काकोली, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन प्रत्येक २ तोला।

उपयोग—वन्ध्या-रोग में, जरायु-विकृति में, पुत्रोत्पादन न होता हो, उस अवस्था में। इस घृत में श्वेत वर्ण गाय का दूध मिलाना चाहिये, जिसका बछड़ा कभी मरा न हो।

फल घृत—त्रिफला, मुलहठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, वाय-विडङ्ग, पिप्पली, मोथा, इन्द्रायण-मूल, कायफल, वच, शतावरी, असगन्ध,

अनन्तमूल, श्यामलता, प्रियंगु, सुवा, हींग, रास्ना, चन्दन, लाल चन्दन, जूही का फूल, वंशलोचन, शर्करा, अजवायन, दन्तीमूल इनमें प्रत्येक १ तोला लेकर, इसको पानी के साथ पीसकर कल्क बना लेना चाहिये। एक वर्ण गाय का घी ६४ तोला, घी से चार गुना दूध और दूध के बराबर पानी मिलाकर घृतपाक-विधि से घी बना लेना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—वन्ध्या-रोग में, निर्बलता में, जिनके पुत्र मर जाते हैं, उन औरतों के लिये उपयोगी है।

ब्राह्मी घृत—घृत ४ सेर। ब्राह्मी स्वरस १६ सेर। कल्क—हरिद्रा मालती-पुष्प, कूठ, निशोथ, हरीतकी प्रत्येक ८ तोला, प्रियंगु, वच, सैन्धव, विडङ्ग, शर्करा प्रत्येक १ तोला। मात्रा १ तोला।

उपयोग—मेधावर्धक, उन्माद-रोग में।

क्षीर घृत—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, सैन्धव इन छः वस्तुओं को चार-चार तोला लेकर पानी के साथ पीसकर चटनी बना लेनी चाहिये। गाय का घी ६४ तोला, दूध घी से चार गुना और दूध के बराबर पानी मिलाकर घृतपाक कर लेना चाहिये। मात्रा २ से ४ तोला।

उपयोग—प्लीहा-रोग में, मन्दाग्नि में। इसको "पिप्पल्यादि क्षीरघृत" भी कहते हैं।

तैल-पाक

तैल-पाक की विधि घृत के समान है। कोई भी तैल या घृत तीन-चार दिन तक कषाय और कल्क में मिलाकर रखना चाहिये। फिर पाक करना चाहिये। इससे तैल और घी में संस्कार-औषधियों का गुण भली प्रकार आजाता है।

अर्क-तैल—सरसों का तेल १ सेर, आक का दूध ४ सेर, हल्दी ½ सेर, मनःसिल ½ सेर, हल्दी और मनःसिल को आक के दूध में मिलाकर तेल पकाना चाहिये। इस तेल से खुजली मिटती है।

अगर्वादि-तैल— कृष्णागरु, कूठ, तगर, उशीर, तेजपत्र, शैलेयक, गन्धतृण, रेणुका, हरिद्रा, इलायची, प्रियंगु, गुग्गुल, तमालपत्र, अजवायन, सरल काष्ठ, शिलारस, देवदारु, दशमूल, पुनर्नवा, एरण्डमूल, कूठ,

बिजौरा, लाल चन्दन, कौंच, धनिया, करञ्ज, छोटी इलायची, खुरासानी अजवायन, तुलसी, मरुवा, सोंठ, पिप्पली, अश्वगन्धा, रास्ना, बला, अति-बला, गिलोय, सौंफ, मालकङ्गनी, तिल, कुलत्थी इनमें से प्राप्य वस्तुओं का कषाय और कल्क करके सुरा, कांजी, मद्य, तक्र इनके साथ मिलाकर तैल-पाक कर लेना चाहिये।

उपयोग—यह तैल ज्वर में उपयोगी है।

कन्दर्पसार-तैल—सरसों का तेल ४ सेर। क्वाथार्थ—सप्तपर्ण, करवीर, गिलोय, नीम-छाल, शिरीष, बकायन, जयन्तीपत्र, बला, हरिद्रा प्रत्येक ८० तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। गोमूत्र १६ सेर, अमलतास का रस, भाँगरे का तेल, जयन्ती पत्र-रस, धतूरे के पत्ते का रस, हरिद्रा-रस, भाँग का रस, चीते के रस, खजूर के पत्तों का रस, गोमय रस, आक के पत्तों का रस प्रत्येक ४ सेर। कल्कार्थ—वच, ब्राह्मी, चीतामूल, घृतकुमारी, कुचिला, पटोल-पत्र, हरिद्रा, मोथा, पिप्पली-मूल, अमलतास का गूदा, आक का दूध, ईखुमूल, मजीठ, करञ्जमूल, हारफारेवड़ी, सप्तपर्ण-छाल, शिरीष-छाल, कुटज-छाल, नीम-छाल, बकायन-छाल, गिलोय, सोमराजी बीज (२ भाग), धनिया, भाँगरा, मुलहठी, कटुकी, शठी, दारुहल्दी, निशोथ-मूल, पद्माख, जटामांसी, मुरामांसी, इलायची, वासा छाल, उशीर-मूल प्रत्येक २ तोला।

उपयोग—कुष्ठ-रोग में, वात-रक्त में, धवल में, भगन्दर में।

करंजादि-तैल—करञ्ज की छाल, चित्रक-मूल, जूही का पत्ता, कनेर का मूल इनका कल्क करना चाहिये। कल्क से चार गुना तेल (तिल का) तेल से चार गुना पानी लेकर पाक करना चाहिये।

उपयोग—यह तैल इन्द्रलुप्त तथा दाद को नष्ट करता है।

करवीरादि-तैल—कनेर का मूल, दन्तीमूल, निशोथ, कड़वी तुम्बी का फल, इसका कल्क करके चार गुने तेल में मिलाना चाहिये। तेल से चार गुना केले के क्षार का पानी मिलाकर तैल पकाना चाहिये। यह तैल लोम शातन विधि में बाल नष्ट करने के काम आता है।

कासीसादि-तैल—हीराकसीस, दूधिया बछनाग, कूठ, सोंठ, पिप्पली, सेंधा नमक, मनःसिल, कनेर का मूल, वायविडंग, चित्रकमूल, अडूसा, दन्तीमूल, कड़वी नाई का बीज, हरताल प्रत्येक एक-एक तोला लेकर पानी में पीसकर कल्क करना चाहिये। इसमें तेल ६४ तोला, थोर का दूध

८ तोला, आक का दूध ८ तोला, तेल से चार गुना गोमूत्र। इन सबको मिलाकर पाक करना चाहिये।

उपयोग—यह तैल अर्श के मस्से पर लगाना चाहिये।

किरातादि-तैल—सरसों का तेल ४ सेर। दधिमस्तु ४ सेर, काँजी ४ सेर, चिरायते का काढ़ा ४ सेर। कल्क—दूर्वामूल, लाक्षा, हरिद्रा, दारु-हरिद्रा, मजीठ, बला, कुटज, रास्ना, गजपिप्पली, त्रिकटु, पाठा, इन्द्रजौ, सैंधव, संचल लवण, विडलवण, वासाछाल, श्वेत आक के मूल की छाल, शारिवा, देवदारु सब मिलकर १ सेर।

उपयोग—पुरातन जीर्ण-ज्वर में मालिश करने के योग्य है।

गन्धक-तैल—धतूरे का डोडा चीरकर, इसके अन्दर गन्धक, नीला थोथा, मैनसिल भरकर इसके ऊपर कपड़मिट्टी करके धूप में सुखाकर आग में पकाना चाहिये। जब पक जाय, तब कपड़मिट्टी को उतारकर इसको धूपेल तैल में मिलाकर पीस लेना चाहिये। इसके लगाने से सब प्रकार के त्वक् दोष अच्छे हो जाते हैं।

गृहधूमादि-तैल—घर का धुवाँ, पिप्पली, देवदारु, जौखार, करञ्ज का बीज, सेंधालवण, अपामार्ग का बीज समान भाग लेकर कल्क करना चाहिये। इस कल्क से चार गुना तेल, तेल से चार गुना पानी मिलाकर पाक करना चाहिये। यह तैल नाक के मस्सों को मिटाता है।

गुडूच्यादि-तैल—तिल-तैल ४ सेर। क्वाथार्थ—गिलोय १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। पिसा हुआ गिलोय कल्क १ सेर, दूध ४ सेर पाक करना चाहिये। यह तैल पित्त-रोग में काम आता है। इस तैल में धनिये का काढ़ा मिलाकर पाक करने से और अधिक उपकार होता है।

चन्दनादि-तैल—तिल-तैल १६ सेर। क्वाथ—लालचन्दन, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, कण्टकारी, बृहती, गोखरू, मुद्गपर्णी, विदारी, अश्वगन्धा, माष-पर्णी, आँवला, शिरीष-छाल, पद्माख, नेत्रबाला, सरल, नागकेसर, गन्धक तृण, दूर्वा, प्रियंगु, कमल, बाला, बला, अतिबला, मृणाल, पद्माख-मिलित सवा छः सेर, श्वेत बला ६¼ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। बकरी का दूध, शतावरी रस, लाक्षारस, काँजी, दधिमस्तु प्रत्येक १६ सेर, हरिण का माँस ८ सेर, शेष १६ सेर, बकरी का माँस ८ सेर, जल ६६ सेर, शेष १६ सेर। शशक का माँस ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। क्वाथार्थ—श्वेत चन्दन, कृष्ण-

चन्दन, कंकोल, नखी, शैलज, नागकेसर, तेजपत्र, दालचीनी, मृणाल, दारुहरिद्रा, हरिद्रा, श्यामलता, अनन्तमूल, रक्तोत्पल, तगर, त्रिफला, देवदारु सरल, पद्माख, उशीर, धाय के फूल, बिल्व, रसौंत, मोथा, शिलारस, मजीठ, लोध्र, जीवन्ती, प्रियंगु, शठी, इलायची, कुमकुम, रास्ना, जावित्री, सोंठ, धनिया प्रत्येक ४ तोला।

उपयोग—कास और यक्ष्मा-रोग में मालिश के लिये उपयोगी है। कृशता, दौर्बल्य आदि में उपयोगी है।

जात्यादि तैल—जई, कड़ुवा नीम, परवल, करंज प्रत्येक के पत्ते २ तोला, करञ्ज का बीज, मुलहठी, मोम, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध्र, हर्रड़, कमल, नीलाथोथा, अनन्तमूल प्रत्येक २ तोला इनकी चटनी करके, चटनी से चार गुना तेल, तेल से चार गुना पानी मिलाकर पाक सिद्ध कर लें। यह तैल कान या नाक के दुखाव में काम आता है। व्रण भर जाते हैं।

नारायण तैल (पद्यप)—तिल-तैल १६ सेर। दशमूल, अश्वगन्धा, बला, अतिबला, पुनर्नवा प्रत्येक ८० तोला, जल २५६ सेर, शेष ६४ सेर। कल्क-सौंफ, देवदारु, जटामांसी, शैलज, वच, लालचन्दन, तारकूठ, इलायची, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, रास्ना, अश्वगन्धा, सैन्धव, पुनर्नवा प्रत्येक १६ तोला. शतावरी रस १६ सेर. गव्य या छाग का दुग्ध ६४ सेर।

उपयोग—वात-रोग की प्रसिद्ध औषध है। उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा आदि रोगों में बरता जाता है।

पुष्पराजप्रसारिणी तैल—तिल-तैल ४ सेर। क्वाथार्थ—गन्धबाला १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। अश्वगन्धा १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। गव्य या महिष दूध १६ सेर, पत्ररस ४ सेर, शतावरी रस ८ सेर। कल्कार्थ—सौंफ, पिप्पली, इलायची, कूठ, कटेरी, सोंठ, मुलहठी, देवदारु, शालपर्णी, पुनर्नवा, मजीठ, तेजपत्र, रास्ना, वच, अजवायन, गन्धतृण, जटामांसी, निसिन्दा, निर्गुण्डी, बला, चित्रामूल, गोखरू, मृणाल, शतावरी प्रत्येक २ तोला।

उपयोग—वात-व्याधि में तथा स्नायु-रोग-जन्य निर्बलता की उपयोगी औषधि है।

प्रमेह मिहिर तैल – तिल तैल ४ सेर । क्वाथार्थ—लाक्षा ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर । शतावरी रस ४ सेर, दूध ४ सेर, दधिमस्तु १६ सेर । कल्कार्थ—सौंफ, देवदारु, मोथा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, दुर्वामूल, कुटज, अश्वगन्धा, चन्दन, लालचन्दन, रेणुका, कटुकी, मुलहठी, रास्ना, दालचीनी, इलायची, भांगी, चनिका, धनिया, इन्द्रयव, करञ्जबीज, अगर, तेजपत्र, त्रिफला, नालुका, मजीठ, सरल. पद्माख, लोध्र, बच, जीरा, उशीर, जायफल, वासाछाल, तगर प्रत्येक २ तोला । मेह रोग में पेट के ऊपर मालिश करनी चाहिये । हाथ-पाँव पर मालिश करने मे बहुमूत्र रोग में पिपासा कम होती है ।

वासाचन्दनादि तैल—तिल तैल १६ सेर । क्वाथार्थ—वासक छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर । लाक्षा ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर । लालचन्दन, गिलोय, भांगी, मिलित दशमूल, कन्टकारी प्रत्येक २॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दधिमस्तु १६ सेर । कल्कार्थ—लाल चन्दन, रेणुका, अश्वगन्धा. गन्धतृण, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, पिप्पली, नागकेशर, मेदा, महामेदा, त्रिकटु, रास्ना, मुलहठी, शठी, शिलारस, देवदारु, कूठ, प्रियंगु और बहेड़ा प्रत्येक ८ तोला । कास, श्वास, यक्ष्मा-रोग में छाती पर मर्दन करने से लाभ होता है ।

विष्णु तैल—तिल तैल ४ सेर । क्वाथार्थ—शतावरी. शालपर्णी, पृश्निपर्णी, शठी, बला, एरण्डमूल, बृहतीमूल, कण्टकारी मूल, बलामूल, प्रत्येक १६ तोला, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर । कल्कार्थ—पुनर्नवा, बच, देवदारु, सौंफ, लाल चन्दन, अगरु, शैलज, तगर, कूठ, इलायची, जटामांसी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, अश्वगन्धा, सैन्धव लवण, रास्ना प्रत्येक ४ तोला, गव्य दुग्ध ८ सेर, बकरी का दूध ८ सेर, शतावरी का रस ८ सेर ।

उपयोग—मस्तिष्क, स्निग्धकारक, ज्योतिवर्धक, शैत्यकारक है ।

भृंगराज तैल—तिल तैल १ सेर । भाँगरे का रस ४ सेर । कल्कार्थ—मुलहठी ८ तोला ।

उपयोग—केशोत्पादक, पलितरोग-नाशक है ।

मरिचादि तैल—सरसों का तेल १६ सेर, गोमूत्र ६४ सेर । कल्क—मरिच, निशोथमूल, दन्तीमूल, आक का दूध, गोमय रस, देवदारु, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, जटामांसी, कूठ, लाल चन्दन, इन्द्रवारुणी मूल, करवीर मूल,

हरताल, मैनसिल, चीतामूल, लांगलीमूल, विडंग, शिरीष-छाल, कुटज-छाल, नीम-छाल, सप्तपर्ण-छाल, गिलोय, अमलतास के पत्र, हरकरञ्ज बीज, मोथा, खैरसार, पिप्पली, बच, लताकस्तुरी प्रत्येक ८ तोला, विष १६ तोला।

उपयोग—वातरक्त और कुष्ठ-रोग में प्रसिद्ध औषध है। खस, कण्डु, त्वचा के रोगों में उपयोगी है।

महादशमूल तैल—सरसों का तेल १६ सेर। कल्कार्थ—दशमूल १२½ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। बिजौरे नीबू का रस १६ सेर, आर्द्रकरस १६ सेर, धतूरे के पत्तों का रस १६ सेर। कल्कार्थ—पिप्पली, गिलोय, दारुहरिद्रा, सौंफ, पुनर्नवा, सँहजन-छाल, कुटकी, करञ्जबीज, काला जीरा, श्वेत सरसों, बच, सोंठ, चीतामूल, देवदारु, बला, रास्ना, कटूफल, निर्गुण्डी का पत्ता, चव्य, गेरू, पिप्पलीमूल, अजवायन, जीरा, कूठ, खुरासानी अजवायन प्रत्येक ८ तोला।

उपयोग--शिरो-रोग में, श्वास-रोग में उपयोगी है।

माष तैल—तिल तैल ४ सेर। क्वाथार्थ—पोटली मे बंधा हुआ माष ४ सेर, दशमूल ६¼ सेर, पोटली में बँधा छाग, माष ३¼ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर। कल्क—कौंच, एरण्डमूल, सौंफ, सैन्धव लवण, विड्लवण, संचल लवण, जीवनीय गण, मजीठ, चव्य, चित्रक, कटूफल, त्रिकटु, पिप्पलीमूल, रास्ना, मुलहट्ठी, सैन्धव, देवदारु, गिलोय, कूठ, अश्वगन्धा, बच, शठी प्रत्येक दो तोला।

उपयोग—वात-व्याधि-रोग में, पक्षाघात में।

लाक्षादि तैल—ढाक या पीपल की लाख २५६ तोला, चार गुने पानी में पाक करके ¼ पानी बचाना चाहिये। इसमें निम्न वस्तुयें मिला देनी चाहिये। तिल तैल ६४ तोला, गाय के दधि की छाछ २५६ तोला, सौंफ, असगन्ध, हल्दी, देवदारु, कटुकी, निर्गुण्डीबीज, तज, कूठ, मुलहठी, चन्दन, नागरमोथा, रास्ना प्रत्येक १ तोला इनका चूर्ण मिलाकर मन्द आग मे पकाना चाहिये।

उपयोग—इस तैल के मर्दन करने से सब विषम ज्वर, श्वास, कास, प्रतिश्याय, पीठ की शूल, उन्माद, क्षय आदि रोग नष्ट होते हैं।

शूलगजेन्द्र तैल—तिल्ली का तेल ८ सेर। क्वाथार्थ—एरण्ड-मूल, दशमूल प्रत्येक ४० तोला, जल ५२ सेर, शेष १३६ सेर। जौ ८ सेर, जल

६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर। कल्क—जीरा, सोंठ, अजवायन, धनिया, पिप्पली, वच, सैन्धव, बेर के पत्ते प्रत्येक १६ तोला।

उपयोग—शूल रोग में मालिश करने से लाभ होता है।

वज्र तैल—ठण्डा थोर का दूध, आकड़े का दूध, धतूरे का रस, चित्रकमूल का रस अथवा काढ़ा, महिष गोमय रस प्रत्येक १३ तोला, तिल्ली का तेल ६४ सेर, गोमूत्र २५६ तोला इनको तेल में पकाना चाहिये। इसमें गन्धक चित्रक, मनःसिला, हरताल, वायविडंग, अतीस, वत्सनाभ, कड़वी तुम्बी का कूठ, वच, त्रिकटु, जटामांसी, दारुहल्दी, मुलहठी, सर्जक्षार, जीरा, देवदारु प्रत्येक १ तोला। इस तैल के लगाने से त्वचा के सब रोग शान्त होते हैं।

षट्बिन्दु तैल—तिल्ली का तेल ४ सेर। बकरी का दूध १६ सेर, भृंगराज रस १६ सेर। कल्कार्थ—एरण्डमूल, तगर, सौंफ, जीवन्ती, राम्ना, सैन्धव, दालचीनी, विडंग, मुलहठी और सोंठ मिलित १ सेर।

उपयोग—मस्तिष्क रोगों में, दन्तशूल में।

सैन्धवाद्य तैल—एरण्ड तेल ४ सेर, सौंफ का काढ़ा ४ सेर, कांजी ८ सेर, दधिमस्तु ८ सेर। कल्कार्थ-सैन्धव, गज-पिप्पली, रास्ना, सौंफ, मंचल, विट्, वच, अजवायन, मुलहठी, जीरा, पिप्पली ४ तोला।

उपयोग—शोथ हीन परन्तु व्यथा-युक्तवात-रोग की उत्कृष्ट औषधि है।

हिमसागर तैल—तिल्ली का तेल ४ सेर। शतावरी रस ४ सेर, कुष्माण्ड-रस ४ सेर, आमलकी रस ४ सेर, सिम्बल का रस ४ सेर, गोखरू रस ४ सेर, नारियल का पानी ४ सेर, केले का पानी ४ सेर, दूध १६ सेर। कल्क—लालचन्दन, तगर, कूठ, मजीठ, सरल, अगरु, जटामांसी, मुरामांसी, शैलज, मुलहठी, देवदारु, नखी, हरीतकी, कुन्दन, नालुका, शतावरी, लोध, त्रिजातक, नागकेसर, लौंग, जावित्री, लालचन्दन, कपूर प्रत्येक २ तोला।

उपयोग—विक्षिप्त वायु को सहसा शान्त करनेवाली प्रसिद्ध औषधि है। शरीर में शीतलता उत्पन्न करता है।

क्षार तैल—तिल्ली का तेल ४ सेर। मूली का क्षार, सर्जक्षार, यवक्षार, सेंधानमक, संचल, बिड़लवण, समुद्र-लवण, काच-लवण, हींग,

शिरीष की छाल, सोंठ, देवदारु, वच, कूठ, सुवा, रसवन्ती, पिप्पली मूल, मोथ, ये सब वस्तु प्रत्येक १ तोला, तिल्ली का तेल ६४ तोला, केले का रस, मधुशुक्त प्रत्येक २५६ तोला। इनमें तेल बना लेना चाहिये।

उपयोग—कर्ण-रोग में, कर्णनाद में, दाद, खाज आदि में उपयोगी है।

लेप

लेप के ऊपर लेप नहीं करना चाहिये। रात्रि का लेप प्रातः और प्रातः का लेप सायंकाल उतार देना चाहिये। लेप करने पर अंगों को आराम देना चाहिये। जबतक आवश्यक न हो, उसे बाँधनी नहीं चाहिये।

अस्थिसंधावक लेप—एलुवा, गुग्गुल, गुंजर, मेदा लकड़ी, सज्जीखार, मायुसरस, हीराबोल, ईशश, श्वेतचीनी का सीरा, आम्बाहल्दी, लोध्र प्रत्येक १ तोला, सब वस्तुओं का चूर्ण करके आवश्यकता पड़ने पर पानी में गरम पीसकर मुढमार चोट, शोथ, अस्थि-भंग आदि स्थानों पर लगाना चाहिये। इस प्रकार के दो-चार लेप से आराम हो जाता है।

रसाञ्जनादि लेप—रसौंत और त्रिकटु समभाग लेकर पानी में पीसकर गोली करनी चाहिये। यह गोली पानी में घिसकर लेप करना चाहिये।

इन्द्रलुप्त का लेप—(१) पटोल पत्र के पत्तों का रस ३ दिन चुपड़ना चाहिये। (२) कटेरी का रस शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। रत्ती का मूल तथा रत्ती पीसकर शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। हाथी दाँत का चूरा और रसौंत मिलाकर लगाना चाहिये। चूरे की राख करके बकरी के दूध में मिलाकर लगाना चाहिये। चतुष्पादवाले पशुओं बकरी, हरिण, भेड़ आदि के चमड़े को, बाल, नख, सींग अस्थि आदि को जलाकर, राख बनाकर तिल्ली के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये।

कृमिघ्न लेप—करंज, कड़वा नीम, निर्गुण्डी, इन सबके पत्ते पीसकर व्रण में रखने से जीव मरते हैं। लहसुन को पीसकर लेप करने से, हींग को कड़वे नीम के पत्तों में पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

बाल बढ़ाने का लेप—गोखरू, आँवला, तिल्ली के फूल इनको पीसकर लेप करना चाहिये।

कुष्ठहर लेप—(१) हरड़, करञ्ज के बीज, सरसों, हल्दी, रत्ती, सेंधानमक, वायविडङ्ग इन सबको समान भाग लेकर लस्सी अथवा कांजी में पीसकर कुष्ठ-रोग पर लगाने से लाभ होता है।

कुष्ठहर लेप—(२) पारा और गन्धक की कजली करके इनको सरसों के तेल में मिलाकर लगाने से सब प्रकार के कुष्ठ अच्छे होते हैं।

खुजली का लेप—(१) वायविडंग, हिंगुल, गंधक, कूट, सिंदूर, कुवड़िया का बीज इन सबको समान भाग चूर्ण करके धतूरे के रस में मिलाकर लगाने से खुजली नष्ट होती है।

खुजली का लेप (२)—तेल, गन्धक, पारा, इनमें पारे और गन्धक की कज्जली करके धतूरे के रस में घोटकर तेल पकाना चाहिये। इस तेल के लगाने से खुजली, दाद, बिवाई आदि फटती है।

खुजली का लेप (३)—तेजपत्र २½ तोले, मैनसिल १० तोले, गन्धक दुण्डा १० तोले इसको कड़वे तेल से मिलाकर लगाने से खुजली आराम होती है।

गण्डमाला का लेप—भिलावा, हरीतकी, चित्रकमूल, दन्तीमूल, इनका बारीक चूर्ण करके गुड़, आक के दूध तथा थोर के दूध में मिलाकर लगाने से गण्डमाला-रोग शान्त होता है।

गर्मी का लेप—शिरीष की छाल, मुलहठी, तगर, लालचन्दन, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूट, नेत्रवाला, इलायची इन दसों वस्तुओं को समान भाग लेकर उनका चूर्ण करके घी में थोड़ा-सा सेंककर पानी अथवा गुलाब जल में पीसकर लेप करने से सब प्रकार के गर्मी के कोढ़, शोथ, दाह, विसर्प तथा अन्य सब प्रकार के जहर जैसे चूहे का विष, ततइये का डङ्क अथवा भिलावे या जमालगोटे आदि के जहर को आराम होता है।

ग्रन्थी का लेप—शिग्रु के मूल की छाल, सोंठ, सरसों, पुनर्नवा का मूल और देवदारु इनका समान भाग लेकर उसके चूर्ण को खट्टी छाछ अथवा कांजी में मिलाकर संधियों पर और वायु तथा कफ के रोगों पर लेप करने से शोथ को आराम होता है।

चाँदी का लेप—रसौंत, सरसों, हरड़ इनका बारीक चूर्ण करके मधु के साथ मिलाकर लगाने से सब प्रकार के उपदंश और उपदंश-जन्य व्रण नष्ट होते हैं।

श्वित्र का लेप—(१) लालचन्दन, मजीठ, लोद, कूट, प्रियंगु, बड़ की कोपल तथा मसूर की दाल ये सब समान भाग लेकर पानी में पीसकर लगाने से सफ़ेद कोढ़ को आराम होता है।

श्वित्र का लेप—(२) अर्जुन की छाल और मजीठ को शहद में मिलाकर लेप करना चाहिए।

श्वित्र का लेप—(३) सफ़ेद घोड़े के नख की राख को मक्खन में मिलाकर लेप करना चाहिये।

तारुण्य पिटिका के लेप—

(१) लोध्र, धनिया तथा बच इनके समान भाग लेकर पानी में पीसकर मुँह पर लगाने से मुँह के मुहासों को आराम होता है।

(२) बिजौरे का मूल, मन्सिल, घी तथा गोमय रस इनका लेप मुँह की कांति को बढ़ाता है।

(३) गोरोचन और गोलमिर्च को पानी में पीसकर लेप करना चाहिये।

(४) श्वेत सरसों, वच, लोध्र और सेंधानमक इनको पानी में पीसकर लेप करना चाहिए।

(५) बड़ के पीले पत्ते, जूही के पत्ते, लालचन्दन, कूट, दारु-हल्दी, लोध्र इनको मुँह पर लगाने से मुँह का रङ्ग साफ होता है और मुँह के मुहासे तथा झाँई दूर होती है।

दाह के लिये लेप—(१) चन्दन, कपूर, नेत्रबाला इनका लेप शरीर पर करना चाहिये।

दाह के लिये लेप—(२) हजार बार ठंडे पानी से धोया हुआ घी शरीर पर लगाने से दाह को आराम होता है।

कोढ़ के लिये लेप—(१) पीले फूलवाली कनेर, हीराकसीस, वाय-बिडङ्ग, मन्सिल, गोरोचन, सेंधानमक इनको गोमूत्र में मिलाकर लेप करने से सफ़ेद कोढ़ को आराम होता है।

कोढ़ के लिये लेप—(२) कालीजीरी ४ भाग, हरताल १ भाग, त्रिफला ६ भाग इनको गोमूत्र में मिलाकर लेप करना चाहिये।

नेत्र-रोग का लेप—हरड़, सेंधानमक, रसौत, सोनागेरू इन सबको समान भाग लेकर बकरी के दूध या गुलाबजल में मिलाकर लगाने से सब प्रकार के नेत्र-रोग शांत होते हैं।

विसर्प का लेप—सोनागेरू, रसौत, मजीठ, मुलहठी, नेत्रबाला, लाल चन्दन और पद्माख इनको कूटकर गुलाबजल में मिलाकर लेप करने से विसर्प, गर्मी की शोथ, दाह, शान्त होती है।

आग से जलने के लिये लेप (१)—चंदन, गेरू, वंशलोचन और बिलखन की छाल मिलाकर घी के साथ लगाने से आराम होता है।

आग से जलने के लिये लेप (२)—चूने के पानी को तिल के तेल में मिलाकर लगाने से जलने का दाह और व्रण शान्त होते हैं।

अंडघ्न का लेप—जीरा, पलाश, कूट, एरंडमूल इनको समान भाग लेकर कांजी में पीसकर लगाने से अण्ड की कठिन शोथ को आराम होता है।

बाल काले करने का लेप—

(१)—इन्द्रायण के बीजों का तेल पाताल-यन्त्र-विधि से निकालकर लगाने से बाल काले होते हैं।

(२)—लोहे का चूर्ण, त्रिफला, भाँगरा और कालीमिट्टी इनको एक मास तक गन्ने के रस में डालकर रखने से पीछे लगाने पर बाल काले हो जाते हैं।

(३)—आँवला २ भाग, बहेड़ा १ भाग, हरड़ २ भाग, आम की गुठली की गिरी ५ भाग, लोहे का चूर्ण १ तोला इन सबको लोहे की कढ़ाई में एक रात तक खूब घोटकर उसीमें छोड़ देना चाहिये और अगले दिन सबेरे बालों पर लगाने से आराम होता है।

(४)—त्रिफला, लोहे का चूर्ण, भाँगरा, नील (पत्ता) इनको समान भाग लेकर बकरी के मूत्र में पीसकर लगाने से आराम होता है।

विषघ्न लेप—बकरी के दूध मे तिल पीसकर, मक्खन में मिलाकर लगाने से भिलावे का जहर शान्त होता है।

शिरीष का लेप—श्वेत सरसों, हल्दी, कूठ, शिरीष और तिल ये समान भाग लेकर सरसों के तेल में मिलाकर लगाने से शीत, पित्त, छपाकी, उदर्द शान्त होता है।

अजितादि—विडङ्ग, त्रिफला, अजवायन, हींग, तगर, त्रिकटु, पाँचो नमक, चित्रकमूल इनको शहद में मिलाकर लगाने से सब प्रकार के साँपों का विष आराम होता है।

उदर-शूल— जौखार, बकरी की मींगणी, तिल, सैन्धव, अलसी इनको गरम पानी में मिलाकर लेप करने से शूल, मूत्र का रुकना आराम होता है।

मलहम

जात्यादि घृत— जूही का पत्ता, कड़वे नीम का पत्ता, परवल, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, मुलहठी, मोम, करञ्ज का बीज, कूठ, नीला थोथा इन सबकी लुगदी करके इनसे चारगुना घी लेकर ताँबे के बर्तन में पकाना चाहिये। औषधियों से जब घी अलग होकर तैरने लगे, तब उसको नितार लेना। इस घी के लगाने से नाड़ी-व्रण तथा गम्भीर व्रण एवं दुष्ट व्रण आराम होते हैं।

बिवाई का प्रलेप—राल, सेन्धा नमक, गुड़, मोम, मधु, गुग्गुल इनको क्रम से अग्नि के ऊपर मिलाकर शेष वस्तुओं का चूर्ण इसमें मिला देना चाहिये।

उपयोग—पाँव की बिवाई पर लगाना चाहिये।

पारदादि प्रलेप—पारा, जीरा, काला जीरा, हल्दी, आम्बाहल्दी, मिर्च, सिन्दूर, गन्धक तथा मैनसिल इनका बारीक चूर्ण करके घी में मिलाकर लगाने से कण्डु, खरजवाँ, गडगुमड़ तथा सिर में पड़ी हुई जूँ आदि मरते हैं।

गरमी की चाँदी का लेप

(१)—हीरा दखण, इलायची, कत्था प्रत्येक १ तोला और कपूर ' तोला इनको बारीक करके घी में प्रलेप करके लगाने से पीव-युक्त व्रण अच्छे हो जाते हैं।

(२)—बोदार, राल प्रत्येक २० तोला, कपूर और मोम प्रत्येक १० तोला, घी १० तोला इनमें मोम तथा घी को अग्नि पर पिघलाकर शेष वस्तुओं का बारीक चूर्ण इसमें मिला देना चाहिये।

(३)—बोदार तोला ५, राल ५ तोला, कपूर २॥ तोला इनको घी तथा मोम में मिलाकर प्रलेप करना चाहिये।

अर्श का प्रलेप—अफीम २ तोला, माजूफल का चूर्ण ५ तोला, सादा मलहम ३० तोला इनका प्रलेप करके रक्त तथा पीड़ा-युक्त मस्सों पर लगाना चाहिये।

अंजन

अंजन-गुटी—त्रिफला, त्रिकटु, सैंधव, रसौंत, मुलहठा, नीला तुत्थ, श्वेत कमल, बायबिडङ्ग, लोध्र, ताम्र-भस्म इन चौदह वस्तुओं का बारीक चूर्ण करके बरसात के या निर्मल पानी में पीसकर बत्ती बनाना चाहिये। इसको औरत के दूध में घिसकर अंजन करने से आँख के अन्दर की झाँख तथा परवल आदि मिटते हैं। किंशुक के रस में घिसकर अंजन करने से फूली, रताश आदि मिटते हैं, और लोध्र के पानी में घिसकर अंजन करने से प्रारम्भ का तिमिर-रोग मिटता है। इस बत्ती को नागार्जुनांजन भी कहते हैं।

कनकांजन—निर्मली का बीज, शंख, सेंधा नमक, त्रिकटु, साकर, समुद्रफेन, रसौंत, मधु, वायविडंग तथा मैनसिल ये समान भाग लेकर इनका चूर्ण करके स्त्री के दूध में या बकरी के दूध में पीसकर अंजन करना चाहिये। तिमिर, परवल, मोतिया, पलकों का रोग, फूली आदि रोग मिटते हैं।

कणादि अंजन—पिप्पली, त्रिफला (तीनों की छाल), लाख, लोध्र, सेंधा नमक समान भाग इनको भाँगरे के रस में घिसकर गोली बनानी चाहिये। पानी में घिसकर अंजन करने से तिमिर, मोतिया, फूली, पलक के रोग अच्छे होते हैं।

खर्पर-वटी—शुद्ध खपरिया, सेंधानमक, फूला हुआ मोरतुत्थ, टंकण, सोंठ, पिप्पली इन सबका बारीक चूर्ण करके नीबू के रस में पीसकर गोली करनी चाहिये। इसको छाया में सुखाकर पानी के साथ अंजन करने से आँख के रोग मिटते हैं।

खर्पराञ्जन—शुद्ध खपरिया को पानी के साथ खूब खरल करना चाहिये, जिससे खपरिया पानी में घुल जाय फिर पानी को नितारकर आग

पर ताम्बे के पात्र में गरम करना चाहिये। जो वस्तु तांबे के पात्र में रह जाय, उसको त्रिफला काथ की तीन भावना देकर छाया में सुखाकर चूर्ण करके रख लेना चाहिये। इस चूर्ण में दसवाँ भाग कपूर मिलाकर आँख के रोगों में बरतना चाहिये।

चन्द्रोदय वर्त्ति—हरड़, वच, कूठ, पिप्पली, मिर्च, बहेड़े की मींग, शङ्ख की नाभि, मैनसिल इन सब वस्तुओं का समान भाग लेकर बकरी के दूध में पीसकर वर्त्ति बना लेनी चाहिये। इस वर्त्ति के अंजन से तीन साल की फूली भी मिट जाता है।

तुत्थांजन—नीला तुत्थ, सोनामुखी, सेंधा नमक, शर्करा, शंख, मैनसिल, सोनागेरू, समुद्रफेन, मिर्च समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके मधु में पीसकर आँख में अंजन करना चाहिये। यह पलकों के सब रोग खाल, मोतिया, फूली आदि रोगों में उत्तम है।

नयनशाणाञ्जन—पिप्पली, सेंधानमक, मिर्च, रसौत, सुरमा, समुद्र-फेन, शर्करा, श्वेत पुनर्नवा, हल्दी, लाल चन्दन, मुलहट्ठी, हरड़, मैनसिल, नीम के पत्ते, लोध्र, फिटकरी, शङ्खनाभि, भीमसेन कपूर, ये सब समान भाग चूर्ण करके मोटे कपड़े में से छान लेना चाहिये। इसमें मधु मिलाकर लोह के पात्र में रखकर तांबे के पात्र से रगड़ना चाहिये। इस अंजन के लगाने से तिमिर, परवाल तथा फूली मिटती है।

नयनामृत—सीसक को पिघलाकर नीचे की वस्तुओं में सात-सात बार बुझाना चाहिये। जैसे—त्रिफला का काढ़ा, भाँगरे का रस, सोंठ का काढ़ा, घी, गोमूत्र, मधु, बकरी का दूध। पीछे से इस सीसक के बराबर पारा मिलाना चाहिये। दोनों वस्तुओं के बराबर शुद्ध सुरमा मिला-कर बारीक चूर्ण करके रख लेना चाहिये। इस चूर्ण से दसवाँ भाग भीमसेनी कपूर मिलाना चाहिये। यह सुरमा आँख के लिये अधिक उपयोगी है।

पलाशाञ्जन—लाल चन्दन १ भाग, सैंधव २ भाग, हरड़ ३ भाग, पलाश का गोंद ४ भाग इसका बारीक चूर्ण करना चाहिये। कृष्ण मण्डल के फूली पर लाभ करता है।

भीमसेनी कपूर—कपूर के टुकड़ों को जरा पानी जैसा गीला द्रव करना चाहिये। शीतल चीनी, इलायची, मोथा, छोटी हरड़, घी इन पाँच

वस्तुओं का बारीक चूर्ण करके ताँबे की कटोरी में बिछाकर इसके ऊपर कपूर के टुकड़े रखने चाहिये। पीछे से इनके ऊपर बराबर ठीक आजाये, इस प्रकार का पीतल का कटोरा ढाँप देना चाहिये। इन दोनों के सन्धि-स्थान को चिकनी मिट्टी या आटे के साथ लेप देना चाहिये। पीछे से इसको दिये पर धीरे-धीरे गरम करना चाहिये, जिससे बर्त्तन बहुत गरम न होजाय। जब गरम होने लगे, तब ऊपर के बर्त्तन को ठंडा रखना चाहिये। इस प्रकार ८ से १० घंटे के अंदर कपूर उड़कर ऊपर लग जायगा। पीछे से ऊपर के बर्त्तन पर से कपूर उतारकर एक शीशी में बन्द करके रख लेना चाहिये। इसको भीमसेनी कपूर कहते हैं। इसे आँख में लगाने से आँख में ठंडक होती है।

मुक्तादि महांजन—मोती, कपूर, काचलवण, अगरु, मिर्च, पिप्पली, सैन्धव, एलावालुक, सोंठ, कंकोल, कास्य-भस्म, वंग-भस्म, हरिद्रा, मनःशिला, शंखनाभि, अभ्रक, नीला तुत्थ, हंस बत्तख के अंडे का छिलका, बहेड़ा, केशर, हरीतकी, मुलहठी, लाजवर्द, जावित्री, तुलसी का नया फूल और बीज, करञ्ज, नीम, अर्जुनछाल, नागरमोथा, ताम्र, रसाञ्जन, लोह प्रत्येक १ माशा, लेकर उत्तम प्रकार से मधु के साथ पीसकर अञ्जन करने से सब प्रकार के आँख-रोग शान्त होते हैं।

रतनजोत की सलाइयाँ—नीला तुत्थ २ भाग, फिटकिरी १ भाग, सुराखार १ भाग, इन तीन चीजों को इकट्ठा करके आग के सहारे एक रस बनाकर इसमें ८० वाँ भाग कपूर मिलाना चाहिये। इसको प्रतिदिन दो-तीन बार करने से आँख से पानी गिरना, आँख का दुखना आदि रोग मिटते हैं।

रसांजनादि वटी—रसौत, हल्दी, दारु हल्दी, मालती के पत्ते तथा नीम के पत्ते इन सबको गोमय रस में पीसकर गोली करनी चाहिये। इन गोलियों में से एक बाल मात्रा पानी के साथ घिसकर अञ्जन करने से रतौंधी मिटती है।

स्नेहवर्त्ति—हरड़, बहेड़ा, आँवला, इनकी मींग क्रमशः ३, २, १ के अनुपात से लेकर पानी में पीसकर लम्बी-लम्बी शलाकावर्त्ति बनाना चाहिये। इनको पानी में घिसकर लगाने से आँख के अन्दर से निकलनेवाला पानी तथा वातरक्त की पीड़ा शान्त होती है।

सौवीराञ्जन—सुरमे के पत्थर को अग्नि के ऊपर गरम करके त्रिफला क्वाथ में सात बार, स्त्री के दूध में [अभाव में बकरी के दूध में] भँगरे के रस में बुझाकर अंजन करने से आँख के सब रोग मिटते हैं।

हरिद्रादि गुटिकाञ्जन—हल्दी, नीम के पत्ते, पिप्पली, मिर्च, बायबिडङ्ग, मोथा, सोंठ, इन सबको गाय के मूत्र में पीसकर चने के बराबर गोली बनाकर छाया में सुखा लेना चाहिये। इसको पानी में घिसकर अंजन करने से तिमिर, मधु में अंजन करने से परवाल, सैंधव के साथ लगाने से कण्डु, स्त्रियों के दूध में लगाने से दुःस्राव, बकरी के दूध में लगाने से नेत्र-प्रकोप शान्त होता है।

बाजीकरण तथा धातुपौष्टिक औषधियाँ

बाजीकरण-प्रयोगों को यथासम्भव सर्दियों में सेवन करना चाहिये। जिस प्रकार प्रत्येक पशु और वनस्पति के लिये वर्ष भर में एक समय आता है, जब वह अपनी शक्ति को नये सिरे से प्राप्त करके, साल भर के लिये शक्तिमान हो जाता है, उसी प्रकार सर्दियों की ऋतु पुरुषों के लिये है। इसमें भारी आहार-विहार खाने से लाभ होता है।

माषादि-मोदक—उड़द की कूटी हुई दाल का आटा, गेहूँ का दाना, छड़े हुये जौ का आटा, चावल का आटा, पिप्पली का चूर्ण प्रत्येक ४ तोला, घी १ सेर कढ़ाई में डालकर सबको भून लेना चाहिये। पीछे सबके बराबर शर्करा और शर्करा से दुगुना पानी लेकर अग्नि से पाक कर लेना चाहिये। पीछे से चार-चार तोले के लड्डू बनाने चाहिये। इनमें से एक-एक लड्डू प्रातः खाना चाहिये।

उड़द का पाक—उड़द का आटा २॥ सेर, गोंद १। सेर, खोवा २॥ सेर, बादाम की मींगी १। सेर, द्राक्षा ॥ सेर, चारोली । सेर, शर्करा, ८ सेर, घी ४ सेर। उड़द के आटे में १ सेर घी मिलाकर १ सेर दूध में खोवा बना लेना चाहिये। खोवे को घी में भूनना चाहिये, गोंद को घी में तलना चाहिये, पीछे से चासनी करके इसमें ऊपर की चीजें मिलाकर नीचे की चीजें मिला देनी चाहियें। श्वेत मूसली, काली मूसली, बहुफली, बलदाना, गोखरू, मुगलाई बेदाना, कौंच, तालमखाना, बिदारी, बराही, अकरकरा,

दालचीनी, तमालपत्र, इलायची, नागकेसर, जायफल, बाँसकपूर, सोंठ, मिर्च, पिप्पलीमूल प्रत्येक दो-दो तोला लेकर चूर्ण करना चाहिये। इसमें केसर १ तोला मिलाकर हलुवा-सा तैयार करना चाहिये। मात्रा—२½ तोला से ४ तोला। कमर के दुःस्राव में, निर्बलता में, स्त्रियों के तमाम रोगों में लाभदायक है।

आत्म-गुप्तादि चूर्ण—कौंच तथा तालमखाना समान भाग लेकर इनके बराबर शर्करा मिलानी चाहिये। मात्रा—½ से १ तोला।

अनुपान—धारोष्ण दुग्ध।

उपयोग—धातु-पुष्टि, शुक्र की वृद्धि में उपयोगी है।

आँवले के प्रयोग (१)—शुष्क आँवले के चूर्ण को भीगे आँवले के रस की सात दिन तक भावना देकर रखना चाहिये। मात्रा ½ से १ तोला।

अनुपान—गाय का दूध तथा शर्करा।

(२)—शुष्क आँवलों का चूर्ण २५६ तोला, गीले १००० आँवलों के रस की भावना देकर, पीछे से इसको घीवाले बर्त्तन में भरकर, इसमें २४ तोला शहद, २५६ तोला घी, ३२ तोला पिप्पली-चूर्ण, ६४ तोला शर्करा भरकर चौमासे में रखना चाहिये। सर्दियों में खाने से स्मरण-शक्ति बढ़ती है, सम्भोग की शक्ति बढ़ती है।

(३)—आँवले का रस, मधु, शर्करा और घी सबको मिलाकर प्रतिदिन २½ तोला खाने से गरमी तथा आँख के रोग अच्छे होते हैं।

(४)—आँवला, गोखरू, गिलोय इन तीनों को समान भाग लेकर ½ से ¾ तोला घी तथा शर्करा के साथ खाने से ऊपर से दूध पीना चाहिये। वीर्य-दोष को दूर करता है।

एरण्ड-बीज का प्रयोग—एरण्ड के बीज ४० तोला, गाय के दूध का खोवा ४० तोला, दोनों को अलग-अलग घी में सेककर दाना बनाना चाहिये। गेहूँ का दाना ४० तोला इसको गाय के दूध में दो-तीन घन्टे दबाकर घी में सेककर दाना बनाना चाहिये। पीछे तीनों को इकट्ठा करके इसमें इलायचीदाना ३ तोला, श्वेत मिर्च ६ माशे, दूधी का मगज़ १० तोला, बादाम का मगज़ १० तोला, सबको कूटकर मिलाना चाहिये। पीछे सबके बराबर शर्करा की चासनी करके इसमें सब चूर्ण मिला देना चाहिये। मात्रा—२½ से ५ तोला।

उपयोग—शिर की उष्णता, आँख की गरमी को मिटाता है, पित्त को निकालता है।

वृद्धदण्ड चूर्ण—कौंच, गोखरू, श्वेत मूसली, सिम्बल की जड़, आँवला, गिलोय-सत्त्व सब समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये। सबके बराबर शर्करा। मात्रा ½ से १ तोला।

अनुपान—दूध अथवा घी तथा शहद।

उपयोग—धातु-पुष्टि, कमर के दुखाव में उपयोगी है।

कौंच का प्रयोग—कौंच की गिरी, काली द्राक्षा, पिप्पली, तालमखाना, शर्करा सब समान भाग। मात्रा—½ से १ तोला।

अनुपान—घी, मधु और दूध।

उपयोग—शुक्र-क्षय के रोगों में उपयोगी है।

गोखरू का प्रयोग—(१) गोखरू का फल, तालमखाना, मुलहठी, गंगेरन, बलदाना सबका चूर्ण बनाकर आठ गुने दूध में पकाकर चूर्ण के बराबर गाय के घी में सेंककर, सबसे दुगुनी शर्करा मिलाकर इसके २ तोले का लड्डू बना लेना चाहिये। इससे वीर्य-वृद्धि तथा पुष्टि होती है।

गोखरू का प्रयोग—(२) गोखरू, शतावरी, तालमखाना, बलदाना इसको चूर्ण करके रात्रि में खाना चाहिये। मात्रा ½ तोला।

अनुपान—दूध-पुष्टि देता है।

वाजीकरण घृत—श्वेत कनेर की मूल १ सेर आठ सेर पानी में उबालकर चतुर्थांश पानी बचा रहना चाहिये, दूध २ सेर मिलाना चाहिये। शुद्ध संखिया १ तोला, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, केसर १ तोला, लवंग १ तोला, समुद्रफल १ तोला इन सबको दूध में उबालकर दही जमाना चाहिये। दही का घी बनाकर उसमें से एक बूँद पान के पत्ते में लगाकर खाना चाहिये।

वीर्य को उत्तेजित करता है, वीर्य का स्तम्भन होता है।

अश्वगन्धा-चूर्ण—अश्वगन्धा ५ तोला, विधारा ३ तोला, शर्करा ८ तोला, तालमखाना ५ तोला मिलाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इसको दूध के साथ खाने से वीर्य-वृद्धि होती है।

विदारीकन्द का प्रयोग—विदारीकन्द का चूर्ण, बाँसकपूर, मुलहठी, पिप्पली समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये। मात्रा ½ से १ तोला।

अनुपान—दूध तथा शर्करा।

उपयोग—क्षीणता, नपुंसकत्व में।

(२) विदारीकन्द के चूर्ण को विदारीकन्द के रस की भावना (४०) देकर चूर्ण करना चाहिये। मात्रा ½ से ¾ तोला।

उपयोग—धातुस्राव में, स्त्रियों के दुग्ध की कमी में।

अनुपान—घी तथा शर्करा।

शतावरी-प्रयोग—शतावरी, गोखरू, कौंच, नागबला, बलदाना, तालमखाना।

अनुपान—गाय का दूध। मात्रा ½ से १ तोला। यह चूर्ण रात्रि में पीने से कामेच्छा बढ़ती है।

(२) शतावरी, बलदाना, कौंच, गोखरू, तिल, उड़द समान भाग चूर्ण करके, उबले हुये गाय के दूध में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। मात्रा १ तोला। धातु-पुष्टि करता है।

शाल्मली-प्रयोग—मोचरस का चूर्ण ½ तोला, शर्करा ४ तोला, गाय का दूध २० तोला। इस अनुपान से कई दिनों तक लगातार खाने से धातु-पुष्टि होती है।

कामेश्वर-मोदक (महा)—अभ्रक, कायफल, कूठ, अश्वगन्धा, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारी, लाल मूली, गोक्षुर, शतावरी, अजवायन जटामांसी, पोस्ते का डोडा, तिल, धनिया, शठी, गन्धतृण, बला, मदनफल, जायफल, सैन्धव, भारंगी, काकड़ाशृंगी, पिप्पली, सोंठ, मिर्च, जीरा, काला जीरा, चीतामूल, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर, पुनर्नवा, गज-पिप्पली, द्राक्षा, शठी, हऊबेर, शाल्मलीमूल, कौंच के बीज प्रत्येक १ तोला, भाँग का चूर्ण ४२ तोला, शर्करा १६८ तोले। यथाविधि पाक कर लेना चाहिये। शीतल होने पर घृत और मधु मिलाकर मोदक बना लेना चाहिये। वाजीकरण है।

मदन-मोदक—शुद्ध की हुई भाँग बीज-सहित घी में भूनकर २१ तोला चूर्ण कर लेना चाहिये। त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ाशृंगी, कूठ,

धनिया, सैन्धव, शठी, तालीशपत्र, तेजपत्र, कायफल, नागकेसर, अजवायन, खुरासानी अजवायन, मुलहठी, मेथी, जीरा, काला जीरा प्रत्येक का चूर्ण १ तोला, शर्करा ६४ तोला पाक-योग्य जल मिलाकर पाक करना चाहिये। पाक-शेष होने के क़रीब हो, तो इसमें दालचीनी, तेजपत्र, इलायची-चूर्ण और थोड़ा-सा कपूर-चूर्ण मिलाकर १ तोला परिमाण का मोदक बना लेना चाहिये।

मदनानन्द-मोदक— पारद, गन्धक, लोह प्रत्येक एक तोला, अभ्रक ३ तोला, कपूर, सैन्धव, जटामांसी, आमलकी, इलायची, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, जावित्री, जायफल, तेजपत्र, लौंग, जीरा, काला जीरा, बच, मुलहठी, कूठ, हरिद्रा, देवदारु, हिंजल-बीज, सुहागा, भारंगी, नागकेसर, काकड़ाशृंगी, तालीशपत्र, द्राक्षा, चीतामूल, दन्तीबीज, बला, अतिबला, दालचीनी, धनिया, गजपिप्पली, शठी, हऊबेर, मोथा, विदारी, शतावरी, पाठा, कौंच के बीज, गोखरू, विधाराबीज, भाँग के बीज प्रत्येक १ तोला इनको शतावरी-रस से भावना देकर चूर्ण कर लेना चाहिये और सब चूर्ण का चौथाई भाग सिम्बल का चूर्ण मिला देना चाहिये। इस सारे चूर्ण का आधा भाग भाँग का चूर्ण मिलाकर बकरी के दूध के साथ पीसना चाहिये। सबसे दुगुनी शर्करा बकरी के दूध में मिलाकर पाक करना चाहिये। जब पाक समीप हो, तो ऊपर की सब औषधियाँ मिला देनी चाहियें। पीछे से दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर, कपूर, सैन्धव, त्रिकटु मिलाकर पाक समाप्त कर लेना चाहिये। पीछे से घृत और मधु भी आवश्यकतानुसार मिलाकर समाप्त कर लेना चाहिये।

उपयोग—शुक्र की तरलता में, शिश्न-शैथिल्य में। मात्रा १/४ से १/२ तोला।

अनुपान—गरम दूध।

मन्मथाभ्र-रस—पारा, गन्धक, अभ्र प्रत्येक ४ तोला, कपूर और बंग प्रत्येक १ तोला, ताम्र १/२ तोला, लोह २ तोला, विधारा का बीज, जीरा, विदारी, शतावरी, बला, कौंच के बीज, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, सिद्धि बीज, राल, अजवायन प्रत्येक १/२ तोला जल मिलाकर दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—शुक्रमेह-जनित शिश्न-शैथिल्य में उपकारी है। शुक्र को गाढ़ा करनेवाला, शुक्रधारक, बलकारक और उत्तेजक है।

बाजीकरण प्रयोगों को सेवन करनेवालों के लिये आवश्यक बातें

जो पुरुष बहुत सम्भोग करता है और बाजीकरण औषधियों का सेवन नहीं करता, उसको शुक्र-क्षय के कारण ध्वज-भङ्ग रोग हो जाता है।

निम्नकारणों से शुक्र का क्षय होता है—चिन्ता से, बुढ़ापे से, रोगों से, स्त्रियों के अतिसहवास से।

अतिसहयोग के कारण—ग्लानि, कम्प, कृशता, इन्द्रियों में क्षीणता, शोष, श्वास, उपदंश, ज्वर, अर्श, सब धातुओं की क्षीणता, वायु के रोग, नपुंसकता, ध्वज-भङ्ग, आदि रोग होते हैं। विशेषतः जो बाजी-कर्म नहीं करते।

नाना प्रकार के भोजन, पान, सुन्दर-मनोहर गाने, वाणीयां, स्पर्श तथा नवयुवती, तिलकवाली कामिनी सब मनुष्य में कामदेव को जागृत करनेवाली है।

जो कुछ मधुर स्निग्ध, जीवनीय, बृंहण, गुरु और मन को प्रसन्न करनेवाला है, वह सब बलकारक है।

अति उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, खट्टे पदार्थ, शाक, (सरसों आदि पत्तों के) क्षार और लवण ये वस्तुयें अतिसहवास करनेवाले पुरुष को नहीं खाना चाहिये।

यूनानी औषधि

अनुशदारु—गुलाब के फूल १८ माशा, नागरमोथा १५ माशा, लौंग, मस्तकी, जटामांसी, तगर, तज, तालीशपत्र, केशर प्रत्येक ९ माशा, आँवला ६ सेर इनको इमली के ३॥ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब १॥ सेर पानी शेष रहे, तब इमली का पानी तथा आँवले का खोवा इन सबको एकत्रित करके पाक करना चाहिये। इस पाक में ऊपर की चीजें मिला देनी चाहियें। मात्रा—१ तोला।

गुण—उन्माद को नष्ट कर पुरुषत्व बढ़ाना है।

अनुशदारूलोलवी—अनबिधे मोती १ तोला, सांगयब १ तोला इन दोनों को ३ दिन तक गुलाब और केवड़े के अर्क में पीसना चाहिये। पीछे से अगर, बाँसकपूर, जटामांसी प्रत्येक का २ तोला चूर्ण, कच्चा रेशम ½ तोला, सबसे दुगुना आँवला, इसको भापकर खोवा करना चाहिये। फिर सबसे तिगुनी शर्करा लेकर चासनी करनी चाहिये। फिर सब चीजों को इस चासनी में गेरकर पाक करना चाहिये। मात्रा—१ तोला।

गुण—दिल को ताकत देता है, खुश रखना है, उन्माद-रोग नष्ट होता है।

जवारीस कमुनी—काला जीरा ७ तोला, इसको सिरके में भिगो-कर सुखा देना चाहिये। इस प्रकार तीन बार करना चाहिये। पीछे कपड़े में से छान लेना चाहिये। इसमें सोंठ, मिर्च, पोदीना, पिप्पलीमूल, सुदाब, बड़ी हरड़, संचल प्रत्येक ३ तोला चूर्ण मिला देना चाहिये। इन सबको तिगुने शहद में मिलाना चाहिये।

गुण—भूख लगाता है, रुचि पैदा करता है, भोजन को हज्म करता है, पेट की गाँठ को गलाता है, औरतों में ऋतु-धर्म को ठीक करता है।

जवारीस मस्तगी—मस्तगी रूमी १ तोला, शर्करा १६ तोला, इसकी गुलाबजल में चासनी करनी चाहिये। जब चासनी तैयार हो जाय, तब इसमें खरल में पीसी हुई मस्तगी मिला देनी चाहिये।

गुण—यकृत तथा आमाशय में सरदी मिटाती है, मुँह में से लार टपकती हो, उसको बन्द करती है, पाचक होने से पेट की ताक़त बढ़ाती है। मात्रा—½ से १ तोला।

जवारीश उदतशुर्—कोड़िया लोहबान ५ तोला, लवङ्ग २ तोला, जटामांसी १ तोला, जरिश्क (छोटी खट्टी द्राक्षा) १ तोला, सबको चूर्ण करके तैयार रखना चाहिये। नीबू का रस ७ तोला, शर्करा २० तोला, इसकी चासनी करके ऊपर की चीजें मिला देनी चाहियें।

गुण—आमाशय को शक्ति देती है।

अर्क मुक़व्वी—जामुदी का फूल २० तोला, द्राक्षा २० तोला, शर्करा २० तोला, लौंग, जायफल, सालम, शक़ाकुल, पिस्ता, चिलगोजा के मगज़, यह प्रत्येक २ तोला, इन सबको ६ सेर पानी में भिगोकर आठ दिन तक रखना चाहिये। पीछे इसको कपड़े में से छानकर बोतल में भरकर रखना चाहिये। मात्रा—४ से ६ तोला।

उपयोग—बहुत शक्ति देता है, पुरुषत्व की शक्ति बढ़ाता है।

इतरफल कशनीजी—चारों प्रकार की हरड़ प्रत्येक एक तोला—इनको पीछे से कूट-छानकर इसमें बादाम का तेल मिला देना चाहिये। इसमें धनिया एक तोला कूटकर मिलाना चाहिये। पीछे से इसमें सबसे तीन गुना मधु मिलाकर मिट्टी के बर्तन में भरकर पीछे से जौ की कोठी में तीन मास तक भरकर रखना चाहिये।

गुण—आँख की बीमारी, सिर की बीमारी, अर्श को मिटाता है। मात्रा—½ से १ तोला।

इतरीफल उस्तखद्दूसी—हरड़ का छिलका एक तोला, आँवला एक तोला, उस्तखद्दूस २ तोला, बनफशा का फूल २ तोला, अमरबेल ½ तोला, अनीरचून ½, बाँदरजबोया ½ तोला, चित्रकमूल की छाल ½ इन सब चीजों को कूटकर कपड़छान करके चूर्ण से तिगुने शहद में मिलाना चाहिये। मात्रा एक से दो तोले।

गुण—मस्तिष्क की बीमारियों में तथा रक्त-विकार के सब रोगों में लाभ करता है।

बरशाशा—मिर्च ४ तोला, सफेद मिर्च ४ तोला, भाँग के बीज ४ तोला, अफीम एक तोला, केसर एक तोला, जटामांसी ½ तोला, अकरकरा

½ तोला, फरझीयुन ½ तोला सबको जुदा-जुदा चूर्ण-करके तोलना चाहिये। सबसे तिगुना शहद मिलाकर इसकी बरणी जौ के कोठे में तीन मास तक रख देनी चाहिये। मात्रा—½ से १ तोला।

गुण—प्रतिश्याय, ज्वर, कास, श्वास, गले के अन्दर की शोथ, लकवा, पक्षाघात, पार्श्वशूल, अतिसार, संग्रहणी, पेट का दर्द, उन्माद, वाई इत्यादि के रोगों में लाभ करता है।

माजूनेलबूब— बादाम, चिलगोजा, कुसुम्भ की मींग, फिन्दक, पिस्ता, हब्बुल, किलकिल खसखस, तोदरी पीली, तोदरी लाल, तोदरी सफेद, तिल सफेद, टेटी के बीज का मगज, प्याज का बीज, सलगम का बीज, गाजर के बीज, सफेद बेमन, बेमन सुर्ख, सोंठ, काली मिर्च, कबाबचीनी, दालचीनी, शकाकुल मिस्री, हलीऊन का बीज तथा कुलिञ्जन सब समान भाग और सबसे तिगुना मधु। सबको मिलाकर माजून अर्थात् चटनी बनानी चाहिये। सम्भोग के समय शक्ति देती है।

माजूने लबूबेकबीर बेमन सफेद, बेमन सुर्ख, तोदरी जर्द, तोदरी सफेद, शकाकुल मिस्री, सालमामिस्री, गाजर के बीज, शलगम के बीज, हलीयून के बीज, प्याज के बीज, गदना के बीज, इन्द्रजौ, नागरमोथा, शीतलचीनी, कुलींजन, बाजीदान, सुरंजान शीरीन, पोदीना, दरूनज अकरबी, प्रत्येक वस्तु १ तोला, खसखस, पिस्ता, बादाम, चिलगोजा, फिन्दक, अखरोट, तिल श्वेत, नारियल, कपास के बीज प्रत्येक २ तोला, सोंठ, लौंग जायफल, इलायचीदाना प्रत्येक ½ तोला; सब के वजन की दुगुनी खाँड़; खाँड़ की चाशनी करके इसमें दवाइयों का बारीक चूर्ण करके शेष वस्तुयें मिलाना चाहिये। मात्रा—१ से २ तोला।

गुण—दिल, मस्तिष्क, गुर्दे को ताकत देती है। सम्भोग-शक्ति को बढ़ाती है।

माजूनकुतन— कपास के बीज ६ तोला, दालचीनी ४-४½ तोला, उटङ्गण के बीज ४-४½ तोला, लौंग ४-४½ तोला, चिलगोजे का गिरी ४½ तोला, कायफल २ तोला, शकाकुल मिस्री ३ तोला, सोंठ ३ तोला, कूठ १४ माशा, सेंकी हुई अलसी के बीज १४ माशा, रूमी मस्तगी १४ माशा; सबको कूटकर तिगुने शहद में मिलाकर माजून बनाना चाहिये। मात्रा—४ माशा। निर्बलता को दूर करता है, कास और श्वास को नष्ट करता है।

माजूनेमिक़ल—हरड़ का छिलका ९ माशा, बहेड़े का छिलका ९ माशा, आँवला ९ माशा, कहरुवा १॥ तोला, प्रवाल के जड़ की भस्म १॥ तोला, फिटकड़ी ९ माशा, अजवायन ९ माशा, गुग्गुल ७ तोला, गुग्गुल के सिवा सब चीजों का चूर्ण करके, गुग्गुल को पानी में घोलकर, छानकर इस पानी में सब चूर्ण मिलाकर धूप में सुखा देना चाहिये। जब पानी सूख जाय और चूर्ण रह जाय, तब इसमें २६ तोला शहद मिलाना चाहिये। मात्रा—आधसे १ तोला।

गुण—अर्श के लिये अकसीर है।

माजूनेफलासफा—त्रिकटु, दालचीनी, आँवला, बहेड़े का छिलका, चीतामूल की छाल, जरावर्द मदेहर्ज, सालम, मगज, चिलगोजा, बाबूना के मूलिया, जटामांसी प्रत्येक ६ माशा, बाबूना के बीज १५ माशा, द्राक्षा ३ तोला; इनमें द्राक्षा को छोड़कर शेष सब वस्तुओं का चूर्ण बनाकर चूर्ण से दुगुना या तिगुना मधु लेकर उसमें द्राक्षा तथा चूर्ण मिला देना चाहिये। मात्रा—१ से २ तोला।

गुण—भूख लगाता है, धातु बढ़ाता है, स्मरण-शक्ति बढ़ाता है, बहुत पेशाब को रोकता है, कमर के दुखाव, गुरदे के दर्द को नष्ट करता है।

माजूनेउशबा – सौंफ, चन्दन, गिलोय, अमरबेल,हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, हरड़ छोटी, पित्तपापड़ा, कस्तूरी प्रत्येक १ तोला, मीठा सोनामक्खी ४ तोला, उशवा मगरबी १२ तोला, चोबचीनी ८ तोला, शर्करा सफेद १८० तोला इसकी चाशनी करके और इसमें सब वस्तुओं का चूर्ण मिलाकर माजून बना लेना चाहिये। मात्रा—१ तोला; यह माजून विस्फोटक, व्रण, रक्त-विकार तथा गरमी के रोगों में लाभदायक है।

खमीरे गावज़ुबाँ— गावज़ुबाँ १० तोला, बादरंजबोया ५ तोला, जटामांसी १ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, चन्दन-चूर्ण १ तोला सब औषधियों से तिगुना पानी और दुगुना गुलाबजल। प्रथम दवाइयों को कूटकर गुलाबजल में भिगोकर रखना चाहिये। पीछे से पानी में मिलाकर काढ़ा करना चाहिये। जब चतुर्थांश काढ़ा रहे, तब छानकर इसमें ६ गुना शर्करा मिलाकर गुलकन्द-जैसा पाक कर लेना चाहिये। इसमें १ तोला केसर मिला देना चाहिए।

गुण—दिल तथा मस्तिष्क को ताकत देता है। उन्माद-रोग तथा मूर्च्छा में लाभदायक है।

खमीरे सन्दल—चन्दन का बुरादा ५ तोला, इसको २० तोला गुलाबजल में २४ घंटे तक भिगोकर रखना चाहिये। पीछे धीमे-धीमे ताप से गरम करना चाहिये। जब गाढ़ा हो जाय, तब इसमें शर्करा ½ सेर मिलानी चाहिये। चन्दन के बुरादे को गुलाबजल में पत्थर पर घिसकर, गरम करके इसमें शर्करा मिलाने से बहुत अधिक बारीक बनता है।

उपयोग—पित्तविकार में, मस्तिष्क की गरमी में लाभदायक है।

शरबते बनफशा बनफशा १० तोला, ½ सेर पानी में काढ़ा करके ½ सेर बचाना चाहिये। इस पानी में २० तोला शर्करा मिलाकर चाशनी बना लेनी चाहिये।

उपयोग—ज्वर, आँख की गरमी, मस्तिष्क के रोग में। नींद आती है, मल खुलकर आता है, पित्त का रेच होता है।

शरबते उन्नाब—बनावट—बनफशा शर्बत के समान।

गुण—रक्तशोधक, ज्वर उतारता है, छाती के रोग को मिटाता है।

शरबते नीलोफर—बनावट—बनफशा के समान।

उपयोग—नींद अधिक लाता है, उन्माद-रोग में उपयोगी है।

शरबते दीनार—तुख्म कासनी, गुलाब के फूल, नीलोफर के फूल, गावजुबाँ, सौंफ, उस्तखदूश प्रत्येक एक-एक तोला, कासनी की जड़ की छाल, सौंफ की जड़ की छाल प्रत्येक दो-दो तोला, कुसुम के बीज और रेवतचीनी ये दोनों प्रत्येक ९ माशा, सबको पोटली बाँधकर पानी में उबालकर शर्बत तैयार करना चाहिये।

गुण—रेचक, मूत्रल, मलेरिया, पाण्डु-रोग, जलन्धर, पेट के दूसरे रोगों में एवं स्त्रियों के गुप्त रोगों में तथा पुरुषों के मूत्र-सम्बन्धी रोगों में, पार्श्वशूल में, आँत्र-शोथ में लाभदायक है।

शरबते फरियादरस—गावजुबाँ, चन्दन श्वेत, हंसराज, खसखस, पोस्ते का डोडा प्रत्येक २ तोला, मुलहठी का शीरा, सौंफ, तुख्म खतमी, गुलाब के फूल, सेवती गुलाब के फूल प्रत्येक १ तोला, मुनक्का सबका आधा और शर्करा सबकी छः गुनी, सबका चौगुना पानी डालकर शर्करा के

सिवा सब चीजों को उबालकर, आधा पानी रहने पर, छानकर, शर्करा मिलाकर चाशनी बनानी चाहिये।

गुण—पुराने ज्वर मे, कास मे तथा नजले मे उपयोगी है।

शरबते वर्द मुकर्रर—गुलाब के नीले फूल ४० तोला, पानी ३ सेर इनको उबालना चाहिये। जब १½ सेर पानी जल जाय, फिर इसमें ½ सेर गुलाब के फूल मिलाना चाहिये। अन्त मे जब एक सेर पानी रह जाय, तब इसमे १॥ सेर शर्करा मिलाकर चाशनी कर लेनी चाहिये। मात्रा—४ तोला।

अनुपान—बरफ मे मिलाकर पीने से विरेचन होता है। ठण्डा पानी जितना अधिक पिया जायगा, उतने ही अधिक विरेचन होंगे।

शरबते एजाज—उनाब २० दाना, बटगुदा ६० दाना, मुलहठी २ तोला, तुख्म ख्बाजी २ तोला, तुख्म ख्तमी २ तोला, नीलोफर २ तोला, बनफशे का फूल २ तोला, बबूल का गोंद, कतीरा गोंद, मुगलाई बेदाना प्रत्येक एक-एक तोला, गोंद के अतिरिक्त की वस्तुओं को चार गुना पानी मे उबालकर जब आधा पानी शेष रहे, तब छान लेना चाहिये। इसमे पीसकर गोंद मिला देना चाहिये तथा आवश्यकतानुसार शर्करा मिलाकर शरबत बना लेना चाहिये।

गुण—कास, गरमी के ज्वर मे, क्षय-रोग मे।

शरबते बजूरी—सौंफ ९ माशा, अजवायन, ६ माशा, कासनी ९ माशा, गोखरू १५ माशा, सकरटेटी के बीज की मीग १५ माशा, खीरा के बीज की मगज ३० माशा, कासनी की जड़ २१ माशा, सौंफ की जड़ की छाल २१ माशा, सबको कूटकर अधकचरा करके, रात्रि में छः गुना पानी मे भिगोकर रखना चाहिये। प्रातः काढ़ा करके दवा के वजन से दुगुना पानी बाकी रहे, तब छान लेना चाहिये। इस पानी मे पानी के बराबर शर्करा मिलाकर शरबत बना लेना चाहिये। वायु को उतारता है, पेशाब को लाता है।

शरबते बिजूरी—तुख्म कासनी २ तोला, सौंफ २ तोला, खरबूज का मगज २ तोला, दधी का मगज कुसुम के बीज १ तोला, गुले गाफीस १ तोला, खत्मी १ तोला, मुलहठी १ तोला, जटामांसी १ तोला, गुलबनफशा १ तोला, गावजबाँ १ तोला, काली द्राक्षा ६ तोला; इन सबको अधकचरा करके रात्रि

को १॥ सेर पानी में भिगोकर रखना चाहिये । प्रातः इसका काढ़ा करना चाहिये । जब आधा पानी रहे, तब छानकर इसमें ¾ सेर शर्करा मिलाकर शहद जैसी चाशनी बनानी चाहिये । मात्रा—२ तोला । दिन में दोनों समय लेनी चाहिये । इसमें सौंफ का अर्क भी २ तोले मिलाना चाहिये ।

उपयोग—क्षय में, जीर्ण-ज्वर में ।

सिकंजबीन असली—पाणकन्द इसको कूटकर पानी में जोश देना चाहिये । पीछे हाथ से मसलकर पानी को कपड़े से छान लेना चाहिये । इस पानी से दुगुना सिरका और तिगुनी लाल खाँड़ मिलाकर शरबत बनाना चाहिये ।

गुण—यकृत तथा प्लीहा की वृद्धि को, कास तथा श्वास को मिटाता है ।

सिकंजबीन बीजूरी बारीद कासनी की जड़ की छाल ७ तोला, आरीया तथा कासनी का बीज प्रत्येक ५ तोला इन तीनों को कूटकर आठ गुने पानी में उबालना चाहिये । चार गुना पानी रहने पर कपड़े में से छानकर, इसमें दवाइओं से चार गुना सिरका और सिरके से दुगुनी शर्करा मिलाकर चासनी तैयार करनी चाहिये ।

गुण—यकृत शोथ, जलन्धर और मूत्राघात को आराम करती है ।

सिकञ्जबीन सादा—सिरका ½ सेर, गुलाबजल ½ सेर शर्करा ½ सेर इनकी चाशनी बनानी चाहिये ।

गुण—ताव, पित्तकामला, उल्टी आदि में उपयोगी है ।

दबीदुल वर्द— जटामांसी, रूमीमस्तगी, बाँसकपूर, दालचीनी, इजरख की जड़, सुगन्धबाला, अगर, तगर, कूठ, तुख्म कसूस, तुख्म अजमोदा, रेवन्द्री, इलायचीदाना प्रत्येक १ तोला; सबके बराबर गुलाब के फूल, सबको कूट छानकर चूर्ण बनाकर तिगुने शहद में मिला देना चाहिये ।

गुण—आमाशय तथा कलेजे के दर्द को ताकत देता है ।

हब्बेतकार—फूला हुआ सुहागा २ तोला, काली मिर्च ८ तोला, अजवायन १० तोला, इलायची १२ तोला, सबको घीकुँआर के रस में घोटकर मिर्च के बराबर गोली बनानी चाहिये ।

गुण—प्लीहा, जलन्धर, उदर-रोग आदि में काम करती है। दीपन, पाचन तथा मल साफ लाता है।

हब्बेमुमसिक—अफीम, जायफल, कस्तूरी, कपूर, चारों समान भाग लेकर कूट-छानकर पान के पत्तों के रस में घोले, चाल की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—धातु-वीर्य-स्तम्भन करती है।

हब्बेशफा—धतूरे के बीज ३ तोला, रेवतचीनी २ तोला, सोंठ १ तोला, इनको कूट छानकर बबूल की गोंद के पानी के साथ गोली बनानी चाहिये। ज्वर चढ़ने से एक घण्टा पहले यह गोली खाने से बुखार चढ़ने से रुकता है।

यूनानी विधि से धातुओं का जारण-मारण

अभ्रक-भस्म—उत्तम कृष्णाभ्रक लेकर, इसको कूटकर एक मोटे कपड़े की थैली में कुछ कौड़ियों तथा खजूर की गुठलियों के साथ डालकर थैली का मुँह बन्द कर देना चाहिये। इस थैली को गरम पानी में रखकर मसलना चाहिये। इससे अभ्रक के कण पानी में आजायँगे। इस अभ्रक को १२ घण्टे तक आक के दूध में घोटकर टिकिया बना ले। फिर ऊपर-नीचे आक के पत्ते रखकर शराव-सम्पुट में आँच देनी चाहिये। इस प्रकार ७ पुट देना चाहिये। इसी प्रकार वटांकुरों से सात पुट देने चाहिये। प्रत्येक बार आँच कम करते जाना चाहिये। यहाँ तक कि अन्तिम बार तीन उपलों की आँच रह जाय। अब अभ्रक के बराबर गाय का घी मिलाकर लोहे की कड़ाही में डालकर आग पर रक्खें, जब सब घी सूख जाय, तब उतारकर शीशी में रख लें।

सफेद अभ्रक-भस्म—सफेद अभ्रक को आग पर खूब तपाकर उसपर पानी छिड़कें और फिर उसे इमामदस्ते में कूटकर महीन करें। १२ घंटे तक नीबू के अर्क में घोटकर टिकिया बना लें, और फिर शराव-सम्पुट में रखकर गजपुट की आँच देनी चाहिये। इसके बाद भाँगरे के रस में घोटकर पुट दे दे और फिर धतूरे के अर्क में घोटकर फूँकें। जबतक चमक रहे, तबतक इसी तरह पुट देते रहें।

दूसरी विधि—सफेद अभ्रक के बारीक-बारीक ५ तोले चप्पे लेकर आग पर लाल करें और दूध में बुझावें। फिर घीक्वार के रस में घोंटकर १० उपलों की आँच में फूँक देना चाहिये। यदि कुछ कमी रह जाय, तो एक पुट और लगा दें।

फौलाद-भस्म—फौलाद के बुरादे को ३ दिन तक कागजी नीबू के अर्क में खरल करके टिकिया बना लें। इस टिकिया को एक मोटी-सी मूली में छेद करके रख दें, और इस छेद को मूली के गूदे से बन्द कर देना चाहिये। इस मूली को शराब-सम्पुट में रखकर १५ सेर उपलों की आँच देनी चाहिये। इस तरह ४० पुट लगावें। मात्रा—१ रत्ती।

दूसरी विधि—एक छटाँक फौलाद के बुरादे को कागजी नीबू के अर्क में अच्छी तरह धोयें। फिर उसपर जामुन का सिरका इतना डालें कि बुरादे से २-३ अंगुल ऊपर रहे। जब सिरका सूख जाय, तब बुरादे को खरल करके बारीक करें। फिर घीक्वार के रस में घोटकर १५ सेर उपलों की आग में फूँक देना चाहिये। फिर बुरादा निकालकर इसमें ५ माशे गन्धक मिलाकर घीक्वार के रस में घोंटकर १ सेर उपलों की पुट देनी चाहिये।

फौलाद-भस्म सर्द—६ तोला फौलाद को जामुन के सिर्के में उस वक्त तक घोटें, जबतक सब दो सेर सिरका न सूखे। बस भस्म तैयार होगई।

मण्डूर-भस्म—मण्डूर को आग में सुर्ख करके कई बार गोमूत्र में बुझावें। बारीक होने पर आठ घन्टे तक आक के दूध में घोटें और टिकिया बनाकर शराब-सम्पुट में रखकर गजपुट देना चाहिये। इसी तरह २० पुट आक के दूध में और एक पुट घीक्वार के रस में दें। जब पानी पर तैरने लगे, तो भस्म तैयार हो जायगी।

सोने की भस्म—१ तोले सोने को वन-तुलसी के रस में इतना खरल करे कि एक पाव रस सूख जाय, फिर टिकिया बनाकर सुखा लें और शराव-सम्पुट करके ७ सेर उपलों में फूँक देना चाहिये।

चाँदी की भस्म—चाँदी के बुरादे को या वर्कों को ३ घन्टे तक आक के दूध में खरल करके टिकिया बनावें और एक छटाँक आक की नरम कोपलों की लुगदी के बीच में रखकर शराब-सम्पुट करके ५ सेर उपलों की

आग में फूँक दें। इस तरह दो पुट देने चाहिये। उत्तम भस्म तैयार हो जायगी।

सीसा-भस्म—सीसे के बारीक बुरादे को गुले अब्बासी (गुला बाँस) के अर्क में खूब खरल करके सुखा लें। फिर पोस्ते के डोडे के पानी में दो पहर तक खरल करके यथा विधि टिकिया बनाकर ५ सेर उपलों की आँच में फूँकें। फिर आक के दूध में और घीकार के रस में एक-एक पुट ३ सेर उपलों का दें। उत्तम भस्म बनेगी।

राँग-भस्म—राँग के वर्कों को कैंची से काटकर, बारीक-बारीक टुकड़े करके एक बड़े से उपले पर १ छटाँक भाँग फैलाकर उसपर रख दें। उसके ऊपर १ छटाँक भाँग फैलाकर दूसरे उपले से ढाँपकर गढ़े में रखकर १० सेर उपलों की आँच दे दें। बस, उत्तम भस्म बन जायगी।

मोती-भस्म—१ तोले अनविधे मोती को गाय के दूध में खरल करके गुलगावजबाँ की लुगदी में (१० तोले) रखकर ७ सेर उपलों की आँच में पुट दें; इस प्रकार के तीन पुटों में उत्तम भस्म बन जायगी।

मूँगा-भस्म—एक मिट्टी के प्याले में मूँगा की शाखें रखकर उस पर घीकार का रस इतना डालें कि वह रस में डूब जाय। फिर शराब को २० सेर उपलों की आँच में फूँक देना चाहिये। इसके बाद गुलाब के अर्क में १२ घंटे खरल करके २० सेर उपलों में फूँक देना चाहिये।

दूसरी विधि—मूँगा ५ तोले, जमुर्रद १ तोला, चाँदी के वर्क १ तोला. सबको नीबू या हरी गिलोय या घीकार के अर्क में खरल करके टिकिया बनावें। सूखने पर गजपुट में फूँकें।

मूँगा-भस्म जवाहरवाली—मूँगा १ तोला, चाँदी के वर्क ३ माशे याकूत ३ माशे, अम्बर १ माशा, सोने का वर्क १ माशा, जमुर्रद को ५ माशे। सबको अर्क केवड़े में घोटकर यथा विधि १० सेर उपलों में पुट दें।

जमुर्रद-भस्म—जमुर्रद को गुलाब के अर्क में अच्छी तरह खरल करके घीकार के गूदे में रखकर शराब सम्पुट में करके १० सेर उपलों में पुट दें।

उपयोग—जिगर और दिल की कमजोरी में।

अकीक-भस्म—२ तोला लाल अकीक को की करके पत्तों की डेढ़

पाव लुगदी में रखकर शराव-सम्पुट में १० सेर उपलों में फूँक देना चाहिये।

याकूत भस्म जवाहरवाली— याकूत सुर्ख ६ माशे, मूँगे की जड़ ३ माशे, मूँगे की राख ३ माशे, अनबिंधे मोती १॥ माशा, सोने का वर्क १॥ माशा; सबको संग सिमाक के खरल में गुलाब के अर्क के साथ एक सप्ताह तक खरल करें। भस्म बन जायगी।

दूसरी विधि—उपरोक्त वस्तुओं को गुलाब और ब्राण्डी में खरल करके २० सेर उपलों की आँच में फूँक देना चाहिये। इस तरह दस पुट देने से उत्तम भस्म बन जायगी।

हजरूल यहूद-भस्म—हजरूल यहूद और संग सरमाही को मूली के हरे पत्तों के रस में अच्छी तरह खरल करके शराव-सम्पुट में रखकर पुट दें। पथरी के लिये उपयोगी है।

गोदन्ती-भस्म (खास)—गोदन्ती हरताल को मिट्टी के एक कोरे प्याले में आक के दूध में भिगो दें और दस दिन तक रक्खें। फिर १४ दिन तक घीकार के रस में भिगो रक्खें। इसके बाद २५ सेर उपलों की आँच में फूँक दें। दमे और खाँसी के लिये उपयोगी है।

मुर्गी के अंडों के छिलकों की भस्म—शुद्ध छिलकों को १२ घंटे तक आक के दूध में घोटकर यथाविधि शराव-सम्पुट करके १५ सेर उपलों में पुट दें। ९ पुट देने से उत्तम भस्म बन जायगी।

कुस्ता मुसल्लस— राँग, जस्त, सीसा प्रत्येक १ तोला लेकर लोहे की कढ़ाई में पिघलाकर गाय के घी में बुझावें। इसी तरह ७ बुझावे दें। फिर उसे लोहे की एक कड़छी में डालकर पिघलायें। उसमें थोड़ा-थोड़ा पोस्ते के डोडे का चूर्ण डालकर लोहे की सीख से चलाते जायँ। जब २० तोला चूर्ण समाप्त हो जाय तो ४ घन्टे तक खट्टे दही में घोंटकर टिकिया बनाकर १५ सेर उपलों में फूँक देना। इसी तरह खट्टे दही में खरल करके ५ पुट दें।

रोगों के लिये कुछ आवश्यक नुस्खे

ज्वर—छोटी पिप्पली २ तोला, जीरा २½ तोला, कांकच के मगज ४ तोला, बबूल का पत्ता १½ तोला, इनको पानी में पीसकर गोली बनानी

चाहिये। दिन में तीन बार दो-दो गोली देने से किसी भी प्रकार का ज्वर हट जाता है।

जीर्ण ज्वर—वंशलोचन ४ तोला, प्रवालपिष्टि ३ तोला, इलायची २ तोला, गिलोय-सत्त्व ३ तोला, खूबकला ३ तोला, सबका बारीक चूर्ण करके दिन में तीन बार दो-दो रत्ती खाना चाहिये।

सन्निपात ज्वर—कासनी २ तोला, कुलफा का बीज खोखला किया हुआ २ तोला, आलूबुखारा २० दाना, इन तीनों दवाइयों को ½ सेर पानी में दो घन्टे तक भिगोकर रखना चाहिये। पीछे से पानी नितारकर इसमें शर्करा २ से ३ तोला मिलाकर तीन-तीन घन्टे पर पीना चाहिये।

तीक्ष्ण संधिवात (१)—अकलील मुल्क, बाबूना, गुलेबेरन, जव और खुम्बाजी प्रत्येक १ तोला, पानी में पीसकर संधियों के ऊपर लगा देना चाहिये।

तीक्ष्ण संधिवात (२)—हरड़ का छिलका ½ तोला, निशोथ ½ तोला, बिस्फायज ¾ तोला, शाहतरा ½ तोला, सुरंजन ½ तोला, कासनी १ तोला, गुलाब का फूल १ तोला, इन सबको अधकचरा कूटकर १॥ सेर पानी में उबालना चाहिये। आधा पानी शेष रहे, तब छानकर दिन में तीन समय पीना चाहिये। यदि दस्त अधिक हो, तो प्रथम दो औषधियाँ निकाल देनी चाहियें।

तीक्ष्ण संधिवात(३)—सिपस्तान ७ दाना, उन्नाब १० दाना, कासनी १ तोला, बनफसा ½ तोला, इनको अधकचरा करके ½ सेर पानी में २ घंटे तक भिगोकर रखना चाहिये, पीछे नितारकर ३ भाग करके तीन बार पीना चाहिये। पेट में कब्ज हो, तो इसमें तुरञ्जबीन १ तोला, अमलतास १ तोला मिलाना चाहिये।

लकवा (१)—ज़हरकुचला २ तोला, गुले गावजबाँ, नरकचूर, उस्त-खुद्दूस, लोहबान, सकाफुल प्रत्येक १ तोला, चन्दन का बूरा ½ तोला, लौंग ½ तोला, शुष्क आँवला १¾ तोला, खोपड़ा तथा चिलगोजा के मगज एक-एक तोला इन सबको बारीक चूर्ण करके पीछे से ४० तोले शहद में एक सेर पानी मिलाकर मीठी आँच से शरबत बनाना चाहिये। इसमें ऊपर का चूर्ण मिलाकर चटनी बनानी चाहिये। मात्रा—½ से एक ड्राम।

लकवा (२)—नरकचूर, दरूनज अकरबी, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, जटामासी, इलायची, लौंग, तमालपत्र प्रत्येक ½ तोला, जुन्दबेदस्तर, पिप्पली,

सोंठ, कस्तूरी प्रत्येक ½ तोला सबका बारीक चूर्ण करना चाहिये। मधु १५ तोला, प्रथम मधु को ½ सेर पानी में मीठी आँच से मिलाकर शरबत बनाना चाहिये। पीछे इसमें ऊपर के चूर्ण मिलाकर चटनी तैयार कर लेनी चाहिये। मात्रा—एक से १½ ड्राम।

लकवा (१)— एलीया १२ ग्रेन, इन्द्रवारुणी २४ ग्रेन, फरफयून ३ ग्रेन, गुग्गुल २४ ग्रेन इन सबको मिलाकर १२ गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ से २ गोली।

लकवा (२)—अनीसून ½ तोला, अजवायन, कीर्दमान, तुख्मकरफस, सौंफ, अजखर, मुलहठी, बेबेकेबर प्रत्येक ½ तोला। इन सब चीजों को ½ सेर पानी में उबालकर आधा पानी रखना चाहिये। इस पानी को छानकर इसमें १ तोला गुलकन्द मिलाकर सब पानी सबेरे पीना चाहिये। इस प्रकार प्रति दिन ताजी दवा बनाकर पीना चाहिये।

लकवा (३)—कासनी ½ तोला, काली द्राक्षा ½ तोला, बनफसा, उन्नाव, गुलाब के फूल प्रत्येक ½ तोला इन सब चीजों को ½ सेर गरम उबलते पानी में भिगोकर पीछे से इसमें शर्करा मिलाकर दो बार पीने से दस्त साफ आता है। इसमें कभी-कभी सोनामखी आधा तोला, अमलतास का गूदा १ तोला, शीरखिस्त १ तोला मिलाना चाहिये।

अर्धाङ्ग-वायु—कासनी आधा तोला, उन्नाव ७ दाना; इन दोनों चीजों को अधकचरी करके एक पाव उबलते पानी में आधे घन्टे तक भिगोकर रखे। दिन में तीन बार पीना चाहिये।

अपस्मार—उस्तखदूस, अफतीमून (अकशबेल), सौंफ, अनीसून, बनफसा, बिस्फायेज, गुलाब के फूल, हरड़ का छिलका प्रत्येक आधा तोला, निशोथ ½ तोला इन सबको कूटकर एक पात्र में रखकर इसके ऊपर उबलता पानी डेढ़पाव डालना चाहिये। आध घन्टे के पीछे पानी को छानकर इसके दो भाग करने चाहिये। प्रातः-सायं दोनों समय थोड़ी शक्कर मिलाकर पीना चाहिये। यदि दस्त अधिक हो, तो पिछली चार चीजें कम कर लेनी चाहिये या निकाल देनी चाहिये।

शिरो-रोग (पित्त-रोग का)—हरड़ ½ तोला, हरड़ का छिलका ½ तोला, आलू बुखारा १० दाना, उन्नाव १० दाना, सिपस्तान ७ दाना सबको अधकचरा करके ¼ सेर पानी में मीठी आँच से उबालना चाहिये। जब पानी ½ शेष रहे,

तब इस पानी को छानकर दो समय थोड़ी-थोड़ी शर्करा मिलाकर पीना चाहिये।

प्रतिश्याय (आरम्भ का)—उन्नाब ७ दाना, सिपस्तान ७ दाना, बनफसा ३/४ तोला, खसखस १/२ तोला इन सबको एक पात्र में रखकर इसके ऊपर उबलता पानी १/२ सेर मिलाकर थोड़ी देर के पीछे पानी छान लेना चाहिये। इसके दो भाग करके प्रातः-सायं थोड़ी शर्करा मिलानी चाहिये। दो-चार दिन नित्य-प्रति ताजी दवा तैयार करके पीना चाहिये। दस्त साफ़ लाने के लिये इसमें शीरखिस्त या तुरञ्जबीन १ तोला मिलाकर पीना चाहिये।

कास (सूखी)—बनफसा १/२ तोला, मुलहठी १/२ तोला, तुख्मख़तमी १/४ तोला, उन्नाब ५ दाना, दूधी का मगज १/४ तोला इन सब चीजों को १/२ सेर पानी में उबालकर जब पानी आधा रहे, तब इसमें शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। सायंकाल फोक भी इसी प्रकार पीना चाहिये।

कास (सूखी)—शरबते जूफा १ तोला प्रातः-सायं पीना चाहिये अथवा मीठे बादाम का तेल या दूधी के बीजों का तेल छोटा चम्मच भर प्रतिदिन दो-तीन बार पीना चाहिये। गले में खरखराहट हो और गला शुष्क रहे, तब तेल देने समय मुलहठी का शीरा १/४ तोला पानी में पीसकर मिला देना चाहिये।

कास (कफ की खाँसी)—शिलारस १५ ग्रेन, शहरी लोहबान १५ ग्रेन, हीराबोल १२ ग्रेन, अफीम २ ग्रेन सबको बारीक पीसकर गोंद के पानी में १२ गोली बनानी चाहिये।

कास (सब प्रकार की) मुलहठी का शीरा १ तोला, मुलहठी १ तोला, बबूल का गोंद १ तोला, खसखस १/२ तोला, काकड़ाश्रृंगी १/२ तोला, मिर्च १/४ तोला और शक्कर तीगाल १/४ तोला; इन सबका बारीक चूर्ण करके पानी में पीसकर चने के समान गोली बनानी चाहिये। दिन में चार गोली मुँह में रखकर चूसना चाहिये।

क्षय— गुलाब के फूल की सूखी कलियाँ ११/२ तोला, बबूल का गोंद ११/२ तोला निशास्ता ३/४ तोला, मुलहठी का शीरा ३/४ तोला, गोंद ३/४ तोला, काली और सफेद खसखस एक-एक तोला, वंशलोचन १। तोला, केसर १/४ तोला; सबको अलग-अलग कूट-छानकर फिर एकत्र करके पानी के साथ ६ मासे की गोलियाँ बनानी चाहियें—मात्रा एक-एक गोली प्रातः-सायं खानी चाहिये।

अनुपान—खसखस का शरबत ।

श्वास—मुलहठी १० तोला, हंसराज ३॥ तोला, खसखस ३॥ तोला, जूफा, तुख्मे खतमी, सौंफ, अनीसून प्रत्येक १ तोला, उन्नाब ५० दाना, सीपस्तान ५० दाना इन सबको रात्रि में १॥ सेर पानी में भिगोकर प्रातः धीमी आँच से काढ़ा करना चाहिये, जब पानी आधा शेष रह जाय, तब छान लेना चाहिये । इसमें ¾ सेर शर्करा मिलाकर मधु-जैसा पतला शरबत तैयार कर लेना चाहिये । मात्रा १ से ३ तोला—दिन में तीन बार पीना चाहिये ।

श्वास (दम चढ़ना)—अंजीर सूखी २ तोला, मेथी, सौंफ, असारून (तगर), जूफा प्रत्येक १ तोला इन सबको रात्रि में तीन पाव पानी में भिगोकर रखना चाहिये । प्रातः धीमी आँच से उबालकर आधा पानी रहने पर छान लेना चाहिये । इसमें १५ तोले शहद मिलाकर शरबत बनावें । इसमें पानकन्दा की भूकी ३० ग्रेन तथा केसर ५ ग्रेन मिलाकर एक चिकने बर्त्तन में भरकर रखना चाहिये । प्रातः सायं दो बार एक-एक तोला चाटना चाहिये ।

श्वास— साबर शींग के टुकड़े तथा इसके आधे वजन में नमक, इन दोनों को आक के दूध में भिगोकर रखना चाहिये । दूध एक अंगुल ऊपर तैरता रहना चाहिये । दूध सूख जाय तो फिर से आक का दूध मिला देना चाहिये । इस प्रकार २-३ बार भिगोकर शराब सम्पुट में रखकर भस्म बनानी चाहिये । मात्रा १ से २ बाल ।

हृदय रोग (१) - गुल गावजुबाँ, गिले अरमनी प्रत्येक २ तोला, वंशलोचन, धनिये का मगज, गुलाब का शुष्क फूल, शर्करा प्रत्येक ४ तोला, सब को कूट छानकर प्रातः सायं फंकी लेना चाहिये । मात्रा ½ से ¾ तोला ।

हृदय रोग (२) — दरूनज अकरबी, नरकचूर, बहमन सफेद, बहमन सुर्ख प्रत्येक १ तोला, लौंग जटामांसी, मस्तगी, तमालपत्र प्रत्येक ½ तोला । मात्रा २ आना ।

शूल—अमलतास का गूदा पानी में पीसकर पार्श्वशूल (पसलियों के दर्द) पर लेप करने से आराम होता है ।

मरोड़ा— बेल का गूर्भ २ तोला, हबलुलास २ तोला, मोचरस २ तोला, माया बड़ा १ तोला, माया छोटा १ तोला, अनार का फूल १ तोला, आम की गुठली १ तोला, तुख्म हीमाज १ तोला, जुफते बलोन १ तोला,

इन सबको चूर्ण करके। मात्रा —एक आना भर दिन में तीन बार।

अनुपान—दही।

मरोड़ा—(पेचिश) —ईषबगोल, तुख्मेरेहां, हबलुल्लास, तुख्मे-बारतंग, प्रत्येक एक-एक तोला, सबको कूट छानकर फांकी कर लेनी चाहिये। मात्रा ½ तोला प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से।

चूक-शूल—सकमोनिया १ तोला, काली मिर्च १ तोला, सोंठ १ तोला, सताव सुक्का ½ तोला, टंकणक्षार ½ तोला, कुलफा ½ तोला, पान की जड़ ½ तोला, इन सब को बारीक चूर्ण करके २ से ३ बाल मधु में खाना चाहिये।

पेट का दुःखाव—रूमी मस्तगी का चूर्ण एक आना भर और शर्करा एक आना भर इन दोनों को साथ मिलाकर गरम पानी के साथ लेने से पेट का दुःखाव मिटता है। दस्त साफ आता है।

कॉलरा—जहरमोहरा पत्थर एक बाल, दरियाई नारियल १ बाल, पपीता ½ बाल तीनों को गुलाबजल में घिसकर दो-दो घन्टे से देना चाहिये।

बच्चों के दस्त—जहरमोहरा, दरियाई नारियल, छुहारा इनको पानी में घिसकर देने से लाभ होता है।

उल्टी— जहरमोहरे को गुलाबजल में घिसकर पिलाने से उल्टी बन्द होती है।

अर्श (खूनी)—बकायन की मींग १ तोला, नीम की मींग १ तोला, गुलाबजल में पिसा हुआ कहरुवा आधा तोला, रसौत ४ तोला, इनको गुलाबजल से चने के बराबर गोली बनाकर प्रातः सायं ठण्डे पानी के साथ लेने से खून का जाना बन्द हो जाता है।

प्लीहा (तिल्ली)—छोटी हरड़, शाहतरा, अजवायन, बेर्बेकबर प्रत्येक ½ तोला, सौंफ १ तोला, अनीसुन १ तोला, ईजखर ½ तोला, इन सबको दरकच करके १ सेर पानी में उबालना चाहिये, जब पानी आधा रहे, तब छानकर १ तोला शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। फोक को सायंकाल पीना चाहिये।

कामला —कासनी, सौंफ, पिचोरा की बीज प्रत्येक ½ तोला इनको ½ सेर पानी में भिगोकर रखना चाहिये। पीछे से पानी नितारकर

इसमें अनार का रस, या सिकंजबीन अथवा शर्करा मिलाकर पीना चाहिये।

जलोदर (यकृत-जन्य)—गोल जरावन्द १० ग्रेन, अनीसुन १० ग्रेन, श्वेतचीनी ३० ग्रेन, गुग्गुल १५ ग्रेन, गारीकुन ३० ग्रेन, निशोथ ३० ग्रेन, उठीनगरण १ ड्राम, इन सबको ½ घण्टे तक ½ सेर पानी में भिगोकर रखना चाहिये। पीछे से पानी छानकर प्रातः सायं पीना चाहिये।

जलोदर (यकृत-जन्य)--हरड़ का छिलका, शाहतरा, अफसन्तीन, गुले गाफस प्रत्येक ½ तोला, कासनी ½ तोला और जटामांसी ½ तोला इन सबको अधकचरा करके ½ सेर पानी में उबालकर छान लेना चाहिये। यह पानी प्रातः-सायं पीना चाहिये।

जलोदर (हृदय का)—अनीसुन, सौंफ प्रत्येक ½ तोला इसको दरकच करके इसमें उबलता हुआ गरम पानी ½ से ¾ के लगभग डालकर चाय बनानी चाहिये। इसमें शोरा २ ड्राम मिलाकर रखना चाहिये। मात्रा—२ औंस, प्रातः-सायं पीना चाहिये।

मूत्राशय का तीक्ष्ण वरम (१)—उन्नाव १० दाना, सीपस्तान ७ दाना, आलूबखारा १०, बनफसा ½ तोला, कासनी ½ तोला, पिचौरा का बीज ½ तोला, हरड़ ½ तोला इन सबको दरकच करके ½ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब पानी आधा रहे, तब इसको छानकर प्रातःसायं पीना चाहिये या अकेला बनफसे का शरबत दो-दो तोला प्रातःसायं पीना चाहिये।

मूत्राशय का तीक्ष्ण वरम (२)--मुगलई बेदाना ½ तोला, तुख्म खतमी ½ तोला, ईसबगोल ½ तोला इनको थोड़े-से पानी में कुछ देर भिगोकर पीने से मूत्राशय की सूजन, दाह, मूत्राघात को आराम होता है।

प्रमेह—माजु २ तोला, शीतलचीनी २ तोला, रांगे की भस्म १ तोला, फुलाई हुई फिटकरी १ तोला, इलायची १ तोला सबके बराबर खाण्ड।

मात्रा २ पैसा भर।

अनुपान—दूध।

प्रमेह—शीतलचीनी ५ तोला, गोखरू २ तोला, बंशलोचन, काकनज, इलायची, पाषाण-भेद प्रत्येक १ तोला सबका चूर्ण करके। मात्रा—दो आना दिन में दो बार।

अनुपान—मुगलई बेदाने का लुबाब।

प्रमेह—रसौत १ तोला, कत्था सफेद ६ माशा, अफीम १ माशा; सबको ६ घण्टे तक ½ सेर पानी में भिगोकर पानी को छान लेना चाहिये। इसमें कपूर १ माशा, रसकपूर १ माशा, फिटकरी फूली हुई १ माशा, नीला तुत्थ सिंका हुआ १ माशा इन चारों वस्तुओं को ऊपर के पानी में मिला देनी चाहिये। दिन में तीन बार इस पानी से धोने पर शान्ति होती है।

रक्त-दोष— उशबा मगरबी, उशबा हिन्दी, नीम की छाल, बबूल की छाल, शाहतरा, गोरखमुण्डी, कमल का फूल, अफतीमून प्रत्येक दो-दो तोला, चोबचीनी ४ तोला इन सबको अधकचरा करके इसमें १॥ सेर पानी डालकर रात में भिगोकर रखना चाहिये। प्रातः मीठी आँच से गर्म करना चाहिये। जब पानी आधा बाक़ी रहे, तब छानकर इसमें ½ सेर शर्करा मिलाकर पतली चाशनी बना लेनी चाहिये। मात्रा—२ तोला।

उपयोग—वातरक्त, कुष्ठ, उपदंश-रोग में।

खुजली—उन्नाव ७ दाना, सीपस्तान ७ दाना, शाहतरा ½ तोला, हंसराज ½ तोला इन सबको आध सेर पानी में उबालकर, स्वच्छ पानी नितारकर इसमें शर्करा मिलाकर पीना चाहिये।

ढीली नसों के लिये—सरसों, अकरकरा, राई, दालचीनी, कबाबचीनी, श्वेत कनेर के मूल की छाल, कूठ सब समान भाग लेकर इनका चूर्ण करना चाहिये। इसमें महुवे की दारू या भेड़ का दूध अथवा कोई शराब मिलाकर थोड़ा गरम करना चाहिये। पीछे से इसको दो पोटली में बाँधकर बारी-बारी से अंगारों पर गरम करके शिश्नेन्द्रिय पर सेक करना चाहिये। इससे लिङ्ग वृद्धि होती है।

ढीली नस—श्वेत कनेर के मूल की छाल, नरगिस की गाँठ, तुम्बी की मींग तीनों को समान भाग लेकर चार भाग भेड़ का दूध। इस दूध में तीनों दवाइयों को उबालना चाहिये। जब चौथा भाग दूध बच जाय, तब इसका लेप शिश्नेन्द्रिय पर करना चाहिये।

धातु-स्तम्भन— अफीम, जायफल, कस्तूरी, कपूर चारों समान भाग लेकर पान के रस में गोली बनानी चाहिये। मात्रा १ बाल। रात्रि को सोते समय।

धातु-स्तम्भन—तुख्म रीहान का बारीक चूर्ण करके इसमें समान

भाग गुड़ मिलाकर एक-एक पैसा भर की गोली बनानी चाहिये। यह गोली रोज़ एक-एक खाने से बदन मोटा होता है।

ऋतुशूल—अजखर ½ तोला इसको १० तोला पानी में उबालकर जब पानी आधा शेष रहे, तब छानकर इसमें गुड़ १ तोला मिलाकर पीने से स्त्रियों को ऋतु खुलकर आती है।

कष्टार्त्तव— अजखर, अजवायन, खसखस का डोडा प्रत्येक आधा तोला, अनीसून १ तोला सबको डेढ़ पौंड पानी में मिलाकर धीमी आँच से गरम करना चाहिये। जब आधा पानी बचे, तब छानकर इसमें थोड़ी शर्करा मिलाकर दिन में तीन बार शूल के समय पीना चाहिये।

हिस्टीरिया (१)—जटामांसी १ तोला, जुन्दबेदस्तर ½ तोला इनका चूर्ण गोंद के पानी में मिलाकर २४ गोलियाँ करना चाहिये। मात्रा २ गोली।

हिस्टीरिया (२)—हींग ९ ग्रेन, हीराबोल १२ ग्रेन, गन्दाबिरोजा १२ ग्रेन इनको गोंद या गुड़ के पानी में मिलाकर १२ गोलियाँ बनानी चाहियें। मात्रा १ गोली।

रक्तप्रदर—अर्कीक और कहरवा प्रत्येक गुलाब जल में पीसे हुये एक-एक तोला, हीरादखण २ तोला, रसौत ३ तोला, इनको बेर के समान गोली बनाना चाहिये।

अनुपान—तण्डुलोदक। दिन मे दो बार लेना चाहिये।

कृमि-रोग—कासनी १५ ग्रेन, कुलफा के बीज १० ग्रेन, अनार की छाल ५ ग्रेन, धनिया १५ ग्रेन इनको ढाई तोले ठण्डे पानी में पीसकर इनका पानी छान लेना चाहिये। मात्रा—दो चम्मच तीन-तीन घन्टे पर।

कृमि-रोग—वायविडंग १० ग्रेन, निशोथ का चूर्ण ४ ग्रेन, कमिला ५ ग्रेन इनको उबलते पानी में ५ मिनट तक भिगोकर फिर पानी नितारकर काम में लाना चाहिये।

व्रण का मलहम—मोम ४ तोला, तेल ३ तोला, गन्दाबिरोजा ३ तोला, राल १ तोला, फिटकिरी १ तोला, रसौत १ तोला, हीराबोल १ तोला, सबको मिलाकर बहुत धीमी आँच से मलहम बना लेना चाहिये। इससे घाव आदि को आराम होता है।

७८

दद्रु तथा छाजन—नारियल के ऊपर के छिलके का पाताल यंत्र-से तेल* निकाल करके इसमें गन्धक, नीला थोथा तथा टंकणक्षार प्रत्येक १ तोला मिलाकर लगाना चाहिये।

व्रण के लिये प्रतिसारण—गोली कौड़ी जली हुई ४, सुपारी जली हुई ४, शङ्ख जीरा ६ माशा, सफेदा ६ माशा, मुर्दाशङ्ख ३ माशा, सफेद कत्था १ तोला, कपूर १ बाल, सबको मिलाकर बारीक चूर्ण करना चाहिये। घाव के ऊपर प्रथम घी लगाकर यह चूर्ण छिड़कना चाहिये।

बधरावल (लेप)—तम्बाकू १ तोला, कसुम्बा की लुगदी १ तोला, केसुडाँ १ तोला, सोंठ १ तोला, शेष गुन्दर १ तोला, एलुवा १ तोला, आम्बाहल्दी १ तोला, मस्तकी १ तोला, घोड़ावच १ तोला, वछनाग १ तोला, खसखस का डोडा १ तोला सबको कूटकर पानी में अथवा पिलुड़ी के रस में गोली बाँधकर रखना चाहिये। इस गोली को घिसकर अण्ड-कोष के ऊपर लेप करके कंडे से सेकना चाहिये।

दन्तमंजन—हुबुलाश, अगर, गिलेअरमानी, हीराबोल, समुद्रफेन प्रत्येक १ तोला, इनका मञ्जन बनाना चाहिये।

---

*एक मिट्टी के बर्त्तन में अँगुली जितना छेद करके उसमें जाली या तारों की गुच्छी लगा देनी चाहिये। इस बर्त्तन में नारियल के छिलके रखकर ऊपर से मुँह बन्द कर देना चाहिये। फिर एक गड्ढा खोदकर उसमें गिलास रख देना चाहिये। गिलास के मुँह पर हाँडी की पेंदी तथा छेदवाला भाग रखकर, सन्धि-स्थान को जोड़ देना चाहिये। और फिर आँच देनी चाहिये। तेल गिलास में आ जायेगा।

अँग्रेज़ी औषधियाँ

वनस्पति-वर्ग की औषधियाँ

अर्गट—गुण—रक्तस्तम्भक, ग्राही, स्नायु-संकोचक, आकुंचन पैदा करनेवाली, ऋतुस्रावक और पीड़ाशामक है। अर्गट के अन्दर दो विरोधी गुण रहते हैं। यह गर्भपात करनेवाली है परन्तु साथ में रक्तस्तम्भक भी है। इसका असर गर्भकालीन गर्भाशय पर बहुत होता है और गर्भ रहित गर्भाशय पर बहुत कम होता है। प्रसव के समय जब अपर्याप्त आकुञ्चनों के कारण प्रसव न होरहा हो, उस समय थोड़ी मात्रा में (५ से १५ बूँद) देने से लाभ होता है। प्रसव के समय अर्गट देते समय इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि प्रसवमार्ग स्वस्थरूप में है और शिशु की स्थिति ठीक है। प्रसव-कालीन रक्तस्राव को बन्द करने के लिये इसको बड़ी मात्रा में देना चाहिये। यदि रक्तस्राव बहुत तीव्र हो, तो ताजा काढ़ा बनाकर देना चाहिये। गर्भपात को रोकने के लिये इसका व्यवहार न करना चाहिये। इसको देने से गर्भपात होने की अधिक सम्भावना होजाती है। कपास के मूल में ...
समान गुण हैं।

बनावट—एक्सट्रैक्ट अर...
एक्सट्रैक्ट अर्गट लिक्विड १...
६० बूँद। इनफ्युजन ...

इपीकोकक...
इसकी बड़ी मात्रा...
और पित्त विरेच...
ग्रहणी, यकृत के...
खाँसी में—जहाँ...
क्योंकि इसके दे...
गम निकालने के...
हिक्का में १० से ...

बनावट—वाइनएपेकोकक्वेना—बलगम निकालने के लिये। मात्रा १० से ३० बूँद; वमन कराने के लिये ४ से ६ ड्राम। (२) पल्व एपिकॉक को (डोवर्स पाउडर)—मात्रा ५ से १५ ग्रेन।

गुण—ज्वर, कास, प्रवाहिका में उपयोगी है। मलेरिया में इसको क्विनीन के साथ दे सकते हैं, विशेषतः जहाँ आँत्र व्रण हो।

(३) एक्सट्रैक्ट एपिकॉकक्वेना लिक्विड—कास में ½ से २ बूँद। वमन के लिये १५ से २० बूँद। छोटे बच्चे के कास में, फुस्फुस शोथ में, उल्टी लाने के लिये इसका उपयोग होता है।

इलेटीरियम—यह कड़वी नांई का सत्त्व है, इलेट्रियम का एक तत्त्व होता है, जिसको 'इलेट्रिन' कहते हैं। यह उग्र विरेचक है। इससे पानीवाला अतिसार आता है। बड़ी मात्रा में विक्षोभक विष है। यह प्रायः जलोदर में बरती जाती है। परन्तु चूँकि इसके देने के पीछे रोगी को भी देखना चाहिये, इसलिये कम उपयोग करते हैं। इलेट्रियम के दूध में ४० गुनी शर्करा मिलाकर इसमें से ½ से ५ ग्रेन की गोली बनाकर रोगी की शक्ति के अनुसार देना चाहिये। इसके देने से वमन और विरेचन होता है। इसलिये निर्बल स्त्री-पुरुषों को, या बालकों को यह दवा कभी नहीं देनी चाहिये। इलैट्रियम की मात्रा [illegible] से [illegible] ग्रेन; इलैट्रिनियम [illegible] से [illegible] पल्वस इलैट्रिनी कम्पाउन्ड

...च का गोंद)—गुण-ग्राही, ठण्डा, पौष्टिक
...ची ... मुख के अन्दर की श्लेष्म-
... टिकिया या गोली बनाने
...था रैजीन आदि को
...कैशिया गम का चार
... है। प्रमेह, गरम

... हृदय तथा रक्त-
... करता है। लोहू
... शान्त करता है।
...त्र शोथों में इसका
... हृदय की गति को

मन्द करता है। निर्बल हृदय को हानि पहुँचाता है। इसलिये साधारणतः इसके टिंचर का उपयोग ज्वर उतारने में कम करते हैं। बछनाभ की मात्रा बहुत छोटी है। इसके टिंचर की एक या दो बूँद साधारण सर्दी को, टौंसिलाइटिस को, गनोरिया को (प्रारम्भ में) लाभ करता है। बार-बार छोटी-छोटी मात्रा में अधिक लाभ होता है, अपेक्षा इसके कि एक बार बड़ी मात्रा दे दी जाय। इसका उपयोग बाह्यरूप में भी होता है। सब प्रकार की प्रुप्तवर्त्ती दर्द को, नाड़ी-जन्य दर्द को, आमवात को आराम करता है।

बनावट—टिंचर एकोनाइट ५ से १५ बूँद, यदि बारबार देना हो, तो १ से ३ बूँद; २४ घंटे में ३० बूँद से अधिक नहीं देना चाहिये। बाह्य उपयोग के लिये लिनीमैन्ट एकोनाइट बरता जाता है।

एनीथी (सुवा)—गुण—वात-हर, दीपन, पाचन। इसका तेल (एक से तीन बूँद) पानी में मिलाकर अन्य बातहर या पेट की शूल, अफ़ारा आदि को कम करनेवाली औषधियों के साथ दिया जाता है। इसका अर्क (पानी) बनाकर (कूटा हुआ सुवा १ पौंड और पानी २ गैलन) बच्चों को पिलाया जाता है। मात्रा १ से २ औंस। इसमें थोड़ी चिरचिराहट होती है।

एनैसी—बातहर, शूलहर, भूख लगानेवाली है। यह दवाइयों में ख़ुशबू पैदा करने के लिये भी बरती जाती है। आयल एनैसी मात्रा १ से ३ बूँद। एक्वा एनैसी (एनैसी १ पौंड, पानी २ गैलन) ½ से १ औंस, ऐसेन्स ऑफ एनैसी या स्प्रिट एनैसी (एनैसी १ औंस, स्प्रिट रैक्टीफ़ाइड ४ औंस) १० से २० बूँद।

एपोसाइनम—यह वामक, मूत्रल, पसीना लानेवाली और विरेचक है। जब श्वपथु रोग हो और हृदय की गति मन्द हो, उस समय भी इसके द्वारा उत्तम लाभ मिल सकता है। विशेषतः जब नाड़ी मन्द या तेज हो।

बनावट—टिंचर एपोसाइनम। मात्रा—१० से ६० बूँद।

एमैगडीला—यह दो प्रकार का है। कड़वे बादाम का तेल (एमैगडीला एमैरा) और दूसरे मीठे बादाम का तेल (एमैगडिला डूलसिस) है। कड़वे बादाम में चूँकि प्रूसिक एसिड होता है, जो तीव्र विष है, इसलिये इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। मीठे बादाम का तेल मृदु विरेचक है। तरी पहुँचाने के लिये यूनानी चिकित्सा में मशहूर है।

एलसटोनिया—इसको फीवरबार्क भी कहते हैं। पूर्व के देशों में इसका उपयोग शक्ति के लिये, मलेरिया के लिये तथा प्रवाहिका के लिये किया जाता है। इसकी दो बनावटें हैं—एक इन्फ्युजन एलिस्टोनिया ½ से १ औंस, टिंचर एलिसटौनिया ½ से १ ड्राम मात्रा में है।

एलोज़—पूर्ण मात्रा में यह विरेचक और यकृत को उत्तेजित करनेवाला है। थोड़ी मात्रा में भूख लगानेवाला और टॉनिक है। गुदा से देने पर कीड़ों को मारनेवाला है। मलबन्ध, अपचन, नष्टार्त्तव में, यकृत-शोथ में, आध्मान में उपयोगी है। अकेला एलोज पेट में दर्द पैदा करता है, इसलिये इसको लौंग या दालचीनी के तेल के साथ देना चाहिये। यदि साबुन या अन्य क्षार के साथ मिलाकर दिया जाय, तो इसकी क्रिया शीघ्र होती है और गुदा का क्षोभ कम होजाता है। गर्भावस्था में इसको देना नहीं चाहिये। इसका निरन्तर उपयोग अर्श को उत्पन्न कर देता है।

बनावट—(१) पाउडर्ड एलोज—२ से ५ ग्रेन। (२) टिंचर एलोज ½ से २ ड्राम। (३) एक्सट्रैक्ट एलोज—१ से ४ ग्रेन। (४) डिकॉकशन एलोज कम्पाउन्ड ½ से २ ड्राम। इसमें से एक वस्तु अलग निकाली जाती है, जिसका नाम 'एलोइन' है। इसका रंग पीला और तीव्र विरेचक है। मात्रा—½ से २ ग्रेन।

एसैफिटेडा—यह एक प्रकार की गोंद है। साधारण भाषा में इसको हींग कहा जाता है।

गुण—वातहर, शूलहर तथा आकुञ्चनों को कम करनेवाली, मृदु विरेचक है। हिस्टीरिया या वातिक प्रभाव के लिये इसका विशेषतः प्रयोग किया जाता है।

ओपियम—(**अफीम**)—गुण—पीड़ाशामक, शूलहर, वातहर, ग्राही, निद्रा लानेवाला, नशा करनेवाला और स्वेदल है। मस्तिष्क के रोगों में, प्रसूत में, उन्माद में, धनुर्वात में, आक्षेप में, कास में, श्वास में, अतिसार में, विसूचिका में, उलटी में, रक्त-स्राव में, संधिवात में, अनिद्रा में इसका व्यवहार होता है। यदि रोगी को दर्द के कारण नींद न आती हो तो इसका व्यवहार करना चाहिये। मधुप्रमेह में इसका व्यवहार किया जाता है, इससे मूत्र की राशि कम हो जाती है। थोड़ी मात्रा में देने से निद्रा सी आती है, और थोड़ा बहुत पसीना आता है। उठने पर शिर में दर्द, बेचैनी और कुछ

कब्जियत सी हो जाती है। सब प्रकार के दर्दों को कम करने के लिये इसका व्यवहार किया जाता है। मूत्राशय के विक्षोभ में, मूत्राघात में, अण्डशोथ में, मूत्राश्मरी में, पित्ताशय रोग में, आर्त्तव के अवरोध में, पीड़िताऱ्त्तव में, नाड़ियों के दर्द में, गर्भपात में, रक्त-स्राव में, उपयोग किया जाता है। हृदय के रोगों में, मस्तिष्क के शोथ में, फुस्फुस के विकृत होने पर, दुर्गन्धियुक्त बलगम के निःस्राव पर इसका व्यवहार नहीं करना चाहिये। बच्चों पर इसका प्रभाव बहुत शीघ्र होता है, इसलिये सोचकर देना चाहिये। जिन लोगों को अफीम की आदत हो, इनको उसकी बड़ी मात्रा दी जा सकती है। अफीम की आदत छुटाने के लिये स्पारटीन सल्फेट १ ग्रेन कपूर के साथ दिन में चार बार देनी चाहिये। इसके समास—(१) टिंचर ओपयाई—(लाडेनेम) ५ से १५ बूंद (२) लाईकर ओपयाई सैडेटिव—५ से २० बूँद (३) एक्स्ट्रेक्ट ओपयाई ½ से १ ग्रेन (४) पल्व एपिकाक कम सिला मात्रा ४ से ८ ग्रेन (५) पल्वक्रीटाएरोमैटिकम ओपयाई—१० से ४० ग्रेन (६) पल्वक्रीटा एरोमैटिकम ओपयाई—१० से ४० ग्रेन (७) टिंचर कैफर कम्पाउन्ड (पैरेगोरिक)—३० से ६० बूँद—यह कफ, ससनी, कुक्कर कास में उपयोगी है। (८) औंजमैन्टम गैलिकम ओपयाई—बवासीर के मस्सों के लिये उपयोगी है—(९) लाईकर मैार्फिया हाईड्रा-क्लोरेट—१० से ६० बूंद। (१०) टिंचर क्लोरोफार्म एट मैार्फिया कम्पाउन्ड—५ से १५ बूंद। यह उन सब अवस्थाओं में उपयोगी है, जिनमें क्लोरोडीन है।

ऑरेंज—(नारङ्गी)—गुण—दीपन, पाचन, रुचिकर है। इसका उपयोग इन्फ्युजन, टिंचर या सीरिप के रूप में होता है। मात्रा—इन्फ्युजन की मात्रा १ से २ औन्स, टिंचर को १ से २ ड्राम, शरबत की १ ड्राम है। अजीर्ण में, अरुचि में तथा क्युनीन आदि कटु मिश्रणों में इसका शरबत मिलाया जाता है।

ओलीव ऑयल—गुण—पौष्टिक, स्निग्ध, जन्तुघ्न है। थोड़ी मात्रा में यह मृदु विरेचक है। गरम करके लगाने से यह छिलकों को, एकजिमा को अच्छा करता है। इसकी मात्रा आधा से १ औन्स है। मलबन्ध के लिये १ से २ औन्स, पित्ताश्मरी के लिये २ से ८ औन्स दिन में देना चाहिये।

गुदा की बस्ति के लिये २ से ५ औन्स है। इसमें कॉडलिवर जैसा उपयोगी गुण है।

बनावट—ओलियम ससमी—इसको ऑलीव ऑयल के स्थान पर बरत सकते हैं। (२) अरचिस ऑयल।

क्वीनीन—(सल्फेर ऑफ क्वीनीन)—गुण—ज्वरघ्न, कटु पौष्टिक, जन्तुघ्न, है। बनावट—सल्फेर ऑफ क्वीनीन मात्रा १ से १० ग्रेन (२) टिंचर क्वीनीन एमोनेटा आधा से १ ड्राम (३) वाईन ऑफ क्वीनीन आधा से १ औन्स (४) टिंचर क्वीनीन मात्रा आधा से १ ड्राम (५) क्युनीन हाइड्रो ब्रोमाईडएसिड १ से ३ ग्रेन (६) क्युनीन हाइड्रो-क्लोराईड १ से १० ग्रेन। क्युनीन पानी में बिलकुल घुलती नहीं, इसलिये इसको सल्फ्युरिक एसिड १० बूँद और क्युनीन १० ग्रेन इस मात्रा में घोलनी चाहिये। क्युनीन की उपयोग मलेरिया फीवर में विशेषतः होता है। क्युनीन सिनकोना बार्क से निकाली जाती है। मलेरिया के ज्वर में लालकण घट जाते हैं और श्वेताणु बढ़ जाते हैं, इनको मारने के लिये क्युनीन सबसे उत्तम वस्तु है। क्युनीन विषैले जन्तुओं को मार देती है। क्युनीन देने के लिये दो तीन नियम हैं, उनका ध्यान रखकर यदि क्युनीन का उपयोग किया जाय तो विशेष लाभ होता है। यथा—

(१) क्युनीन को साईट्रिक एसिड के साथ दिया जाय तो इसका लाभ विशेष होता है। क्योंकि साईट्रिक एसिड अम्ल होने पर भी अन्दर जाने पर क्षार के रूप में बदल जाती है। इसलिये खून का माध्यम बदलता नहीं। कीटाणुओं के कारण रक्त की अम्लता होजाती है। साईट्रिक एसिड से वह कम हो जाती है।

(२) ज्वर जब चढ़ रहा हो तो उस समय क्युनीन देना अच्छा नहीं।

(३) जब पसीना आरहा हो तो उस समय क्युनीन को देना उत्तम है। इस समय देने से कीटाणु विशेषतः मर जाते हैं।

(४) क्युनीन को यथा सम्भव बड़ी मात्रा में देना चाहिये, बार-बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देना अच्छा नहीं, क्योंकि इसकी मात्रा को रोगी सहने लगता है।

(५) क्युनीन को देने से पहले विरेचन देना चाहिये। इसके देने से शरीर की गरमी कम हो जाती है।

(६) नाड़ी जब ज़ोर में हो, बुखार के साथ सिर में दर्द हो, त्वचा ख़ुश्क हो, तब क्युनीन को नहीं लेना चाहिये।

(७) कइयों को थोड़ी मात्रा में क्युनीन असर कर जाती है। और कइयों को बहुत थोड़ी मात्रा भी सिर में चक्कर, कान में भनभनाहट पैदा कर देती है। कभी-कभी एक ग्रेन से भी यह प्रभाव हो जाता है।

(८) क्युनीन के साथ नींबू का रस, दूध, घी विशेष रूप में खाना चाहिये।

(९) साधारणतः, गोली या पिल्स की अपेक्षा मिश्रण अधिक लाभ करता है। परन्तु जिनको इसका पाचन न हो सके, उनको गोली आदि नींबू के रस के साथ देनी चाहिये।

(१०) मलेरिया आदि से बचने के लिये इसकी मात्रा का उपयोग करना चाहिये।

कार्डियम—(इलायची) —इसका टिंचर दीपन, पाचन, वातहर, रुचिकारक और पौष्टिक है। अतिसार में, प्रवाहिका में, पेट की वायु में इससे लाभ होता है। प्रवाही पदार्थों में सुगन्ध उत्पन्न करता है। मिश्रण को रङ्गीन बना देता है। कलंम्बा (कलभ), जैन्शन, जिंजर आदि के साथ देने में अधिक गुण करता है।

कायनो—गुण-ग्राही, रक्तस्तम्भक, शीतल है। इसका उपयोग टिंचर या चूर्ण के रूप में किया जाता है। मरोड़ा, अतिसार, संग्रहणी, रक्तातिसार आदि रोगों में स्तम्भक रूप से बरता जाता है। मुँह के प्रक्षालन के लिये इसके काढ़े का उपयोग होता है। नाज़ुक शरीरवाली स्त्रियों के अतिसार में इसका उपयोग विशेषतः किया जाता है। टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है। (२) कम्पाउन्ड पल्वीस कायनो (हीराद्खण) ३¾ औंस, अफीम ¼ औंस, दालचीनी का चूर्ण १ औंस, इसकी मात्रा ५ से २० ग्रेन है।

क्राइसो फ़ैनिक एसिड— इसका उपयोग प्रायः त्वचा के रोगों में

..०

बाहर लगाने के लिये किया जाता है। यह विक्षोभ उत्पन्न करनेवाला और जन्तु-नाशक है। इसलिए दाद में, विसर्प में, पामा में, मुहासों में इसका उपयोग किया जाता है। त्वचा पर के या वस्त्र पर के दाग को ब्लीचिंग पाउडर के हल्के रस से साफ कर सकते हैं। यह पानी में नहीं घुलता।

क्लोरोडीन—गुण—ग्राही, पीड़ाशामक, दीपन, पाचन है। यह कई वस्तुओं का मिश्रण है। मॉर्फीया, क्लोरोफार्म, इण्डियन हैम्प, हाइड्रोसैनिक एसिड, पिपरमिन्ट तथा शराब के मिश्रण से यह बनती है। इसकी वस्तुयें प्राय: विषैली हैं, इसलिये सावधानी से बरतना चाहिये। यह पेट के दर्द में, मरोड़े में, शूल में, अतिसार में, कॉलरा में, कास में, श्वास में बरती जाती है। इसे पीड़ा शान्त करने के लिए ५ से १० बूँद, खाँसी आदि के लिये ५-१५ बूँद, कॉलरा, अतिसार, मरोड़ा आदि में १० से २० बूँद की मात्रा में देना चाहिये।

अनुपान—शरबत, अलसी की चाय।

काजपुटी ऑयल—गुण—वातहर, स्वेदल। उदरशूल तथा अजीर्ण में बरता जाता है। मात्रा—½ से २ बूँद। वात, फुफ्फुस की शोथ, कास के कारण छाती में दर्द हो, तो मलना चाहिये। यह उत्तेजक सुगन्धित है। मात्रा ½ से २ बूँद।

क्युबेब—(**हरिवालक**) मूत्रल और शीतल है। इसका उपयोग विशेषत: प्रमेह गनोरिया की जीर्णावस्था में किया जाता है। यह तैल, चूर्ण अथवा अर्क के रूप में बरती जाती है। मात्रा—पल्वीस क्युबेब की ३० ग्रेन से १ ड्राम, दूध अथवा पानी में। तेल की मात्रा ५ से २० बूँद, टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है। क्युबेब चूर्ण ½ तोला, आग पर गरम की हुई फिटकिरी २ रत्ती, कत्था २ रत्ती, इस मात्रा में दिन में तीन बार लेने से प्रमेह और प्रदर के स्राव को आराम होता है। यह श्वासनलिका के शोथ से उत्पन्न प्रतिश्याय में बरता जाता है। प्रमेह में टिंचर बक्कु और चन्दन के तेल के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

कैटेच्यु (कत्था)—यह तीव्र संकोचक और स्तम्भक है। इसका उपयोग अतिसार में, रक्तस्राव में, अर्श में होता है। गले का शोथ कम करने के लिये इसके कुल्ले कराये जाते हैं।

बनावट—टिंचर कैटेच्यु ½ से १ ड्राम, (२) पल्वीस कैटेच्यु ५ से २० ग्रेन, (३) पल्वीस कैटेच्यु कम्पाउन्ड १० से ४० ग्रेन।

कैनेबिस इन्डिका (गाँजा) —मादक, पीड़ाशामक, अग्निवर्धक, निद्राकारक, पौष्टिक।

बनावट—एक्सट्रैक्ट कैनबिस इन्डिका ½ से १ ग्रेन, (२) टिंचर कैनबिस इन्डिका ५ से १५ बूँद, (३) पाउडर ४ से १० ग्रेन। इसका उपयोग नींद न आने में, कण्ठार्त्तव में, शिर-दर्द में (विशेषत: आधासीसी में) दर्द युक्त नाड़ियों के शोथ में या आमवात शोथ में, गर्भाशय के रक्तस्राव में किया जाता है।

कैप्सीकम (लालमिर्च) —वातहर, मूत्रल, अग्निवर्धक है। इस दवाई का टिंचर बनता जाता है। मात्रा ५ से १५ बूँद। यह पाचक रस और मुख की लाली को बढ़ाता है। शूल, अतिसार, कॉलरा, मरोड़ा, वायु तथा अजीर्ण आदि रोगों में लाभ करता है। भूख को बढ़ाता है। अधिक मात्रा में आंतों के ऊपर शोथ उत्पन्न करता है। इसके टिंचर को पानी में मिलाकर कुल्ले करने से गले की तथा मुँह की शोथ को आराम होता है।

कैम्फ़र (कपूर)—जन्तुनाशक, स्वेदल, कफघ्न, ज्वरनाशक, मूत्रल, वातहर, पाचन क्रिया में सहायता करनेवाला, काम को उद्दीप्त करनेवाला (थोड़ी मात्रा में) और बड़ी मात्रा में काम को शान्त करनेवाला, स्वप्न-दोष नाशक है। बड़ी मात्रा में रक्त के वेग को नरम करके शूल तथा आक्षेप को घटाता है। विसूचिका में इसका मुख्य लाभ होता है। शरीर में गरमी लाकर अतिसार को बन्द करता है। कपूर दाह को शान्त करके नींद लाता है। छाती के रोगों में और कास में इसका उपयोग होता है।

बनावट—(१) स्प्रिट कैम्फ़र १ औंस, रैक्टीफाईड स्प्रिट में १ ड्राम कपूर मिलाना चाहिये। इसकी मात्रा ५ से २० बूँद है। (२) टिंचर कैम्फ़र को ३० से ६० बूँद कास में विशेष लाभदायक है। इसको वाइनम एपिकोक कैना और वाइनम एन्टिमोनियल के साथ देने से विशेष लाभ होता है। बालकों के लिये ज्वर के साथ कास होने पर इसको दिया जा

सकता है। (३) एका कैम्फ़र—½ औंस कैम्फर को कपड़े में बाँधकर १ गैलन पानी में रखने से लाभ होता है। मात्रा १ से २ औंस। (४) इसको बाहर लगाने के लिये लिनिमैंट कैम्फर के रूप में बरतते हैं। (५) कपूर को रैक्टीफ़ाईड स्प्रिट में अच्छी तरह घोलकर ३ से ४ बूँद की मात्रा में बरतने से ज़ुकाम अच्छा होता है। (६) इसको जैतून (ऑलिव ऑयल) के तेल में घोलकर शिशुओं की छाती पर मलने से लाभ होता है।

कलम्बा— दीपन, पाचन, कटु, पौष्टिक। मन्दाग्नि, निर्बलता, वमन, अजीर्ण आदि रोगों में बरता जाता है। आमाशय शोथ, गर्भिणी के वमन रोग में, लाभ करता है। इसको लोहे के साथ, चिरायता या जैन्शन के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

बनावट—टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है, इन्फ्युज़न की ½ से १ औंस है।

कास्केरा सेग्रेडा—यह एक उत्तम मृदु विरेचक है। यकृत और आंतों के लिये शक्ति-वर्धक है। चिरकालीन मलबन्ध के लिये इसका उपयोग करना उत्तम है। इसके खाने से किसी भी प्रकार का मरोड़ा आंतों में नहीं होता। दूसरे और विरेचनों की तरह लगातार व्यवहार करने पर भी इसकी मात्रा बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी सबसे अच्छी बनावट 'लिक्विड एक्सट्रैक्ट' है। जिसका स्वाद कड़वा और बेचैनी पैदा करनेवाला है। इसके लिये कोई सुगन्धित वस्तु मिलानी चाहिये। यह कास्करा एरैमैटिक, पिल्स आदि के रूप में बाज़ार में बिकता है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट कास्केरा २ से ८ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट कास्करा लिक्विड ½ से १ ड्राम, सीरप कास्करा एरोमैटिक ½ से २ ड्राम।

कैस्टर ऑयल—एरण्डी के तेल का जुलाब प्रसिद्ध है। ताजा एरण्डी का तेल लेने से पेट में शूल या जलन किसी भी प्रकार की नहीं होती। इसका विरेचन शान्त रूप से होता है। मुँह में नींबू का रस निचोड़कर ऊपर से तेल पीने पर इसकी गन्ध मालूम नहीं पड़ती। अथवा पीपरमेंट, लौंग का या दालचीनी के अर्क के साथ लेने से इसकी गन्ध नष्ट हो जाती है। छोटे बच्चों के लिये इसका विरेचन विशेष उपकारी है। मात्रा ४ से ८ ड्राम, बच्चों के लिये १ से ४ ड्राम है।

कैशिया (आरग्वध)—गुण—दीपन, पाचन, कृमि-नाशक है। इसका टिंचर या काढ़ा बरता जाता है। अजीर्ण में, मन्दाग्नि में इसका टिंचर बरता जाता है। कृमि मारने के लिये इसका काढ़ा दिया जाता है। इसके हिम कषाय की वस्ति देने से गुदा के कृमि नष्ट हो जाते हैं। क्युनीन के साथ ज्वर में, कलम्बा के साथ भूख लगाने के लिये दिया जाता है।

कोकेन—उष्ण, मादक, अग्निवर्धक है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है, खाने से मुँह में गुदगुदी और अचेतनता का भान होता है। त्वचा पर लगाने से या इंजेक्शन करने से संज्ञानाश उत्पन्न करता है। दाँत उखाड़ने के लिये १० प्रतिशत घोल में रुई को भिगोकर मसूड़ों के चारोंओर पाँच मिनिट तक रख देना चाहिये। आँख की चिकित्सा में २ प्रतिशत घोल पर्याप्त है।

बनावट—हाइड्रोक्लोराइट ऑफ कोकेन (मात्रा $\frac{1}{50}$ से $\frac{1}{4}$ ग्रेन), लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ़ कोका ($\frac{1}{2}$ से २ ड्राम), टिंचर कोका $\frac{1}{2}$ से १ ड्राम। कोकेन एक मादक और उत्तेजक वस्तु है, इसके निरन्तर उपयोग से कोकेनोमिनिया—कौकेन की आदत पड़ जाती है। नोवेकेन और स्टोवेकेन ये दो वस्तुयें स्थानिक संज्ञानाश के लिये उत्तम हैं।

क्रोटन ऑयल—गुण—उग्र रेचक, दाहक और तीक्ष्ण है। बाहर लगाने पर त्वचा को लाल कर देता है, छाला डाल देता है। इसका उपयोग करना तभी उत्तम है जब कि मल की दृढ़ता के कारण या किसी अन्य अवरोध के कारण मल न आता हो। शोथ, पक्षाघात आदि में बरता जा सकता है। जब कि रोगी कोई और विरेचन न ले सकता हो इसके एक या हद दो बूँदों को बादाम के तेल की ३-४ बूँदों में मिलाकर रोगी के गले में रख देना चाहिये, इसका उपयोग बहुत कम होता है।

बनावट—क्रोटन ऑयल आधा से १ बूंद। इसको शर्करा की डली पर रखकर गले में उतार देना चाहिये।

कोपायवा—(बाल्सम कोपायवा) अथवा ऑयल ऑफ कोपायवा

गुण—मूत्रल, वस्ति शोधक है। इसमें से तेल निकलता है। इसका उपयोग गनोरिया में, मूत्राशय के रोग में, ब्राइट्स डिजीज में विशेषतः होता है। गनोरिया की तीव्र जलन में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। इसका

उपयोग काम में भी किया जाता है। इसका स्वाद बुरा होता है। ऑयल कोपायवा ५ से २० बूँद, टिंचर कोपायवा ½ से २ ड्राम। इसको क्युबेब, चन्दन के तेल आदि के साथ गनोरिया में देते हैं।

कोलचीकम—वातहर, पित्त को निकालनेवाली, पीड़ाशामक, मूत्रल, स्वेदक और रेचक है। यह हृदय की गति को मन्द करती है, बढ़े हुये यूरिक एसिड को घटाती है, रक्त की गति को शान्त करती है, प्रत्येक प्रकार की सन्धिवात में, कटिशूल में देने से लाभ करती है। मूत्रमार्ग में विक्षोभ उत्पन्न करती है। बड़ी मात्र में विरेचक और वामक है।

बनावट—वाइनम कौलचीशी १० से ३० बूँद, एक्सट्रैक्ट कौलचीशी आधा से १ ग्रेन।

कोलोसिन्थ (इन्द्रवारुणी)—गुण—रेचक। इससे पानी की भाँति का विरेचन होता है, पित्त-स्रावक है। जलोदर, मलावरोध, अजीर्ण मे बरती जाती है। इसके देने से पेट में मरोड़ा मारकर मल बाहर आता है। इसलिये इसमें वातहर औषधियाँ मिला दी जाती हैं। उपदंश रोग में या अन्य विस्फोटक रोगों में पारा के साथ मिलाकर बरता जाता है।

बनावट—'एक्सट्रैक्ट कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड' २ से ८ ग्रेन, 'पिल कोलो-सिन्थ कम्पाउण्ड' ४ से ८ ग्रेन, 'पिल कोलोसिन्थ एट हाईसोसिमया' ४ से ८ ग्रेन।

गायाकम—गुण—उष्ण, स्वेदल और रक्त-शोधक है। यह एक प्रकार का गोंद है और मृदु विरेचक प्रभाव रखता है। आमवात के लिये विशेष उपयोगी माना जाता है। इसकी टिकिया उपदंश-जन्य गले के शोथ में काम आती है। गन्धक की थोड़ी मात्रा के साथ देने से गठिया में लाभ करता है। स्त्रियों के कष्टार्त्तव में या ऋतु न आने में इसको अकेला या एपियोल क्रिस्टल २ ग्रेन, पल्व गायाकम १५ ग्रेन की मात्रा में ऋतु आने से ठीक पूर्व देना चाहिये।

बनावट—गायाकम रेज़ीनी ५ से १५ ग्रेन।

ग्लिसरीन— ग्लिसरीन और शहद रसायनिक दृष्टि से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। परन्तु दोनों के गुणों में पर्याप्त भेद है। ग्लिसरीन बाहर लगाने में चिकनी है। इसलिये बहुत से रोगों में स्वतन्त्ररूप में या अन्य

औषधियों के साथ काम में आती है। प्रायः शहद के अभाव में सर्वत्र काम आजाती है। आँख में, मुँह में, चोट पर, व्रण पर लगाई जाती है। फिटकिरी सुहागा, कार्बोलिक एसिड आदि वस्तुओं के घोलने में काम आती है। बहुत सी दवाइयों को मीठा करने के लिये या मधुमेह के रोगी को शर्करा के स्थान में देने के लिये इसका उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त यह मृदु विरेचक भी है इसीलिये इसे मिश्रणों में मिलाते हैं। इसकी बत्ती गुदा में रखने से सुगमता से विरेचन करा देती है। इसकी पिचकारी गुदा में लगाने से दूरवर्ती क्रिया से मल का जमाव टूट जाता है। प्रायः सब वाह्य-द्रव-प्रलेप इसको साथ मिलाकर तैयार किये जाते हैं। मात्रा १ से २ ड्राम, वस्ति के लिये २ से ४ ड्राम।

गॉल्स (माजूफल)— गुण—स्तम्भक और संकोचक है। माजूफल में से टॉनिक एसिड और गैलिक एसिड नाम के दो पदार्थ निकलते हैं। गैलिक एसिड से टिंचर बनता है। इसकी मात्रा आधा से १ ड्राम है। इन दोनों एसिडों में से प्लेग और पैसरियाँ बनती हैं। कुल्ले करने के लिये इनका लोशन (२० औंस पानी, २ ड्राम गैलिक एसिड) बरता जाता है। प्रदर और अर्श में इसका उपयोग होता है। अर्श के लिये कोकीन ५ ग्रेन, मौर्फिया ५ ग्रेन, एसिड ऑलिक १ ड्राम, मलहम गैलिक १ औंस उत्तम है। प्रदर के लिये टैनिक एसिड ३ ग्रेन और कोकम का तेल १२ ग्रेन; इनकी बत्ती बनाकर पानी में रखनी चाहिये।

चिरैटा—कटु, पौष्टिक, ज्वरघ्न, पाचन है। इसका उपयोग टिंचर और इन्फ्युजन के रूप में होता है। इसके काढ़े में पोटैशियम आयोडाईड लेने से उपदंश रोग में विशेष लाभ होता है।

बनावट- इन्फ्युजन चिरैटा १ से २ औंस, टिंचर चिरैटा ½ से १ ड्राम।

जेन्शन—ज्वरघ्न, रक्त-शोधक, पौष्टिक। बुखार, अजीर्ण, निर्बलता, मन्दाग्नि में उपयोगी है। निर्बलता के कारण जब भूख नहीं लगती, उस समय इसका उपयोग लाभ देता है। यह शक्तिवर्द्धक है।

बनावट- एक्सट्रैक्ट जैन्शन २ से ८ ग्रेन। प्रायः गोलियाँ इसके ही

अनुपान से बनाई जाती हैं। (२) इन्फ्युज़न ½ से १ औंस। (३) टिंचर जैन्शन कम्पाउण्ड ½ से १ ड्राम।

जैलप— तीव्र रेचक है। इसके देने से पेट में मरोड़ा मारकर पानी जैसा विरेचन होता है। आँतों में यदि किसी प्रकार की शोथ हो, तो इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। मात्रा ५ से २० ग्रेन।

बनावट—कम्पाउण्ड पाउडर आफ़ जैलप २० से ६० ग्रेन, (२) टिंचर जैलप ½ से १ ड्राम।

जिञ्जर—गुण—उष्ण, दीपन, पाचन, उत्तेजक, वातहर है। सीरप ऑफ़ जिंजर ½ से १ ड्राम। यह मिश्रण को मीठा, सुगन्धित करने के लिये बरता जाता है। टिंचर जिंजर ३० से ६० बूँद। इसे पाचन के लिये तथा शूलहर उपयोग के लिये मिश्रणों में मिलाते हैं। यह साथ में दी हुई और वातहर औषधियों के गुणों को बढ़ा देता है।

टरपेन्टाइन—यह गरम, कृमिघ्न, मूत्रल, रेचक, पीड़ाशामक और श्लेष्मा को निकालनेवाली है। इसका अन्तः और बाह्य दोनों प्रकार से उपयोग होता है। इसको पानी में डालकर दर्दयुक्त प्रदेश पर सेंक किया जाता है। इसका भपारा लेने से बलगम पतली होकर बाहर आजाती है। छाती पर इसकी मालिश की जाती है। कास (पुराना) में, शीतऋतु की खाँसी में तथा कभी-कभी मूत्र मार्ग को उत्तेजित करने के लिये इसका अन्तः उपयोग होता है। बड़ी मात्रा में यह पेट के कृमियों को मारने के लिये बरती जाती है और बिना वस्ति दिये यह गुदा के थ्रैडवर्म को नष्ट नहीं करती। कीड़े मारने के लिये मात्रा २ से ४ ड्राम। इसमें ४ ड्राम कैस्टर ऑयल मिलाकर देना चाहिये, जिससे कि विरेचन शीघ्र हो। टरपेन्टाइन का उपयोग रक्तस्राव के लिये भी किया जाता है। उदाहरण के लिये—ऑयल टरबैन्थि (रैक्टीफाइड) १० बूँद, एक्सट्रैक्ट हैमेमैलिस लिक्विड १ ड्राम, पोटोशियम क्लोरेट ५ ग्रेन, एक्वाक्लोरोफार्म १ औंस। इस प्रकार दिन में चार बार लेने से फुफ्फुस का रक्त-स्राव कम होता है।

टैक्सीमाई—रेचक और आमाशय को उत्तेजित करनेवाली है। रक्तशोधक और पित्तशामक गुण के कारण यकृत शोथ में, कामला में इसका उपयोग किया जाता है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट ट्रैक्सीसाई ५ से १५ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ट्रैक्सीसाई लिक्विड ½ से २ ड्राम है। (३) सक्कस ट्रैक्सीसाई १ से २ ड्राम।

टोलु (बालसम टोलु)—गुण—शीतल और कफघ्न है। मात्रा ५ से १५ ग्रेन। (१) शरबत टोलु की मात्रा ½ से १ ड्राम है और टिंचर टोलु की मात्रा ३० से ५० बूँद है। बालसम ठण्डा होने से फटी हुई त्वचा पर लगाया जाता है।

डिजीटेलिस— इसका मुख्य उपयोग हृदय को शक्ति देने के लिये किया जाता है। परन्तु सब प्रकार की हृदय की निर्बलता में इसका उपयोग करना ठीक नहीं है। इसको वहीं पर बरतना चाहिये, जहाँ नाड़ी निर्बल, तेज और जल्दी गिर जानेवाली (बन्द होनेवाली) हो, और साथ में श्वास-काठिन्य या शोथ हो। इसको या तो अलग देना चाहिये अथवा नाईट्रोग्लैसरीन के साथ देना चाहिये। मूत्रपिण्ड में रक्त-संचय होने पर यह बहुत अच्छा मूत्रल असर करता है। जहाँ पर धमनियों में दबाव बढ़ाने की इच्छा न हो (यथा—एन्युरीज्म, फैटीडिजैनरेशन ऑफ़ हार्ट, एपोपैल्क्सी आदि में) वहाँ पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि डिजीटेलिस सुगमता से शरीर से बाहर नहीं निकलता, इसलिये इसका देर तक किया गया उपयोग कई बार (थोड़ी मात्रा में भी) विष के लक्षण उत्पन्न कर देता है।

बनावट—पल्विस डिजीटेलिस ½ से २ ग्रेन, इन्फ्युज़न डिजीटेलिस १ से ४ ड्राम, टिंचर डिजीटेलिस ५ से १५ बूँद। बाजार में जो समास मिलते हैं, वे प्राय: विश्वसनीय नहीं होते।

थाईमोल (अजवायन का फूल)— यह कार्बोलिक एसिड से अधिक कृमिघ्न गुण रखती है। यद्यपि यह दाहक नहीं, तथापि विक्षोभक गुण रखती है। ½ प्रतिशतक घोल में (रैक्टीफाईड ५० भाग और पानी ५० भाग) यह मुँह के प्रक्षालन के लिये और १ से १२०० के घोल में कार्बोलिक के स्थान में कृमिघ्न गुण के लिये और १ से ४ प्रतिशतक में बने प्रलेपों में काम आती है। बड़ी मात्रा में यह एसकैरीज़, टीनिया आदि को मारती है। गलगण्ड-रोग में यह १० से ३० ग्रेन बरती जा सकती है। मात्रा—½ से २ ग्रेन। आंत्र, आमाशय में कृमि-नाशक गुण के लिये। १० से ३० ग्रेन

की मात्रा में कीड़े मारने के लिये । पीछे से विरेचन देना चाहिये ।

नैक्सवोमिका (विषतिंदुक)—वातहर, पौष्टिक, कृमिघ्न है ।

बनावट—एक्सट्रैक्ट नैक्सवोमिका ½ से १ ग्रेन (२) टिंचर मात्रा—५ से १५ बूँद । इसके अतिरिक्त नैक्सवोमिका से सत्त्व निकलता है, जिसको स्ट्रिकनाइन कहते हैं । यह मस्तिष्क के पुराने रोगों में, पक्षाघात में, हिस्टीरिया में, निर्बलता में, अग्निमान्द्य में, नपुंसकता में, नसों की निर्बलता में उपयोगी है । यह दवा नसों को दृढ़ करती है, अधिक मात्रा में खेंचतान आदि उपद्रव करता है । हृदय और श्वास की क्रिया को उत्तेजित करता है । तीव्र रोगों में इसे नहीं बरतना चाहिये । स्ट्रिकनोन बहुत ही कड़ुवा और शक्तिवर्धक एवं भूख लगानेवाला है । आँतों की गति को बढ़ाता है ।

बनावट—पल्व नैक्सवोमिका १ से ४ ग्रेन, लाइकर स्ट्रिकनिया हाइड्रोक्लोर २ से ८ बूँद ।

पीपरमेन्ट—पेट की वायु, आक्षेप तथा शूल को शान्त करता है । मात्रा १ से ३ बूँद ।

बनावट—स्प्रिट पिपरमेन्ट १० से २० बूँद, (२) एक्वा मैन्था पिपरैटा १ से २ औंस (१॥ ड्राम पिपरमेन्ट का तेल और २० औंस पानी) यह जन्तुनाशक, दुर्गन्धनाशक, उत्तेजक और वायुनाशक है । इसका उपयोग बाह्य उपचार में होता है । त्वचा पर लगाने से शीत और स्थानिक संज्ञानाश का अनुभव होता है । इस लाभ के कारण शिरदर्द में, आमवात में, नर्व-शोथ में (जहाँ रक्त-संचय हो) उपयोगी है । जब यह कपूर, क्लोरल, फिनॉल के साथ मिलाया जाता है तो द्रव बन जाता है ।

पोडो फ़ीलीन—यह विरेचक, पित्तस्रावक है । अधिक मात्रा में आमाशय और आंत को विक्षोभित करता है । यकृत-रोग की विकृति में विशेषतः उपयोगी है । कामला, गठिया, संधिवात, उपदंश में उपयोगी है ।

बनावट—टिंचरपोडोफ़ाइ ५ से १५ बूँद, (२) पोडो फ़िलियम ¼ से १ ग्रेन है । इसको वैलेडोना के साथ लेने से पेट में आक्षेप या मरोड़ा नहीं होता ।

बक—गुण—शीतल और मूत्रल है । इसका उपयोग टिंचर तथा इन्फ्युज़न के रूप में होता है । मूत्राशय के रोगों में, गनोरिया में इसका उपयोग

होता है। मूत्रल और संकोचक होने से मूत्र-मार्ग के रोगों में बड़ा उपयोगी है। इन्फ्युजन की मात्रा १ से २ औंस, टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है।

वैनेज़ोइन (लोबान)—इसका बाह्य उपयोग जन्तुनाशक और रक्त-स्तम्भक गुण के लिये किया जाता है। इसका धुआँ रोगी के घर को स्वच्छ करता है, दुर्गन्धिनाशक है। इसका धुआँ कास और स्वर-भंग (घरघराहटवाली आवाज़ को) आराम करता है। एक चम्मच टिंचर को गरम पानी में घोलने से दूध-जैसा बन जाता है। इसका उपयोग त्वचा की फुन्सियों के लिये उपयोगी है। यह ईथर, क्लोरोफ़ार्म और मद्य में सुगमता से घुल जाता है।

बनावट—एसिड वैनजोइन ५ से १५ ग्रेन, (२) टिंचर वैनज़ोइन कम्पाउन्ड ½ से १ ड्राम (इसको फ्रायर वालसम भी कहते हैं)। इसको कपड़े पर लगाकर व्रण आदि पर लगाने से उत्तम शीघ्र भर जाते हैं।

बैलेडोना—बैलेडोना धतूर के वृक्ष की भाँति होता है।

गुण—पीड़ाशामक, उष्ण। निद्रा लाता है, आँख की पुतली को चौड़ा करता है। इसमें से एट्रोपीन निकलता है। यह दर्दशामक है। बैलेडोना मूत्रल और आक्षेपों को दूर करनेवाला है। यह हृदय की धड़कन को, कण्ठाक्षेप को, मलयन्त्र को, श्वास-नलिका के ऊपर के भाग में होनेवाले आक्षेपों को, यक्ष्मा को, रात्रि में होनेवाले पसीने को, रात्रि में होनेवाले मूत्रस्राव या स्वप्न-दोष को, मूत्राशय-शोथ को, दमे को, कुक्कुर-कास को आराम करता है। नाड़ियों के विकार में यह अन्तः और बाह्य दोनों रूप में बरता जाता है। कई मनुष्य इसकी छोटी-सी मात्रा को भी सहन नहीं कर सकते। दुग्ध-स्राव को रोकने के लिये, शरीर के आक्षेपों को दूर करने के लिये, इसका उपयोग होता है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट बैलोडोना ¼ से १ ग्रेन, (२) टिंचर बैलोडोना ५ से १५ बूँद। (३) एट्रोपीन $\frac{१}{२००}$ से $\frac{१}{१००}$ ग्रेन। आँख में डालने के लिये १ ग्रेन १ औंस पानी में। बैलेडोना प्लास्टर छाती की शूल, कास का दर्द, गर्भाशय का दर्द, मस्तक-शूल आदि में उपयोगी है। बैलेडोना ऑयन्टमेन्ट, लिनामेन्ट बैलोडोना वातिक-शूल के लिये उत्तम है।

मस्टर्ड—(सिनीपस-राई) गुण—उष्ण, दाहक, वामक है। राई

का उपयोग बाह्योपचार में होता है। फुफ्फुस शोथ में, तीव्र कास में, छाती के दर्द में ऊपर राई का पुल्टिस या लेप किया जाता है। कॉलरे के शूल में, वमन में, आक्षेप में राई को पीसकर लगाना चाहिये। संधिवात, शोथ आदि में राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। गरम पानी में राई घोलकर इसमें पाँव रखने से रात्रि को नींद आती है, कष्टार्त्तव में इसका उपयोग करना चाहिये। राई का तेल या लिनिमैन्ट सिनीपस का लेप पीड़ा-शामक गुण के लिये बरता जाता है। इसमें कपूर आदि मिलाने से इसका गुण बढ़ जाता है।

मर्ह—गुण—उष्ण, कफघ्न, ऋतु लानेवाला, कास एवं गले के रोगों में बरता जाता है। स्तम्भक गुण के कारण स्पंजीगम्स में (जब मसूड़ों से खून चलता है) कुल्ला करने के लिये ४ औन्स पानी में २ ड्राम टिंचर मर्ह या आयोडीन टिंचर (रैक्टीफाईड) के साथ मिलाकर लगाते हैं। यह उत्तेजक शक्ति वर्धक है, वातहर और आँतों की गति को बढ़ानेवाला है। कई बार श्लेष्मा को निकालने के लिये इसका व्यवहार किया जाता है। कष्टार्त्तव में यह विशेष उपयोगी है, जब कि इसको लोहे के साथ मिलाकर दिया जाता है।

बनावट—(१) पल्व मर्ह १० से ३० ग्रेन (२) टिंचर मर्ह ½ से १ ड्राम (३) पिल एलोज् एट मर्ह ४ से ८ ग्रेन।

मैन्थाल—कृमिनाशक, वातहर, भूख लगानेवाला, उत्तेजक तथा मुँह में शीतलता उत्पन्न करता है। अजीर्ण में, सिरदर्द में, दवाई के बुरे स्वाद को छिपाने में, यह बहुत काम आती है। नस के दर्द में इसका लगाना अच्छा है।

यूक्लिप्टस—कफघ्न, कृमिनाशक, दुर्गन्धिनाशक है। दवाइयों में इसका तेल बरता जाता है। मात्रा—१ से ३ बूँद, यह तेल जन्तुनाशक रूप में क्षय-रोग में बरता जाता है। प्रतिश्याय आदि रोगों में यह सूँघा जाता है। इस तेल में आयडोफार्म, क्रियोजोट मिलाकर गोंद के पानी में गोली बनाकर क्षय आदि रोगों में बरती जाती है। इसका उपयोग पिपरमेन्ट क्लोरोफार्म के साथ बरता जाता है। मात्रा ½ से ३ बूँद, इसका बाह्य उपयोग थोड़ा विक्षोभ उत्पन्न करता है। त्वचा को लाल करता है। ऑयल

यूक्लिप्टस ५ बूँद, ऑयल सिनीमाई ५ बूँद, मैन्थाल १० ग्रेन, मिथाईल सैलिसिलेट ५ बूँद, एटोलीन १ औन्स ,इसका स्प्रे नाक में बारबार करना चाहिये।

रूबर्ब—गुण—ग्राही एवं रेचक है। यह छोटी मात्रा में संग्राही और बड़ी मात्रा में रेचक है। साथ में अग्निवर्धक भी है। अजीर्ण के अतिसार में, मरोड़े में यह अधिक लाभ करता है। रक्त-शोधक है इसलिये बालकों के कण्ठमाला तथा उपदंश में लाभ करता है। बच्चों के अतिसार में या मलबन्ध में इसका उपयोग होता है।

बनावट—पल्व रिहाई कम्पाउन्ड (ग्रेगरिज पाऊडर) २० से ६० ग्रेन, सिरप रिहाई ½ से २ ड्राम, टिंचर रिहाई कम्पाउन्ड ½ से १ ड्राम, एक्सट्रैक्ट रिहाई २ से ८ ग्रेन।

लिक्विरस—गुण--ज्वरघ्न, कफघ्न, शीतल, पौष्टिक है। यह मृदु विरेचक और चिकना करनेवाला है। इसके द्वारा बहुत सी दवाइयों का स्वाद छिपाया जा सकता है। इसके द्वारा श्लेष्मकला और मूत्रमार्ग के शोथ में लाभ होता है।

बनावट—एक्सट्रैक्ट ग्लिसराइज लिक्विड—मात्रा ½ से १ ड्राम। (२) पल्विस ग्लिसराइज कम्पाउन्ड मात्रा ६० से १२० ग्रेन है; (३) एक्सट्रैक्ट ग्लिसराइज ५ से १० ग्रेन।

लिन्सीड—मूत्रल और स्निग्ध है। अलसी के तेल और गोंद जैसा गुण होने के कारण तथा मूत्रल गुण के कारण प्रमेह तथा सूजाक में इसकी चाय बरती जाती है। वाह्योपचार में गुमड़ा, फुंसी, फोड़े आदि पर इसकी पुल्टिस बाँधी जाती है। इससे या तो फुंसी बैठ जाती है अथवा पक जाती है। श्वासनाली में, फुफ्फुस की शोथ में पुल्टिस बहुत लाभ करती है।

लेमन—अनार्य चिकित्सा में इसका टिंचर या शरबत बरता जाता है। मसूड़ों से रक्त आने पर इसका रस विशेष उपयोगी है। इसका शरबत (मात्रा १ से २ ड्राम) मिश्रणों को सुगन्धित करने के काम आता है, इसके तेल से प्रलेपों को सुगन्धित किया जाता है।

वेलेरियन—गुण—वातहर, पौष्टिक, उष्ण तथा कृमिघ्न है। इस दवाई की बहुतसी बनावटें हैं। मुख्य बनावट—इन्फ्युजन वेलेरियन (मात्रा १ औन्स), टिंचर वेलेरियन (मात्रा १ से २ ड्राम) टिंचर वेलेरियन

एमोनेटा (मात्रा ½ से १ ड्राम), जिंक वेलेरियन (मात्रा १ से ३ ग्रेन) है। इस दवाई का मुख्य असर मस्तिष्क से सम्बन्ध रखनेवाले रोगों के साथ है, यथा—उन्माद, हिस्टीरिया, आक्षेप आदि रोगों में लाभ करती है। इसे अन्य वातहर उष्ण औषधियों के साथ में मिलाकर देते हैं।

सारसापरिला—रक्तशोधक, पाचक, पौष्टिक, स्वेदल, मूत्रल है। इसकी जड़ें काम में आती हैं। इसकी बहुत-सी बनावटें हैं। सारसापरिला का चूर्ण मात्रा ३० से ६० ग्रेन, (२) क्वाथ—२॥ औंस सारसापरिला और ३० औंस उबलता हुआ पानी, मात्रा २ से १० औंस। (३) लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ़ सारसापरिला मात्रा २ से ४ ड्राम। यह सब बनावटें उपदंश, संधिवात, त्वचा के रोगों में, कण्ठमाला में, निर्बलता में, प्रमेह में बरती जाती हैं।

सिन्कोना—ज्वरघ्न, कटु पौष्टिक। सिन्कोना के प्रायः सब गुण क्युनीन से मिलते हैं।

बनावट—एक्सट्रैक्ट सिन्कोना लिक्विड ५ से १५ बूँद, इन्फ्युज़न सिन्कोना एसिडम ½ से १ औंस, टिंचर सिन्कोना ½ से १ ड्राम, टिंचर सिन्कोना कम्पाउन्ड ½ से १ ड्राम, डिकॉक्शन सिन्कोना १ से २ ड्राम। सिन्कोना भूख लगाता है, संकोचक है, शक्तिवर्द्धक है, वात, नाड़ियों के दर्द को कम करता है, ज्वर को रोकनेवाला है।

सिनेमन (दालचीनी)—उष्ण, वातहर, दीपन, पाचन और संग्राही है।

बनावट—ऑयल ऑफ सिनेमन १ से ३ बूँद, टिंचर सिनेमन ½ से १ ड्राम, पल्व सिनेमन कम्पाउण्ड १० से ६० ग्रेन। दालचीनी की यह सब बनावटें अजीर्ण, अग्निमान्द्य, प्रवाहिका, उदरशूल, वमन, अतिसार, रक्तस्राव आदि रोगों में बरती जाती हैं। ऋतुस्राव सम्बन्धी रोगों में तथा गर्भाशय में गरमी लाने के लिये भी इसका उपयोग होता है।

सिला (स्क्विइल)—उष्ण, मूत्रल, वामक, रेचक, कफघ्न है; (१) सीरप स्क्विइल मात्रा ½ से १ ड्राम, (२) टिंचर सिल्ला ५ से १५ बूँद, (३) ऑक्सीमल सिल्ला मात्रा ½ से १ ड्राम। यह सब बनावटें श्वास, दमा, कास, सरदी तथा क्षय में उपयोगी हैं। अधिक मात्रा में लेने से वमन, आवरण शोथ, अतिसार आदि उपद्रव होजाते हैं।

सैन्डल आयल—(चन्दन का तेल) गुण—मूत्रल, ग्राही है। इसका उपयोग प्रमेह, सूजाक में होता है। मात्रा १० से ३० बूँद। त्वचा के व्रणों पर, खाज पर, कण्डू के ऊपर लगाया जाता है। डॉक्टर लोग इसका उपयोग कोपाइवा और बक के साथ करते हैं।

स्कैमोनी—रेचक तथा कृमिघ्न है। यह दवाई गोली, चूर्ण तथा मुरब्बे आदि के रूप में बरती जाती है। इससे सख्त तीव्र विरेचन होता है और शूल पैदा करता है। इसके साथ वायुहर गरम दवाई लेने की आवश्यकता होती है। आँतों के बन्धकोश में, मस्तिष्क में रक्त-सञ्चार के बढ़ने में, बालकों के कृमि-रोग में इसका व्यवहार किया जाता है। मात्रा—पल्विस की ५ से १० ग्रेन, कम्पाउन्ड स्कैमोनी पिल्स ५ से १५ ग्रेन, कम्पाउन्ड स्कैमोनी पाउडर १० से २० ग्रेन है।

सैकेरीन—यह बहुत मिष्ठ वस्तु है। शर्करा की अपेक्षा यह दस-गुणी मीठी है। सैकेरीन की टिकिया आती है। इनमें प्रत्येक में ½ ग्रेन सैकेरीन होती है। मधु-प्रमेह के रोगी को जहाँ पर शर्करा का उपयोग हानिकारक है, वहाँ पर इसका व्यवहार किया जाता है।

सैना—गुण—रेचक और शोधक है। अँग्रेज़ी में इसका मुरब्बा इन्फ्युज़न, सीरप, टिंचर आदि बरता जाता है। टिंचर की मात्रा ½ से १ ड्राम है। इस से पानी-जैसा पतला दस्त आता है। इससे पेट में शूल, वायु आक्षेप आदि कुछ नहीं होता। यह दवाई ठण्डी है, इसलिये गरम दवाइयों के साथ इसका व्यवहार करना चाहिये।

सैन्टोनाईन—कृमिघ्न है। पेट के कृमियों को मारने के लिये यह दवाई प्रसिद्ध है। मात्रा बच्चों के लिये, १ से ३ ग्रेन। बड़े आदमियों के लिये ३ से ६ ग्रेन। बाज़ार में इसकी टिकिया मिलती हैं। इसका प्रभाव टेपवार्म और थ्रेडवार्म पर बिलकुल नहीं होता। सैन्टोनाईन को लेने के पीछे कोई विरेचक औषधि अवश्य लेनी चाहिये, जिससे मरे हुये कृमि निकल जाते हैं। सैन्टोनाईन के साथ शर्करा, सोडाबाइकार्ब और कैलोमल दो-दो ग्रेन मिलाकर देना चाहिये।

स्ट्रैमोनियम—गुण—स्नायुशैथिल्यकृत-पीड़ाशामक, ज्वरघ्न, मादक है।

बनावट—(१) इक्सट्रैक्ट १/४ से १/२ ग्रेन, (२) टिंचर ५ से १५ बूँद। इसके पत्तों की बीड़ी करके पी जाती है, इससे दमा, फुफ्फुस का शोथ, वरम, शोथ, तथा आक्षेप आदि रोगों मे लाभ होता है। अधिक खाने से बेहोशी होती है।

स्ट्रोफेन्थस—गुण—मूत्रल, रक्तशोधक तथा हृदय के लिये हित-कारक है।

बनावट—(१) एक्सट्रैक्ट १/४ से १ ग्रेन (२) टिंचर २ से ५ बूँद। इसमें से स्ट्रोफैन्थीन नामक तत्त्व निकलता है जो कि इंजक्शन करने के लिये १/३०० से १/१०० ग्रेन तक काम में आतो है। यह हृदय को शक्ति देता है, डिजैटेलिस की भाँति उपयोगी है। मूत्रल गुण के कारण शोथ में, जलोदर में, मूत्र-प्रवाह को बढ़ाने के लिये इसका उपयोग होता है।

हायोस्यामी—गुण—पीड़ाशामक, मादक और कफघ्न है।

बनावट—(१) एक्सट्रैक्ट हाईस्यामी २ से ८ ग्रेन है। (२) टिंचर की मात्रा १/२ से १ ड्राम है। इस दवाई के गुण वैलाडोना और स्ट्रेमोनियम की भाँति हैं। यह दवाई थके हुये और श्रमित मस्तिष्क को शान्ति देती है। नींद न आने में, शिर दर्द मे, दमे में, खाँसी में, संधिवात में, हृदय के रोगों में, उन्माद रोग में, मूत्राशय के रोगों में बरता जाता है। मरोड़ों को कम करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

हैज़ेलीन—रक्तस्तम्भक और संग्राही है। शरीर के किसी भी भाग में से होनेवाले रक्तस्राव को यह रोकती है। यह पीने के और बाहर लगाने के काम में आती है। पीने की मात्रा ५ से १५ बूँद है। फुफ्फुस, आमाशय, आंत्र, मूत्राशय, मलाशय, और गर्भाशय से होनेवाले रक्तस्राव को बन्द करता है। मुँह से यदि रक्त आता हो तो इसको पानी में मिलाकर कुल्ले करना चाहिये। अर्श रोग में हैज़ेलीन और गरम पानी की पिचकारी मारने से रक्तस्राव रुक जाता है। रक्तातिसार, ऋतुस्राव, और बाहर के ज़ख्म के रक्तस्राव को बन्द करने के लिये रोज़ एक या दो बार एक-एक ड्राम की मात्रा में पीने से रक्त बन्द हो जाता है।

हैमेमेलीस—गुण—ग्राही, स्तम्भक है, छाती में से, गुदामार्ग में से, मूत्रमार्ग से, स्त्रियों के गर्भाशय में से जब रक्तस्राव जाता हो, उसको बंद

करता है। मरोड़े में, क्षय में, अर्श में, अत्यार्त्तव में लाभ करता है। हैमेमे-लिस में से हैजेलीन बनती है।

बनावट—(१) एक्सट्रैक्ट हैमेमैलिस १ से ५ ग्रेन, (२) एक्सट्रैक्ट हैमेमैलिस लिक्विड ५ से १५ बूँद (३) टिंचर हैमेमैलिस ३० से ६० बूँद।

खनिज वर्ग की औषधियाँ

(१) **अमोनिया**—इसकी दो मुख्य बनावटें हैं, एक अमोनिया और दूसरी स्ट्राँग सल्युशन ऑफ़ अमोनिया।

अमोनिया के गुण—आक्षेपों को कम करनेवाली, पेशाब लानेवाली, स्वेदक, कष्ठार्त्तव में उपयोगी, श्लेष्मा निकालनेवाली और उत्तेजक है। इसका वाह्य उपयोग दूषित व्रणों पर किया जाता है।

लाइकर अमोनिया—उत्तेजक, श्लेष्मा को निकालनेवाला, क्षार-आक्षेपों को कम करनेवाला, त्वचा पर लगाने से त्वचा को लाल कर देता है। अजीर्ण और कास में उपयोगी है। सन्धि के दर्द और कठोरता को कम करने के लिये इसका उपयोग होता है। मूर्च्छावस्था में, वातिक सिर दर्द में, निर्बलता में, इसके वाष्प सुँघाये जाते हैं। इसकी मात्रा ५ से २० बूँद है। साँप के काटने पर इसकी १० से १५ बूँद लेकर समान मात्रा में पानी से हल्की करके त्वचा के नीचे इंजेक्शन करने से कुछ लाभ होता है। (२) स्प्रिट अमोनिया एरोमैटिक—(सैलवोलेटाइल)—अमोनिया के समासों में यह एक मुख्य वस्तु है, यह हृदय के लिये उत्तेजक है, बलगम को निकालनेवाला है और क्षार है। मूर्च्छा, कास और अजीर्ण में उपयोग किया जाता है। मात्रा २० से ४० बूँद। परन्तु एक खुराक के लिये ९० बूँद भी दे सकते हैं। (३) लाइकर अमोनिया एसिटेड—यह स्वेदक और मूत्रल है। अमोनिया कार्ब २५ ड्राम, ऐसिटिक एसिड १० औन्स, पानी ५० औन्स मिलाने से बनता है। यह कटे हुये या शोथ-युक्त स्थानों पर लगाया जाता है। मात्रा—२ से ६ ड्राम। (४) अमोनियम ब्रोमाइड—इसका गुण पोटाशियम ब्रोमाइड से मिलता है, परन्तु हृदय की गति को मन्द करता है। मात्रा—५ से २० ग्रेन। इससे मस्तिष्क में शान्ति आती है, नींद आती है, अपस्मार, आक्षेप आदि रोगों में उपयोगी है। (५) अमोनिया कार्ब—बड़ी मात्रा में (१५ से ३० ग्रेन) वामक है; कफघ्न के लिये ३-१० ग्रेन है। थोड़ी मात्रा में आमाशय और हृदय के

लिये शक्तिवर्धक है, उत्तेजक है, बलगम निकालनेवाला है, निमोनिया, कास, दमे में उपयोगी है। (६) अमोनियम क्लोराइड—यह यकृत रोग के लिये उपयोगी है, क्योंकि पित्त को थोड़ी मात्रा में निकालता है। स्वेदक, मूत्रल और आमाशय को उत्तेजक है। यह श्वास-मार्ग, फुफ्फुस आदि की श्लेष्म कला को उत्तेजित करता है। मात्रा—५ से २० ग्रेन है। कामला रोग में, ऋतु लाने में, कष्टार्त्तव में, कास में, फुफ्फुस के शोथ में उपयोगी है। (७) लाइकर अमोनिया साइट्रेट—यह मूत्रल और स्वेद लानेवाला है। इसके गुण बहुत कुछ लाइकर अमोनिया एसिटेट से मिलता है, परन्तु यह इसकी अपेक्षा ज्वर के लिये अधिक उपयोगी है।

आयडोफार्म—रोपण और दुर्गन्धि-नाशक है। दुर्गन्धि को दूर करने में बहुत उपयोगी है। उपदंश-जन्य बदबू को दूर करता है। इसको बोरिक एसिड के साथ मिलाकर बरता जाता है, जिससे दुर्गन्धि कम हो जाती है। शस्त्रक्रिया के पीछे व्रण को भरने के लिये इसकी वर्त्ति व्रण में भरकर रक्खी जाती है। जब कि स्राव में बहुत बदबू होती है इसका पिचु योनि में रक्खा जाता है। यह यक्ष्मा और उपदंश-जन्य व्रण में अधिक उपयोगी है। अन्त: उपयोग—उपदंश की तृतीयावस्था में और यकृत रोग में होता है। मात्रा—½ से ३ ग्रेन। इसके उपयोग में इसकी गन्ध बहुत बाधक है। कान में से पीप आती हो तो इसको बोरिक एसिड, या स्टार्च के साथ मिलाकर कान में फूंकने से आराम होता है।

आयोडीन—रक्तशोधक, शोथहर, पौष्टिक, दाहक है। यह तीव्र कृमिनाशक, स्वच्छ करनेवाली और जन्तु-नाशक है। इसका बाह्य उपयोग विक्षोभक, उष्णिमा एवं दर्द को उत्पन्न करता है। परन्तु यदि बहुत तेज लगा दिया जाये तो त्वचा पर छाला और शोथ उत्पन्न कर देता है। इसका बाह्य उपयोग गांठ, शोथ, सन्धिवात, शूल, चसका आदि में होता है। शल्यकर्म करने से पूर्व त्वचा को टिंचर के द्वारा स्वच्छ बनाया जाता है। व्रण को टिंचर के साथ और गॉज के साथ भर देना चाहिये। इसको रैक्टीफाइड स्प्रिट में बनाकर वमन को रोकने के लिये बरता जाता है।

बनावट—(१) टिंचर आयोडीन (मैथिलीयेटेड स्प्रिट में बना हुआ) (२) लिनीमेंट आयोडीन (३) टिंचर आयोडीन मिट्स २ से ५ बूँद (रैक्टीफाइड

स्प्रिट में)। (४) मलहम। (५) आयोडोक्स (६) आयोडीपीन-मात्रा १ से २ ड्राम, कैप्सुल में रखकर देना चाहिये। उपदंश और गण्डमाला में उपयोगी है।

आर्सेनिक—गुण—रक्तशोधक, ज्वर-नाशक, शक्तिवर्धक है। बाह्य उपयोग—यह दाहक है, इसको चारकोल और स्टार्च के साथ मिलाकर लगाते हैं। मस्सों को तथा अन्य मांस वृद्धि इसके लगाने से जलाये जा सकते हैं। अन्त: उपयोग—त्वचा के पुराने रोगों में, जबकि त्वचा खुश्क हो, तारुण्य पिटिका हों, उनमें लाभदायक है। मलेरिया ज्वर में, जब कि क्युनीन से लाभ न हो, उस समय इसका उपयोग किया जाता है। परनीशोयस एनीमिया में इसके समान कोई भी उत्तम औषधि नहीं है। इसके देने से रक्ताणु बढ़ जाते हैं और श्वेताणु कम होते हैं। शक्तिवर्धक औषधियों में, आमवात के कारण सन्धिशोथ में, निर्बलता में आर्सेनिक मुख्य औषधि है। आर्सेनिक समास सदा भोजन के तत्क्षण पश्चात लेने चाहिये। इसको बहुत ही थोड़ी मात्रा में आरम्भ करना चाहिये और लगातार तीन सप्ताह से अधिक नहीं देना चाहिये। एक सप्ताह तक बन्द करके फिर चालू करना चाहिये। समास—(१) एसिड आर्सेनिक-मात्रा $\frac{१}{६०}$ से $\frac{१}{१६}$ ग्रेन (२) लाइकर आर्सेनिककेलिस-मात्रा २ से ८ बूँद, (३) लाइकर आर्सेनिक हाइड्रोक्लोरेट-२ से ८ बूँद (४) लाइकर आर्सेनिक एट हाइड्राजराई (डौनवन सल्युशन) ५ से २० बूँद (४) फैराई आरसीनास $\frac{१}{१६}$ से $\frac{१}{४}$ ग्रेन।

ईथर—यह अति उत्तेजक गुणवाला, आक्षेपों को कम करनेवाला, वातहर, और संज्ञानाश करनेवाला है। थोड़ी मात्रा में सूँघने से दमे के दौरे को कम करता है। मात्रा—१० से ३० बूँद बार बार देने के लिये। एक बार देने के लिये ६० बूँद दी जा सकती है। (२) स्प्रिट ईथरीस—मात्रा ३० से ९० बूँद (३) स्प्रिट-ईथरीस कम्पाउण्ड—२० से ४० बूँद है (४) स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई—मात्रा १५ से ६० बूँद। उष्ण, स्वेदक, मूत्रल तथा कफघ्न है। यह दवा सब प्रकार के ज्वर में, कास में, श्वास में बरती जाती है। स्वेदक और मूत्रल होने से ज्वर को कम करती है।

ऐन्टीपाईरीन—ज्वरहर और स्वेदक है। यह बढ़े हुये ताप परिमाण को नीचे उतार देती है, शरीर की गरमी को कम करती है, हृदय को मन्द

करती है। जो वैद्य इसके बुरे परिणामों से परिचित नहीं होते, वे इससे कई बार धोखा उठा जाते हैं। फिनस्टीन की भाँति दर्द को कम करनेवाली और ज्वर को उतारनेवाली है। इसलिये शिरदर्द में, सन्धिवात में, आधा सीसी के दर्द मे इसका उपयोग होता है। मात्रा ५ से १० ग्रेन। इसको क्युनीन के साथ देने में इन्फ्लुएञ्जा तथा अन्य ज्वरों में लाभ होता है।

एन्टीफ़ेब्रिन—दर्दनाशक, ज्वरनाशक और आमवात में उपयोगी है। इसको बहुत ही सावधानी से बरतना चाहिये, क्योंकि थोड़ी मात्रा से भी विष के लक्षण उत्पन्न होजाते हैं। यह प्राय: तीव्र शिरदर्द में दी जाती है। शिरदर्द के लिये जो औषधियाँ बनती हैं, प्राय: उन सब में यह पड़ती है। मात्रा—१ से ३ ग्रेन।

एन्टीमनी—स्वेदल, कफघ्न, रक्त-शोधक है।

बनावट—टार्टार एमैटिक—यह दवाई काले ज्वर के लिये खास मानी जाती है। इसको 'एण्टोमनी टार्टार' भी कहते हैं। यह वामक और हृदय की गति को बहुत मन्द करनेवाली है। ब्रोंकल निमोनिया की प्रथमावस्था में लाभदायक है। परन्तु जब म्युकस-श्लेष्मा निकलने लगे, उस समय बन्द कर देना चाहिये। इसको 'एपिकाकर्केना' के स्थान पर भी बरतते हैं। ज्वर के लिये मात्रा $\frac{1}{24}$ से $\frac{1}{8}$ ग्रेन। प्राय: इन्जेक्शन दिया जाता है। वमन के लिये १ से २ ग्रेन है। (२) पल्विस एन्टीमोनियल—मात्रा ३ से ६ ग्रेन, (३) वाइनम एन्टीमोनियल—वमन के लिये मात्रा २ से ४ ड्राम। ज्वर उतारने के लिये १० से ३० बूँद। ज्वर में, कास में, दमे में यह बहुत लाभदायक है। इसका उपयोग जहाँ पर श्वास-नलिका का औंकाई भाग आक्रान्त हो, वहाँ पर अच्छा प्रभाव करता है। इस बात में यह एपिकॉक से अच्छा गुणकारी है।

ऐसिटिक एसिड—गुण—शीतल, आम्ल। यह टाल (जहाँ से बाल गिर जाते हैं), दद्रु, मस्सा आदि के ऊपर लगाया जाता है। इसको पानी में मिलाकर इसका कपड़ा शिर दर्द में या ज्वर पर लगाया जाता है। मात्रा—एसिड १ भाग और पानी ७ भाग। यह लोशन बहुत ही ठण्डा है। क्षार से उत्पन्न विषों का यह उत्तम प्रतिविष है।

कार्बोलिक एसिड— गुण—दाहक, रोपण, जन्तुघ्न तथा दुर्गन्धिनाशक

है। इसका उपयोग प्रायः बाह्योपचार में होता है। यह रोगी के कमरों को, उसके बर्तनों को और नालियों को साफ करने के लिये बरता जाता है। बिना हल्का किये यह दाहक है। यदि इसके लगाने से जल जाय तो मैथिलियेटेड स्प्रिट से धोकर बोरिक प्रलेप लगाना चाहिये। इसका दो प्रतिशत का घोल कण्डू को नष्ट करता है। हाथ धोने के लिये, औज़ार धोने के लिये, व्रणों को धोने के लिये २½ प्रतिशतक से अधिक तीक्ष्ण घोल नहीं बनाना चाहिये। हृदय की जलन या दर्दयुक्त अजीर्ण में, जब कि आध्मान भी हो उस समय, और थोड़ी मात्रा में अतिसार बन्द करने के लिये बरता जाता है। मात्रा—१ से ५ ग्रेन। यथा—एसिड कार्बोलिक १ ग्रेन, पल्वरिहाई कम्पाउन्ड २ ग्रेन, १ गोली बनाकर भोजन के पीछे लेना चाहिये। (२) एसिड कार्बोलिक ½ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ओपयाई ⅛ ग्रेन, विस्म्युथ सैलसिलेट ३ ग्रेन। इसकी एक गोली बनाकर दिन में तीन बार लेनी चाहिये। यह गरमियों के अतिसार के लिये उपयोगी है। कार्बोलिक एसिड को तेल में मिलाकर (एक भाग एसिड और २० भाग तेल मीठा) बरतना चाहिये। कार्बोलिक लोशन (१ भाग एसिड ४० भाग पानी), प्लेग में इसका उपयोग थोड़ी मात्रा में आधा से १ बूँद किया जाता है। इसके लिये 'साईलीन' भी उपयोगी है।

क्रीओज़ोट—जन्तुघ्न, रोपण, दाहक, स्तम्भक तथा दुर्गन्धि-नाशक है। यह उल्टी तथा अतिसार को बन्द करता है, यक्ष्मा के कृमियों को मारने के लिये इसका उपयोग १ से २ बूँद मात्रा में सितोपलादि चूर्ण के साथ किया जाता है। बाह्य उपचार में दाँत के दर्द को दूर करने के लिये इसका फाया दाँत में रखते हैं। मात्रा १ से ५ बूंद। बनावट—क्रीओजुटोल—मात्रा ५ से २० बूँद। यह यक्ष्मा के लिये अधिक उपयोगी है। ग्वायकोल--मात्रा १ से ५ ग्रेन। इसका उपयोग क्षय में होता है, क्योंकि इसके कारण अजीर्ण नहीं होता। ग्वायकोल कार्बोनेट—मात्रा ३ से १० ग्रेन। छाती के दर्द में, फुफ्फुस और आँतों के यक्ष्मा रोगों में, गलगण्ड में, अतिसार में, ज्वर में, निर्बलता में उपयोग होता है। इसमें क्षय के जन्तुओं को नाश करने की शक्ति है।

क्रीटा—(चॉक)—बनावट—चॉक मिक्श्चर आधा से १ औंस (२) पल्वक्रीटा ऐरोमैटिक—मात्रा १० से ६० ग्रेन (३) पल्वक्रीटा ऐरोमैटिक

कम ऑवयाई-१० से ३० ग्रेन । गुण—ग्राही, अम्ल विरोधी, वातहर । अजीर्ण अतिसार, अम्लपित्त, आंतों के व्रणों में यह दवाई उपयोगी है । चॉक सब दन्त-मञ्जनों में बरता जाता है ।

कैलसियम क्लोराइड—रक्तशोधक, रक्त को गाढ़ा करनेवाला, जन्तुघ्न है । मात्रा ५ से १५ ग्रेन । इसके ८८ ग्रेन में १ औन्स पानी मिलाने से लाइकर कैलसो बनता है । यह प्रवाही वमन को बन्द करता है, इसलिये छोटे बच्चों को वमन में देते हैं । मात्रा १५ से ३० बूँद । इसकी बहुतसी बनावटे हैं । यथा—कैलसियाई लैकटेड, कैलसियाई हाईपौस्फेट, कैलेक्स सल्फ्युरेटा, कैलसियाई परमैंगनेट, कैलसियाई कार्बोनास, आदि हैं । इनमें सीरप हाइपोकैस्फिट ऑफ लाइम की बनावट इस प्रकार है—हाई पौस्फेट ऑफ लाइम १६० ग्रेन, सफेद बूरा १६ औंस, एसिड हाइपोफौस्फेरिस २० बूँद, पानी ९ औंस । प्रथम हाइपौस्फेट ऑफ लाइम को पानी में मिलाकर छान लेना चाहिये । इसमें शर्करा मिलाकर शरबत बनाना चाहिये । जब शरबत ठण्डा हो जाये, तब इसमें एसिड मिला देना चाहिये । मात्रा—१ से ४ ड्राम । क्षय, कास, गलगण्ड, अस्थि रोगों में उपयोगी है । कैलसियम क्लोराइड का अधिक उपयोग रक्तस्राव में या छपाकी-पित्त उछल आने में किया जाता है । कैलसियाई परमैंगनेट हैजे के लिये उत्तम है । चूँकि कैलसियम में गुण है कि वह रक्त की सान्द्रता को बढ़ाता है, इसलिये कैलक्स सल्फाइड रक्त की शुद्धि के काम आता है ।

कैलोमल— रक्त-शोधक, रेचक, पित्तस्रावक है । मात्रा—आधा से १ ग्रेन है । रेचक गुण के लिये २ से ५ ग्रेन है । इसको बहुत दिनों तक लगातार नहीं देना चाहिये । बालकों के कृमिरोगों में इसको सैन्टोनाइन के साथ देना चाहिये । कैलोमल से नीला, हरा अतिसार होता है । यह पित्त के ज्वर में पित्त निकालने के लिये उत्तम है । उपदंश, विस्फोटक, त्वचा के रोगों में बरता जाता है । साधारणत: इसको ⅛ ग्रेन की मात्रा में दिन में १-२ घंटे के अन्तर से ८ पुड़ियां देनी चाहिये । उपदंश आदि में व्रणों को धोने के लिये ब्लैकवाश (कैलोमल ३० ग्रेन, चूने का पानी १० औंस. इससे काला पानी बन जाता है) बनता है । जब भूख कम हो, शिरदर्द हो, जिह्वा मैली हो, अजीर्ण हो, शरीर में भारीपन हो, उस समय रात्रि को यह देकर प्रात: सैलाइन देना चाहिये ।

क्लोरल हाइड्रेट—नींद लानेवाला, आक्षेपों को कम करनेवाला और साधारण मन्द करनेवाला है। इसको मैन्थॉल, कैम्फर, कोकीन आदि के साथ मिलाकर लगाने से स्थानिक दर्द को, वात नाड़ी को आराम होता है। नींद न आने में, मस्तिष्क में रक्ताधिक्य होने पर, पागलपन में इसका उपयोग होता है। यह धनुर्वात और कुचले के विष में बहुत उपयोगी है। मात्रा—५ से २० ग्रेन। सीरप क्लोरल आधा से १ ड्राम है। बनावट—क्लोरेटोन मात्रा—२ से १० ग्रेन। यह वमन में, शिरदर्द में उपयोगी है। जहाज में चलते हुये जिन लोगों को चक्कर और वमन आते हैं, उनके लिये यह विशेष उपयोगी है। कास में भी लाभदायक है।

क्लोरोफ़ार्म—गुण—मादक, शामक, आक्षेपों को बन्द करनेवाला, निद्रालु है। आदमी को बेहोश बनाने के लिये इसका उपयोग प्रसिद्ध है। कॉलरा, अतिसार, शूल आदि में इसका उपयोग 'स्प्रिट क्लोरोफ़ार्म' या एका-क्लोरोफ़ार्म के रूप में किया जाता है। कुचला के विष में, टैटिनस रोग में और आक्षेपों में इसको १५-२० बूँद रूमाल पर गिराकर रोगी को सुँघाते हैं। इस समय रोगी की नाड़ी और हृदय का ध्यान रखना चाहिये। क्लोरोफ़ार्म का बाह्य-उपयोग भी दर्द कम करने के लिये किया जाता है। लिनिमेन्ट कैम्फर या लिनिमेन्ट कैम्फर एमोनेटा की दो-तीन बूँद बिच्छू आदि विषैले जानवरों के दंश पर लगाने से तुरन्त आराम हो जाता है। लिनिमेन्ट क्लोरो-फ़ार्म, लीनिमेन्ट बैलेडोना और लिनिमेन्ट एकोनाइट; इन तीनों को समान मात्रा में मिलाकर लगाने से तीव्र शूल भी शान्त होजाते हैं। दाँत के दर्द में स्प्रिट क्लोरोफ़ार्म लगाने से आराम हो जाता है। मुँह में जो सफ़ेद दाग़ (मुख-पाक) मुँह की अस्वच्छता के कारण गालों में होजाते हैं, उन पर डॉ० राधाकृष्णजी स्प्रिट क्लोरोफार्म को लगाया करते थे। इससे जलन तो होती है, परन्तु पानी निकलकर दाह शान्त हो जाती है। अजीर्ण में, मूर्च्छा में इसका अन्तः उपयोग होता है। इसकी मात्रा १ से ५ बूँद। केवल उल्टी रोकने के लिये—स्प्रिट क्लोरोफ़ार्म ५ से २० बूँद।

बनावट—टिंचर क्लोरोफ़ार्म ऐटमॉर्फिया—इसकी मात्रा ५ से १५ बूँद है। यह क्लोरोडीन से बहुत मिलता है।

ज़िंक (जस्ता)—बनावट—(१) ज़िंक ऑक्साइड—मात्रा ३ से

१० ग्रेन, (२) जिंक क्लोराइड, (३) जिंक सल्फेट-मात्रा—उल्टी के लिये १० से ३० ग्रेन। संग्राही गुण के लिये १ से २ ग्रेन। (४) जिंकवेलीरीनेट १ से ३ ग्रेन। जिंक ऑक्साइड का प्रलेप बनता है, जो रोपण और दुर्गन्धि-नाशक है। जिंक क्लोराइड में भी यही गुण है। विषों में उल्टी कराने के लिये जिंक सल्फेट का उपयोग होता है। इसके संग्राही गुण के कारण आँख में बरतने के लिये इसको गुलाबजल में घोलकर काम में लाते हैं। हिस्टीरिया, मृगी, कोरिया आदि वातिक रोगों के लिये जिंक वैलोरीनेट का उपयोग गोली के रूप में हींग के साथ किया जाता है। प्रदर, गनोरिया आदि में इसका प्रयोग किया जाता है, गनोरिया के लिये जिंक परमैंगनेट १ भाग, पानी ४००० भाग और प्रदर के लिये जिंक सल्फेट २ भाग, टिंचर लैवन्डर १५ भाग और पानी ५०० भाग तक उत्तम लोशन है। इसको 'रेड लोशन' करके पहिचाना जाता है।

टार्टरिक एसिड—अम्ल, शीतल, तृषाशामक है। यह दवाई क्रीम ऑफ टार्टर के रूप में या सोडावाटर के रूप में बरती जाती है। इसका गुण साइट्रिक एसिड से बहुत मिलता है। इसका उपयोग प्राय: झागदार मिश्रण बनाने में आता है, जो ज्वर में उपयोगी है। यथा—पोटैशियम बाई कार्ब १२ ग्रेन, अमोनिया कार्ब २ ग्रेन, सीरप जिंजीबर ३० बूँद, पानी १ औन्स; यह एक गिलास में, दूसरे गिलास में १० ग्रेन एसिड टर्टरिक घोलकर पीने समय में दोनों को मिलाकर पीना चाहिये।

नाइट्रिक एसिड—दाहक है। इसका उपयोग मुहाँसे जलाने में, व्रणों के दूषित पृष्ठ को साफ करने के लिये, तिलों को नष्ट करने के लिये किया जाता है। इसका हल्का रूप अस्थि के सड़ने में त्वचा के मस्सों या शोथ में काम आता है। इसको शीशे की शलाखा से लगाना चाहिये। लगाने से पूर्व चारोंओर की त्वचा को पैरोफीन के मरहम से सुरक्षित कर लेना चाहिये। हल्का नाइट्रिक एसिड शक्तिवर्धक, ताजा करनेवाला; जन्तुघ्न और पित्त निकालनेवाला है। यह पुरातन यकृत शोथ में, अजीर्ण में विशेषत: जब कि मूत्र में यूरेट या फौस्फेट आते हैं, उपयोग किया जाता है।

बनावट—डाइल्युट नाइट्रिक एसिड (१ नाइट्रिक एसिड और ४ भाग पानी)। मात्रा—५ से २० बूँद। (२) एसिड नाइट्रोम्युरेटिक (नाइट्रिक

एसिड ३ औन्स, हाइड्रोक्लोरिक एसिड ४ औन्स, पानी १५ औन्स, मात्रा ५ से १० बूंद है।

नाइट्रेट ऑफ सिल्वर—(अर्जेंटी नाईट्रास) इसकी श्वेत शलाकाएं बाजार में बिकती हैं, जो धूप में रखने से काली पड़ जाती हैं। इसका बाह्य उपयोग प्राय: दाहक गुण के लिये होता है। आँख के अन्दर के कुकरे जलाने के लिये, विषैले जन्तुओं के दंश के लिये, मस्से आदि को नष्ट करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। इसका दूसरा गुण है संकोचक। इसके लिये अतिसार आदि में, प्रदर में, सुजाक में, रक्तातिसार में, प्रवाहिका में इसकी वस्ति का उपयोग किया जाता है। इसका तीसरा उपयोग खिजाब में होता है। आँखों के लिये अरजेंटो नाइट्रेट २ ग्रेन, पानी एक औन्स। अन्दर लेने के लिये इसकी मात्रा ¼ से ½ ग्रेन है। यह आँतों के क्षत में, कॉलरा, रक्तस्राव में, प्रवाहिका में अन्त: उपयोग में लाया जाता है।

प्लम्बाई ओक्साइड—(मुर्दाशङ्ख)—रोपण है।

बनावट—लेड प्लास्टर, (२) प्लम्बाई एसिटेट ऑफ लेड। गुण—शोधक और ग्राही है। (३) पिल प्लम्बाई कम ओपियाई—मात्रा २ से ४ ग्रेन, (४) सपोजैटरी प्लम्बाई कम ओपियाई (५) लेड लोशन १ औन्स पानी, और ५ ग्रेन शुगर ऑफ लेड।

उपयोग—खाज, कण्डू, व्रण, शोथ, रक्त संचय आदि में, सुजाक में और प्रदर में इसका लोशन बरता जाता है।

पोटाशियम—इसकी भिन्न भिन्न बनावटें निम्न प्रकार से हैं—

(१) लाइकर पोटाशियम—मात्रा १० से ३० बूँद। अम्ल विरोधी, मूत्रल, रक्तशोधक, संधिवात, आमवात, मंदवृद्धि, जलोदर, दाह आदि रोगों में उपयोगी है।

(२) कास्टिक पोटाश—दाहक, सड़े हुये व्रणों में मस्से आदि पर जलाने के लिये लगाते हैं।

कारबोनेट ऑफ पोटाश—मात्रा ५ से २० ग्रेन लाइकर पोटाश की भाँति रक्तशोधक और अम्लविरोधी।

(४) बाई कारबोनेट ऑफ पोटाश—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। मूत्रल ज्वर में और संधिवात में उपयोगी।

(५) **एसिटेट ऑफ़ पोटाश**— मात्रा १५ से ६० ग्रेन। स्वेदक, मूत्रल और कफघ्न।

(६) **साइट्रेट ऑफ़ पोटाश**—मात्रा १५ से ६० ग्रेन। शोधक, मूत्रल, शीतल और अम्लविरोधी।

(७) **टार्टार ऑफ़ पोटाश**—मात्रा आधा से १ ड्राम। मूत्रल तथा रेचक। स्वेन की मात्रा आधा से ४ ड्राम।

(८) **एसिड टार्टार आफ़ पोटाश**—मात्रा ५ से २० ग्रेन। मूत्रल तथा रेचक है।

(९) **नाइट्रेट ऑफ़ पोटाश**—मात्रा १५ से ४५ ग्रेन। मूत्रल, स्वेदक तथा शीतल है।

(१०) **सल्फेट ऑफ़ पोटाश**—मात्रा १५ से ४५ ग्रेन। रेचक तथा शोधक है।

(११) **क्लोरेट ऑफ़ पोटाश**—मात्रा ५ से १५ ग्रेन। गुण, शीतल शोधक, मूत्रल और कफघ्न है।

(१२) **ब्रोमाइड ऑफ़ पोटाशियम**—५ से २० ग्रेन। गुण—निद्रा-लानेवाला, शीतल, कफघ्न।

(१३) **आयोडाइड ऑफ़ पोटाशियम**—मात्रा ५ से २० ग्रेन। रक्तशोधक और कफघ्न।

(१४) **परमैंगनेट ऑफ पोटाशियम**—मात्रा १ से ५ ग्रेन। रक्त-शोधक, जन्तुघ्न, दुर्गन्ध नाशक और विषघ्न।

फिनस्टीन—गुण—ज्वरघ्न, कफघ्न, शामक, निद्रा लानेवाली है। इसका असर हृदय पर बहुत ख़राब होता है। इसको देते समय रोगी की शक्ति का विचार करना चाहिये। इसका उपयोग प्रायः दर्द कम करने के लिये किया जाता है। मात्रा ५ से १५ ग्रेन। यह दवाई ऐंटीफ़ैब्रीन या ऐंटीपाईरीन की अपेक्षा हृदय को कम निर्बल करती है।

फेरम (लोह)—गुण—रक्तशोधक, पौष्टिक, रक्त स्तम्भक, ग्राही, ऋतु लानेवाला है। लोह की मुख्य बनावटें नीचे दी जाती हैं—

(१) वाईनमफैरी —मात्रा १ से ४ ड्राम।

(२) टिं० फेराई परक्लोराइड मात्रा ५ से १५ बूँद।

(३) लाइकर फेराई परक्लोराइड—मात्रा ५ से १५ बूँद।

(४) फेराई सल्फास—मात्रा १ से ५ ग्रेन।

(५) फेराई रिडैक्टम (लोह-भस्म) मात्रा—१ से ५ ग्रेन।

(६) फॉस्फेट ऑफ आयर्न—मात्रा ५ से १० ग्रेन।

(७) सिरप फैराई फॉस्फेट—मात्रा आधा से १ ड्राम।

(८) सिरप फैराई आयोडाइड—मात्रा आधे से एक ड्राम।

(९) फैराई आयोडाइड—मात्रा १ से ५ ग्रेन।

(१०) फ़ैरी एट एमोनियम साइट्रेट—मात्रा ५ से १० ग्रेन।

(११) फ़ैरी एट क्युनीन साइट्रेट—मात्रा ५ से १० ग्रेन।

फॉस्फोरस—पौष्टिक। नपुंसकता रोग में उपयोगी है। यह हवा में रखने से जलने लगती है, इसलिये इसको पानी में रखते हैं। दियासलाई बनाने के काम आती है। फॉस्फोरस का उपयोग मस्तिष्क की और उत्पादक अंगों की निर्बलता में किया जाता है।

बनावट—(१) एसिड फ़ास्फोरिक डाइल्यूट—मात्रा ५ से २० बूँद। (२) सिरप हाइपो फ़ॉस्फेट कम्पाउण्ड है। मात्रा आधा से २ ड्राम। (३) फॉस्फोरस की गोलियाँ (४) ओलियम फॉस्फेरी, मात्रा १ से ५ बूँद। ४ औंस बादाम के तेल को गरम करके ठण्डा कर लेना चाहिये। इसमें १६ ग्रेन फॉस्फोरस मिलाकर बोतल को गरम पानी में रखना चाहिये। इसको हिलाते जाना चाहिये। मधु-प्रमेह में भी इसका उपयोग होता है। इससे प्यास कम होती है।

एसिड फॉस्फोरेक डाइल्युट १५ बूँद एक्सट्रैक्ट डैमियाना लिकिड ३० बूँद, लाइकर स्ट्रिकनीन ५ बूँद, सीरप औरन्साई २० बूँद, वाइनम औरन्साई ४ ड्राम, पानी १ औंस, क्लीवता के लिये उपयोगी है।

बिस्मथ—गुण-ग्राही और शीतल है। शीतल गुण के कारण वमन को और ग्राही के लिये अजीर्ण, अतिसार, रक्तपित्त, अम्लपित्त में बरतते हैं। यह आमाशय और आँतों की श्लेष्मकला को शान्ति देता है। आमाशय के विक्षोभ में, वमन में, अजीर्ण में उपयोगी है।

बनावट—बिस्मथ सब नाईट्रास—५ से २० ग्रेन, (२) बिस्मथ अमो-

नियम साइट्रेट (लाइकर) ३० से ६० बूंद, (३) कारबोनेट आफ बिस्मथ, मात्रा ५ से २० ग्रेन। (४) बिस्मथ सैलिसिलेट—मात्रा ५ से २० ग्रेन। बिस्मथ सबगॉल—जन्तुघ्न है। मात्रा ४ से ८ ग्रेन।

बोरिक एसिड—गुण—रोपण है। व्रणों पर इसका उपयोग प्रसिद्ध है। इसको आयडोफार्म के साथ मिलाकर काम में लाते हैं। आँख के रोगों में इसका लोशन काम में आता है।

बोरैक्स—मूत्रल, शीतल तथा ऋतु-स्रावक है। बोरेक्स—(२) ऋतु लाता है, अधिक मात्रा में लेने से गर्भपात करता है। मूत्र की वृद्धि करता है। मुँह और गले के रोगों में गरारे किये जाते हैं। मुख पाक में इसको शहद में मिलाकर लगाते हैं।

बनावट—(१) मल बोरोसिस—टंकण ६० ग्रेन, ग्लीसरीन ½ ड्राम और मधु १ औन्स (२) ग्लीसरीन ऑफ बोरैक्स—टंकण १ औन्स, ग्लीसरीन ४ औंस, पानी २ औंस, मुखपाक आदि में उपयोगी है।

मैगनेसियम एप्सम सॉल्ट—गुण—रेचक, मूत्रल और अम्ल-विरोधी है। ज्वर के प्रारम्भ में पेट साफ़ करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। पेट की खटाई को कम करता है। इसका विरेचन ठण्डा और हल्का है। इस दवाई के स्वाद के लिये पीपरमेंट, डाईल्यूट सल्फ्युरिक एसिड के थोड़े बूँदों को मिला देने से स्वाद अच्छा हो जाता है। मात्रा २ से ४ ड्राम। मूत्रल विधि में ३० से ६० ग्रेन।

लैक्टिक एसिड—मूत्र पिण्ड के रोगों में बरता जाता है। डिप्थीरिया आदि रोगों में भी बरता जाता है। इसको आठ गुणा पानी में मिलाकर गले में लगाने से लाभ होता है। मात्रा—डाइल्युट लैक्टिक एसिड—१५ से ३० बूँद।

लीथिया—गुण—मूत्रल, अश्मरी दर, शीतल है।

बनावट—(१) कारबोनेट ऑफ लीथिया। मात्रा—२ से ५ ग्रेन, (२) साइट्रेट ऑफ लीथिया ५ से १० ग्रेन, (३) साइट्रेट ऑफ लिथिया एफर-वैसन्स ६० से १२० ग्रेन। इसका उपयोग शर्करा निकालने के काम आता है।

सल्फर—गुण—शोधक, कृमिघ्न, जन्तुघ्न, कफघ्न और रेचक है।

बनावट—सल्फर सब्लाइम। मात्रा—२० से ६० ग्रेन। (२) कनफैक्शन

ऑफ सल्फर, ६० से १२० ग्रेन । (३) गन्धक का मलहम, अन्दर लेने के लिये गन्धक की मात्रा ३० से ६० ग्रेन ।

सल्फ्युरिक एसिड—गुण—दीपन, पाचन, ग्राही, पौष्टिक, तृषा, शामक, (१) एसिड सल्फ्युरिक एरोमैटिक। मात्रा ५ से २० बूँद (२) डाईल्यूट सल्फ्युरिक एसिड, ५ से २० बूँद ।

उपयोग—ज्वरघ्न, तृषा-शामक है ।

सल्फोनल—स्नायु शैथिल्यकृत, पीड़ाशामक, निद्राकारक है । यह अनिद्रा-रोग में, जब पीड़ा हो रही हो, मस्तिष्क के रोग में, मधु-प्रमेह में, उन्माद में बरता जाता है । मात्रा—१० से ३० ग्रेन, सल्फोनल शान्ति-पूर्वक नींद लाता है; अफीम बेचैनी उत्पन्न करती है, क्लोरल हाईड्रास हृदय की गति को बन्द करता है ।

स्पिट वाइनम गैलीसाई—गुण—उष्ण, उत्तेजक, पाष्टिक, मादक है । ब्राण्डी उत्तेजक, मादक और बड़ी मात्रा में विषैली है । रोगी यदि ठण्डा हो रहा हो, हृदय-गति निर्बल हो, उस समय इसका उपयोग करना चाहिये । अनार्य चिकित्सा की यह औषधि 'हिरण्यगर्भ' की मात्रा है । प्रसव के पीछे जब शरीर निर्बल हो जाय तब इसका उपयोग करना उत्तम है । इसका बाह्य उपयोग भी होता है । यथा—गिर पड़ने पर इसका उपयोग करना उत्तम है । पीने की मात्रा—आधा से २ औन्स ।

सैलसीन—स्वेदक, मूत्रल, जन्तुघ्न, रोपण है ।

बनावट—सैलिसिलिक एसिड ५ से २० ग्रेन । (२) सोडियम सैलिसिलेट १० से ३० ग्रेन । यह दवा रक्त के अन्दर की अम्लता को कम करती है । ज्वर, संधिवात, गठिया, आदि रोगों में विशेष रूप से बरता जाता है । सैलिसिलिक एसिड का लोशन और प्रलेप बनता है । पुराने त्वचा-रोगों में विशेष उपयोगी है । इसको रिसॉरसीन, नैपथोल और बीटा आदि कृमिघ्न वस्तुओं के साथ मिलाकर बरतना चाहिये ।

सैलोल—दुर्गन्धनाशक और शामक है ॥ इसको जन्तुनाशक और दुर्गन्धनाशक गुण के लिये बरता जाता है । इसलिये अतिसार, टाईफाईड, मरोड़ा, प्रवाहिका, आमाशय क्षत में उपयोगी है । मात्रा ५ से १५ ग्रेन ।

सोडियम—इसकी बनावटें निम्न प्रकार हैं—

(१) लाइकर सोडियम—१० से २० बूँद । गुण—शोधक, मूत्रल

और अम्लविरोधी है। (२) कास्टिक सोडा—दाहक होने से व्रणों में और मस्सों पर उपयोगी होता है। (३) कार्बोनेट आफ सोडियम—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। रक्तशोधक और अम्लविरोधी है। (४) बाई कार्बोनेट आफ सोडियम—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। शोधक दीपन, पाचन और वातहर है। (५) सल्फेट आफ सोडियम—२ से ४ ड्राम। शोधक, मूत्रल, रेचक और अम्लविरोधी। (६) फास्फेट आफ सोडियम—२ से ४ ड्राम। रेचक, यकृत के लिये उपयोगी, मूत्रल। (७) सोडियम हाईपोफास्फेट—३ से १० ग्रेन रक्तशोधक पौष्टिक। (८) सोडियम क्लोराइड—रक्तशोधक, उष्ण, अग्नि-वर्धक, वामक। (९) सोडियम ब्रोमाइड—५ से २० ग्रेन। रक्तशोधक, कफघ्न, निद्राकारक। (१०) आयोडाइट आफ सोडियम—५ से २० ग्रेन। पोटाश आयोडाइड के समान कफघ्न, रक्तशोधक।

हाईड्रार्जराई (पारा-मर्करी)—गुण—रक्तशोधक, रेचक, रक्त की गाँठों को साफ करनेवाला, पित्तस्रावक है।

बनावट—(१) पिल हाईड्रार्जराई (ब्ल्युपिल) पारा २ औंस, गुल-कन्द ३ औंस, मुलहठी १ औंस, मात्रा ४ से ८ ग्रेन (२) हाईड्रार्जराई कम क्रीटा (ग्रे पाउडर) मात्रा १ से ५ ग्रेन (३) परक्लोराईड आफ मर्करी—मात्रा $\frac{1}{32}$ से $\frac{1}{16}$ ग्रेन। (४) इसका प्रवाही लाइकर हाइड्रार्जराई पर क्लो-राइड—आधा से १ ड्राम। इसका प्राय: लोशन बरता जाता है, जो (१ : १००० या २००० अथवा ५००) भिन्न-भिन्न ताकत का बनाकर भिन्न-भिन्न कामों में आता है। इसके क्षार से व्रण धोये जाते हैं।

हाइड्रोक्लोरिक एसिड (म्युरेटिक एसिड)—रक्तशोधक, पौष्टिक, भूख लगानेवाला, अजीर्ण में उपयोगी है। इसके ८ भाग में १८$\frac{1}{2}$ भाग पानी मिलाने से डाइल्युट होजाता है। इसकी मात्रा ५ से २० बूँद है। भूख न लगने पर भोजन से १५-२० मिनट पूर्व देना चाहिये।

हाइड्रोस्यनिक एसिड—गुण—पीड़ाशामक और कृमिघ्न है। यह तीव्र विष है। इसका डाईल्युट रूप अजीर्ण, वमन, आमाशय-विक्षोभ और त्वचा के विक्षोभ में काम आता है। जहाँ पर त्वचा फटी हो वहाँ पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। इसकी ४० बूँद आदमी को तुरन्त मार सकती है। डाइल्युट हाईड्रोस्यिनिक एसिड की मात्रा २ से ५ बूँद है। इसकी बना-वट एक्वा ल्युरोसी है।

प्राणी-वर्ग की औषधियाँ

कैन्थरेडिस—(विषैली मक्षिका)—गुण—मूत्रल, दाहक, उष्ण, कामोत्तेजक।

बनावट—(१) ओलियम कैन्थरेडिस (२) टिंचर कैन्थरेडिस (३) एम्प्लास्ट्रम कैन्थरेडिस। इसका उपयोग स्थानिक रक्त-संचार बढ़ाने में होता है। जैसे बालों को उत्पादन-शक्ति को बढ़ाने के लिये, शिश्न पर लगाने के लिये अथवा छाला उठाने में इसका उपयोग होता है।

ऑग्ज़ीमल—गुण—शीतल और कफघ्न है।

बनावट—शहद ८ औंस, एसिड ऐसेटिक १ औंस, पानी १ औंस। मात्रा १ से २ ड्राम। कास में उपयोगी है। यह यूनानी शिकंजबीन से मिलती है।

कॉड लिवर ऑयल—"कॉड" नाम की मछली में से यह तेल निकलता है।

गुण—पौष्टिक, क्षय तथा अन्य निर्बलताओं में बरता जाता है। इसका अन्तः और बाहर दोनों प्रकार से उपयोग होता है। यह पचने में भारी है। इसका स्वाद खराब होता है। बाज़ार में एमलशन के रूप में भी मिलता है।

पैंपसीन—दीपन, पाचन, अग्निवर्धक है। मात्रा २ से ५ ग्रेन। इससे पैपसीन वाइन बनती है। मात्रा १ से २ ड्राम। आमाशय या यकृत की निर्बलता में इसका उपयोग होता है। भोजन लेने के पीछे वाइनम का लेना अच्छा है। निरामिष भोजियों के लिये इसका स्थानापन्न "पैपीन" है। इसका भी वही गुण है।

मलहम (आयंटमैण्ट)

अगैंटम सिम्पल—श्वेत मोम २ औंस, चरबी ३ औंस, बादाम का तेल ३ औंस। इनके गरम पानी में रखकर मिलाना चाहिये। इनके पात्र के गरम पानी की पतीली में रखना चाहिये। सीधा आग पर रखकर गरम नहीं करना चाहिये।

अगैंटम आयोडीन—आयोडीन ३२ ग्रेन, पोटेशियम आयोडाईड ३२ ग्रेन, ग्लैसरीन १ औंस, प्रिपेयर्ड लार्ड २ औंस।

अं० आयडोफ़ार्म—आयडोफ़ार्म १ औंस, बैंज़ोयेटिड लॉर्ड ९ औंस।

अं० एसिड कार्बोलिक—कार्बोलिक एसिड ६० ग्रेन, नरम पैराफ़ीन ७२० ग्रेन, हार्ड पैराफ़ीन ३६० ग्रेन।

अं० कैन्थेरेडिस—कैन्थेरेडिस १ औंस, पीला मोम १ औंस, आलिव ऑयल ६ औंस।

अं० क्रियोज़ोट—क्रियोज़ोट १ ड्राम, सादा मलहम १ औंस।

अं० गैलिक—गॉल का चूर्ण ८० ग्रेन, बैंज़ोयेटिड लॉर्ड १ औंस।

अं० गॉल एण्ड ओपियम—अं० गैलिक १ औंस, अफ़ीम ३२ ग्रेन।

उपयोग—अर्श रोग में।

अं० प्लम्बाई एसिटास—श्युगर लेड १२ ग्रेन, बैंज़ोएटिड लॉर्ड १ औंस।

अं० पीसीस—पीसीस ५ औंस, पीला मोम २ औंस।

अं० रेड आयोडाईड ऑफ मर्करी—रेड आयोडाईड ऑफ मर्करी १६ ग्रेन, सादा मलहम १ औंस।

अं० रेड ऑक्साइड ऑफ़ मर्करी—रेड ऑक्साइड ऑफ़ मर्करी ६२ ग्रेन, हार्ड पैराफ़ीन २ ड्राम, सॉफ़्ट पैराफ़ीन ६ औंस।

अं० रैज़ोनी (राल का मलहम)—राल ८ औंस, पीला मोम ४ औंस, सादा मलहम १६ औंस, बादाम का तेल २ औंस।

अं० बैलेडोना—अल्कोहलिक एक्सट्रैक्ट ऑफ बैलेडोना ५० ग्रेन, बैंजोइटेड लॉर्ड १ औंस।

अं० सल्फ्यूरस (गन्धक का मलहम)—गन्धक १ औंस, बैंजो-इटेड लॉर्ड ४ औंस।

अ० सैलिसिलिक एसिड—सैलिसिलिक एसिड ६० ग्रेन, सॉफ्ट पैराफीन १०८० ग्रेन, हार्ड पैराफीन ५४०।

अं० यूक्लिप्टी—यूक्लिप्टस ऑयल १ औंस, सॉफ्ट पैराफीन २ औंस, हार्ड पैराफीन २ औंस।

अं० हाइड्राजेराई (ब्लु आइंटमैंएट)—पारा १ पौंड, प्रिपेर्ड लॉर्ड १ पौंड, प्रिपेर्ड स्वेट १ औंस। जब तक पारे की चमक नष्ट न हो, तब तक रगड़ते रहना चाहिये।

अं० हाइड्राजेराई कम्पाउण्ड—पारा का मलहम ६ औंस, पीला मोम ३ औंस, ऑलिव ऑयल ३ औंस, कपूर १॥ औंस। मोम को गरम करके इसमें ऑलिव ऑयल मिलाना चाहिये। पीछे पारे का मलहम और कपूर मिलाना चाहिये।

अं० टेरिबिन्थिनी (टरपैण्टाइन का मलहम)—टरपैण्टाइन १ औंस, राल ५४ ग्रेन, पीलामोम ½ औंस, प्रीपेर्ड लॉर्ड ½ औंस।

अं० ज़िङ्की (जस्त का मलहम)—जिङ्क ऑक्साइड ८० ग्रेन, बैंजोएटिड लॉर्ड १ औंस।

लिनीमैण्ट—मालिश का तेल

लिनीमैण्ट एकोनाइट—बछनाग का चूर्ण १७ औंस, कपूर १ औंस, रैक्टीफाइड स्प्रिट २० औंस। सबको मिलाकर ७ दिन तक रखना चाहिये। पीछे से छान लेना चाहिये।

लि० एमोनिया—लाइकर एमोनिया १ औंस, ऑलिव ऑयल या अलसी का तेल ३ औंस।

ली० ओपिआई—टिंचर ओपिआई २ औंस, लिनीमैण्ट ऑफ सोप २ औंस।

लि० आयोडाइड—पोटाशियम आयोडाइड ४ ड्राम, आयोडीन १। औंस, ग्लैसरीन २ ड्राम, रैक्टीफाईड स्प्रिट १० औंस।

लि० कैल्सिस (चूने का लिनीमैंट)—लाइम वाटर दो औंस, ऑलिव ऑयल २ औंस।

लि० कैम्फ़र—कपूर १ औंस, ओलिव ऑयल ४ औंस।

लि० कैम्फ़र कम्पाउण्ड-- कपूर २॥ औंस, लैवण्डर तेल १ ड्राम, स्ट्रॉंग लाइकर अमोनिया ५ औंस और रैक्टीफाइड स्प्रिट १५ औंस।

लि०कैरोन—चूने का पानी ५ औंस, अलसी का तेल ५ औंस।

लि० क्लोरोफ़ार्म— क्लोरोफ़ार्म २ औन्स, लिनिमैण्ट कैम्फ़र २ औंस।

लि० क्रोटोनीस—जमालगोटे का तेल १ औन्स, कैजुपुटी ऑयल ३॥ औन्स, रैक्टीफाइड स्प्रिट ३॥ औन्स।

लि० टैरीबैन्थीन—कम्पाउण्ड टरपैण्टाइन ४ औन्स, एसिड एसिटिक १ औन्स, लिनीमैण्ट कैम्फर ४ औन्स।

लि० बैलेडोना—बैलेडोना की जड़ २० औन्स, कपूर १ औन्स, रैक्टीफ़ाइड स्प्रिट इतनी कि मिलकर ३० औन्स हो जाये।

लि० हाइड्राजेराई— पारे का मलहम १ औन्स, लाइकर एमोनिया १ औन्स, लीनीमैण्ट कैम्फर १ औन्स।

लि० सैपोनिस– साबुन २ औन्स, कपूर १ औन्स, रोजमरी का तेल ३ ड्राम, रैक्टीफ़ाइड स्प्रिट १६ औन्स।

प्लास्टर—लेप

एम्प्लास्ट्रम हाइड्राजेराई एमोनैटा—अमोनिया १२ औन्स, मर्करी ३ औन्स, अलसी का तेल १ ड्राम, गन्धक ८ ग्रेन।

ए० ओपियम—अफ़ीम का चूर्ण १ औन्स, राल का प्लास्टर ९ औन्स गरम पानी में मिलाना चाहिये।

ए० कैन्थरिडस—कैन्थरिडस का चूर्ण १० औन्स, पीला मोम ७॥ औन्स, चरबी का चूर्ण ७॥ औन्स, राल का चूर्ण ३ औन्स, प्रिपैर्ड लॉर्ड ६ औन्स।

ए० प्लम्बाइ आयोडाइड– प्लम्बाई आयोडाइड २ औन्स, लेड प्लास्टर १ पौंड, राल २ औन्स।

ए० रैज़ीन—राल का चूर्ण ४ औंस, लेड प्लास्टर २ पौंड, कार्ड सोप २ औंस।

ए० बैलेडोना—अल्कोहलिक एक्सट्रैक्ट ऑफ़ बैलेडोना ४ औंस, रैज़ीन प्लास्टर ८ औंस, सोप सास्टर ८० औंस। गुमडों को पकाने के लिये या बैठाने के लिये प्राय: बरता जाता है।

ए० सोप—कार्ड सोप ६ औंस, लेड प्लास्टर २। पौंड, राल १ औंस।

ए० हाइड्रार्जराई—पारा ३ औंस, ऑलिव ऑयल ५६ ग्रेन, गन्धक ८ ग्रेन, लेड प्लास्टर ६ औंस।

ए० मस्टर्ड—राई २½ औंस, अलसी २½ औंस, पानी ८ औंस, ठंडा पानी २ औंस। प्रथम अलसी के गरम पानी में और राई के ठंडे पानी में मिलाकर दोनों के मिलाना चाहिये।

लोशन—धोने का पानी

फिटकरी का लोशन—फिटकरी २० ग्रेन, डिस्टिल्ड वाटर ८ औंस। आँख, कान, मूत्र-मार्ग के धोने के लिये उपयोगी है। सूज़ाक में भी उपयोगी है।

ज़िंक लोशन—सल्फेट ऑफ जिंक ८ ग्रेन, पानी ८ औंस। आँख दुखने मे और सूज़ाक में बरता जाता है।

बाई कार्बोनेट ऑफ सोडा—१ ड्राम, पानी ८ औंस। खाज, कण्डु तथा अन्य चमड़े के रोगों में उपयोगी है।

कार्बोलिक लोशन—कार्बोलिक एसिड १ औंस, पानी ४० औंस। व्रणों के धोने के लिये उपयोगी है।

परक्लोराईड ऑफ मर्करी—रसकपूर १८ ग्रेन, लाइम वाटर १० औन्स या १ भाग रसकपूर, १००० से २००० भाग पानी।

हाइड्रार्जराई नीग्रा (ब्लैक वाश)—कैलोमल ३० ग्रेन, लाइम वाटर १० औंस—उपदंश के रोगों में उपयोगी है।

बोरेक्स लोशन—टंकण १ से २ ड्राम, ग्लैसरीन १० ड्राम, कपूर का पानी ८ औंस—खाज के धोने के लिए।

ज़िंक तथा एलम लोशन—सल्फ़ेट ऑफ ज़िंक २० ग्रेन, एलम ४० ग्रेन, ग्लैसरीन १ ड्राम, गुलाब का जल ८ औंस। खाज, दाह, जलन में उपयोगी है।

हाईपोसल्फ़ेट ऑफ़ सोडा—हाइड्रार्जराई सल्फ़ेट ऑफ़ सोडा २ से ४ ड्राम, ग्लैसरीन २ ड्राम, पानी ८ औन्स। कण्डू आदि के लिये उपयोगी है।

सल्फ़र लोशन—गन्धक २ ड्राम से ४ ड्राम, रैक्टीफ़ाइड स्प्रिट २ ड्राम, ग्लैसरीन १ ड्राम, लाइम वाटर २ औन्स, गुलाबजल ८ औन्स। खाज के ऊपर रात्रि में लगाकर प्रातः धोना चाहिये।

अँग्रेज़ी दवाइयों के साधारण गुण

Alteratives	रक्तशोधक दवाइयाँ	Disinfectants	दुर्गन्धनाशक
Anodyne	पीड़ाशामक	Emetics	वामक
Antacids	अम्लविरोधी	Emmenagogues	ऋतु लानेवाली
Anthelmintics	कृमिघ्न दवाइयाँ	Emmollients	त्वचा को नर्म करनेवाली
Antiseptics	जन्तुनाशक दवाइयाँ	Expectorants	कफघ्न
Anti-psmodics	स्नायुशैथिल्य कृत	Hemostatics	रक्तस्तम्भक
Antiperiodics	आँतों के ज्वर को रोकनेवाली	Irritants	जलन पैदा करनेवाली
Antipyretics	ज्वरहर औषधियाँ	Laxatives	सारक, दस्त को साफ़ करनेवाली
Aphrodisiacs	कामोत्तेजक	Narcotics	निद्राकारक
Astringents	संग्राही दवाइयाँ	Refrigerants	ठंडक करनेवाली
Chalogogue	पित्तसारक	Rubefacients	त्वचा को लाल करनेवाली
Carminatives	वातहर	Sedatives	शामक
Cathartics	रेचक	Sudorific	पसीना लानेवाली
Caustics	दाहक	Sialagogue	लार लानेवाली
Diaphoratics	स्वेदक	Stimulents	उत्तेजक
Diuretics	मूत्रल दवाइयाँ	Stomachics	भूख लगानेवाली

अँग्रेज़ी नुस्खे

सारक तथा रेचक नुस्खे

Aperients & Purgatives

(१) पोडोफिलीन रेज़ीन ½ ग्रेन, कम्पाउण्ड रूबर्ब पिल २½ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ऑफ़ हाईसॉमस १½ ग्रेन मिलाकर एक गोली बनानी चाहिये। यह गोली रात्रि को लेनी चाहिये। यदि इसका प्रभाव भली प्रकार न हो तो प्रातःकाल साईट्रेट मैगनेशिया या एपैण्टा वाटर, अथवा सिडलिट्ज़ पाउडर प्रातःकाल लेना चाहिये। यह गोलियाँ प्रायः सब को अनुकूल होती हैं।

(२) सोडा सल्फ़ेट ४ ड्राम, टिंचर जिंजर १२ बूँद, पानी २ औन्स मिलाकर पीने से दस्त होता है।

(३) सोडा सल्फ़ेट ६ ड्राम, क्युनीन २० ग्रेन, सल्फ़ेट ऑफ़ आयर्न १५ ग्रेन, पानी ८ औन्स मिलाकर दो चाय के चम्मच प्रत्येक चार घण्टे के अन्तर से लेने चाहिये। प्लीहा, नष्टार्त्तव में और केंचुवे के लिये हितकर है।

(४) सोडियम सल्फ़ेट ६ ड्राम, सल्फ़्युरिक एसिड डाईल्यूट १ ड्राम, गुलाब के फूल की चाय ८ औन्स मिलाकर एक-एक औन्स की मात्रा में लेना चाहिये। गर्भपात, रक्तप्रदर, नकसीर, रक्तस्राव में उपयोगी है।

(५) मेगनेशियम सल्फ़ेट ६ ड्राम, टिंचर डिजीटेलिस ८ बूँद, कैम्फ़र मिक्सचर दो औन्स मलबन्ध के साथ यदि दमे का आ मण हो तो उसमें उपयोगी है।

(६) मैगनेशियम बाई कार्ब १० ग्रेन, सोडियम बाई कार्ब ८ ग्रेन, इन्फ्यूज़न सेना १ औन्स। अम्लपित्त में उपयोगी है, यकृत के लिये भी अच्छा है।

(७) इयोनीमन १२ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हाईसैमिया १८ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट जैन्शन १८ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट बैलेडोना ३ ग्रेन मिलाकर १२ गोली बनानी चाहिये। यकृत के लिये उत्तम विरेचक है।

(८) ब्ल्यूपिल ५ ग्रेन, कैलोमल ५ ग्रेन मिलाकर दो गोली बनानी चाहिये। यह एक तीव्र विरेचक है।

(९) ब्ल्यूपिल ५ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड ५ ग्रेन मिलाकर दो गोली बनानी चाहिये। यह साधारण विरेचक है।

(१०) एक्सट्रैक्ट कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड ५ ग्रेन, कम्पाउण्ड रूबर्ब पिल ५ ग्रेन मिलाकर दो गोली बनानी चाहिये। साधारण विरेचक है।

(११) कैलोमल ५ ग्रेन, पल्व जैलपको १ ड्राम, एक तीव्र विरेचक है। जलोदर रोग में उपयोगी है।

(१२) पोडोफिलीन रेजीन १½ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट कोलोसिन्थ कम्पाउण्ड ३० ग्रेन, पल्व एपिकाक ४ ग्रेन, थोड़ा-सा गोंद का पानी मिलाकर १२ गोली बनानी चाहिये। एक-एक गोली दिन में दो बार, कलेजे के दर्द में, मलबंध में उपयोगी है।

(१३) पिल एलोज एट मर ३ ग्रेन, ब्लूपिल १ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ट्रैक्सीसाई २ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट स्टमोनियम ½ ग्रेन, मिलाकर दो गोली बनानी चाहिये। श्वास में उपयोगी।

(१४) सल्फेट ऑफ आयर्न २० ग्रेन, एक्सट्रैक्ट एलोज १५ ग्रेन, पल्व रुबर्ब २० ग्रेन, मिलाकर १२ गोली बनानी चाहिये। मलबन्ध के लिये और देर में ऋतु आने के लिये उपयोगी है।

(१५) रुबर्ब पाउडर १ औंस, जिंजर पाउडर ½ औंस, मैगनेशियम कार्बोनेट ३ औंस, इसको 'पल्व ग्रिहाई कम्पाउण्ड' भी कहते हैं। मात्रा ½ से १ ड्राम। अजीर्ण, खट्टी डकारों में पिपरमेंट के पानी के साथ बच्चों को देना चाहिये। मात्रा १० ग्रेन देने से जुलाब होता है।

रक्तशोधक

(Alteratives)

ये वे औषधियाँ हैं, जो रक्त की अवस्था को बदल देती हैं, अथवा मूत्रपिण्ड, यकृत और आँतों के स्राव में परिवर्त्तन कर देती हैं।

(१६) डोवर्स पाउडर १० ग्रेन, क्युनीन ३ ग्रेन, पल्व एपिकाक १ ग्रेन, मिलाकर पाउडर बनाना चाहिये। प्रवाहिका और अतिसार में उपयोगी है। रात्रि के समय लेना चाहिये।

(१७) पोटाशियम ब्रोमाइड १ ड्राम, पानी डिस्टिल्ड ६ औंस, इसका एक-एक औंस, वात-जन्य रोगों में दिन में तीन बार लेना चाहिये।

(१८) डोवर्स पाउडर २ ग्रेन, क्युनीन १ ग्रेन, २ साल के बच्चे के

लिये एक पुड़िया प्रातः और १ पुड़िया शाम को देनी चाहिये। एक साल के बच्चे के लिये ½ मात्रा और ६ महीने के लिये ¼ मात्रा है।

(१९) पोटाशियम ब्रोमाइड ½ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई ½ ड्राम, श्वेत शर्करा १ ड्राम, पानी १½ औंस, मिलाकर मिश्रण बनाना चाहिये। बच्चों के आक्षेपों में और वातजन्य दर्दों में उपयोगी है। एक या दो साल के बच्चे के लिये एक छोटा चम्मच प्रत्येक दूसरे घंटे में देना चाहिये।

(२०) पोटाशियम आयोडाइड १ ड्राम, पानी ८ औंस, एक औंस की मात्रा दिन में तीन बार लेनी चाहिये। उपदंश जन्य रोगों के लिये उपयोगी है।

(२१) मैगनेशिया बाई कार्ब १५ ग्रेन, ऑयल ऑफ एनेसी २ बूँद, पानी १½ औंस, पेट में वायु भरा हो, तो इसके लिये उपयोगी है। गर्भावस्था में भी उपयोगी है।

(२२) कैलोमल २ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट अफीम ¼ ग्रेन, एक गोली बनानी चाहिये। शरीर में जब पारा की क्रिया अभीष्ठ हो, उस समय देनी चाहिये।

(२३) ब्लू पिल २ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ओपियाई ¼ ग्रेन, पल्व एपिकाक ¼ ग्रेन, प्रवाहिका और अतिसार में उपयोगी है।

(२४) पाउडर रुबर्ब २० ग्रेन, सोडा सल्फेट २० ग्रेन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ३० बूँद, ऑयल ऑफ पिपरमेंट १ बूँद, पानी २ औंस, अम्ल-पित्त और गर्भावस्था की बेचैनी में उत्तम है।

(२५) लाईकर पोटाश १ ड्राम, पानी छः औंस तथा—टिंचर हाईसोमस ६ औंस, टिंचर सिंकोना २ ड्राम, इनफ्यूजन बकु ६ औंस, इन दोनों को अलग-अलग बनाकर पीने के समय मिलाना चाहिये। मूत्राशय के विक्षोभ के लिये उत्तम है। साधारणतः हाईसोमस और अफीम आदि क्षार से नहीं मिलाये जाते।

(२६) सोडा बाई कार्ब १ ड्राम, पानी ६ औंस तथा टिंचर हाईसोमस २ ड्राम, ऐकोनाइट का काढ़ा ६ औंस, दोनों अलग-अलग घोलकर पीने के समय मिलाना चाहिये। मूत्राशय के पुरातन रोग में लाभदायक है।

(२७) सोडा बाई कार्बोनेट २ ड्राम, वाइनम कोलचीकम २ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई २ ड्राम और पानी ८ औंस। संधिवात और आम-वात के लिये उपयोगी।

(२८) एसिड बैंजोइक १ ड्राम, एमोनिया कार्ब १ ड्राम, पानी ८ औंस, एक-एक औंस की मात्रा, दिन में तीन बार पीनी चाहिये। पुरातन मूत्राशय शोथ, मूत्रमार्ग के रोगों में उपयोगी है।

(२९) एक्सट्रैक्ट ट्रैक्सीसाई २ ड्राम, एसिड हाइड्रोक्लोरिक डिल १ ड्राम, इन्फ्यूजन जैंशन ८ औंस, १ औंस की मात्रा दिन में तीन बार लेनी चाहिये। कामला और यकृत रोग में उपयोगी है।

(३०) सोडा बाई कार्ब २ ड्राम, टिंचर रुबर्ब ½ औन्स, टिंचर जिंजर १ ड्राम, स्प्रिट क्लोरोफार्म १ ड्राम, पानी ६ औन्स। १ औन्स की मात्रा दिन में तीन बार। कामला में उपयोगी है।

(३१) एसिड नाइट्रिक डिल १ ड्राम, एसिड हाइड्रोक्लोरिक डिल १ ड्राम, टिंचर जिंजर १ ड्राम, पानी ८ औंस, मात्रा १ औन्स। दिन में तीन बार। यकृत रोग, अजीर्ण और प्रवाहिका में उपयोगी है।

(३२) पोटाशियम बाई कार्बोनेट १॥ ड्राम, पानी ८ औंस ज्वर में और मूत्र रोग में उपयोगी है। त्वचा के बाह्य रोगों में इसका लोशन बरता जाता है। मात्रा १ औंस।

(३३) झागदार दवाइयाँ—

(क) २० ग्रेन पोटाशियमबाईकार्ब को २ औंस पानी में घोलकर पीते समय इसमें १४ ग्रेन साइट्रिक एसिड मिलाना चाहिये।

(ख) १७ ग्रेन सोडा बाई कार्ब २ औन्स पानी में घोलकर १० ग्रेन साइट्रिक एसिड पीते समय मिलाना चाहिये।

उपयोग—अम्लपित्त में।

(ग) २ ड्राम सोडा बाई कार्ब, आठ औंस पानी में घोलकर रखना चाहिये। दूसरे गिलास में १ ड्राम टार्टरिक एसिड चार औंस पानी में मिलाकर रखना चाहिये। पीते समय प्रथम गिलास में से चार ड्राम लेकर मिलाकर पीना चाहिये। यह ज्वर में और गर्भावस्था के रोगों में उपयोगी है।

(घ) ग वाले मिश्रणों में २० बूँद स्प्रिट क्लोरोफार्म मिलाकर पीते समय हिलाकर लेना चाहिये। गर्भावस्था-कालीन रोगों में उपयोगी है।

(३४) पोटाश बाई कार्ब २ ड्राम, पोटाशियम नाइट्रेट ३० ग्रेन, टिंचर जिंजर १ ड्राम, पानी ८ औंस, १ औंस की मात्रा में लेना चाहिये।

अजीर्ण या आमवात में जब मूत्र गँदला और गहरा पीला आता है।

सूचना—एसिडवाली दवाइयाँ लेने के पीछे मुँह को अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये।

स्नायु शैथिल्यकृत और शामक

(३५) टिंचर जिंजर स्ट्रॉग १ ड्राम। स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई १ ड्राम, ब्रांडी १ औन्स। १ ड्राम की मात्रा को एक गिलास पानी में मिलाकर प्रत्येक घंटे के अन्तर से देना चाहिये। ६ महीने के बच्चे के लिये ३ या ४ बूँद। यह दवा मज़बूत काग लगाकर रखनी चाहिये।

उपयोग—अतिसार और हैज़े में।

(३६) स्प्रिट क्लोरोफार्म १ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १ ड्राम, क्लोरोडीन १ ड्राम, ब्रांडी १ औन्स नम्बर ३५ की भाँति व्यवहार करना चाहिये।

(३७) क्रीटा प्रिपरेटा १ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक २ ड्राम, टिंचर ओपियाई ४० बूँद, कैम्फर मिक्सचर ८ औंस। मात्रा—१ औन्स। अतिसार और अजीर्ण के लिये उपयोगी है।

(३८) एक्सट्रैक्ट कोनायम ३ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट इण्डियन हैम्प ½ ग्रेन, कैम्फर १ ग्रेन। एक गोली बनानी चाहिये। श्वास-रोग में उपयोगी है।

संकोचक

Astringents

ये औषधियाँ स्रावों को कम करती हैं, और बाहर त्वचा पर लगाने से रक्तवाहिनियों के मुखों को बन्द कर देती हैं।

(३९) फिटकरी का चूर्ण १ ड्राम, पानी ८ औन्स। १ औन्स की मात्रा। गर्भपात, रक्तप्रदर प्रवाहिका में उपयोगी है। बाहर भी लगा सकते हैं।

(४०) एसिड सल्फ्यूरिक डाईल्यूट २ ड्राम, टिंचर जिंजर १ ड्राम, पानी ८ औंस। मात्रा—१ औंस। प्रत्येक ४ घन्टे के अन्तर से। गर्भपात या फुप्फुस से होनेवाले रक्तस्राव में, अजीर्ण में उपयोगी है।

(४१) लेड एसिटेट ३ ग्रेन, टिंचर ओपियाई ५ बूँद। पानी १॥ औंस। आंत या फेफड़ों से होनेवाले रक्तस्राव के लिये उत्तम है। मात्रा—१ औंस। प्रत्येक ३ या ४ घंटे के अन्तर से लेना चाहिये।

(४२) सल्फ्युरिक एसिड डाईल्युट २५ बूँद, टिंचर ओपियाई ८ बूँद, पानी १ औन्स। रक्तस्राव के लिये, अतिसार या प्रवाहिका में उपयोगी है। ६ महीने के बच्चे के लिये ३० बूँद और १ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद मात्रा है।

(४३) गैलिक एसिड ५ ग्रेन, पानी २ औन्स। दिन में तीन बार लेना चाहिये। फेफड़े और आमाशय से होनेवाले रक्तस्राव में उपयोगी है। प्रवाहिका और अतिसार में भी व्यवहार कर सकते हैं।

(४४) लेड एसिटेट ३ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ओपियम ½ ग्रेन। एक गोली बनानी चाहिये। रक्तस्राव, प्रवाहिका और अतिसार में उपयोगी है।

(४५) पल्व क्रीटा एरोमैटिक कम ओपयाई ५ ग्रेन, सोडा बाई कार्ब १ ग्रेन, फिटकरी का चूर्ण १ ग्रेन। इसकी एक पुड़िया रात्रि को सोते समय और एक प्रातःकाल भी लेनी चाहिये। प्रवाहिका और अतिसार में उपयोगी है।

(४६) एसिड सल्फ्युरिक डाईल्युट २० बूँद, टिंचर केटेच्यु ४० बूँद, सीरप जिंजर २ ड्राम, पानी १० ड्राम। ६ महीने के बच्चे के लिये ३० बूँद मात्रा पर्याप्त है। ६० बूँद १ साल के बच्चे के लिये और २ ड्राम १॥ साल के लिये उपयोगी है। अतिसार और प्रवाहिका में।

स्वेदक और मूत्रल

जो औषधियाँ वृक्कों पर और मूत्रमार्ग पर प्रभाव करके मूत्र की राशि को बढ़ाती हैं, उनको मूत्रल कहते हैं; और जो दवाई त्वचा पर प्रभाव करके पसीना लाती हैं उनको स्वेदक कहते हैं। ये दवाइयाँ ज्वर उतारने के लिये प्रायः बरती जाती हैं।

(४७) पोटाशियम नाईट्रेट १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाईट्रोसाई ३ ड्राम, पानी ८ औन्स।

उच्च ताप परिमाण में प्रत्येक मात्रा और ५ ग्रेन एंटीपाइरीन को १ ड्राम ब्रांडी में घोलकर और पानी १ औन्स मिलाकर प्रत्येक ३ घंटे के अन्तर से देना चाहिये। जिस प्रकार ताप परिमाण घटे, उसी प्रकार मिश्रण की मात्रा भी कम कर देनी चाहिये।

उपयोग—ज्वर में, आमवात में और मूत्र बढ़ाने में।

(४८) स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई १ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक आधा ड्राम, वाइनम एपिकाक २० बूँद, पानी १॥ औन्स। ६ महीने के बच्चे के लिये प्रत्येक ३ घंटे के अन्तर से ६० बूँद देना चाहिये। ज्वर में विशेषत: जब त्वचा ख़ुश्क हो, यदि आमाशय में विक्षोभ हो तो वाइनम एपिकॉक को हटा देना चाहिये।

(४९) पोटाशियम नाईट्रेट ४० ग्रेन, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई २ ड्राम, टिंचर कैन्थरेडिस २ ड्राम, पानी ८ औन्स। मात्रा—१ औंस। प्रत्येक ३ घंटे के अन्तर से देना चाहिये। विसूचिका (हैज़े) में जब मूत्र सर्वथा न आता हो।

(५०) पोटाशियम नाइट्रेट ४० ग्रेन, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई २ ड्राम, वाइनम कौलचीकम १ ड्राम और पानी ८ औन्स। १ औन्स की मात्रा ३ घंटे के अन्तर से आमवात में देनी चाहिये।

वमन लानेवाली

Emetics

क़ै लानेवाला औषधियाँ वे हैं, जो आमाशय को संकुचित करके उसके अन्दर की वस्तु को अन्न-प्रणाली तथा मुखमार्ग से बाहर कर देती हैं। प्राय: जो वस्तुयें काम में आती हैं वे ये हैं—मस्टर्ड (राई), नमक, टार्टार एमिटिक, वाइनम एपिकाक, ज़िंक सल्फेट। इनमें वाइनम एपिकाक सब से उत्तम वामक है। इसको बच्चों में भी बरत सकते हैं।

(५१) राई का चूर्ण चार ड्राम, नमक सेंधा ६० ग्रेन और पानी गरम १० से १२ औंस। रोगी को सब पिला देना चाहिये। यह दवाई ५ से ८ मिनट में प्रभाव करेगी। बच्चों के लिये ६० ग्रेन राई और १५ ग्रेन नमक तथा एक गिलास गरम पानी पर्याप्त है। वामक औषधि के साथ गरम पानी पर्याप्त मात्रा में बार-बार देना चाहिये। नमक के स्थान पर ज़िंक सल्फेट १० से ३० ग्रेन या कॉपर सल्फेट ५ से १० ग्रेन भी बरत सकते हैं।

श्लेष्मा-निःसारक

Expectorants

कफघ्न औषधियाँ वे हैं, जो श्वास-प्रणाली की श्लेष्म कला पर और कुछ अंशों में सारे शरीर पर प्रभाव करके श्लेष्मा को निकालने में सहायता करती हैं।

(५२) स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक २ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई ४ ड्राम, टिंचर जिंजर १ ड्राम और पानी ५½ औंस। मात्रा १ औन्स। प्रत्येक २ या ३ घन्टे के अन्तर से देना चाहिये। श्वास-मार्ग के आक्रमण और पुरातन-कास के लिये उत्तम है।

(५३) टिंचर कैम्फर को ३ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक २ ड्राम, पानी ८ औन्स। नम्बर (५२) की तरह उपयोगी है।

(५४) टिंचर कैम्फर को ३ ड्राम, वाइनम एपिकाक १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाईट्रोसाई ३ ड्राम और पानी ७ औंस। १ औन्स की मात्रा प्रत्येक ३ या ४ घंटे के अन्तर से सर्दी, प्रतिश्याय, फेफड़ों के आक्रान्त होने में और कास-रोग में उपयोगी है। बच्चों के लिये भी उपयोगी है। १ साल के बच्चे के लिये मात्रा १ ड्राम है।

(५५) कपूर (कैम्फर) १ ग्रेन, पल्व एपिकाक ३ ग्रेन, थोड़ी-सी गोंद के पानी के साथ एक गोली बनानी चाहिये। दमे के लिये प्रत्येक दो घन्टे के अन्तर से लेना चाहिये।

(५६) टार्टार एमेटिक १ ग्रेन, टिंचर कैम्फर को २ ड्राम, पानी गरम उबलता हुआ १२ औन्स। मिश्रण को ठण्डा होने देना चाहिये। १ औंस की मात्रा २ या ३ घण्टे के अन्तर से देनी चाहिये। कास, पार्श्वशूल, निमोनिया में उपयोगी है।

(५७) टिंचर कैम्फर को ३ ड्राम, वाइनम एपिकाक २ ड्राम, टिंचर सिल्ला १ ड्राम, पानी ८ औंस। मिश्रण बनाना चाहिये। मात्रा १ औंस। कास रोग में उपयोगी है। यदि अम्लपित्त और अजीर्ण के लक्षण हों तो ८ औंस पानी में ४० ग्रेन सोडा बाइ कार्ब घोलकर अलग रखना चाहिये। मात्रा १ औंस। इसको भी अन्तर से देना चाहिये। बच्चों के कास के लिये उत्तम है। १ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद की मात्रा है।

(५८) मैगनेशियम कार्बोनेट २५ ग्रेन, पिपरमेंट ऑयल २ बूँद और पानी १ औंस। १ या २ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद, दिन में ३ या चार बार देना चाहिये। पिलाने से पूर्व बोतल को भली प्रकार हिला लेना चाहिये।

(५९) जिंक सल्फेट २ ग्रेन, टिंचर कैम्फर को ६० बूँद, पानी १॥ औन्स १ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद मात्रा है। कुक्कर खाँसी (हुपिंग कफ) में उपयोगी है।

(६०) एक्सट्रैक्ट कोनियम ३ ग्रेन और पानी १॥ औंस। १ साल के बच्चे के लिये ६० बूँद मात्रा है। हुपिंग कफ में उपयोगी है। पिलाने से पूर्व बोतल हिला लेनी चाहिये।

निद्रा लानेवाली

जो दवाइयाँ दर्द को कम करके निद्रा लाती हैं, उनको 'निद्रालु' कहते हैं। इनमें मुख्य औषधियाँ अफीम, क्लोरल, मॉरफिया, पोटैशियम ब्रोमाइड हैं। बड़ी मात्रा में ये औषधियाँ विष हैं, इसलिये इनका उपयोग सावधानी से करना चाहिये।

(६१) क्लोरलहाइड्रेट २० ग्रेन और पानी १॥ औन्स। इसकी एक खुराक बनानी चाहिये।

(६३) मॉर्फिया हाईड्रोक्लोरेट $\frac{1}{2}$ ग्रेन, रैक्टीफाइड स्प्रिट १० बूँद और पानी १ औंस। जिस समय तेज निद्राकारक औषधि की आवश्यकता हो उस समय इसको बरतना चाहिये। क्योंकि यह आँतों को बन्द करता है। टैटेनस रोग में उपयोगी है।

शक्ति-वर्धक

ये औषधियाँ शरीर की निर्बलता में और रोग-जन्य कमजोरी में बरती जाती हैं। इनसे शरीर के अन्दर किसी भी प्रकार की उत्तेजना नहीं होती।

(६४) क्युनीन सल्फेट २० ग्रेन, शियरो वाईन २ औंस। पानी ८ औंस। मात्रा—१ औंस, दिन में ३ बार।

(६५) क्युनीन २४ ग्रेन, लैमन ज्यूस २ ड्राम और पानी ८ औन्स। मात्रा १ औन्स।

(६६) क्युनीन २० ग्रेन, डाइल्यूट सल्फ्युरिक एसिड १ ड्राम। टिंचर जिंजर २ ड्राम और पानी ८ औन्स। मात्रा—१ औन्स।

(६७) साईट्रेट आफ आयर्न एण्ड क्युनीन ४० ग्रेन और पानी ८ औन्स। १ औन्स की मात्रा प्रत्येक ३ या ४ घन्टे के अन्तर से लेनी चाहिये। एक साल के बच्चे के लिये २ ड्राम की मात्रा है। लोह युक्त औषधियाँ मल को काला कर देती हैं।

(६८) टिंचर ऑफ स्टील २ ड्राम और पानी ८ औन्स। मात्रा १ औन्स। दिन में तीन बार देना चाहिये। पाण्डु और निर्बलता के लिये उपयोगी है। जिन रोगियों का स्वभाव इस टिंचर ऑफ स्टील लेने का न हो, उनको "डाइल्युज्ड आयर्नकर" घोलकर देना चाहिये। अथवा कार्बोनेट ऑफ आयर्न को ५ से १० ग्रेन की मात्रा में पानी या पाउडर के रूप में खाना चाहिये।

(६९) सल्फेट ऑफ आयर्न १२ ग्रेन, डाइल्यूट सल्फ्युरिक एसिड एसिड १ ड्राम और पानी ६ औन्स। पाण्डु और निर्बलता के लिये उपयोगी है। मात्रा १ औन्स है।

(७०) आयर्न सल्फेट ९ ग्रेन, क्युनीन सल्फेट १२ ग्रेन, डाइल्यूट सल्फ्यूरिक एसिड १ ड्राम, सोडा सल्फेट १ औन्स, शरबत २ ड्राम, पानी १२ औन्स, कष्टार्त्तव में और मलबन्ध में उपयोगी है। मात्रा १ औन्स है। यकृत और प्लीहा के रोगों में उपयोगी है।

(७१) सीरप फैराई आयोडाइड विद स्ट्रिकनीन १ औन्स। इसके ३० बूँद दो औंस पानी में मिलाकर देना चाहिये।

(७२) लाइकर आर्सैनिकैलिस ४० बूँद और पानी ८ औंस। भोजन के पीछे १ औंस मात्रा में लेना चाहिये।

(७३) क्युनीन सल्फेट २४ ग्रेन, एसिड आर्सनिक ½ ग्रेन, कारबोलिक एसिड १½ ग्रेन, कपूर १½ ग्रेन, पाउडर कैप्सीयम ५ ग्रेन, गोंद के पानी के साथ १२ गोली बनानी चाहिये। एक गोली प्रातः और सायं लेनी चाहिये। प्रत्येक ३ या ४ घंटे के अन्तर से।

गरम उपचार

चोकर की पुल्टिस—सन या फलालेन की एक थैली आवश्यकतानुसार आकार की बनाकर उसको चोकर से भर देना चाहिये। उसपर गरम उबलता पानी गिराना चाहिये जिससे वह गीली हो जाये। इसको एक अंगोछे में रखकर थोड़ा-सा दबा देना चाहिये, जिससे अधिक गीलापन सूख जाये, फिर आवश्यक स्थान पर रखकर शुष्क वस्त्र से ढकदेना चाहिये। चोकर को थैली में ढीला भरना चाहिये।

रोटी के आटे की पुल्टिस—एक बर्त्तन में २० तोला उबलता हुआ पानी लेकर उसमें रोटी के टुकड़े इतने डाल देने चाहिये कि पानी की तह ढप जाये। फिर ५ मिनट तक इसी प्रकार रखकर पीछे से पानी को निकाल देना चाहिये। इन टुकड़ों को आवश्यक स्थान पर कपड़ा फैलाकर रख देना चाहिये। भारतवर्ष में आटे की पुल्टिस जो बनाई जाती है, वह भी यही काम देती है। नीम के पत्तों को उबालकर एक उत्तम पुल्टिस बनाई जा सकती है।

अलसी की पुल्टिस—अलसी की पुल्टिस आटे की भाँति बनती है। अलसी को कूटकर गरम पानी में मिलाकर हलवे जैसी होने पर पतले कपड़े पर बिछाकर लगानी चाहिये।

चारकोल की पुलटिस—सड़नेवाले व्रणों पर काम आती है। कोयले को बारीक पीसकर आटे या अलसी के साथ मिलाकर पुल्टिस बनाई जाती है।

पुल्टिस लगाने से पूर्व स्थान पर प्रलेप या तेल लगा लेना चाहिये, जिससे पुल्टिस त्वचा के साथ चिपटे नहीं। ठण्डी होने के पीछे इसको अवश्य उतार लेना चाहिये, क्योंकि तब यह हानिकारक हो जाती है।

सेक (गीला वाष्प स्वेद)—आवश्यक स्थान के आकार के फलालेन के दो चौहरे टुकड़े गरम पानी के अन्दर (जितने गरम पानी को रोगी सह सके) रखने चाहिये। रोगी के रुग्ण स्थान पर मोमजामा या अंगोछा रखकर फलालेन के एक टुकड़े को निकाल कर निचोड़ना चाहिये। और इसको उस स्थान पर रखकर ऊपर से अंगोछा ढाँप देना चाहिये। यह कपड़ा ठण्डा हो, इससे पूर्व दूसरा कपड़ा निचोड़कर रखना चाहिये। कपड़े को पानी में

गेरकर दूसरे को इस स्थान पर रख देना चाहिये। सेक के पीछे रोगी के रुग्ण प्रदेश को पूर्ण शुष्क कर देना चाहिये। कई बार सेक और पुलटिस के स्थान पर गरम पानी में भीगी हुई स्पंज को निचोड़कर रखना ही लाभदायक और उत्तम होता है।

पोस्त के डोंड का स्वेद—पोस्त के आधे दर्जन डोडों को दरकच करके बीजों समेत उबलते हुये पानी में डाल देना चाहिये। आधे घण्टे के पीछे इनको हिला देना चाहिये। यह पानी दर्द कम करने के लिये स्वेद या पुलटिस में साधारण पानी के स्थान में काम आता है।

शुष्क स्वेद—फलालैन की थैली या पोटली को रेत, चोकर, भूसी, नमक आदि से भरकर तवे पर गरम करके रुग्ण स्थान पर सेक करने से लाभ होता है।

ईंट या पत्थर का सेक—ईंट या पत्थर को आग में गरम करके उसके ऊपर पानी के छींटे देने चाहियें। जिससे इसके ऊपर की गरमी कम हो जाये। जब पानी गेरने से आवाज़ आनी बन्द हो जाये, तब इसको कपड़ों में लपेटकर रुग्ण स्थान पर रखना चाहिये। यह सेंक गम्भीर शोथ में गम्भीर दर्द में काम आता है। यथा नितम्ब के दर्द में।

शीतोपचार

उष्ण उपचार के द्वारा हम स्थानिक रक्त संचार को बढ़ाते हैं, और शीत उपचार की सहायता से हम स्थानिक रक्त-संचार को घटाते हैं। इसलिये चोटों में शीत उपचार तात्कालिक चिकित्सा है। इसके द्वारा रक्तस्राव कम हो जाता है, पीड़ा शान्त हो जाती है, बढ़ा हुआ रक्त-संचार घट जाता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यदि शीत उपचार से रोगी सर्दी, कँपकपी या दर्द मालूम करे तो सावधानी से शीत उपचार गरम उपचार में बदल देना चाहिये। शीत उपचार के साधन निम्न हैं—

नाइट्रेट आफ पोटाश ½ औंस, हाइड्रोक्लोरेट ऑफ अमोनिया ½ औंस, पानी १२ औंस। इस मिश्रण में एक सूती कपड़े को भिगोकर रुग्ण स्थान पर रख देना चाहिये। इसको किसी भी वस्त्र से नहीं ढांकना चाहिये। शीतलता उत्पन्न करने के और वाष्प बनाने के लिये वायु की आवश्यकता है।

कपड़े को बार बार तर करते रहना चाहिये, अथवा स्पंज से पानी डालते रहना चाहिये। यदि घोल न मिले तो बर्फ के पानी से काम निकाल लेना चाहिये। अथवा दो औन्स सिरका और २ औन्स स्प्रिट ऑफ वाईन २० औन्स पानी में मिलाकर काम कर लेना चाहिये।

रबर की थैली में या ब्लेडर में बर्फ भरकर बर्फ को कूटकर रबर की थैली में भर देना चाहिये और इस थैली को रुग्ण स्थान पर रखना चाहिये। यदि केवल बर्फ ही मिले तो इसको समान भाग नमक मिलाकर रखना चाहिये। बर्फ की पुल्टिस बनाने के लिये अलसी के आटे की एक मोटी तह पर बर्फ के टुकड़े रखकर ऊपर से अलसी का आटा छिड़क देना चाहिये। इसको एक वस्त्र में लपेटकर (चारों ओर, जिससे आटा गिरे नहीं) मोटी तह की तरफ से रुग्ण भाग पर रखना चाहिये। वायु के न लगने से बर्फ शीघ्र पिघलेगी नहीं और आटे की तह अधिक शीतलता को रोकेगी।

७४—पोटाशियम नाइट्रेट $\frac{1}{2}$ औन्स, अमोनियम हाइड्रोक्लोरेट $\frac{1}{2}$ औन्स, नमक $\frac{1}{2}$ औन्स, पानी १२ औन्स शीतोत्पादक घोल है। ये चीजें बाजार में शोरा और नौसादर के नाम से मिल जाती हैं। इनको बर्फ के साथ रबर की थैली में या ब्लाडर में भी भरकर बरत सकते हैं। बर्फ नहीं मिले तो भी ये चारों वस्तुयें काम दे सकती हैं।

७५—लेड एसिटेट १ ड्राम, रैक्टीफाईड स्प्रिट ऑफ वाईन १ औन्स, पानी १२ औंस।

यह भी उत्तम वाष्प स्वेद की शीतल विधिकर घोल है।

शान्तिदायक उपचार

पानी की पट्टी—लिण्ट और किसी सूती कपड़े की तीन-चार तहें करके उसको ठण्डे पानी में भिगोकर रुग्ण स्थान पर रखना चाहिये। उसके ऊपर गट्टा पारचा या रेशम का कपड़ा ढाँप देना चाहिये, जिससे वाष्प बनकर उड़ न जाये। पानी गरम या ठण्डा बरता जा सकता है और जब आवश्यक्ता हो, तो पट्टी बदल देनी चाहिये। यह उत्तम है कि पानी के स्थान पर कार्बोलिक लोशन बरता जाये। सिम्पल ऑयण्टमेण्ट (सादा प्रलेप) घर में वैसलीन या लैनोलीन तैयार रखनी चाहिये। लैनोलीन त्वचा के अंदर बहुत शीघ्र घुस जाती है।

कैरन ऑयल—अलसी का तेल और चूने का पानी समान भाग में मिलाकर जले हुये स्थान पर लगाना चाहिये।

७६—ब्लैकवाश—कैलोमल ३० ग्रेन, लाइम वाटर १० औन्स, औपसर्गिक रोगों में उपयोगी है। इसका रङ्ग काला होता है।

७७—टिंचर ओपयाई १ ड्राम, टिंचर एकोनाइट १ ड्राम, क्लोरोफार्म १ ड्राम, सोप लिनीमैण्ट १½ औंस इसको स्पंज या वस्त्र के टुकड़े के साथ दर्द की जगह पर लगाना चाहिये।

७८—टिंचर ओपयाई १ ड्राम, टिंचर एकोनाइट १ ड्राम, क्लोरोफार्म १ ड्राम यह नं० ७७ से अधिक उपयोगी है। त्वचा के फटने पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

७९—एक बोतल में ¾ भाग कपूर भरकर उसके ऊपर ¼ भाग रैक्टीफाईड स्प्रिट या सल्फ्यूरिक ईथर भर देना चाहिये। इसके लगाने से थोड़ी देर में स्थान बे भान होजाता है, दर्द चला जाता है। परन्तु इसका प्रभाव स्थिर नहीं होता।

वस्तियों के कुछ नमूने

८०—स्टार्च—निशास्ता या साबुन २ ड्राम, पानी १० औन्स।

८१—टिंचर एसेफटीडा १ ड्राम, सोप १ ड्राम, कैस्टर ऑयल १ औंस, गरम पानी ८ औन्स। उत्तेजक वस्ति है।

८२—कैस्टर ऑयल ½ औन्स, स्प्रिट टरपैण्टाइन ½ औन्स, क्रोटन ऑयल ४ बूँद, साबुन ३० ग्रेन, गरम पानी ८ औन्स। सन्यास, मूर्च्छा-रोग में रेचक वस्ति है।

८३—जिंक सल्फेट २० ग्रेन, टिंचर ओपयाई ३० बूँद, गरम पानी ८ औन्स, श्वेत प्रदर और गर्भाशय-रोग में उपयोगी है।

छाला उठाने और त्वचा को लाल करनेवाली औषधियाँ

जब किसी स्थान पर रक्त-संचार मन्द पड़ गया हो, या रक्त एकत्रित हो गया हो अथवा रक्त-संचार बढ़ा हुआ हो उस समय इन औषधियों का उपयोग होता है।

टरपैण्टाइन स्टुप्स—फलालैन या किसी कपड़े की मोटी तह करके उसको स्प्रिट आफ़ टरपैण्टाइन से भली प्रकार गीला करके रुग्ण स्थान पर रख देना चाहिये। इसको खुश्क वस्त्र या रेशम से ढाँप देना चाहिये। इसको १ घण्टे तक, या जब तक बहुत दर्द मालूम न हो, वहाँ लगे रहने देना चाहिये। इससे त्वचा लाल हो जायगी, परन्तु छाला नहीं पड़ेगा।

मस्टर्ड पुल्टिस—मस्टर्ड (राई) के चूर्ण को गरम पानी में लेई-सी बनाकर किसी कपड़े या काग़ज़ पर लगाकर रुग्ण प्रदेश पर लगा देना चाहिये। लगाने से पूर्व स्थान पर घी या वैसलीन का हाथ फेर देना चाहिये। प्राय: २० मिनट में इसकी गरमी असह्य होजाती है। उस समय इसको उतारकर गरम पानी से त्वचा को साफ़ करके रुई रख देनी चाहिये। बच्चों के लिये राई के चूर्ण में आटा मिला लेना चाहिये, जिससे इसकी तीव्रता कम होजाय। देर तक लगे रहने देने से छाला उठ आता है।

ब्लिस्टर—छाला उठाने के लिये प्राय: 'कैन्थरेडिस' काम में आता है। जिस स्थान पर छाला उठाना हो उस आकार का कपड़ा काटकर उस पर एम्पलास्टम कैन्थरेडिस या लाईकर एपिस्टैक्सीस पतला लगाकर स्थान पर रख देना चाहिये। दो घंटे में छाला उठने लगेगा। ६ से ८ घंटे के पीछे कपड़े के फाये को उतार देना चाहिये। छाला उठने पर चाक़ू या कैंची से उसमें छेद करके सब पानी बाहर कर देना चाहिये। ऊपर से सादा मरहम या वैसलीन का फाया रख देना चाहिये। ६ घंटे के पीछे इसको उतारकर देखना चाहिये। यदि और कोई छाला बना हो, तो उसको भी फोड़कर पानी बहा देना चाहिये। फिर सादा मरहम लगाना चाहिये। बच्चों में छाला नहीं उठाना चाहिये।

आयोडीन पेण्ट—राई या छाले के स्थान में प्राय: कई बार लिनी-मैण्ट आयोडीन बरता जाता है। इसको एक बार गाढ़ा लगाकर दो-तीन दिन तक नहीं लगाना चाहिये। कई बार के लगाने से ऊपर की त्वचा उतर जायगी। बहुत तेज़ लगाने से छाला उठ जाता है। प्राय: एक या दो बार लगाने से खुजली और सुई चुभाने का अनुभव होने लगता है। उस समय इसको बन्द कर देना चाहिये और फिर लगाना चाहिये।

आघातों के लिये उपाय

स्टार्च बैंडेज—निशास्ता या मैदे को पानी में घोलकर पतली लेई-सी बना लेनी चाहिये। इसमें पट्टी को भिगोकर रुग्ण प्रदेश पर बाँधना चाहिये। बाँधते समय थोड़ा-थोड़ा घोल पट्टी पर छोड़ते जाना चाहिये। खुश्क होने पर यही सख्त हो जायगा, जिससे अङ्ग को आराम मिलेगा। यह पट्टी अस्थि-भंङ्ग आदि में उपयोगी है।

प्लास्टर आफ़ पेरिस—यह एक प्रकार का श्वेत पाउडर-सा होता है। इसको पानी में घोलकर लेई-सी बनाकर निशास्ते की पट्टी की तरह अस्थि-भंङ्ग आदि में बरतते हैं। पट्टी न बहुत ढीली और न बहुत कसकर बाँधनी चाहिये।

सिंगी लगाने की क्रिया

भारत में सिंगी लगाने की क्रिया बहुत समय से प्रचलित है। आज कल सिंगी का कार्य शीशे के गिलासों से किया जाता है। ये भिन्न-भिन्न आकार के बने होते हैं। इनमें रुई से थोड़ी शराब लगाकर आग लगा देते हैं। जिससे शराब के जलने से गिलास के अन्दर का वायु निकल जाता है। वायु निकलने से स्थान रिक्त होजाता है। यह रिक्त स्थान दूसरी वायु से भरे, इससे पूर्व इस प्याले को रुग्ण प्रदेश पर लगा देते हैं। जिससे त्वचा का मांस गिलास में ऊपर को खिंच आता है। इससे स्थानिक रक्त-संचार बढ़ जाता है, दर्द कम हो जाता है। जब इसको अलग करना हो, तो नाखूनों से मांस को नीचे दबाकर गिलास और त्वचा के बीच में थोड़ा-सा स्थान कर देना चाहिये। इस स्थान से वायु घुसकर गिलास को ढीला कर देगा। इस स्थान पर कुछ और वस्तु लगाने की आवश्यकता नहीं है। इस विधि को ड्राई कपिंग कहते हैं।

एक दूसरी विधि है जिसको "वेट कपिंग" कहते हैं। इसमें रुग्ण प्रदेश पर प्रच्छन्नों से लेखन करके जिससे थोड़ा-थोड़ा रक्त दीखने लगे पूर्व विधि से 'कपिंग' किया जाता है। इस विधि में प्याला रक्त से भर जाता है। यह विधि दूषित रक्त को निकालने में काम आती है। आज कल भी

गाँवों में यह काम प्रायः सींगी लगानेवाले किया करते हैं। इस विधि में पीछे से नमक या हल्दी उस स्थान पर लगा देनी चाहिये।

दोनों विधियों में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्याले में शराब न बच जाय, या अधिक लग जाय, जिससे त्वचा जल जाय।

जोंक—दूषित रक्त के निकालने के लिये (विशेषतः बच्चों में) जोंक का लगाना बहुत सरल और उत्तम उपाय है। जोंक के तीन दाँत होते हैं, इसलिये इसके काटने से त्रिभुजाकार व्रण बनता है। जोंक के लगाने से पूर्व स्थान के दूध या शर्बत से धो देना चाहिये। इससे जोंक स्थान पर शीघ्र लग जायगी। यदि अब भी न लगे, तो थोड़ा-सा रक्त सुई या चाकू से निकाल देना चाहिये। "सुश्रुत" में लिखा है कि जिस प्रकार हंस दूध और पानी में दूध का ग्रहण करता है, उसी प्रकार जोंक भी अशुद्ध रक्त का ग्रहण करती है और शुद्ध रक्त के छोड़ देती है। यदि एक जोंक न लगे तो दूसरी बरतनी चाहिये। जिस समय वह रक्त ले चुकेगी, तो स्वयं गिर जायगी। रक्त लेती हुई जोंक के बलपूर्वक नहीं छुटाना चाहिये, इससे उसका दाँत टूट जाता है और पक जाता है। उसके गीले कपड़े से ढाँक देना चाहिये, जिससे शान्ति से वह रक्त ग्रहण कर सके। बच्चों में एक बड़ी जोंक की अपेक्षा दो छोटी जोंक लगाना उत्तम है। क्योंकि बड़ी के काटने से दर्द होगा। जिस समय जोंक के अलग करना हो, तो उसके ऊपर नमक या नमक का गरम पानी गिराना चाहिये। इसके पूँछ की ओर से पकड़कर उतारना चाहिये। जोंक के स्थान पर साधारणतः कुछ लगाने की आवश्यकता नहीं होती। स्थान के गरम पानी से धोकर देख लेना चाहिये। यदि रक्तस्राव न हो, तो रुई रख देनी चाहिये। यदि रक्तस्राव होरहा हो, तो ठण्डे पानी से धोकर फिटकरी का चूर्ण छिड़क देना चाहिये।

मसाज़—यह एक और प्रक्रिया है, जिसकी सहायता से किसी स्थान के रक्त-संचय के कम किया जाता है, या बढ़ाया जाता है। भारतवर्ष में यह काम प्रायः नाई अब भी करते हैं। मांसपेशियों के, त्वचा के, पृष्ठ-वर्त्ति रक्त-वाहिनियों के मसाज़ के द्वारा उत्तेजना मिलती है। इससे रक्त-लिम्फ़ आदि वेग से गति करने लगती हैं और निःसारक शक्ति की भूख बढ़ जाती है।

वस्ति

गुदा में वस्ति—वस्ति के उपकरण बाज़ार में मुख्य रूप से दो प्रकार के मिलते हैं। एक तो "डूश" है, जो कि ऊँचाई से लिया जाता है। दूसरा इस प्रकार का होता है कि रोगी बीच में लगी रबर को स्वयं दबाता जाता है, जिसकी सहायता से पानी गुदा में चला जाता है। इसमें नली का एक मुख पानी के बर्तन में होता है और दूसरा मुख गुदा में। बीच में रबर का पम्प लगा होता है, जिसको रोगी दबाता है। पानी का बर्तन अपनी स्थिति के बराबर या ज़रा ऊँचा रखना होता है। रबर के बल्ब को दबाने से नली का वायु निकल जाता है और पानी गुदा में चला जाता है, इस प्रकार बार-बार दबाने से पानी गुदा में लिया जाता है।

"डूश" में पानीवाले बर्तन को दिवार से टाँग दिया जाता है और नलिका गुदा में प्रविष्ठ की जाती है। यह बर्तन रोगी से ३ फीट ऊँचा रहता है। सारा पानी नहीं प्रविष्ठ करना चाहिये, नहीं तो पीछे से वायु आँतों में चला जायगा।

वस्ति लेने के लिये रोगी को वाम पार्श्व को लेटकर दक्षिण जंघा को कोष्ठ पर मोड़ना चाहिये, और वाम टाँग को आधा संकुचित रखना चाहिये, जिससे पेट की मांसपेशियाँ ढीली होजायँ। पानी लेने के पीछे यथासम्भव उसे रोकना चाहिये, इसका कोई नियम नहीं है। साधारणतः जितना रोगी सुगमता से ले सके उतना देना चाहिये। १ साल के छोटे बच्चे में २ ड्राम से १ औंस पानी पर्याप्त होता है।

स्त्रियों के उत्पादक अङ्गों में उत्तर वस्ति—इस वस्ति के लिये 'फीमेल सीरीज़' (जिसकी लम्बाई ६ या ७ इञ्च होती है, और अगले भाग पर ६ या ७ छिद्र होते हैं) का उपयोग करना चाहिये। रुग्णा को पीठ के भार लेटाकर उसके नितम्ब के नीचे तकिया रख देना चाहिये और टाँगों को कोष्ठ पर मोड़ देना चाहिये। नीचे कोई खुश्क अँगौछा या टब रख देना चाहिये। पिचकारी करने से पूर्व भग और योनि को किसी जन्तुघ्न घोल से या पानी से धो डालना चाहिये और यदि पिचकारी से पारे का समास बरता गया हो, तो पीछे से भी इन अङ्गों को स्वच्छ पानी से धोना चाहिये। पानी शनैः-शनैः छोड़ना चाहिये।

पुरुषों के उत्पादक अङ्ग में उत्तर वस्ति--वस्ति देने से पूर्व रोगी के पेशाब करा देना चाहिये। शिश्न की वस्ति के लिये साधारणत: ४ या ५ औंस की शीशी को पिचकारी बरती जाती है। इसकी नॉज़ल का मुख गोल, चिकना और ½ इञ्च लम्बा होता है। यदि (Y) वाई के आकार की नली मिल सके, तो सबसे अच्छा। इसमें यह लाभ है कि एक तरफ़ से पानी आता है, दूसरी तरफ़ से शिश्न में जाता है, और तीसरी तरफ़ से शिश्न में से बाहर भी होता रहता है। इससे मूत्र-मार्ग भली प्रकार धुल जाता है। शिश्न को बायें हाथ से सीधा पकड़कर दक्षिण हाथ से नॉज़ल को शिश्न-मुख में रखकर अँगुली से बस्टन को दबाना चाहिये। शिश्न में द्रव पहुँचने पर प्रत्येक बार इसको दो मिनट तक रोकना चाहिये। इस प्रकार ६ से ८ बार धोना चाहिये।

स्नान

कई रोगों में गरम पानी का स्नान लाभदायक होता है। विशेषत: जब हम मूत्र-संस्थान या त्वचा को उत्तेजित करना चाहते हैं। गरम स्नान से पृष्ठ-वर्त्ती रक्त-वाहिनियों में रक्त-सञ्चार बढ़ जाता है, जिससे पसीना आता है। पसीने के आने से बहुत से मल बाहर होजाते हैं, और रक्त का बढ़ा हुआ दबाव भी घट जाता है। गरम स्नान से हृदय की शक्ति कम होजाती है, मांस पेशियाँ ढीली होजाती हैं, इससे मूर्च्छा का होना भी सम्भव है। हृदय के निर्बल पुरुषों में यह भय और भी बढ़ जाता है। इसलिये गरम पानी का स्नान देते समय रोगी का विशेष ध्यान रखना चाहिये। रोगी को कितनी देर तक स्नान दिया जाय, यह उसकी अवस्था देखकर निश्चित किया जा सकता है। मूर्च्छा होने पर रोगी को ख़ुश्क करके लिटा देना चाहिये।

पानी का ताप-परिमाण—६० से ७५ फैरनहीट ताप का पानी शीत-स्नान के लिये
८५ से ९२ ,, ,, ,, टैपिड-स्नान के लिये
९२ से ९८ ,, ,, ,, गरम स्नान के लिये
९८ से ११५ ,, ,, ,, उष्ण-स्नान के लिये

बच्चों के पानी का ताप-परिमाण कभी भी ९६ से ९८ फैरनहीट से अधिक नहीं रखना चाहिये।

गरम स्नान किन अवस्थाओं में उपयोगी है ?—जिन अवस्थाओं में तीव्र और दर्दयुक्त आक्रञ्जन वेगपूर्वक होते रहते हैं, उनमें गरम स्नान उपयोगी है। यथा—मूत्राश्मरी, मूत्र-शर्करा, हर्निया, मूत्राघात, आंत्र में मलावरोध, आमवात। बच्चों में जब आक्षेप, कास, आँतों में दर्द, दन्तोद्गम के कारण बेचैनी या आध्मान हो रहा हो, उस समय गरम स्नान उपयोगी है।

गरम स्नान की एक दूसरी विधि यह है कि एक कम्बल को गरम पानी में भिगोकर उसे निचोड़ देना चाहिये। रोगी को इस कम्बल में लपेटकर ऊपर से शुष्क गरम कम्बलों से ढाप देना चाहिये। इससे बहुत पसीना होगा। पसीने को ख़ुश्क अँगौछे से साफ़ करते रहना चाहिये। २० मिनट के पीछे रोगी को ख़ुश्क करके कपड़े पहना देना चाहिये।

गरम पानी में औषधियाँ मिलाकर भी स्नान कराये जाते हैं। इस उपाय से औषधि त्वचा के छिद्रों से शरीर में घुस जाती है। ये औषधियाँ नमक, अम्ल, गन्धक, सोडा आदि हैं।

नाइट्रोम्युरेटिक एसिडबाथ—म्युरेटिक एसिड ३ भाग, नाइट्रिक एसिड २ भाग—इन दोनों एसिड को शनैः-शनैः मिलाकर ५ भाग पानी मिलाना चाहिये। जबतक शीशी में गरमी रहे, इसको अलग रहने देना चाहिये। मिट्टी या लकड़ी का बर्तन लेकर (धातु का बर्तन हानिकारक है) उसमें अम्ल (१ औंस—१ गैलन पानी में) मिलाना चाहिये। पानी का ताप परिमाण ९८° फैरनहीट रखना चाहिये। रोगी को इस पानी में १५ मिनट बैठना चाहिये। स्नान से बाहर आकर त्वचा को ख़ुश्क कर देना चाहिये। उत्तम है कि खद्दर का अँगोछा बरता जाय। यह स्नान यकृत और प्लीहा के रोगों में उपयोगी है। बच्चों के लिये आधा औंस १ गैलन पानी में मिलाना चाहिये।

गन्दगी को दूर करनेवाली वस्तुयें

कूड़े-करकट से, प्राणियों या वनस्पतियों के सड़ने से दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। यह दुर्गन्ध दूषित परमाणुओं के कारण होती है। ये परमाणु वायु में रहते हैं और यह वायु हमारे श्वास या त्वचा के मार्ग से शरीर के अन्दर

पहुँचती रहती है। इस वायु के शरीर में पहुँचने से शरीर भी दूषित या रुग्ण हो जाता है। अतः आवश्यक है कि इस दुर्गन्ध को दूर किया जाय।

दूध से दही बनाते हैं। जबतक दूध में जामन नहीं रक्खा जाता, दही नहीं बनता। दही में वह दूध की मधुरता नहीं रहती, अपितु खट्टापन आजाता है। यदि दही को तीन-चार दिन रख दिया जाय, तो और भी अम्लता बढ़ जाती है। तब यह खाने के योग्य नहीं रहता। इस दही को थोड़े दिन और रहने दिया जाय, तो इसमें से एक विशेष प्रकार की गंध आने लगती है। यह गन्ध सहन नहीं की जा सकती और अन्त में खाने के अयोग्य समझकर दही को फेंक देते हैं।

इस दुर्गन्ध और अम्लता का कारण एक प्रकार के क्रमि हैं। पहले दिन जो अम्लता आई थी, वह भी इन्हीं क्रमियों के कारण थी। परन्तु उस समय ये इतने तीव्र नहीं थे। पीछे से जब ये तीव्र होगये, तो अम्लता भी बढ़ गई।

एक दूसरी बात—एक सड़ा हुआ या किसी पक्षी का खाया हुआ आम लेकर दूसरे अच्छे आमों में मिलाकर रख देना चाहिये। दूसरे दिन उस आम से मिले हुये आम का छिलका भी सड़ने लगता है और फिर यह सड़ांद धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है, जिससे जो-जो आम इनके साथ स्पर्श करता है, वह भी खराब हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि सड़ना दूसरों को भी सड़ा देता है। इस सड़ांद के कारण भी क्रमि हैं, जो इतने सूक्ष्म हैं कि आँख से नहीं दिखाई देते।

इससे स्पष्ट है यदि एक मनुष्य किसी संक्रामक रोग से यथा चेचक, टाइफाइड आदि से रोगी होगा—विशेषतः उन रोगों से, जिन रोगों के कारण कृमि या कीटाणु हैं, तो वह दूसरे लोगों को भी रोगी बना सकता है, यदि वे इसके संसर्ग में आयेंगे। यह संसर्ग चाहे तो सीधा रोगी के साथ हो, या उससे उत्पन्न स्रावों के साथ या उससे दूषित पात्र, वस्त्र, वायु, भोजन, जल के द्वारा हो। अतः यह आवश्यक है कि इस संक्रमण से यथासम्भव बचा जाय। परन्तु दूर भागना सम्भव नहीं; क्योंकि रोगी की परिचर्य्या भी करनी है, इसीसे कुछ उपाय विज्ञान ने ढूँढ़ निकाले हैं, जिनसे रोगी के पास रहते हुये भी इस संक्रमण से बचा जा सकता है।

इस उपाय को 'डिसइनफैकशन' कहते हैं। 'डिसइनफैकशन' के दो

विभाग किये जाते हैं। एक वह, जिसमें सड़ांद या दुर्गन्ध ही को दूर किया जाता है। इस काम के लिये जो औषधियाँ बरती जाती हैं, उनको 'डिओडोरेंट' दुर्गन्ध-नाशक कहते हैं। इन औषधियों में इतनी शक्ति नहीं होती कि क्रिमियों को मार दें। ये अपनी गंध से उनकी दुर्गन्ध को दबा लेती हैं। ये वस्तुयें निम्न हैं—सिरका, एसिटिक एसिड, अमोनिया, गुलाब के पत्तों की चाय आदि।

दूसरा विभाग वह है, जिसमें सड़ांद उत्पन्न करनेवाले कृमि ही मारे जाते हैं। ये औषधियाँ दुर्गन्ध का इतना नष्ट नहीं करतीं। ये औषधियाँ तीव्र होती हैं। यथा—अग्नि, चारकोल, क्लोरीन, ब्लीचींग पाउडर, चूना, कार्बोलिक एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड, नाइट्रिक एसिड, पोटाशियम परमैंगनेट, क्लोरोफार्म, हीराकसीस आदि। साथ ही इनमें कुछ दवाइयाँ इस प्रकार की भी हैं, जो दोनों प्रकार का कार्य सिद्ध करती हैं। जो दुर्गन्ध-नाशक होने के साथ कृमि-नाशक भी हैं। यथा—पोटाशियम परमैंगनेट, कार्बोलिक-एसिड, क्लोरीन गैस, नौसादर, आइज़ोल, फीनाइल आदि।

दुर्गन्धनाशक और कृमिनाशक किसी भी प्रकार की दवाई तबतक प्रभाव नहीं कर सकती, जबतक धूल और राख को दूर करके स्वच्छ वायु का प्रवाह बहने न दिया जाय। इसलिये राख और धूल को दूर करके स्वच्छ वायु आने देनी चाहिये।

डिसइन्फेक्शन (स्वच्छीकरण) की कुछ विधियाँ

१. कंडेज़ फ्ल्यूड—यह पोटाशियम परमैंगनेट का घोल है। इसका रंग जामुनी-सा होता है। पीने के पानी में इसको मिला देने से हैजे या टाईफाईड के कीटाणुओं से बचा जा सकता है। हाथ धोने, कपड़े, बर्तन, फरनीचर आदि धोने के काम में बरता जा सकता है। इससे कपड़ा धोकर फिर स्वच्छ पानी में धो लेना चाहिये। क्योंकि इसमें दुर्गन्ध नहीं होती। इसलिये बहुत-से आदमी इसको कारबोलिक एसिड से अधिक पसंद करते हैं। परन्तु यह उतना शक्तिशाली नहीं है। १ ग्रेन २ औंस पानी में घोलने से उत्तम घोल बन जाता है। बाजार में पोटाशियम परमैगनेट की टिकड़ियाँ मिलती हैं।

२. कार्बोलिक एसिड--कीड़ों को मारने के लिये एक निश्चित उपाय है। शस्त्र-कर्म से पूर्व हाथ और औजार धोने के लिये बरता जाता है। साधारणतः इसका घोल १ औंस कार्बोलिक एसिड और ४० औन्स सहज गरम पानी में बनाकर बरता जाता है। यदि इसको तेज बनाना हो, तो पानी २० औन्स रख लेना चाहिये। इससे हाथ, वस्त्र, बर्तन आदि धोये जा सकते हैं। स्रावों को नष्ट करने से पूर्व उनमें इसका घोल मिला देना चाहिये। या जिन बर्त्तनों मे स्राव रक्खे जायँ, उनमें इसे रख देना चाहिये।

फिनाइल या आईजोल भी इसी रूप में है। स्राव तथा अन्य घर के सामान को, घर को धोने के लिये फिनाइल उत्तम है। यह सस्ती है। इसको लेकर पानी में मिलाना चाहिये, जिससे रङ्ग दूधिया हो जाय। टट्टी, मूत्र-स्थान आदि धोने के लिये उत्तम है।

३. क्लोरीन गैस—स्वच्छीकरण का यह सबसे उत्तम साधन है। परन्तु इसमें एक हानि है कि इसकी उग्रता आँख, फेफड़ों तथा श्वास-नलिका को हानि पहुँचाती है। इसको तैयार करने के लिये क्लोराइड ऑफ लाइम (ब्लीचींग पाउडर—रङ्ग उड़ाने का चूर्ण) के ऊपर पानी के छींटे दे देने चाहिये। यदि जल्दी असर करना हो, तो इसपर डाईल्यूट सल्फ्यूरिक एसिड डालना चाहिये। अथवा कौंडिस फ्ल्यूड के ऊपर डाईल्यूट हाईड्रो-क्लोरिक एसिड डालने से भी यह गैस बन सकती है। पिछले दोनों रोगी-गृहों को स्वच्छ करने के लिये उत्तम है। यदि बड़ी मात्रा में बनानी हो, तो नमक ४ औन्स, मैंगनीज बिनो औक्साईड १ औन्स, सल्फ्यूरिक एसिड १ औन्स,पानी २ औन्स। प्रथम दोनों चीजों को मिलाना चाहिये और एसिड को पानी में मिलाना चाहिये। फिर इस एसिड को चूर्ण के ऊपर धीरे-धीरे गिराना चाहिये। इस गैस के बनने पर घर की सब खिड़की आदि बन्द कर देनी चाहिये, कोई आदमी अन्दर नहीं रखना चाहिये।

४. घर की वायु का स्वच्छीकरण—घर की स्वच्छता के लिये पहले वायु के आने और जाने के मार्गों को सबसे प्रथम खोल देना चाहिये। कोयलों से भरा हुआ टोकरा यदि घर में रख दिया जाय, तो यह अपने गुण के कारण सब प्रकार की दुर्गन्ध को, सल्फ्यूरेटिड हाईड्रोजन (एक प्रकार की दूषित वायु) को अपने में लीन कर लेगा। चूना कार्बोनिक

एसिड को अपने में घोल लेता है। या ऊपर की विधि द्वारा क्लोरीन से घर साफ किया जा सकता है। दरवाजे पर कार्बोलिक एसिड या कैंडेस फ्लूड में भीगी हुई चिक या कपड़े का परदा लटका देना चाहिये। कार्बोलिक एसिड और कैंडेस फ्ल्यूड को कभी भी एक साथ नहीं बरतना चाहिये।

५ वस्त्रों और बिस्तर का स्वच्छीकरण—जो वस्त्र जलाये जा सकें, वे तुरन्त जला देने चाहिये। और शेष रहे वस्त्रों को कोरोसिव सब्लिमेट (१ : २०००) या कार्बोलिक लोशन में भिगोया जाना चाहिये। यह कार्य यथासम्भव शीघ्र करना चाहिये। तीन घण्टे तक घोल में भीगे रहने के पीछे स्वच्छ पानी से आध घण्टे तक उबालना चाहिये। फिर साबुन से धोकर धूप और वायु में सुखा देना चाहिये। यदि घोल न मिले, तो उबालने का समय दुगुना कर देना चाहिये और फिर गन्धक का धुवाँ देना चाहिये। २४० से २५० फैरनहीट की गरमी पर एक घण्टे तक कपड़ों को रखने से भी वे स्वच्छ हो जाते हैं। स्रावों के धब्बों पर ब्लीचिंग पाउडर या चूना मल देना चाहिये। रोगी के कपड़ों को और वस्त्रों से पृथक् धुलाना चाहिये।

६. बर्तनों का स्वच्छीकरण - रोगी के व्यवहार में आये हुए प्याले, चम्मच, थाली आदि कैंडेस फ्ल्यूड या कार्बोलिक एसिड के घोल से धो देना चाहिये।

७. परिचारक के हाथों का स्वच्छीकरण—इसके लिये प्रथम कैंडेस फ्ल्यूड या कार्बोलिक लोशन में हाथों को धोकर स्वच्छ पानी में धोना चाहिये। रक्त आदि के धब्बे को रेत या साबुन से साफ करके फिर लोशन में धोना चाहिये। नखों को भी भली प्रकार साफ करना चाहिये।

८. रोगी के शरीर का स्वच्छीकरण—रोगी के शरीर को स्वच्छ करने के लिये पानी में कार्बोलिक लोशन या कैंडेस फ्लूड मिला लेना चाहिये। अथवा औषधियों से मिश्रित पानी में स्नान कराना चाहिये।

९. रोगी के स्रावों का स्वच्छीकरण—स्राव पोंछने के लिये वे चिथड़े बरतने चाहिये, जिनको सुगमता से जलाया जा सके। मल, मूत्र, थूक, वमन आदि उन बर्तनों में इकट्ठा करना चाहिये, जिनमें कृमि-नाशक घोल पड़ा हो। इसके लिये कार्बोलिक लोशन, फिनाइल, हीराकसीस का घोल उत्तम

है। स्रावों को जल्दी से जल्दी दूर करके खुश्क भूमि में ३ फीट गहरा गाड़ना चाहिये। गाड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पास में जलाशय, कुआं आदि न हों, नहीं तो उनके संक्रमित होने का भय है। सबसे उत्तम यह है कि स्रावों को जला दिया जाय। रोगी के बिस्तर के नीचे तथा चारोंओर राख या चूना बिछा देना चाहिये, जिससे स्राव सूखते जाँय।

१०. टट्टी आदि का स्वच्छीकरण—साधारणतः खुश्क मिट्टी को मल के ऊपर डाल देने से उसकी दुर्गन्ध से बचा जा सकता है। पीछे से इसको खाद के काम में लाया जाना उत्तम है। चूना या राख का उपयोग करना भी उत्तम है। विशेषतः गांवों में संक्रामक रोगों की अवस्था में चूना और राख सबसे उत्तम साधन है। जहाँ पर सुगमता हो, वहाँ पर ब्लीचिंग-पाउडर से या कारबोलिक लोशन, फिनाइल आदि से टट्टियों को साफ करवाना चाहिये। यदि मल का फेंकना सम्भव न हो, तो उसे या तो ३ फीट गहरा गड़वा देना चाहिये, अथवा जला देना चाहिये।

११. रोगी को हटाने के पीछे घर का स्वच्छीकरण – क्लोरीन से घरको स्वच्छ करना उत्तम है। यदि यह सम्भव न हो, तो १०० घनफिट घर के लिये चार औंस गन्धक जलाना चाहिये। इसके लिये एक लोहे के टुकड़े पर गन्धक रखकर कोयलों की अँगीठी या लैम्प पर रख देना चाहिये। जिस समय इसको जलाये, उस समय दरवाजा, खिड़की चिमनी आदि सब बन्द कर लेना चाहिये। चार घंटे तक कमरे को बन्द रखना चाहिये। पीछे से उसे खोलकर सब फरनीचर फर्श आदि को कार्बोलिक लोशन से या कैंडिस फ्लूड से धोना चाहिये। घर को दो-तीन दिन के लिये बिलकुल खोल देना चाहिये।

१२. शव का स्वच्छीकरण—संक्रामक रोग से मरे हुये मनुष्य के शव को कार्बोलिक लोशन (एक भाग एसिड और १५ भाग पानी) से यथासम्भव जल्दी से जल्दी कफन में लपेट देना चाहिये। कफन को कोयले से भर देना चाहिये। कमरे को क्लोरीन गैस से साफ करना चाहिये।

लेखक के रोज़नामचे में से कुछ उपयोगी नुस्खे

कमज़ोरी के लिये--हिंगुल को सेहुँड़ के दूध मे ३ बार भावना देकर मुर्गी के अण्डे में बन्द करके, उसे कपड़-मिट्टी करके १० उपलों को आग में फूँकना चाहिये। फिर गुलाबी रङ्ग की भस्म बनेगी।

अर्क ताऊन—नीम के फूल, गावजबाँ, सन्दल सफेद, सन्दल सुर्ख, कासनी, खयारैन के बीज, शाहतरा, चिरायता, गुल नीलोफर प्रत्येक ५ तोला; नीम की हरी छाल, गुल गावजबाँ, तुख्मखुरफा, जदवार खताई, मेंहदी के फूल प्रत्येक ३ तोला; आलूबुखारा ऽ=, अगर, जहरमोहरा, वंशलोचन, गिले अरमानी, दरूनज अकरबी प्रत्येक २ तोला; गुल सुर्ख, गुल सेवती प्रत्येक ४ तोला; मीठे अनार का रस, मीठे सेव का रस, नारङ्गी का रस, अमरूद का रस, अर्क केवड़ा, अर्क वेदमुश्क प्रत्येक ½ सेर; दरिया का पानी ८ सेर। जाफरान व कपूर प्रत्येक २ तोले की पोटली भपके के मुँह पर रखकर यथाविधि अर्क खींचे।

ताऊन के लिये गोली--मोती, सोने के वर्क, चाँदी के वर्क प्रत्येक ३ माशे; अकीक सुर्ख, मूँगा, जहरमोहरा, याकूत, काफूर, दरूनज अकरबी, जदवार प्रत्येक १ तोला, गुलाब के अर्क में पीसकर रत्ती-रत्ती की गोली बना ले।

अनुपान—अर्क-गुलाब या केवड़े का अर्क।

ताऊन की गिल्टी पर--कुचला (मीठा तेलिया अभाव में) २ नग नीम के पत्ते, काली मिर्च ३ माशे, जदवार, दारूनज अकरबी प्रत्येक ६ माशे। नीम के रस में पीसकर गिल्टी पर लेप करे।

अर्क मुसफ़ी खून--नीम के पत्ते-छाल, बकायन के पत्ते-छाल, कचनार की छाल, मौलसिरी की छाल, छोटी दूधी, काले भाँगरे के पत्ते, जवासा, गूलर की छाल, मेंहदी के पत्ते, मुण्डी, शाहतरा, शरफोंका धमाशा, बिजयसार की लकड़ी, नीलोफर, गुल सुर्ख, धनिया, सन्दल सफेद, कासनी, कासनी की जड़, मजीठ, वर्ग वेद सादाह शीशम का बुरादा प्रत्येक १० तोला, आकाश बेल, गिलोय, उन्नाव, खस, चिरायता, निबौली प्रत्येक १० तोला, मिलाकर २४ सेर पानी में २४ घण्टे भिगोकर अर्क निकाले। मात्रा ५ से १० तोले।

हब्ब बनफसा—गुल बनफसा, निशोथ, सत मुलहठी, वर्क चाँदी गुल सुर्ख प्रत्येक ४ माशे, गारीकून सिकमोनिया प्रत्येक २ माशे ताजे पानी में गोलियाँ बनाये।

गुण—छाती के बलग़म को साफ़ करती है। रात को एक गोली खाकर प्रातः यह नुस्खा पिये।

गुल बनफसा ७ माशे, कासनी की जड़ ७ माशे, मुनक्का ९ दाने, सौंफ ७ माशे, गौजबाँ ५ माशे, उस्तखद्दूस ५ माशे, रात को गरम पानी में भिगोकर प्रातः छान ले, फिर गुलकन्द, खमीरा बनफसा, शकर सुर्ख प्रत्येक ४ तोले मिलाकर दोबारा छाने और ७ माशे सनाय में पीसकर मिलाकर पी ले।

माजूनकलाँ—गुल सुर्ख, सन्दल सफेद, सन्दल सुर्ख, लौंग, दारूनज अकरबी, वहमन सफेद, वहमन सुर्ख, नरकचूर, आमला, गिले अरमानी, फादज हर हवैनी, मुश्क ९ माशे, याकूत सुर्ख, याकूत नीला, याकूत जर्द, लाल अकीक यमनी, मूँगे की जड़, कहरुवा, यशव, तेजपात, गुल गावजबाँ, वंशलोचन, जदवार, खताई, पिस्ने का बाहरी छिलका, नीबू का छिलका, तुख्म कासनी, तुख्म खुरफ़ा, सोने के वर्क, चाँदी के वर्क प्रत्येक १ तोला १॥ माशा, जुन्दवेदस्तर १॥ तोला, अम्बर १॥ तोला, मोती, दालचीनी, मस्तगी १ तोला १०॥ माशा, जाफरान ५ तोले ७॥ माशे, अफीम १ तोले १॥ माशा, शहद सबके बराबर, मिश्री सबसे दुगुनी, गुलाब का अर्क १ सेर यथाविधि माजून बनावे।

गुण—स्त्री-पुरुषों के जरयान, स्त्रियों के प्रदर-रोग, गर्भाशय की सूजन आदि के लिये अधिक लाभदायक है। काम-शक्ति को बढ़ाती है। मात्रा ५ माशे। अर्क गावजबाँ के साथ।

माजून हमल अम्बरी—अम्बर अशहब ७॥ रत्ती मोती, कहरुवा सन्दल सफेद, सन्दल सुर्ख, वंशलोचन, माजू, दारूनज अकरबी, ऊदसलीब आब रेशम, बेख अञ्जबर गिलेअरमानी प्रत्येक ९ माशा तरबूज की मींगी १ तोला ५॥ मासा तुख्म खुरफा १ तोला ५॥ माशा, सोने के वर्क २० नग शहद १८। तोला शरबत जोश २८ तोला १॥ माशा मिश्री ५६। तोला। यथाविधि माजून बनावे।

गुण—गर्भ की रक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी है। गर्भपात को रोकता है। मात्रा ५ माशे, अर्क गावजवाँ के साथ।

कष्ट-प्रसव—मुर्गी के अंडों के छिलके २ नग मजीठ ६ माशे कूट-छानकर चूर्ण बनावे। मात्रा ६ माशा पानी के साथ।

तिले—(१)—कुचला १ तोला—इसके छोटे-छोटे टुकड़े करके शराब में ३ दिन तक भिगो रखें, फिर बीरबहूटी २ तोला, अफीम ६ माशे, असगंध २ तोला, संखिया ६ माशे अकरकरा ६ माशे—इनको एक दिन शराब में भिगोकर पीसकर पिघली हुई मोम में मिलाकर लेप करे।*

(२) केंचुवा, बीरबहूटी, रेगमाही मच्छी, जुन्दबेदस्ता, बन्दर की इन्द्रिय इनको मुर्गी के अंडे में मिलाकर लेप करना चाहिये।

(३) एक सेर रत्ती को १६ सेर बकरी के दूध में खूब महीन खरल करके उसमें दालचीनी, लौंग, जायफल, जावित्री, अकरकरा प्रत्येक ५ तोले मिलाकर घी बना ले। इस घी की २ बूँद लगाने के लिये और २ बूँद खाने के लिये देना चाहिये।

जौहरकजाँ—रसकपूर, संखिया, पारा, सिंगरफ प्रत्येक १ तोला शराब और गुलाब के अर्क में घोटकर जौहर उड़ावे।

गुण—आतशक और वायु के रोगों में अत्यन्त लाभदायक है। मात्रा दो चावल। दवा पेड़े में रखकर निगल जाय। दवा दाँतों में न लगे।

पथ्य—दूध चावल।

जौहर मुनक्का—संखिया, रसकपूर, दारचिकना प्रत्येक १ तोला इनको किस्म अव्वल बरन्डी में खरल करके जौहर उड़ावे।

उपयोग—आतशक और गठिया में।

मात्रा—दो चावल; दवा मुनक्के में रखकर देना चाहिये।

---

*तिला के सेवन करने के नियम—शिश्न को प्रथम धोकर शुष्क कर देना चाहिये। धोने के लिये गरम पानी और साबुन बरतना चाहिये। पीछे से तिले की दो-तीन बूँद लेकर मलनी चाहिये। मलते समय शिश्न के अग्रमुंड को बचाना चाहिये। उसके ऊपर तिले का स्पर्श नहीं होना चाहिये। नहीं तो सूज जायगा। पीछे से पान का पत्ता बाँध देना चाहिये। ३ या ४ घण्टे पीछे खोल देना चाहिये। प्रातः पानी से धो देना चाहिये।

हब्बे सूज़ाक—बंशलोचन २ तोला, गेरू १॥ तोला, शोराकलमा, संगजराहत, कहरुवा, बड़ी इलायची के दाने, हजरुल यहूद प्रत्येक ९ माशे, गिले अरमानी, कोकर का गोंद प्रत्येक ७ माशे, कुन्दर, समुद्र झाग ५-५ माशे, चन्दन का तेल २॥ तोले। सबको पीसकर में चन्दन के तेल में खरल करके गोलियाँ बनावे।

गुण—नये-पुराने हर तरह के सूज़ाक के लिये लाभदायक है। पेशाब की जलन और पीव को शीघ्र बन्द करती है। मात्रा १ गोली। दिन में तीन बार। २ तोले शरबत बजूरी के साथ देवे।

हब्बे निशात—चाँदी की भस्म ४॥ माशे, जावित्री, केसर, रेगमाही प्रत्येक १॥ तोला, जायफल ९ माशा, समुद्र-सोख ९ माशे, जहर मोहरा १। माशा, मुश्क १॥ माशा, जाफरान, चाँदी को भस्म को गुलाब के अर्क में खरल करे और बाकी दवाइयों को महीन करके मिलावे। फिर पान के रस में जङ्गली बेर के समान गोली बनावे।

जहरमोहरा—जहरमोहरा, खताई १॥ तोला, मोती, मूंगे की जड़, कहरुवा, लाजवर्द, याकूत नीला, याकूत अफसर, यशभ-सब्ज, जमुर्रद, अकीक, चाँदी के वर्क, मस्तगी प्रत्येक ७ माशे, सोने के वर्क, जदवार खताई, नारियल दरियाई, मुश्क, मोमयाई प्रत्येक ३॥ माशे। दो सप्ताह तक अर्क-गुलाब में रक्खे।

गुण—दिल और दिमाग को ताकत देता है। मात्रा २ चावल।

अनुपान—खमोरा,गावजबाँ, अम्बरी जवादर वाला ५ माशे के साथ।

माजून नुकरा—मुश्क १ माशा, अम्बर १ माशा, कहरुवा, मूंगे की जड़, यशद, मोती, बंशलोचन, चांदी के वर्क प्रत्येक ६ माशे, आबरेशम १ तोला, विलायती सेब का रस १० तोले, मिश्री २० तोले, गुलाब का अर्क ४० तोला, मुर्गी के अण्डे ४ नग। जवाहरात को अर्क-गुलाब में खरल करना चाहिये और आबरेशम को बारीक कपड़े से छान लेना चाहिये। फिर गुलाब का अर्क, सेब का रस और मिश्री की चाशनी बनाकर उसमें अम्बर, चाँदी के वर्क, जवाहरात, मुश्क, आबरेशम और अण्डों की सफेदी क्रमशः मिलावे। मात्रा ५ माशे।

अनुपान—अर्क गावजबाँ दिल की ताकत के लिये।

तिलाये मुहासा— नीम के पत्ते, पोस्त, करप्स, वेख करफस, मग्ज घूँघची, नमक लाहौरी, प्रत्येक १ तोला, सबको कूट-छानकर रक्खें।

गुण—मुहासों को दूर करती है। रात को सोते समय गरम पानी में मिलाकर लेप करे।

दन्तमंजन—तम्बाकू खुश्क, अकरकरा, स्याह मिर्च, नमक लाहौरी प्रत्येक ६ माशे।

हब्बे अम्बर मोमयाई—मोमयाई, मस्तगी, मोती, बंशलोचन, लौंग, जावित्री, जायफल, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, दालचीनी शकाकुल मिश्री, सोंठ, दारूनज अकरवी, अगर, ऊदसलीब, सालम मिश्री, जदवार खताई प्रत्येक ६ रत्ती; अम्बर ६ माशे, मुश्क १ माशे, सोने के वर्क ५ नग। मोती, अम्बर और मुश्क का अर्क बेदमुश्क में खरल करें और मोमयाई को गरम किये हुए रोगन पिस्ते में मिलाएँ। बाकी औषधियों के रोगन पिस्ते में मिला दें।

गुण—काम-शक्ति को बढ़ाती है, कमजोरी नहीं होने देती।

अर्क हराभरा— सन्दल सफेद, संदल सुर्ख, खस, पद्माख, नागरमोथा, गिलोय, शाहतरा, नीलोफर, गुल, नीम की छाल, कासनी, कद्दू की मींग, सौंफ, नेत्रवाला, धनिया, तुलसी के बीज, बहेड़े की जड़, गन्ने की जड़, जवासे की जड़, कासनी की जड़, धमासा, मुण्डी, मुलेठी छोटी, इलायची, पोस्त का डोडा, प्रत्येक १ तोला, इससे दस बोतल अर्क निकालें।

उपयोग—यक्ष्मा, खफकान, सूजाक, मूत्रदाह को दूर करता है। मात्रा ६ तोले।

अनुपान—४ तोला शरबत बनफशा या शरबत बजूरी डालकर पीना चाहिये।

काली खाँसी की दवा—जौखार १ तोला, काली मिर्च २ तोला, पिपली ४ तोला, अनारदाना ८ तोला, पुराना गुड़ १६ तोला। कूट-छानकर गुड़ में मिलाकर गोली बनावें।

खमीरा गाजबाँ अम्बरी (जवाहरवाला)—गाजबाँ ३ तोले, गुलगाजबाँ, कतरा हुआ आबरेशम, धनिया, सन्दल सफेद, बहमन सफेद, बहमन सुर्ख, बादरजंबोया, उस्तखद्दूस, तुख्म बालंगो, तुख्म फरञ्ज मुश्क

तोदरी सुर्ख़, तोदरी सफेद, प्रत्येक १ तोला, अम्बर १॥ माशे, चाँदी के वर्क ६ माशे, सोने के वर्क ६ माशे, मोती, याक़ूत, जमरू द, यशभ, कहरुवा, प्रत्येक ३१/२ माशे। मिश्री १ सेर, शहद १ पाव। यथाविधि खमीरा बनावें।

गुण—नजले में लाभदायक है। दिल और दिमाग़ के लिये लाभदायक है। मात्रा ५ माशे।

अनुपान—स्वर्ण-भस्म (२ चावल)।

रोगन लक़वा—मोम सफेद १ तोला, एरण्डी का तेल ३ तोला, इसमें मोम पिघलाकर करफियून, जुन्दबेदस्तर, मस्तगी, सुरञ्जान तल्ख़ प्रत्येक ३ माशे कूट-छानकर मिलावे।

मरहम बवासीर— नीम की पुरानी लकड़ी २ तोला, गाय का घी ३ तोला, चौकिया सुहागा २ तोला। तीनों को फूल (काँसे) की थाली में नीम के सोंटे से इतना घोंटे कि काला हो जाय। बवासीर के मस्सों पर लगावे।

हब्बे मुक़्लैयन—पीली हरड़ का छिलका, काबुली हरड़ का छिलका, बहेड़ा, आँवला, प्रत्येक ९ माशे, रसौत, अनीशून हरएक ४॥ माशे, तुख्म गन्दाना १ तोला, गुग्गुल १० तोला, गूदा अमलतास १ तोला, बकाइन, नीम प्रत्येक ९ माशे, निशोथ ७ माशे। हरड़ों को घी में भून ले और गुग्गुल को गन्दाना के पानी में पीसकर सब दवाइयों को मिलाकर चने के बराबर गोली बना लेनी चाहिये।

हब्बे बवासीर दमवी—पीली हरड़, काबुली हरड़, गुग्गुल, गिरे अरमानी, गिले फारसी, हीरादोख़ी, सुन्दरस, निम्बोली की गिरी, कीकर का गोंद, आँवला, छड़ीला, बकायन की मींग, माजू, संगजराहत, प्रत्येक ९ माशे। बारतंग के पानी में चने के बराबर गोली बनावे।

उपयोग—खूनी बवासीर के लिये।

सफ़ूफ नअनआ—पोदीना खुश्क १ तोला, साँभर ६ माशा तन्त-ड़ीक ६ माशा, कालीमिर्च ६ माशे। कूट-छानकर चूर्ण बनावे।

गुण—जठराग्नि के लिये गुणकारी है।

हब्बे हाजिम पचलोना—शोरा कलमी, नौसादर, प्रत्येक ७ तोले, नमक स्याह, नमक लाहौरी, नमक साँभर, नमक सेंधा, सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च, समुद्र झाग, जवाखार प्रत्येक १० तोला, जायफल, जावित्री प्रत्येक

१० माशे। कूट-छानकर अर्क नींबू या आर्द्रक के अर्क में चने के बराबर गोलियाँ बनावे।

अर्क हाज़िम--कीकर की छाल ५ सेर, किशमिश और मिश्री २॥ सेर, लहसुन (पोटली में बँधा), लौंग प्रत्येक ६ माशे, अगर १ तोला, सफेद चन्दन ११ माशे, बनफसा की जड़ ९ माशे, मोथा ९ माशे, नीबू की छाल २ तोला, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, शकाकुल, मालम मिश्री, तेजपात, दालचीनी, गुलगाजबाँ प्रत्येक १ तोला, खस २ तोला, बड़ी इलायची के बीज २॥ तोले, जायफल, जावित्री प्रत्येक १ तोला जाफरान ६ माशे, अम्बर ३ माशे। जाफरान और अम्बर की पोटली भपके के मुँह पर रखकर १० बोतल अर्क खींचे।

गुण—हाज़िम है, मेदे को बल देता है। बदन में शुद्ध रक्त बढ़ाता है।

चुटकी—सौंफ, काली छोटी हरड़, पोदीना खुश्क, स्याह मिर्च, साम्भर नरकचूर, सुहागे की खील प्रत्येक ३ माशे कूट-छानकर चूर्ण बनावें। मात्रा आधे माशे से ३ माशे। बालकों की बदहज्मी और मेदे के विकारों के लिये अत्यन्त उपकारी है।

लऊक हैजा—जहरमोहरा, वंशलोचन, नीबू का छिलका, अनार दाना भुना हुआ, तम्तड़ीक, पिस्ते का बाहरी छिलका, जरिश्क, सन्दल श्वेत प्रत्येक १ माशा। सबको पीसकर २ तोले शरबत अनार में मिलावें और थोड़ा-थोड़ा चटावें।

गुण—हैजा, कै और बेहोशी को दूर करता है।

हब्बे हैजा—आक की ताजी जड़ १ तोला, कालीमिर्च ६ माशा, दोनों को अदरख के अर्क में घोंटकर चने के बराबर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—दो-दो घंटे बाद गुलाब और सिकन्जबीन के साथ एक-एक गोली खिलावें।

नमक सुलेमानी खास— साम्भर १२ तोले, नमक हिन्दी १८ तोला, नमक इन्द्रानी १८ तोला, नौसादर १८ तोले, तुरुमकरफ्स ५ तोला, इजखर ४ तोला, सफेद मिर्च २१ तोला, अफस्यामून ७॥ तोला, बालछड़ ७॥ तोला, हींग १॥। तोला, जीरा स्याह १॥। तोला, दालचीनी १४ माशे, सोंठ १४ माशा, अनीसून १४ माशे, स्याह मिर्च ५ तोले। कूट-छानकर चूर्ण बनावे।

हब्बे कबिद नौसादरी—नमक लाहौरी, नमक साम्भर, नमक स्याह, सुहागा, नरकचूर, काली हरड़, पीली हरड़, काबुली हरड़, बायबिडङ्ग, स्याह मिर्च, सोंठ प्रत्येक १ तोला, कूट-छानकर चने के बराबर गोली बनावे।

गुण—यकृत की सख्ती, वृद्धि तथा अन्य रोगों को लाभ देता है। मात्रा २ गोली। पानी के साथ।

माजून तलख—गारीकून ११½ तोले, एलुआ ८½ तोले, तगर, तज, सिकमोनिया प्रत्येक ४ तोले, ७ माशे, मुण्डी, कूट मीठा, बालछड़, अफतीमून, दालचीनी प्रत्येक २ तोले ७ माशे, ऊद बलसां, फरफियून, स्याह मिर्च, सफेद मिर्च, पिप्पली, काला दाना, मिरचिया गन्ध, हमामा, प्रत्येक १ तोला २ माशे। रेवत चीनी १ तोला, मस्तगी १¾ तोला, कूट छानकर २ सेर शहद में मिलाकर माजून बनावे।

गुण—मेदे, जिगर के दर्द, फालिज, लकवा, कमर का दर्द, मसाने की पथरी के लिये उपयोगी है। मात्रा १ माशा से ५ माशा। अर्क सौंफ या मकोइ के साथ।

अर्क फौलाद—बुरादा फौलाद, पोदीना, खुश्क अजवायन खुरासानी प्रत्येक दो छटाँक, त्रिफला, गुड़ प्रत्येक २ पाव, लौंग, जावित्री, जायफल २ छटाँक, जाफरान १ तोला। दस सेर गरम पानी में भिगोकर दस दिन तक धूप में रक्खे, फिर ४ सेर अर्क खींचे।

गुण—जिगर की सूजन को दूर करता है। मात्रा ६ तोले तक।

सफूफनौबत—जहरमोहरा, बंशलोचन, सतगिलोय, छोटी इलायची के बीज, धनिया प्रत्येक ६ माशा कूट-छानकर चूर्ण बनावें।

गुण—बारी के बुखारों के लिये लाभदायक है। मात्रा ३ माशा।

कुर्स काफूर—तुख्म काहु ५ तोला १० माशे, तुख्म खुरफा ४ तोला ४½ माशे, बंशलोचन २ तोला ११ माशे, मुलहठी २ तोला ११ माशे, गुलसुर्ख १ तोला ५½ माशे, धनिया खुश्क १ तोला ५½ माशे, अकाकिया ७ माशे, सफेद चन्दन, गिले अरमानी, गुलनार, प्रत्येक ७ माशे, काफूर १¾ माशे। कूट-छानकर टिकिया बनावें। मात्रा—७ माशे।

गुण—तपेदिक, वृक्क आदि रोगों में।

कुर्स तबाशीर—तुख्म खुफी, गुलसुर्ख, गिले अरमानी, गुलनार,

बंशलोचन, तुख्म काहु प्रत्येक १ तोला कूट-छानकर गुलाब के अर्क में टिकिया बनावें।

गुण—तपेदिक में लाभदायक है।

हब्बे बुखार—कुनैन १ माशा, सत गिलोय २ माशे, कीकर का गोंद १ माशा, बंलेशाचन २ माशे। पानी में पीसकर चने के बराबर की गोली बनानी चाहिये। मलेरिया के लिये उपयोगी है।

पेचिश के लिये—खस १ तोला, बेलगिरी १ तोला, धाय के फूल १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, कूट-छानकर चूर्ण बनावें।

गुण—पेचिश और दस्तों के लिये उत्तम है। मात्रा ६ माशे।

अनुपान—रुब जामुन २ तोले और रुब बेहशीरी २ तोले के साथ।

हब्बे पेचिश—काफूर, माजु, हरड़ पीली, आँवला प्रत्येक १ तोला, जाफरान ६ माशे, बराण्डी या गुलाब में खरल करके चने के बराबर गोली बनानी चाहिये।

गुण—हर तरह की पेचिश को आराम करती है। मात्रा—१ गोली। रात्रि को सोने के समय।

एक छुहारे की गुठली निकालकर उसमें अफीम भर दें। इस छुहारे को गेहूँ के गीले आटे में लपेटकर गरम राख में दबा दें। जब आटा भुन जाय, तो निकालकर चने के बराबर की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ से ३ गोली, दस्तों को बन्द करती है।

हब्बे काबिज—अफीम, कतीरा, भाऊ का फल (कज माजज), तुख्म अस्पत, अकाकिया, गुलसुर्ख, मटर, हब्बुलास, प्रत्येक १ तोला, कूट छानकर कीकर के गोंद के लुबाब में मूँग के बराबर गोली बनावे। एक घन्टे में दस्त बन्द करती है।

हैजे की गोली—कपूर, अफीम, हींग, लालमिर्च के बीज पानी के साथ पीसकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। ½ घन्टे के अन्तर से दी हुई गोली क़ै और दस्तों को बन्द कर देती है।

———

बुखार के नुस्खे.

१—तुख्म खतमी ४ माशे, बनफमा, वर्क गाजबाँ, तुख्म बथुवा प्रत्येक ६ माशे—इनको चार गुने पानी में पकाकर देना चाहिये। यह नुस्खा सर्दी के बुखार के लिये उत्तम है। यदि ज्वर के साथ मलबन्ध हो, तो इसमें शर्बत नीलोफर या गुल नीलोफर भी मिला दें।

२—**यदि ज्वर के प्रारम्भ में शरीर में दर्द हो तो**—खाखर्मी २ माशा, वर्क गाजबाँ ५ माशे, नवात सफेद ६ माशे इनको काढ़ा करके गरम-गरम पीये, जिससे पसीना आजाय।

३—**श्लैष्मिक ज्वर के लिये**—सौंफ ६ माशे, सौंफ की जड़ ६ माशे, मुनक्का ९ दाना इनके काढ़े में १ तोला बनफशे का शर्बत मिलाकर पीयें।

४—**पैत्तिक ज्वर**— (मुख का स्वाद कड़वा रहे)—आलूबुखारा ४ दाना, गाजबाँ ५ माशे, नीलोफर ५ माशे इन तीन को भिगोयें। प्रातः-काल रात्रि को भिगोकर प्रातः छानकर शरबत नीलोफर दो तोला मिलाकर पीना चाहिये।

५—**ज्वर के साथ खांसी और जुकाम हो, तब**— गुलबनफमा ५ माशे, वर्क गाज़बाँ ४ माशे, तुख्म खतमी ४ माशे, लसूड़े (शपिस्ताँ) १० दाने, असल लसूम ४ माशे, सफूफ गन्दम ४ माशे, तुख्म कम्तां ४ माशे, गुल जूफा ४ माशे, नवाल ६ माशे, क्वाथ विधि से इनका चतुर्गुण पानी में काढ़ा करके पीना चाहिये।

६—**ज्वर के साथ (प्यास रहे तब)**—गुलबनफसा ५ माशे. तुख्म खुरफा ३ माशे, तुख्म कासनी ३ माशे, सौंफ ६ माशे, वर्क गाजबां ४ माशे क्वाथ विधि से क्वाथ करके पीयें।

७—**ज्वर के साथ कब्जियत हो तब**—वर्क गाजबां ४ माशे, तुख्मखयारीन ४ माशे, तुख्म पालक ४ माशे, गुल-नीलोफर ४ माशे, सनाय १ तोला, क्वाथ विधि से क्वाथ देवें।

८—**जीर्ण ज्वर के लिये**—पित्तपापड़ा ५ माशे, उन्नाब ५ दाना, वर्क बनफशा ५ माशे, खुब्बाजी ४ माशे, मर्ज तुख्म कद्दू ४ माशे, खाखसी

४ माशे, इनमें खाखसी को छोड़कर शेष सब वस्तुओं को अर्क मकोय में भिगोकर हल्का जोश देकर छान ले। फिर खाखसी फाँककर दवाई पीनी चाहिये।

९—**शीत-ज्वर**—अफीम २ माशे, मिश्री ६ माशे, चन्दन श्वेत ३ माशे, केसर १ माशे, दालचीनी ३ माशे, काली मिर्च ३ माशे, इस चूर्ण की २ रत्ती मात्रा गरम पानी से लेनी चाहिये।

१०—**राजयक्ष्मा (क्षय) के लिये**—तुख्मखुरफा ४ माशे, मगज बेदाना ४ माशे, तुख्म कासनी ३ माशे, तुख्म रिहा ३ माशे, तुख्म इलायची (खुर्द) ३ माशे, कतीरा १ माशा, कीकर का गोंद ३ माशे, खसखस सफेद १ तोला, नबात सबके बराबर कूट-छानकर चूर्ण बना ले। मात्रा ३ माशे।

अनुपान—अर्क गावजबाँ।

११—**ज्वर और काम के लिये चटनी**—बनफशा २ तोला, मगज बादाम १॥ तोला, मगज कद्दू १॥ तोला, मगज खीरा १॥ तोला, कतीरा १॥ तोला, गुलसुर्ख १॥ तोला, सत मुलहठी ९ माशा, गिले अरमानी ९ माशा, निशास्ता ९ माशा, रूमी मस्तगी २ माशा सबका चूर्ण करके मधु में मिलाकर चटनी कर लेनी चाहिये। मात्रा—९ माशे।

१२—**ज्वर, पिपासा, सरसाम (प्रलाप) में**—मगज ख्यारैन २॥ तोले, मगज कद्दू २॥ तोले, तुख्म काहु २॥ तोले, मुलहठी का सत ९ माशे, निशास्ता ९ माशे, कतीरा ९ माशे, अफीम ९ माशे—कूट-छानकर ईसबगोल के लुबाब में लेनी चाहिये। मात्रा—६ माशे

१३—**शिरोरोग (अत्रिफल) में**— पोस्त हलैला, पोस्त हलैला काबुली, हलैला स्याह, बनफसा प्रत्येक दो तोला, तरीद सफेद, कशनीज खुश्क प्रत्येक १ तोला, पोस्त बलेला, आँवला मकसूर (बीजरहित), गुल सुर्ख, तबाशीर, गुलनीलोफर प्रत्येक १ तोला, सन्दल सफेद ६ माशा, कतीरा ६ माशा, रोगन बादाम ६ तोला, उन्नाब ५० दाने, लसोड़ा ५० दाने, सीरा मुरब्बा हलेला २ छटाँक, शहद १॥ पाव।

विधि—लसोड़े और गुलबनफशा को १॥ सेर पानी में रात्रि को भिगोकर काढ़ा करे। १ पाव रहने पर छान ले। फिर और दवाइयाँ डालकर अवलेह बना ले। मात्रा ६ माशे—रात्रि को सोते समय।

१४—हलुवा रोशने दिमाग़—नारियल की गिरी ताज़ी आध सेर, खसखस १ सेर, खोया १ सेर, मगज बादाम आध सेर, मगज कद्दू १ पाव, सन्दल सफेद ७ तोला, दोनों इलायची २ तोला, बसमासा १ तोला, जाफरान १ तोला, बेदमुश्क १ बोतल, दालचीनी १ तोला, मधु २ सेर, शक्कर सफेद २ सेर, गोघृत १ सेर।

विधि—प्रथम तीनों चीज़ों को घी में भूनकर शहद और शक्कर की चाशनी में शेष सब वस्तुओं को मिला देना चाहिये। मात्रा—९ माशे।

१५—ग्रीष्म-ऋतु के लिये सरदाई—मगज़ बादाम ५ दाने, मगज ३ माशे, मगज तरबूज ३ माशे, मगज खरबूजा ३ माशे, मगज खीरा ३ माशे, तुख्म खुरफा ३ मासे, गुल सुर्ख ३ माशे, खसखस ३ माशे, कतीरा १ माशा, लबाब बिहीदाना १ तोला, श्वेत चन्दन ३ माशे, इलायची खुर्द ३ माशे। सरदाई बनाकर पीना चाहिये। मात्रा—९ माशे। आवश्यकतानुसार शर्करा मिला लेनी चाहिये।

१६—मगज आजम (सर्दियों के लिये)—शाहतरा, बादरञ्जबोया, गुल गाजबाँ प्रत्येक ९ माशे, वहमन सफेद, वहमन सुर्ख प्रत्येक ५ माशे, लाजवर्द, तबाशोर, गुलमखूम, जाफरान, दरविञ्ज अकरबी, जलनिम्ब कबाबा, जरनबाद, हलेला काबुली प्रत्येक ३ माशे, आबरेशम; सन्दल सफेद पोस्तबैरूबस्ता, दाना इलायची, याकूत सुर्ख प्रत्येक २ माशे, भरजान, कहरबा प्रत्येक १ माशा, चांदी के वर्क १० नग, शर्करा १ पाव गुलाबजल ३ छटाँक अनार दाना ३ तोला, अर्क निम्बु ३ तोला, जरिश्क ३ तोला।

विधि—कूटनेवाली वस्तुओं को कूटकर, अर्क में चाशनी बनाकर उसमें मिलाकर अवलेह बना लेना चाहिये। मात्रा ९ माशे

१७—गर्मी के कारण सिर-दर्द व जुकाम— खमीरा गाबजबाँ ६ माशे, गुलबनफसा ६ माशे, उन्नाब ५ दाने, लसूड़े ११ दाने, गुल खतमी ४ माशे, शाहतरा ६ माशे, आलूबुखारा ५ दाने, बिहिदाना ३ माशे। रात को भिगोकर प्रातः छानकर इसमें नबात २ तोला मिलाकर खाना चाहिये।

१८—यदि नजला बन्द हो, सिर दर्द हो, ज्वर हो तो—गाज़बाँ ५ माशे, गुलगाज़बाँ ३ माशे, हंसराज ७ माशे, जाफरान ½ माशे

कोकनार सुर्ख ३ माशे, नवात सफेद १ तोला, अर्कमकोय १ पाव क्वाथ करके इसमें खाकसी मिलाकर पीना चाहिये। और शिर पर यह लेप करे—

अफीम, केसर, लौंग, जन्जर्बील प्रत्येक २ माशे कीकर के गोंद के पानी में पीसकर शंख प्रदेश (कनपटी) पर लगाना चाहिये।

१९—त्रिदोष-जनित प्रतिश्याय—उस्त खद्दूस ७ माशे, गुलगाव-जबाँ १ तोला, तुख्म मराद १ तोला, तशर्नाश १ तोला, तुख्म कदू २ तोला, कोकनार २॥ तोला, तुख्म खसखस ३ तोला, इनका क्वाथ करके इसमें तीन भाग शर्करा मिलाकर चाशनी बनानी चाहिये। इस चाशनी में कसनीज १ तोला, गुलसुर्ख १ तोला, मुलहठी का सत, निशास्ता, कीकर का गोंद और कतीरा प्रत्येक १ तोला मिलाना चाहिये। मात्रा ६ माशे।

२०—कास-रोग में—पोस्त खसखस १ माशा, बनफसा १ माशा, निशास्ता १ माशा, कतीरा १ माशा, मुलहठी का सत १ माशा, मगज तुख्म कदू २ माशा, तुख्म खसखस २ माशे, मगज बादाम ४ माशे, नवात ९ माशे, इनको कूट-छानकर लुवाब विहिदाने के साथ गोली बनानी चाहिये।

२१—पेट दर्द के लिये—दरियाई नारियल २ माशे, पपीता ३ माशे, शिकन्जबीन २ तोला, गुलोबनल २ तोला, सिरका या गुलाबजल में दरियाई नारियल मिला करदेना चाहिये।

२२—सूजाक के लिये—छोटी इलायची, तवाशीर संगजराहत प्रत्येक ७ माशे, हजारा अहमद १ तोला।

विधि—चूर्ण बनाकर ७ पुड़िया बना लेनी चाहिये। अनुपान—तण्डु-लोदक।

पिचकारी के लिये—रसौत १ तोला, कत्था सफेद ६ माशे कर्पूर १ माशा, रसकपूर १ माशा, तुत्थ १ माशा, फिटकरी १ माशा, अफीम १ माशा। इनको कूटकर मिट्टी के बर्तन में भिगो देना चाहिये। पानी १ सेर लेना चाहिये। इससे प्रातः काल धोना चाहिये।

२३—धातु पतली हो तो—तालमखाना ५ तोले, खूबकला ५ तोले साबूदाना १ पाव, ईसबगोल की भुस्सी १ पाव, गाय के दूध में पकाकर पीना चाहिये।

२४—हैजे के लिये—हैजे के लिये जहरमोरा, निर्विषी, दरियाई नारियल, प्रत्येक २ माशा, गुलाबजल में घिसकर पोदीने के अर्क के साथ

देना चाहिये। पीने के लिए अर्क गुलाब, अर्क कासनी, अर्क गाजवाँ देना चाहिये।

२५— माजुने बुकरात—गाजर के बीज २½ तोला, सोया २½ तोला, अकरकरा ½ तोला, रूमीमस्तगी ½ तोला, अनीसुन ढाई तोला, अजवाइन २॥ तोले, लौंग ½ तोला, अगर ½ तोला, गुलाब के फूल की कलियाँ तन्तु तोले हैं। सबको बारीक कूटकर इसमें ३५ तोला शहद मिलाना चाहिये। मात्रा—½ से १½ तोला। भोजन के पीछे खाना चाहिये।

उपयोग—लीवर या आमाशय की कमजोरी में।

२६— माजुने नानरवाह—अजवायन, सौंफ, सुवा, गाजर का बीज, गन्धक प्रत्येक ३ तोला, रूमीमस्तगी, लौंग, दालचीनी, अकरकरा, जावित्री प्रत्येक आधा तोला, अगरखान ५ बाल, केसर ६ बाल, कस्तूरी १ बाल और शर्करा ४० तोले। मात्रा ½ से आधा तोला।

उपयोग—मस्तिष्क और आमाशय को शक्ति देता है।

२७— मुसफिया खून— वर्क नीम ३ तोले, शाहतरा ४ तोला, छोटी कटु ३ तोला, आकाशबेल ४ तोला, अनन्तमूल ५ तोला, चोपचीनी ६ तोला, नीलोफर ७ तोला, गुलाब के फूल ३ तोला, मुण्डी ५ तोला, शरफोंका ४ तोला, लालचन्दन ३ तोला, सफेद चन्दन ३ तोला, इलायची छोटी २ तोला, बिस्फायज ३ तोला, गाजबाँ ७ तोला, त्रिफला ९ तोला, उन्नाब १० दाना इनको ७ सेर पानी में २४ घन्टे भिगोकर तीन बोतल अर्क खींचना चाहिये। यदि जरूरत हो, तो 'पोटासियम आयोडाईड' भी मिला सकते हैं।

आँख के लिये

(१) सिल्वर नाइट्रेड २ ग्रेन, तिर्यक पातित जल १ औन्स, आँख के प्रायः आधे रोगों में उपयोगी है, यथा—कुकरों में पानी निकलने पर उपयोगी है।

(२) प्रोटार गोल १० ग्रेन से २० ग्रेन, तिर्यकपातित जल १ औंस, आँख के लिये उपयोगी है, विशेषतः जब आँख पर जोर पड़ता हो।

(३) येलो ऑक्साईड ऑफ मर्करी २ ग्रेन-४ ग्रेन, सफेद पैराफीन

१ औंस, यह आँख की पलकों में खुजली के लिये, बाल गिरने में उपयोगी है।

कान के लिये

(४) टिंचर ओपयाई २ ड्राम, टिंचर बैलाडोना २ ड्राम, ग्लीसरीन १ औंस, कान के दर्द में उपयोगी है। विशेषतः यदि पोस्त के डोडों की सेंक करके यह डाला जाय।

(५) कार्बोलिक एसिड ६ बूँद, हाईड्रोक्लोराईड ऑफ मॉर्फिया ३ ग्रेन, ग्लीसरीन १ औंस, कान के तीव्र शूल को भी शान्त कर देता है।

(६) बोरिक एसिड १० ग्रेन, रैक्टोफाईड स्प्रिट १ ड्राम, पानी १ औंस तक होजाय इतना। कान में जब सुनाई न दे, तब उत्तम है, या पीब आती हो।

दाढ़ के दर्द के लिये

(७) लौंग का तेल विलायती १ ड्राम, टिंचर ओपयाई २ ड्राम, ईथर १॥ ड्राम ग्लैसरीन २ ड्राम दाँत की गुहा साफ करके इसमें एक दवाई से भीगी हुई रुई उस गुहा में रखनी चाहिये।

(८) थाईमोल १ ड्राम, मैन्थाल १ ड्राम, कपूर २ ड्राम कार्बोलिक एसिड २ बूंद, लौंग का तेल १० बूंद, इलायची का तेल १० बूंद, रुई में लगाकर दाढ़ में लगाना चाहिये।

(९) क्लोरल हाइड्रेट १ ड्राम, कपूर १ ड्राम मैन्थोल १ ड्राम क्लोरोफार्म १० बूंद दांत के दर्द को एक दम से आराम करता है।

(१०) **दन्तमञ्जन**—फिटकड़ी भूनी हुई ३० ग्रेन सुहागे की खील ६० ग्रेन कत्था २ ड्राम, शीतल चीनी का चूर्ण, १ ड्राम कपूर २० ग्रेन एसिड कार्बोलिक १० बूंद कीओजोट ५ बूंद यूक्लिपटिस का तेल, २० बूंद चौक का चूर्ण १ औन्स

गले में लगाने की औषधियाँ

११—आयोडीन ६ ग्रेन, पोटासियम आयोडाइड २४ ग्रेन, ऑयल पीपरमेंट १५ बूँद, ग्लीसरीन १ औन्स गले की सूजन पर लगाने की उत्तम दवाई है।

१२—टैनिक एसिड दो ड्राम या टिंचर फैराई परक्लोराईड दो ड्राम, ग्लैसरीन १ औंस ट्रौंसिल गल-ग्रन्थि को आराम देती है।

१३—मैन्थोल १ ड्राम, पैराफीन लिक्विड १ औंस यह भी गले की सूजन को आराम करती है।

१४—मसूड़ों से ख़ून आता हो तो—टिंचर आयोडीन रैक्टीफाईड १ ड्राम, टिंचर मर १ ड्राम, ग्लैसरीन मसूड़ों पर लगाना चाहिये।

कुछ उपयोगी मिश्रण—

१५—सोडा बाई कार्ब या सल्फो कार्बनास १० ग्रेन, मैगनेसियम कार्ब २० ग्रेन, मैगनेसियम सल्फास ३ ड्राम, पानी पिपरमैन्ट वासिल १ औंस अपक्व या आमातिसार में उपयोगी है। प्रवाहिका के प्रथम में भी उपयोगी है।

१६—पोटासियम एसिटेट १० ग्रेन, पोटासियम साईट्रेट १० ग्रेन, लाइकर एमोनियम एसिटेट या साईट्रेट १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी ३० बूँद सोडियम सैलिसिलेट १० ग्रेन, टिंचर सिनकोना कम्पाउन्ड १५ बूँद, पानी कपूर वासित १ औंस इस प्रकार की एक-एक खुराक २-४ घंटे के अन्तर से देने पर ज्वर उतर जाता है, पसीना आता है।

१७—सोडीयम सैलिसिलेट १० ग्रेन, पोटासियम आयोडाईड ५ ग्रेन, पोटासियम बाई कार्ब १० ग्रेन, टिंचर ग्वाइकोल एमोनेट १५ बूँद, वाइनम कोलचिसाई १० बूँद, टिंचर हाई सोयमस ३० बूँद, सोडियम सल्फस १ ड्राम पानी १ औंस यह दवाई गठिया में विशेष उपयोगी है।

१८—पोटासियम एसिटेट या साईट्रेट १० ग्रेन, यूरोट्रोपीन १० ग्रेन, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी १५ बूँद, लाईकर एमोनियम एसिटेट ३० बूँद, टिंचर हाईसोमस १५ बूँद, टिंचर क्लोरोफार्म कम्पाउन्ड १० बूँद, इन्फ्युजन बक्कु १ औंस, टिंचर नक्सवोमिका ५ बूँद, यह प्रयोग पेशाब लाने के लिये उपयोगी है।

१९—क्युनीन सल्फास या हाइड्रोक्लोरेट १ ग्रेन, एस्पायरीन ३ ग्रेन, एक्जालजीन २ ग्रेन, कैफीन साईट्रेट २ ग्रेन, इसको शिर-दर्द के लिये ठण्डे पानी के साथ देना चाहिये।

२०—अमोनियम क्लोराईड ५ ग्रेन, डोवर्स पाउडर ५ ग्रेन, क्युनीन सल्फ २ ग्रेन, प्रतिश्याय के लिये नाक बहती हो, तो उत्तम है।

२१—मैगनेसियम सल्फास १ ड्राम, लाइकर हाईड्राजराई परक्लोराईड १५ बूँद, टिंचर हाई सौमस १५ बूँद, एसिड सल्फ्युरिक डाईल्युट १० बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूँद, लाईकर मॉर्फीया हाइड्रो क्लोराईड १२ बूँद, पानी दालचीनी का १ औंस, यह डिसैनरी-प्रवाहिका के लिये उत्तम मिश्रण हैं।

२२—विस्म्युथ सब नाईट्रेट १० ग्रेन, सैलोल ५ ग्रेन, डोवर्स पाउडर १० ग्रेन, सोडा बाई कार्ब १० ग्रेन, दस्तों के लिये प्रवाहिका के लिये उत्तम है। इसको पानी के साथ देना चाहिये।

२३—पोटासियम ब्रोमाईड ५ ग्रेन, कैलसियम क्लोराईड १० ग्रेन, मैगनेसियम सल्फास १ ड्राम, शरबत २ ड्राम, पानी १ औंस शरीर पर खुजली हो, या छपाकी शीत-पित्त उठता हो, तो यह दवाई उत्तम है।

२४—फैराई एट एमोनियम या क्वीनन साईट्रेट ५ ग्रेन, टिंचर कोलम्बिया १५ बूँद, टिंचर नक्सवोमिका ५ बूँद, टिंचर जैन्शन कम्पाउन्ड मैगनेशियम सल्फ १ ड्राम, लाइकर आर्सनिक हाइड्रोक्लोर ३ बूँद, लाईकर स्ट्रिकनीन २ बूँद, पानी तिर्यक पातित १ औंस ज्वर के पीछे की कमजोरी के लिये भोजन के पीछे दोनों समय आध घंटे पीछे लेना चाहिये।

२५—एसिड गैलिक १ ड्राम, गोंद १५ ग्रेन, एक्सट्रेट एरगट लिक्वड १ ड्राम, टिंचर सिन्कोना कम्पाउन्ड १ ड्राम, हैजेलिन ४ ड्राम, टिंचर हैमेमैलिड ३० बूँद, सोडा सल्फ १ ड्राम, स्प्रिट क्लोरोफार्म १ ड्राम, पानी सौंफ वासित ६ औंस यह प्रयोग बवासीर के लिये अति उत्तम है। खून पड़ता हुआ भी इससे रुक जाता है। मस्सों पर डौलिक कम औपयाई का प्रलेप लगाना चाहिये।

२६—अमोनिया कार्ब ५ ग्रेन, पोटासियम आयोडाइड ४ ग्रेन, स्प्रिट एमोनियम एरोमैटिक ३० बूँद, वाईनयम एपिकाक १० बूँद, टिंचर सिल्ला १५ बूँद, टिंचर डीजीटेलस ५ बूँद, टिंचर नक्सवौमिका ५ बूँद, ब्राण्डी २ ड्राम, पानी १ औंस यह प्रयोग निमोनिया में अच्छा है। इससे

बलगम निकल जाता है, ताकत बनी रहती है। दिन में ३ घन्टे के अन्तर मे देना चाहिये।

२७—टिंचर बेलोडोना ५ बूँद, टिंचर कैनबिस इन्डिका ५ बूँद, टिंचर एसफिटेडा ३० बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूँद, पानी १ औंस। इसमें टिंचर नैक्सवोमिका ५ बूँद और टिंचर हाईसोमस ३० बूँद मिला दी जाय, तो पेट के दर्द के लिये बहुत ही उत्तम प्रयोग हो जाता है।

२८—स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक २० बूँद, पोटाशियम ब्रोमाईड ५ ग्रेन, टिंचर वैलेरियन एमोनेटा १५ बूँद, टिंचर एसेफिटेडा १५ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूँद, पानी १ औन्स, यह प्रयोग हिस्टीरिया या मृगी रोगों के लिये उत्तम है। दिन में दो या तीन बार देना चाहिये।

२९—टिंचर क्युवब २० बूँद, ऑयल कोपायवा २० बूँद, ऑयल सैण्डल १० बूँद, स्प्रिट ईथरनाईट्रोसी २० बूँद, टिंचर हाइसोमस २० बूँद, म्युसीलेज १५ ग्रेन, इन्फ्युजन कक्कु ४ ड्राम, पानी १ औन्स, यह प्रयोग गनोरिया के लिये उत्तम है। तीन-चार बार देना चाहिये।

३०—लाईकर एट हाईड्राजराई आयोडाईड ५ बूँद, पोटाशियम आयोडाईड, ५ ग्रेन, लाईकर हाईड्राजराई परकीराइड २० बूँद, सार्सापरैला १ ड्राम, पानी १ औन्स, यह प्रयोग सिफलिस उपदंश की पुरानी अवस्था में उपयोगी है। इसमें सीरप ट्रिफोली ४ ड्राम मिला सकते हैं।

३१—पोटाशियम ब्रोमाईड, सोडीयम ब्रोमाईड, अमोनियम ब्रोमाईड, प्रत्येक ५ ग्रेन, पानी १ औन्स, यह प्रयोग स्वप्न-दोष के लिये उत्तम है।

३२—बादाम का तेल १५ बूँद, ऑयल राजमेरी २२ बूँद, स्प्रिट रैक्टीफाईड ८ बूँद, लाइकर एविस्टैक्सीसे २२ बूँद, टिंचर जैबटैन्डि १५ बूँद, ग्लैसरीन दो ड्राम, पानी १ औन्स बालों को गिरने से बचाता है। बाल बढ़ाता है।

३३—पोटाशियम आमोडाईड ५ ग्रेन, स्प्रिट एमोनियम एरोमैटिक २० बूँद, टिंचर लैवेलिया ईथर ५ बूँद, टिंचर स्ट्रमोनसियम ५ बूँद, एडर नैलिन क्लोराईड सोल्युशन १० बूँद, वाइनम एपिकाक ८ बूँद, टिंचर सिल्ला ८ बूँद, शरबत रोज १ ड्राम, पानी १ औन्स। दमे के लिये अति उपयोगी है। दिन में तीन बार देना चाहिये।

३४—एसिड हाइड्रोसैनिकडाईल्यूट ३ बूँद, टिंचर वैलोडोना ५ बूँद, टिंचर क्लोरोफार्म कम्पाउन्ड ८ बूँद, टिंचर कैन्विसइण्डिका ४ बूँद, टिंचर नैक्सवोमिका ५ बूँद, टिचर हाईसोमस १५ बूँद, पानी सौंफ का १ औंस।

इस प्रकार की तीन ख़ूराक देने से वमन, दर्द रुक जाता है।

३५—टिंचर वैलोडोना ६ बूँद, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ३० बूँद, स्प्रिट ईथर ३० बूँद, एसिड हाइड्रोसैनिक डाइल्यूट ३ बूँद, टिंचर हाइ-सोमस ३० बूँद, शरबत १ ड्राम, पानी १ औंस।

यह कुकुरखाँसो में लाभदायक है।

३६—क्लोरोफार्म २ बूँद, वाइम एपिकाक १० बूँद, टिंचर वैलोडोना २ बूँद, पानी १ औंस।

इसको चार खूराकों में विभक्त करके ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

३७—टिंचर कैप्सिसाई, ३० बूँद, टिंचर एसेफिरेडा २ ड्राम, टिंचर ओपयाई २० बूँद, स्प्रिट कैम्फर १ ड्राम, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १ ड्राम, टिंचर जिंजीबेरिस २ ड्राम, पानी क्लोरोफार्म वासित ३ औंस।

इसमें टिंचर हाइसोमस ३० बूँद, टिंचर वैलोडोना ३ बूँद भी मिला सकते हैं। इससे पेट का दर्द कम होता है। विशेषत: जो नाभि के चारोंओर रहता है।

३८—सोडा सल्फोकार्बनास या बाईकार्ब १० ग्रेन, सोडियम सल्फेट ३० ग्रेन, सोडियम क्लोराइड १० ग्रेन, सोडियम सैलिसलेट ५ ग्रेन, सोडियम वैंझोआस ३ ग्रेन।

इसको १ पाव गरम पानी में देने से शूल-ज्वर को आराम होता है।

३९—आमोनियम क्लोराइड ८ से १० ग्रेन, सोडियम वैंजोआस १० ग्रेन, सोडियम सल्फास १ ड्राम, बाइनम एपिकाक १० बूँद, टिंचर योनियम ८ बूँद, एक्सट्रैक्सीमाइ ४० बूँद, टिंचर पोडोफिलाना १० बूँद, पानी १ औंस।

यकृत-शोथ के लिये, कामला के लिये, पित्त-नि:सारक उत्तम है।

४०—फैराई सल्फास २ ग्रेन, क्युनीन सल्फास ५ ग्रेन, मैगने-सियम सल्फास ४ ड्राम, एसिड सल्फ्यूरिक डाइल्युट १० बूँद, टिंचर नैक्स-

वोमिका ५ बूँद, लाइकर आर्सनिक हाइड्रो क्लोराइड ३ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूँद, पानी १ औन्स।

इस प्रकार की ८ ख़ुराकें बनानी चाहिये। भोजन करने के आध घण्टे पीछे देना चाहिये। दिन में दो बार पीना चाहिये।

४१—एक्सट्रैक्ट अरगट लिक्विड ३० बूँद, एसिड गैलिक ७ ग्रेन, एसिड सल्फ्यूरिक डाइल्यूट १० बूँद, टिंचर ओपयाई (यदि दर्द हो, तो) १० बूँद, पानी १ औंस।

यह प्रयोग गर्भपात में तथा प्रसव के पीछे होनेवाले रक्त-स्राव में उपयोगी है। इसी प्रकार रक्तार्त्तव में भी उपयोगी है।

४२—मैन्थोल १५ ग्रेन, कपूर १५ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट बैलोडोना २० ग्रेन, एक्सट्रैक्ट ओपयाई २० ग्रेन, ऑयल काजपुटी ४ ड्राम, ओलिव ऑयल २ ड्राम।

इसको दर्द के स्थान पर लगाना चाहिये। यह दर्द के लिये उत्तम है।

४३—एसिड सल्फ्यूरिक डाइल्यूट ५ बूँद, टिंचर ओपयाई ५ बूँद, टिंचर काइनो १० बूँद, टिंचर कैटक्यु १० बूँद, पानी क्लोरोफार्म वासित १ औंस।

सब प्रकार के दस्तों के लिये उपयोगी है।

४४—क्युनीन सल्फास ५ ग्रेन, एसिड हाईड्रोक्लोरिक डाइल्यूट ५ बूंद, एक्सट्रैक्ट एरगट लिक्विड ३० बूंद, पानी १ औंस।

यह प्रयोग प्रसूतज्वर में उपयोगी है।

४५—एक्सट्रैक्स एरगट लिक्विड २० बूँद, लाईकर फैराई परक्लोराईड १० बूँद, एसिड साइट्रिक १० ग्रेन, पानी क्लोराफार्म वासित १ औंस।

रक्तस्राव में उपयोगी है।

४६—सोड़ा बैनज़ोआस ३ औंस, सोड़ा बाईकार्ब ४ ड्राम, ग्लैसरिन बोरिक २० ड्राम, मैन्थोल ½ ग्रेन, थाईमोल २ ग्रेन, स्प्रिट रैक्टीफाई ५ ड्राम, टिंचरकोकाई १ ड्राम, पानी २० औंस।

इसमें से १ ड्राम लेकर, १५ औंस पानी में मिलाकर गलाले करने से गले की शोथ कम हो जाती है।

४७—स्प्रिट ईथर ३० बूँद, लौंग का तेल ५ बूँद, ओयल काजपुरी ५ बूँद, ओयल जमुनीपुर ५ बूँद, एसिड सल्फ्यूरिक एरोमैटिक १५ बूँद।

इसके १ ड्राम को आधे औंस पानी में मिलाकर प्रत्येक आधे घन्टे के अन्तर में हैजे में देना चाहिये जबतक कि वमन और दस्त बन्द न हो जाय।

४८—एमोनिया कार्ब ३ ग्रेन, टिंचर सिला १० बूँद, लाइकर एमोनिया एसिटेट १ ड्राम, टिंचर डिजिटेलस ५ बूँद, टिंचर नक्सवॉमिका ५ बूँद, स्प्रिट कैम्फर १० बूँद, पानी दालचीनी सुवासित १ औंस।

यह प्रयोग इन्फ्लुयंजा के लिये उत्तम है।

४९—क्युनीन सल्फास ३ ग्रेन, मैगनेसिया सल्फास १ ड्राम, सोडियम सल्फास १ ड्राम, लाईकर एमोनिया एसीटेड १ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाईट्रोसो १५ बूँद, चीनी १ औंस।

यह मलेरिया के ज्वर में जब १०३ से ऊपर न हो, तो उत्तम है। विशेषत: जब मलबन्ध हो, तो।

५०—कैलशियम सल्फाईड ५ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब ८० ग्रेन।

इसकी १२ पुड़िया बनानी चाहिये। दिन में चार पुड़िया पानी के साथ लेना चाहिये। उपयोग—गुमड़ों के लिये।

५१—(१) सोडाबाई कार्ब ६० ग्रेन, सोडासाईट्रीट ४० ग्रेन, टिंचर, कार्डियम १५ बूँद, टिंचर जींजी बेटस १० बूँद, पानी १ औंस। (२) क्युनीन सल्फास १० ग्रेन, एसिड साइट्रिक ३० ग्रेन, मैगनेशिया सल्फ ६० ग्रेन, पानी १ औंस।

प्रथम नम्बर (१) देकर, उसके ३ घन्टे पीछे नम्बर (२) देना चाहिये और फिर ३ घन्टे पीछे नम्बर (१) देना चाहिये। इस प्रकार ३-४ खुराक देने से मलेरिया ज्वर चला जाता है।

५२—हाइड्रार्जराई कमकीटा २ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब १० ग्रेन।

इसकी चार पुड़िया बनानी चाहिये। यह उपदंश के प्रारम्भ में उत्तम है। इसमें डोवस पाउडर भी मिला सकते हैं।

५३—जींक ऑक्साईड १ ड्राम, कैलेमीना प्रिपेरेटा १ ड्राम, गन्धक १ ड्राम, एसिड बोरिक १ ड्राम, कपूर २० ग्रेन, इक्थोल २० ग्रेन, डरमेटोल २० ग्रेन, वेसलीन १ औंस।

यह प्रलेप विसर्प के लिये उत्तम है।

५४—इक्थोल १ ड्राम, जिंक ऑक्साईड १५ ग्रेन, एसिड बोरिक २० ग्रेन, रिसौर्सिन १० ग्रेन, गन्धक ५ ग्रेन, वैसलिन १ औंस।

इससे व्रण अच्छे होते हैं।

५५—एसिड क्राइसोफैनिक १० ग्रेन, लाईकरपिडटजार्नी १५ बूँद, हाइड्रोजराई एमोनेटा २० ग्रेन, गन्धक १० ग्रेन, वैसलिन १ औंस।

इसमें इक्थोल भी मिला सकते हैं। दाद के लिये उत्तम प्रयोग है।

५६—पोटाशियम आयोडाईड ३ ग्रेन, आमोनिया कार्बनास ५ ग्रेन, वाइन एपिकाक ७ बूँद, टिंचर सिल्ला १० बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूँद, स्प्रिट ईथर २० बूँद, इन्फ्युजन सैनेगा १ औन्स, बलगम निकालने के लिये उत्तम प्रयोग है, इसमें एमोनियम क्लोराइड ५ ग्रेन मिला दो तो उत्तम है।

५७—टिंचर स्क्विल १० बूँद, टिंचर कैम्फर एमोनेटा ३० बूँद, वाइन एपिकाक १० बूँद, सिरप बालसम टोलू २० बूँद, म्युसीलेज २ ड्राम, पीपरमेन्ट का पानी १ औंस, यह गले की खारिश, शुष्क खाँसी को आराम करता है।

गोलियाँ

५८—फेराई आर्सनास $\frac{1}{2}$ ग्रेन, क्युनीन सल्फास २ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट नैक्स वोमिका $\frac{1}{4}$ ग्रेन, एलोयन $\frac{1}{2}$ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हाईसोमस $\frac{1}{2}$ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट जैन्शन गोली के लायक। इस प्रकार ३० गोलियाँ बनाकर भोजन के $\frac{1}{2}$ घन्टे पीछे दोनों समय खानी चाहिये।

५९—पोडो फीलेन रैज़ीना $\frac{1}{4}$ ग्रेन, एलोयन $\frac{1}{2}$ ग्रेन, ईरंडीन $\frac{1}{4}$ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट नैक्सवोमिका $\frac{1}{4}$ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट वैलाडोना $\frac{1}{8}$ ग्रेन, इयोनोमिन $\frac{1}{3}$ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हाईसोमस $\frac{1}{4}$ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट जैन्शन गोली के लायक। यह गोलियाँ जिगर को शक्ति देती हैं, पित्त को निकालती हैं। इसमें 'पल्व एपिकाक' को भी $\frac{1}{4}$ ग्रेन मिला सकते हैं।

६०—मिट्टी का तेल १ औंस, नारियल का तेल १ औंस, नारंगी का तेल १ औंस, इसको त्वचा पर लगाने से मच्छर नहीं काटते।

६१—नैपथैलिन का चूर्ण ९६ भाग, क्रीयेज़ोट २ भाग, आयडोफार्म २ भाग। कपड़ों पर छिड़कने से खटमल या पिस्सू नहीं लगते।

६२—सोडाबाई कार्ब १० ग्रेन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ३० बूँद, टिंचर कार्डियम को ३० बूँद, टिंचर कार्बनेटिव कम्पाउन्ड २० बूँद, टिंचर

जिंजेबेरिस ३० बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म २० बूँद, पानी पिपरमेन्ट वासित १ औंस, भोजन पचानेवाला, वायु के साफ करनेवाला, उत्तम मिश्रण है। मलबन्ध हो, तो इसमें "कास्करा सैगरैटा लिक्विड" २ ड्राम या एक्सट्रैक्ट सैनालिक्विड २ ड्राम मिला सकते हैं।

६३—टिंचर कैठेन्च्यु ३० बूँद, सीरप जींजर ३० बूँद, एरोमैटिक चॉक पाउडर २० ग्रेन, पिपरमेन्ट वाटर १ औन्स। यह दस्तों के लिये उत्तम है। इससे दस्त बन्द हो जाते हैं।

६४— सोडियम फॉस्फेट ३० ग्रेन, टिंचर पोडोफलाई ५ बूँद, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १५ बूँद, एक्वाक्लोरोफार्म १ औन्स, यकृत-जन्य अजीर्ण के लिये उत्तम है, दिन में तीन बार लेना चाहिये।

६५—क्लोरोफार्म २ बूँद, सल्फ्युरिक ईथर १० बूँद, आयल कैरोफ्लाई २ बूँद, कियेजोट २ बूँद, एसिड हाइड्रोसैनिक डिल ५ बूँद, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ३० बूँद, ब्रांडी २ ड्राम, टिंचर ऑफ वेलरीयन ½ ड्राम, पानी १ औंस, यह मिश्रण थोड़ा-थोड़ा दो-दो घन्टे से पीना चाहिये। हिचकी में उपयोगी है।

६६—एसिटेट निलाहाईड २ ग्रेन, क्युनीन सैलीसिलेट १ ग्रेन, कैफीन सायट्रेट १ ग्रेन इसकी एक पुड़िया बनानी चाहिये। ६ घन्टों के बीच में दो से अधिक नहीं लेना चाहिये। आधीशीशी शिर-दर्द में उपयोगी है।

६७—लाइकर आरसैनिक कैलिस ३ बूँद, पोटाशियम साईट्रेट १५ ग्रेन, वाइनम कोलचिसाई ५ बूँद, टिंचर सोमीसीप्यूज ८ बूँद, सीरप औरनशाई १॥ ड्राम, एक्वा डिस्टेलेटा १॥ औंस। भोजन के पीछे थोड़ा पानी मिलाकर दिन में तीन बार लेना चाहिये। आमवात-जन्य सन्धि-शोथ में उपयोगी है।

६८—एसिड आर्सैनिका $\frac{1}{३२}$ ग्रेन, रिड्यूस्ड आयरन २ ग्रेन, क्युनीन सल्फास १ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट जैन्शन पर्याप्त मात्रा में दिन में दो बार भोजन के पीछे पुराने मलेरिया के लिये उपयोगी है।

६९— एसिड बैनजोइक २ ग्रेन, कैम्फर १ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट बैलेडोना $\frac{1}{४}$ ग्रेन एक गोली प्रत्येक रात्रि में लेना चाहिये। रात्रि में होनेवाले मूत्रस्राव या स्वप्न-दोष के लिये।

७०—सोडाई बैंजोआस २० ग्रेन, टिंचर वक्कु ३० बूँद, टिंचर

हाईसायमस १५ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूँद, डिकोक्शन पैरी १ औंस, जौ के पानी के साथ प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से लेना चाहिये। मूत्राशय के विक्षोभ में उपयोगी है।

७१—ग्लैसरीन एसिड बोरिक १ औन्स, ग्लैसरीन एसिड कार्बोलिक १ ड्राम, ऑयल गैल्युथोरा १५ बूँद, ऑयल मैन्था प्रिपेरेटा १५ बूँद, यूकिल-पटोल १५ बूँद, थाईमोल ३ ग्रेन, स्प्रिट रैक्टीफाई ३ औंस, एक्वा डिस्टीलेटा ८ औंस। यह प्रयोग मुँह के धोने के लिये उत्तम है, यह 'लिस्टरीन' से मिलता है।

७२—ग्लैसरीन एसिड कार्बोलिक २ औंस, ग्लैसरीन एसिड टॉनिक ६ औंस। इनमें से एक छोटा चम्मच लेकर १० औंस पानी में मिलाकर प्रातः-सायं योनि का प्रक्षालन करना चाहिये। यह प्रसवकालीन स्वच्छता के लिये उत्तम है।

७३—एसिड हाइड्रोसैनिक डाइल्यूट ३ बूँद, लाइकर विस्म्युथ ३० बूँद, सोडा बाई कार्ब २० ग्रेन, लाइकर मोर्फीया हाइड्रोक्लर ८ बूँद. स्प्रिट क्लोरोफार्म ८ बूँद, एक्वामैन्था १ औन्स; आमाशय के विक्षोभ के लिये उत्तम है।

७४—कोकीन हाइड्रोक्लोरस ८ ग्रेन, एसिड हाइड्रोसैनिक डाइल्यूट ३० बूँद, ग्लैसरीन ४ ड्राम, कार्बोलिक लोशन (२३ %) ८ औंस. भग-प्रदेश की कण्डू के लिये उत्तम घोल है।

७५—एसिड सल्फ्युरिक एरोमैटिक १० बूँद, टिंचर ओपयाई ५ बूँद, टिंचर कैप्सीसाई ३ बूँद, टिंचर कार्डम को ३० बूँद, एक्वा सिवनमाई १ औंस। ग्रीष्म कालीन अतिसार के लिये उपयोगी है।

७६—लाइकर एमोनिया एसिटेट २। ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई १५ बूँद, वाइनम एन्टीमोनियल १५ बूँद, सीरप टोलु ३० बूँद, मिक्सचर एमैगडीला २ ड्राम, एक्वा कैम्फर १ औंस। कास के लिये उत्तम है। प्रत्येक चार घन्टे से लेना चाहिये।

७७—कैफिन साइट्रेट ३ ग्रेन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १५ बूँद, टिंचर वैलेरीयन एमोनैटा १५ बूँद, सीरप जींजीबर ३० बूँद, एक्वा सीवन-मई १ औंस, वात-जन्य शिर-दर्द के लिये उत्तम है।

७८—अमोनियम क्लोराईड १५ ग्रेन, टिंचर जैल्सीमाई १० बूँद,

टिंचर एकोनाइट २ बूँद, एक्सट्रैक्ट कोला लिक्विड ३० बूँद, एक्सट्रैक्ट आ लिक्विड ३० बूँद, एक्वा क्लोरोफार्म १ औंस; शिर-दर्द के लिये, वात-जन्य पीड़ा के लिये उत्तम है।

७९--अमोनियम क्लोराईड १ ड्राम, स्प्रिट रैक्टीफाई १ औंस, एक्वा रोज़ (गुलाब का अर्क) ६ औंस; सूजे हुये अण्डकोषों पर उपयोगी है। इसमें भीगा हुआ कपड़ा रखना चाहिये।

८०--एक्सट्रैक्ट अरगट ग्रेन, एपीओल ३ बूँद। एक पुड़िया दिन में तीन बार लेनी चाहिये।

उपयोग--ऋतु न आने में या कष्टार्त्तव में।

८१--टिंचर एपोसाइनम १० बूँद, टिंचर डिजीटेलिस ५ बूँद, टिंचर स्ट्रिकनीन २ बूँद, एक्वा क्लोरोफार्म १ औंस। दिन में तीन बार लेना चाहिये।

उपयोग--'यूरीमिया' रोग में।

८२--बाल्सम टोलु १ ड्राम, ऑयल बीगीला एक औंस, टिंचर कैम्फर को दो ड्राम, सीरप प्रनी करजैनी ४ ड्राम, एक्वा सेन्टीला ८ औंस। एक मात्रा प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से लेनी चाहिये।

उपयोग--कास-रोग में--श्वास-नलिका के विक्षोभ से होनेवाली।

८३--टिंचर बैलाडोना २ बूँद, क्लोरोफार्म २ बूँद, वाइनम एपीकाक ५ बूँद, मिक्श्चर एमैगडीला २ ड्राम, एक्वा एक औंस।

उपयोग--कुक्कुर-कास में उत्तम है।

८४--टिंचर कैन्जोयन कम्पाउन्ड २० बूँद, वाइनम एपिकाक ८ बूँद, सीरप प्रनी बरजैनी ३० बूँद, म्युसीलेज एकाशिया ३० ग्रेन, एक्वा एनीसाई १ औंस। पुरानी कास के लिये उपयोगी है। दिन में तीन बार लेना चाहिये।

८५--बिस्म्युथ कार्ब २ ग्रेन, सैलोल आधा ग्रेन, पल्व ट्रैगन्थ कम्पाउन्ड ३ ग्रेन, सीरप औरन्साई ८ बूँद, एक्वा एनैथी १ औंस। बच्चों के अतिसार के लिये उपयोगी है।

८६--ब्युटाईल क्लोरल हाइड्रेट ३ ग्रेन, फिनेजोन ५ ग्रेन, स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूँद, एक्वा मैन्थाप्रपेरेटा १ औंस।

६ घन्टों में दो से अधिक मात्रा नहीं लेनी चाहिये। फेसियल न्युरैल, जीया के लिये उत्तम है।

८७--पल्व क्रीटा एरोमैटिक कम ओपयाई १५ ग्रेन, टिंचर कैटेक्यु

३० बूँद, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १० बूँद, सीरप जिंजीबेरिस एक ड्राम, एक्वा पिपरमेंट एक औंस। प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से लेना चाहिये। अतिसार में उपयोगी है।

८८—टिंचर कैनबिस इंडिका १० ग्रेन, फिनेजोन ८ ग्रेन, गम एकाशिया ३० ग्रेन, एक्वा क्लोरोफार्म १ औंस। गृध्रसी—स्याटिका या वातिक-शूल के लिये उपयोगी है।

८९—एक्सट्रैक्ट कैनबिस इंडिका आधा ग्रेन, पल्व ओपियाई आधा ग्रेन, कैम्फर २ ग्रेन। एक गोली बनानी चाहिये। कम्पात्तव में उपयोगी है।

९०—एक्सट्रैक्ट कैनबिस इंडिका आधा ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हाइडैसियम कैम्फर एक ग्रेन।

९१—टिंचर कैप्सीसाइड ५ बूँद, एसिड सल्फ्युरिक एरोमैटिक १० बूँद, टिंचर ओपियाई ५ बूँद, सीरप औरन्साई आधा ड्राम, एक्वा कैम्फर १ औंस। दिन में तीन बार लेनी चाहिये।

उपयोग—अतिसार में उपयोगी है।

९२—सीरियाई ऑक्सीलास ४ ग्रेन, बिस्म्युथ सैलिसिलास ५ ग्रेन, कोकीन हाइड्रोक्लोरास ½ ग्रेन। गर्भावस्था में होनेवाली वमन के लिये उपयोगी है।

९३—क्लोरल हाइड्रेट १० ग्रेन, पोटाशियम ब्रोमाइड १० ग्रेन, टिंचर हाईसैामस १० बूँद, एक्सट्रैक्ट ग्लिसराइ जा लिक्विड ३० बूँद, एक्वा कैरोड एक औंस। नींद लाने के लिये उत्तम है।

९४—कोकेन २० ग्रेन, एसिड औलिक ३० ग्रेन, कैम्फर ३० ग्रेन, स्प्रिट रैक्टीफाई ३० बूँद, लैनोलीन ४ ड्राम, पैराफीन मोली ४ ड्राम। अर्श के लिये उपयोगी है।

९५—सीरप कोडिना ३० बूँद, लाइकर पीर्सी एरोमैटिक १० बूँद, एलिक्जियर हीरोईन टैरीपीन कम्पाउन्ड १ ड्राम। यह मात्रा कई बार चाटनी चाहिये। यक्ष्मा-जन्य-कास के लिये उत्तम है।

९६—एसिड टैनिक १० भाग, एसिड बैंजोइक ५ भाग, बाल्सम पीटन २ भाग, कौलोडियल फ्लैक्स २३ भाग। एक उत्तम रक्त-स्तम्भक है।

९७—टिंचर कौनवेलेरिया ५ बूँद, लाइकर ट्राईनाईट्रीन एक बूँद,

टिंचर नैक्स वोमिका ३ बूँद, स्प्रिट ईथरीस कम्पाउन्ड १५ बूँद, एक्वा डिस्टिल्ड एक औंस।

दिन में तीन बार लेना चाहिये। हृदय के लिये उत्तम शक्तिवर्द्धक है।

९८—टिंचर कोटो २० बूँद, टिंचर बैलेडोना ३ बूँद, टिंचर नैक्स-वोमिका ३ बूँद, टिंचर कारमीरी ३० बूँद, एका १ औंस। पुरानी प्रवाहिका के लिये उत्तम है।

९९—क्रीयेजोट २ बूँद, पैराफीन लिक्विड १ ड्राम, ऑयलमर १ ड्राम, पल्व एकाशिया ३० ग्रेन, सीरप औरन्साई आधा ड्राम, एका सिनैन-माई एक औंस। भोजन के पीछे लेनी चाहिये। यक्ष्मा के लिये उपयोगी है।

१००—ग्वायकोल ३ बूँद, टिंचर बैंजोईनको १५ बूँद, सीरपटोलु ३० बूँद, मिक्सड एमैगडीला ४ ड्राम। थोड़ा पानी मिलाकर दिन में तीन बार लेना चाहिये।

उपयोग—कास के लिये उपयोगी है।

१०१—ग्वायकोल एक ड्राम, कोकीन ५ ग्रेन, पैराफीन मैाल ५ ग्रेन डेढ़ औंस। अण्ड-शोथ का उत्तम प्रलेप है। इसको पतला-पतला लगाकर कपड़े से ढाँप देना चाहिये।

१०२—एक्सट्रैक्ट अर्गट एक ग्रेन, एक्सट्रैक्ट गोसीफाई आधा ग्रेन, फैराईसल्फ एक ग्रेन, एक्सट्रैक्ट एलोज एक ग्रेन। एक गोली बनानी चाहिये। कष्टार्त्तव में उपयोगी है।

१०३—कोकीन ५ ग्रेन, मॉर्फिया ५ ग्रेन, एसिड ऑलिक १ ड्राम, गॉल ऑन्टमेंट १० ड्राम। बवासीर के मस्सों के लिये उत्तम है। इससे वस्त्र खराब नहीं होता।

१०४—एक्सट्रैक्ट गोसीफाई १५ बूँद, टिंचर सीमीसिफ्यूज १५ बूँद, स्प्रिट क्लोरोफार्म १० बूँद, इन्फ्युजन वैलेरियन ४ ड्राम। दिन में तीन बार लेना चाहिये। कष्टार्त्तव में उपयोगी है।

१०५—एक्सट्रैक्टहाईड्रसरिस आधा ग्रेन, एक्सट्रैक्ट हैमेमैलिड १ ग्रेन, एक्सट्रैक्ट अरगट एक ग्रेन, एक्सट्रैक्ट सीमीसीफ्युज ½ ग्रेन। एक गोली अत्यार्त्तव, रक्त-प्रदर में उपयोगी है।

१०६—इकथोल एमोनेट २ ड्राम, लाइकर पल्मबाई फोर्ट १ ड्राम, एक्वाल्युरोसी २ ड्राम, एक्वाडिस्टिल्ड ४ औंस। भग-कण्डू के लिये उत्तम है।

१०७—टिंचर आयडीन रैक्टीफाई एक बूँद, ग्लैसरी ३० बूँद, एक्वा १ औंस। प्रत्येक एक घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। न रुकनेवाली वमन के लिये उत्तम है।

१०८—टिंचर जैबरैन्डी ३० बूँद, एक्सट्रैक्ट माल्टी लिक्विड ४ ड्राम, स्प्रिट क्लोरोफार्म ८ बूँद, एक्वा सिननमाइ १ औंस। दिन में तीन बार लेना चाहिये। दूध बढ़ाने के लिये उत्तम है।

१०९—एक्सट्रैक्ट जैम्बोला लिक्विड एक ड्राम, कोडीना फॉस्फेर आधा ग्रेन, ग्लैसरीन ग्लोसरो फॉस्फेट कम्पाउन्ड एक ड्राम, इन्फ्युजन जैन-शन को एक औंस। दिन में तीन बार लेना चाहिये। मधुमेह के लिये उत्तम है।

११०—कमीला ३० ग्रेन, म्युसीलेजट्रेगेगन्थ ४ ड्राम, सीरप जिंजीबा एक ड्राम, एक्वा कैरोफलाई डेढ़ औंस। यह मात्रा रात्रि को लेना चाहिये। प्रातः विरेचन लेना चाहिये।

उपयोग—टेपवार्म के कीड़े के लिये है।

१११—लीथीयाई साइटेट ५ ग्रेन, पल्व मैगनेसियम बोरो साईट्रेट कम्पाउन्ड ३० ग्रेन, हैक्जेमीन ५ ग्रेन, एक्वाडिस्टील्ड एक औंस। ५ औंस पानी में मिलाकर लेनी चाहिये।

उपयोग—मूत्र-मार्ग की शर्करा के लिये होता है।

११२—मैगनेशिया लीव्स १५ ग्रेन, पल्व रिहाई ५ ग्रेन, सीरप जीजीबर एक ड्राम, एक्वा मैन्थापिपरेटा एक औंस। अजीर्ण और आमा-शय की जलन के लिये हितकारी है।

११३—ऑयलमर ४ औंस, पैक्रेटीन ५ ग्रेन, ओलीयम बिट्ला एक औंस, पल्वट्रेगेगन्थी ५ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब ५ ग्रेन, सीरप औरंशाई ४ ड्राम, इन्फ्युजन औरंशाइ ८ औंस तक। निर्बलता के लिये।

११४—मुश्क ५ ग्रेन, गम एकाशिया ३० ग्रेन, स्प्रिट ईथर १५ बूँद एक्वासीननमाइ एक औंस। शीताङ्ग सन्निपात में उपयोगी है।

११५—टिंचर मुश्क १० बूँद, टिंचर सम्बल १० बूँद, टिंचर कैन-बिस इण्डिका ५ बूँद, टिंचर वैलरियन एमोनेटा ३० बूँद, गम एकासिया एक ड्राम, एक्वा क्लोरोफार्म एक औंस।

उपयोग—उन्माद में (हाइपोकौन्डसीस) होता है।

९०

११६—पैराफीन लिक्विड ४ औंस, पल्व एकाशिया १ औंस, सोडियम हाईपोफौस्फेट १ ड्राम, सीरप औरनशाई १ औंस, कैलशियम हाइपोफौस्फेट १ ड्राम। एक्वा डिस्टेल ८ औंस। यह कॉडलिवर ऑयल के स्थान पर बरता जा सकता है। निर्बल बच्चों के लिये उत्तम है।

११७—लाइकर कार्ब डिर्जीन १ ड्राम, जिंक ऑक्साइड ४ ड्राम, कैलेमीना प्रिपेरेटा ४ ड्राम, ग्लैसरीन १ ड्राम, लाइकर कैलसिस ८ औंस।

एकजिमा-विसर्प के लिये उत्तम लोशन है।

११८—लाइकर पल्मबाइ फोर्ट ३० बूँद, ऑयल एमैगथिला १ औंस, लाइकर कैलसिस १ औंस, ऑयल कैरोफलाई ३ बूँद। शोथ, अग्निदाह और विक्षोभित त्वचा के लिये शान्तिदायक उत्तम लोशन है।

११९—पल्व रिहाई ५ ग्रेन, पोटाशियम टार्टरिक एसिड १० ग्रेन, पल्व सिकनमाई कम्पाउन्ड ३ ग्रेन। यह बच्चों के लिये विरेचक है।

१२०—सैलेसोन १० ग्रेन, सोडियम सैलिसिलेट १० ग्रेन, इन्फ्युजन औरनशाई १ औंस। इन्फ़्लुयंजा के लिये उपयोगी है। दिन में तीन बार लेना चाहिये।

१२१—टिंचर सिल्ला ५ बूँद, टिंचर सैनगा १० बूँद, टिंचर बैलेडोना ३ बूँद, टैरेबीन २ बूँद, टिंचर कैम्फर को ३० बूँद, मिक्सचर एमैगडीला ४ ड्राम। दिन में दो बार लेना चाहिये; वृद्धों की कास के लिये उत्तम है।

१२२—सोडियम सल्फोकार्बनास ८ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब १५ ग्रेन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक १५ बूँद, स्प्रिट एरोमैटिक ३० बूँद, इन्फ्युजन कैरोफ्लाई ४ ड्राम। भोजन की विदग्धता से उत्पन्न अतिसार के लिये उत्तम है। इसमें थोड़ा-सा पानी मिलाकर भोजन के एक-एक घन्टे पीछे लेना चाहिये।

१२३—जिंकवैलेरेनेटिस ३ ग्रेन, पिलएसफिटडा कम्पाउण्ड २ ग्रेन। १ गोली। हिस्टीरिया के लिये उत्तम है।

बत्तीसुं काटलुं—सोंठ ९ तोला, मेथी १ तोला, जावित्री आधा तोला, चीमेड़ आधा तोला, दालचीनी १ तोला, पिप्पलीमूल आधा तोला, गोंद बबूल २० तोला, जायफल आधा तोला, शतावरी आधा तोला, नागकेसर आधा तोला, खसखस १ तोला, सौंफ १ तोला, तमाल-पत्र आधा तोला, सुवा १ तोला, गोखरुन १ तोला, मुसली स्याह १ तोला, बलबीज २ तोला,

धनिया १ तोला, तालमखाना १ तोला, एशरीया १ तोला,बादामबीज ५ तोला, पिप्पली १ तोला, बायबिडङ्ग आधा तोला, मुसली सफेद १ तोला, कौंचबीज १ तोला, मिर्च १ तोला, काली जड़ आधा तोला, जीरा आधा तोला, हल्दी आधा तोला, खोपरा (नारियल की गिरी) १० तोला, पिस्ता ५ तोला।

विधि—सब दवाइयों का चूर्ण कर लेना चाहिये। ४ तोले चूर्ण को १० तोले घी में भूनकर इसमें १० तोला गुड़ और ६ तोला घी में भुना गेहूँ का आटा मिलाना चाहिये। इसको प्रातः खाकर ऊपर से दूध पीना चाहिये।

उपयोग—प्रसूता स्त्री के लिये उपयोगी है; पौष्टिक है।

त्रिफल कसवजी—पीली हरड़ की छाल, काबुली हरड़ का छिलका, छोटी हरड़, बहेड़े की छाल, आँवले का चूर्ण, धनिये का चूर्ण, बादाम का तेल १ तोला, शर्करा २० तोला, मधु ४० तोला। सब दवाइयों का चूर्ण करके इसमें बादाम का तेल मिलाकर, पीछे से शहद मिलाकर चटनी बनाकर रखना चाहिये। मात्रा—आधा से एक तोला।

उपयोग—कब्जियत, नजला, दाह, नेत्ररोग में।

द्राक्षादि अवलेह—काली द्राक्षा, जरदालु, मिर्च, सेंधा नमक, सिकी हुई भाँग, जीरा, सोंठ, संचल, लहसुन, की कलियाँ प्रत्येक १ तोला, खजूर ५ तोला, हींग १ तोला, गुलाब के फूल १० तोला, पिप्पली १ तोला, नींबू का रस २० तोला, गुड़ २० तोला। शुष्क दवाइयों का चूर्ण करके खजूर, जरदालु, द्राक्षा मिलाकर चटनी करके रख लेना चाहिये। मात्रा—आधा से १ तोला। यह चटनी भूख लगाती है; भोजन में रुचि पैदा करती है।

ब्राह्मी वटी—अभ्रक-भस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिक-भस्म १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १ तोला, ब्राह्मी-चूर्ण ६ तोला, रससिन्दूर १ तोला, लोह-भस्म १ तोला, बायबिडङ्ग १ तोला। मात्रा २ गोली।

उपयोग—मस्तिष्क की निर्बलता में, याद-शक्ति की कमजोरी में, निद्रा-नाश में।

अनुपान—दूध।

सिंहवाहिनी वटी—केशर, जावित्री, यशद-भस्म, माजूफल, रूमी-मस्तकी, शुद्ध जहरकुचला, लवँग, जायफल, अजवायन, बिधारा-बीज, पुष्कर-

मूल, अफीम, शुद्ध बच्छनाग प्रत्येक ३ माशा, हिंगुल १ तोला, भीमसेनी कपूर ३ माशा, कस्तूरी ४ बाल, अम्बर १ बाल। मात्रा—१ से २ गोली।

अनुपान—केसर से सुवासित दूध।

उपयोग—वीर्य-स्तम्भक, रति-शक्ति-वर्द्धक।

हिस्टीरिया-नाशक वटी—गाँजा १ तोला, कपूर १ तोला, खुरासानी अजवायन ४ तोला। गोली चने के बराबर बनाकर, २ गोली प्रातः और २ गोली सायंकाल--जटामांसी ४ तोला, असगन्ध १ तोला, खुरासानी अजवायन १ तोला—(१ तोला चूर्ण २० तोले मात्रे में काढ़ा करके ५ तोला रहने पर) क्वाथ के साथ लेना चाहिये।

आशौघ्नी वटी—गुलाबजल से पिसा हुआ कहरुवा १ तोला, हीरा दखण २ तोला, रसौंत ३ तोला, नीम के बीज २ तोला, इनको गुलाबजल से गोली बना लेनी चाहिये। मात्रा—२ गोली रात्रि को सोते समय पानी के साथ। अर्श-रोग में उपयोगी है।

गुलाबी चूर्ण—जामुन की गुठली, आम की गुठली, नेत्रबाला प्रत्येक ५ तोला, इनका चूर्ण ३ से ६ माशा मात्रा में लेने से आमातिसार, रक्तातिसार नष्ट होता है।

अनुपान—तण्डुलोदक।

पंचसकार चूर्ण—सोंठ, सौंफ, पार्वाना, छोटी हरड़, सैंधव, सनाय, छोटी हरड़ २० तोले, सनाय ४० तोले और सब १० तोले प्रत्येक लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। मात्रा—३ से ६ माशा।

उपयोग—रक्त-विकार में, मल-बद्ध में।

अनुपान—गरम पानी।

शतपथ्यादि-चूर्ण—गुलाब के फूल १६ तोले, शर्करा ३२ तोले, जीरा, वंशलोचन, गिलोय, सत्व, तबाशीर, इलायची, नागरमोथा, उमथाजीरा की लुई (ईसबगोल की भूसी) कपूर, सारिवा, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेसर, चन्दन सफेद, रूमीमस्तगी प्रत्येक १ तोला। ऊपर की दवाइयों को बारीक पीसकर कपड़े में छान लेना चाहिये। मात्रा—२ से ४ आने भर।

अनुपान—दूध अथवा पानी के साथ।

उपयोग—वातरक्त में, दाह में, प्यास में, ज्वर में, रक्त-पित्त में।

पौष्टिक माजून-- छोटी इलायची ३ तोला, बड़ी इलायची ५ तोला, दालचीनी डेढ़ तोला, नागकेसर १ तोला, जायफर डेढ़ तोला, जावित्री डेढ़ तोला, कपूर कचरी डेढ़ तोला, रूमी मस्तगी १ तोला, गुलाब के फूल ३ तोला, चांदी के वर्क १ तोला, जटामांसी डेढ़ तोला, नागरमोथा २ तोला, तगर डेढ़ तोला, बहमन सफेद डेढ़ तोला, तालीशपत्र २ तोले, केशर आध तोला, चन्दन सफेद १ तोला, गावजबाँ १ तोला, वंशलोचन डेढ़ तोला, सोने के वर्क २५ नग, शर्करा १ सेर, आँवले का मुरब्बा ४० तोले। मात्रा—१ तोला, प्रातः-सायं दो समय दूध के साथ खाना चाहिये ।

उपयोग—शक्ति बढ़ानेवाला, क्षय और कास में उत्तम है।

हिक्कानाशक प्रयोग—मयूर पिच्छा भस्म, छोटी पिप्पली, काकड़ा-शृङ्गी इन तीनों को समस्त भाग लेकर २ से ४ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ देने से हिचकी बन्द होती है।

अम्बर विलास गुटिका— अम्बर आधा तोला, सुवर्ण का वर्क़ १ तोला, शिलाजीत २ तोले, कौंच बीज, शुद्ध वत्सनाग, अनार, जावित्री, पिप्पली, लौंग, कूठ, शुद्ध अफोम, अभ्रक-भस्म, कस्तूरी, चाँदी के वर्क़, सफेद मुसली, गिलोय-सत्व, शुद्ध कनक-बीज, जायफल, दालचीनी, केशर, अकरकरा, भीमसेनी कपूर, बिधारे और चांदी के वर्क मिलाकर भस्म, शिलाजीत मिला देनो चाहिये। सबका चूर्ण मिलाकर खरल में पीसना चाहिये। अफीम का घोल बनाकर उससे घोटना चाहिये। पीछे धतूरे के पत्तों का रस, अद्रक का रस, पान का रस निकालकर प्रत्येक की भावना देकर १-१ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—१ से २ गोली। शरीर की कमजोरी को. धातु-क्षीणता को, मस्तिष्क की निर्बलता को दूर करता है।

कस्तूर्यादि वटी—कस्तूरी चौथाई तोला, हींग चौथाई तोला, शुद्ध जहरकुचला चौथाई तोला, भीमसेनी कपूर चौथाई तोला इनको गोंद के पानी के साथ मिलाकर १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

अनुपान—दूध या गरम पानी।

उपयोग—वायु-रोग, पाण्डु, संग्रहणी, श्वास में।

बालरक्षक सोगठी—वायविडङ्ग, वापुंबा, संचल, इन्द्रजौ, चिरा-

यता, सोंठ, हाऊ छाल, डीकामारी, बच, जायफल, जावित्री, पित्तपापड़ा, कटुकी, काली जीरा, कांकच, कलुंबा, अतीस, एलुवा, रेवतचीनी का सीगा, मरोड़फली ये सब समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये। इसमें गुलाब का पानी डालकर सुपारी जैसी सोगठी बनानी चाहिये।

उपयोग—छोटे बच्चों के ज्वर, कास, मलबन्ध में इस सोगठी को पत्थर पर पानी के साथ घिसकर एक या दो रत्ती भर दवा देनी चाहिये।

संशमनी—गिलोय का घन १० तोले, अभ्रकभस्म १ तोला, लोह-भस्म १ तोला, स्वर्ण-माक्षिक-भस्म आधा तोला, प्रवाल-भस्म आधा तोला। मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—दूध के साथ।

उपयोग—जीर्ण ज्वर में, क्षय में, निर्बलता, पाण्डु में, कास में, प्रदर में।

अम्बर का चाटन—गाजवाँ का फल, धनिया, बहमन सफेद, अजस्वर, गावजवाँ, आवरेशम, तुरूमबालंगा, फरीजे चुश्क, प्रत्येक १ तोला, वंशलोचन आधा तोला, केशर १ तोला, गुलाबजल १ सेर, अम्बर चौथाई तोला।

विधि—केसर, वंशलोचन और अम्बर के सिवा सब चीजों को दरकच करके गुलाबजल में १ रात भिगोकर प्रातः इसका काढ़ा करना चाहिये। जब ३० तोला रहे, तब इसको छान लेना चाहिये। इसमें शर्करा २० तोले मिलाकर चासनी कर लेना चाहिये। इसमें केसर अम्बर, वंश-लोचन पृथक्-पृथक् पीसकर मिला देना चाहिये। पीछे से सोने के वर्क चौथाई तोला, चांदी के वर्क आधा तोला, मोती, माणिक्य, जहरमोहरा खताई और जमर्रुद प्रत्येक चौथाई-चौथाई तोला गुलाबजल में अलग-अलग पीसकर मिला देनी चाहिये। पीछे इसको खरल में पीसकर चटनी बना लेना चाहिये। मात्रा—३ माशे से आधा तोला। गरम दूध अथवा द्राक्षासव के साथ।

उपयोग—हृदय की निर्बलता में, मस्तिष्क की कमजोरी में, क्षय-रोग की अवस्था में।

याकूती—भाँग के पत्ते ४० तोले, इसको खूब धोकर ४०० तोले

गाय के दूध में उबालकर घी बना लेना चाहिये। इसमें बादाम ४० तोले, पिस्ता ४० तोले, दूध का खोया २० तोला, किशमिश ४० तोला, चारोली ४० तोले, तिल सफेद ४० तोले, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, इलायची, बिधारे का बीज, अफीम, केसर, रूमीमस्तगी, कंकाल, मालम मुसली सफेद, तालमखाना, गोखरू, मुसली काली, शतावरी, कौंच का बीज, अकरकरा, सोंठ, कालीमिर्च, असगन्ध, पिप्पली-मूल प्रत्येक १ तोला।

विधि—भाँग के बने घी में सब दवाइयों का चूर्ण मिला देना चाहिये। इसमें बादाम, पिस्ता आदि चीजों को अलग से मिलाना चाहिये। फिर ५०० तोले शर्करा की चाशनी करके इनको मिलाकर पाक कर लेना चाहिये। मात्रा आधा से १ तोला।

अनुपान दूध के साथ।

उपयोग—निर्बलता को मिटाता है, शक्ति देता है।

योगराज— त्रिफला १२ तोले, त्रिकटु १२ तोले, चित्रक ४ तोले, वायविडंग ४ तोले, शिलाजीत २० तोले, रौप्य माक्षिक-भस्म २० तोले, सुवर्ण माक्षिक-भस्म २० तोले, लोह-भस्म २० तोले, शर्करा ३२ तोले। मात्रा—३ ३ माशे से आधा तोला।

उपयोग—पाण्डु, कामला, निर्बलता में उत्तम है।

लाल गुड़ा—त्रिकटु, कटुकी, नीम की छाल, कुष्ठ, नागरमोथा, सफेद सरसों, टंकण भर इन्द्रजौ, लाल चन्दन, शुद्ध हिंगुल, रससिन्दुर प्रत्येक २-२ तोला लेकर पान के रस में १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—२ गोली।

उपयोग—सामान्य ज्वर में, सरदी में।

अनुपान—तुलसी का रस।

चन्द्रहास अर्क—अजवायन, खुरासानी अजवायन, भाँग, धतूरे का बीज, कपूर खसखस का डोडा, जायफल प्रत्येक चीज चार-चार तोला लेकर इसको मोटा चूर्ण करके एक पात्र में ४०० तोला गाय के दूध में भिगोकर प्रात: नलिका-यंत्र से अर्क निकाल लेना चाहिये।

उपयोग—उत्तेजक, नींद लानेवाला और पीड़ा-शामक है। मात्रा—१ से २ तोला।

स्नानरंज-चूर्ण—लोध्र, वच, धनिया, हल्दी, दारुहल्दी, शुद्ध मनसिल, सरसों, मूंग की दाल का आटा। प्रथम ७ वस्तुओं को एक-एक तोला लेकर और ८वीं को ७ तोले लेकर सबका चूर्ण करके मिलाना चाहिये। इस चूर्ण को थाली या दूध में मिलाकर शरीर पर लगाने से शरीर की कान्ति बढ़ती है।

क्षयहर-प्रयोग—गिलोयसत्व आधा तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म ३ माशा, प्रवाल भस्म ३ माशा सब दवाइयों को कूट-छानकर आठ पुड़िया बनाना चाहिये। प्रत्येक पुड़िया मधु के साथ तीन-तीन घन्टे के अन्तर से देना चाहिये।

उपयोग—निर्बलता, क्षय, क्षीणता में।

अविपत्तिकर चूर्ण—त्रिफला, त्रिकटु, मोथा, वायविडंग, इलायची, तमालपत्र प्रत्येक १ तोला, लौंग १० तोला, शर्करा ६० तोला, निशोथ ४० तोले इनका चूर्ण बोतल में भरकर रखना चाहिये। मात्रा—३ माशे से आधा तोला।

उपयोग—नारियल का पानी अथवा ठण्डा पानी।

अम्लपित्त, शूल अर्श में उपयोगी है।

संशमनी— गिलोय को दरकच करके चार गुने पानी में ३ घन्टे तक भिगो रखना चाहिये। पीछे हाथ से खूब ममलकर इसको बाहर निकाल देना चाहिये। फिर वस्त्र से छानकर इसको आग पर चढ़ा देना चाहिये। और जब धीमे-धीमे ताप से पककर घन बन जाय, तब उतार लेना चाहिये। इसमें १० तोला घन लेकर १ तोला लोह-भस्म मिला देना चाहिये। फिर हाथवाला घी लगाकर रत्ती भर की गोली बना लेनी चाहिये। इसमें लोह भस्म के स्थान में स्वर्ण माक्षिक-भस्म भी मिला सकते हैं।

आमराक्षसी-गुटिका—शुद्ध हिंगुल, अफीम, कपूर, जायफल, लौंग प्रत्येक १ तोला। पानी के साथ १ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—एक से २ गोली। अतिसार, मरोड़ा, संग्रहणी में उपयोगी है।

दुग्धवटी—वछनाग, अफीम ६ आना भर, लोह-भस्म १० आना भर, अभ्रक-भस्म १॥ तोला। मात्रा—एक रत्ती। गोली दूध के साथ बनानी चाहिये। पथ्य—दूध ही रखना चाहिये।

उपयोग—शोथ, संग्रहणी, मन्दाग्नि में।

कर्पूर-सुन्दरी वटिका—कपूर, जायफल, जावित्री, धतूरे का बीज, बिधारे का बीज, अकरकरा, त्रिकटु, चोबचीनी, भिंका हुआ कांकच के बीज. प्रत्येक एक तोला, भाँग ११ तोला, अफीम ११ तोला, बछनाग ३ माशा। मात्रा—२ से ४ गोली।

अनुपान—पानी या कुड़ाछाल का चूर्ण।

उपयोग—अतिसार, संग्रहणी, अर्श और मन्दाग्नि मे।

गर्भ-विनोद-रस— त्रिकटु, जावित्री, लवङ्ग प्रत्येक ३ तोला, शुद्ध हिंगुल ४ तोला, स्वर्ण-माक्षिक-भस्म २ तोला। इनको कूट-छानकर पानी के साथ चने के आकार की गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—गर्भिणी स्त्री के तमाम रोगों में काम में ला सकते हैं।

सुगन्धित पवित्र धूप—नेत्रबाला १ पाव, लोहबान कोड़िया आध सेर, ईसस आध सेर, बच १० तोला, कचूर आध सेर, अगर १ पाव, नीम-पत्र का चूर्ण आध सेर, पानड़ी १ पाव, चन्दन १ पाव, गुग्गुल आध सेर, हरमर आध सेर, कपूरकचरी १ पाव, बावची १० तोला, देवदारु का चूरा आध सेर, मोथा आध सेर, गुलाब के फूल १ पाव। प्रत्येक वस्तु को दरकच करके खाँड़ के साथ मिलाकर रखना चाहिये।

उपयोग करने के लिये इसका चूर्ण जलते हुये कोयलों पर रखना चाहिये।

पंचसम-चूर्ण—हरड़ ५ तोला, मिर्च ५ तोला, पिप्पली ५ तोला, निशोथ ५ तोला, सोंठ ५ तोला। मात्रा—३ माशे से ६ माशा।

उपयोग—अफारे मे, शूल, वायु, मलबन्ध-रोग में।

अनुपान—गरम पानी।

दूध का मसाला—जायफल, जावित्री, दालचीनी, लौंग, इलायची, अकरकरा, सोंठ, केसर, कस्तूरी प्रत्येक वस्तु एक-एक तोला, कस्तूरी ½ तोला। मात्रा—३ माशा। १ सेर दूध में मिलाकर पीना चाहिये।

उपयोग—बाजीकरण है।

आरोग्य-वर्द्धनी—पारा, गन्धक, लोह-भस्म, अभ्रक-भस्म, ताम्र-भस्म प्रत्येक एक-एक तोला, त्रिफला-चूर्ण १० तोला, गुग्गुल २० तोला,

कुटेकी ७० तोला, चित्रक २० तोला, शिलाजीत १५ तोला। मात्रा—दो आने से चार आने तक।

अनुपान—दूध अथवा ताजा पानी।

उपयोग—उदर-रोग में, पुराने ज्वर में, शोथ में, यकृत-शोथ में।

सालम-पाक—अकरकरा, निर्गुण्डी, जावित्री, दालचीनी, मिर्च, लवंग, केसर, तमाल-पत्र, जायफल, बला के बीज, पिप्पली, तालमखाना प्रत्येक २॥ तोला, काली मूसली, श्वेत मूसली, सिंघाड़ा, असगन्ध, इलायची, कंकोल, वंशलोचन, नागकेसर, सोंठ प्रत्येक १ तोला, सालम १ पाव, कौंच बीज १० तोले, बादाम १ पाव, कस्तूरी १ पाव, घी ८ सेर, भैंस का दूध २० सेर, पिस्ता १ पाव, अम्बर १ पाव, भीमसेनी कपूर १। तोला, शर्करा ८ सेर, उड़द का आटा सवा सेर।

विधि—सालममिश्री के चूर्ण को दूध में मिलाकर खोया बना लेना चाहिये। इसको और उड़द की दाल के आटे को अलग-अलग घी में भूनकर शर्करा की चासनी करके उसमें मिलाकर और सब वस्तुओं का चूर्ण भी मिला देना चाहिये। ऊपर से केसर, बादाम, पिस्ता आदि वस्तुयें मिला देना चाहिये। मात्रा—१० तोला।

अनुपान—दूध।

जन्म घूँटी—सौंफ की जड़, सौंफ, हरड़ छोटी, हरड़ बड़ी, जीरा, गुलाब के फूल, मुनक्का, गुड़, विडङ्ग, अमलतास का गूदा, सनाय, वच, अजवायन, ढाक के बीज, उन्नाब और सुहागा खील किया हुआ—इनको पानी में पीसकर काला नमक डालकर घूँटी बनालें। घिसकर बच्चों को देना चाहिये।

उत्तेजक वटी—अकरकरा ९ तोला, कुचला १ तोला, केसर ६ माशे, जावित्री ६ माशे, जायफल ६ माशे, इलायची १ माशा, कस्तूरी ३ रत्ती, शिलाजीत १ तोला—श्वेत मुसली के रस में ३ भावना देकर गोली बना लेनी चाहिये।

महानीम वटी—बकायन की मींग, नीम की मींग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, गुलाब, पिप्पली, नागकेसर, चित्रक, रसौत, गुग्गुल, मिर्च, प्रत्येक १ तोला लेकर त्रिफला के रस में गोली बनानी चाहिये। यह गोली पानी के साथ लेने से बवासीर में उपयोगी है।

अण्ड-वृद्धि—सोंठ १ तोला, गोरू ६ माशा, अफीम ३ माशे—इनको अदरख के रस में मिलाकर, लेप करके ऊपर से मोम की रोटी बाँधने से अण्ड वृद्धि को आराम होता है। कदम्ब के पत्ते से भी अण्ड-शोथ भी कम हो जाता है।

कष्टार्त्तव में—मुसब्बर, अफीम, कासीस, दालचीनी इनको हुरहुर के रस में गोली बनानी चाहिये। यह गोली ऋतु के समय से ३ दिन प्रथम पुराने गुड़ के शरबत से खिलाना चाहिये।

लहसुन पाक—शुद्ध लहसुन ५ तोले, सोंठ, पिप्पली, अजवायन, त्रिफला, प्रत्येक ३ माशे, नागकेसर ३ माशे, कालीमिर्च ३ माशे, तेजपात २ माशे, दालचीनी डेढ़ माशे, केशर २ माशे, मिश्री १० तोले।

विधि—लहसुन को ७ दिन तक छाछ में रखकर फिर मीठे की चासनी में पकाकर उसमें इनका चूर्ण मिलाकर पाक कर लेना चाहिये। लकवा रोग के लिये उत्तम है।

अष्टपदी—पारद, गन्धक, लोह, यशद, वंग, अभ्र, रौप्य, ताम्र भस्म इनकी समान मात्रा और गन्धक पारे से दुगुनी लेकर केले के रस में त्रिफला के रस में भावना देकर गोली कर लेना चाहिये। मात्रा—१॥ रत्ती।

उपयोग—प्रमेह में, सूजाक में।

अश्म भेदनी वटी—यवक्षार १ तोला, स्वर्ण-माक्षिक भस्म ६ माशे, शोरा ६ माशे, पाषाण भेद ६ माशे, शिलाजीत १ तोला, धनिया ३ माशे। पाषाण भेद और गोखरू के काढ़े से भावना देकर चने के बराबर गोली बनानी चाहिये।

उपयोग—मूत्राश्मरी में।

गर्भपात—मकोय, गाजर के बीज, मूली के बीज, अजवायन, मेथी, पुराना गुड़। प्रथम पाँचों वस्तुयें १ तोला लेकर, १० तोले पानी में क्वाथ करके जब २ तोला रहे, तब इसमें गुड़ मिलाकर देने से गर्भपात हो जाता है।

प्रसूतिका के रक्तस्राव—चारपाई के पुराने बान की राख और पुराना गुड़ समान भाग लेकर सात दिन तक खिलाना चाहिये।

मृदु विरेचक—(१) सनाय को घी में भूनकर खूब कुटवा लेना,

चाहिये । इसकी बीच की हड्डी निकाल देनी चाहिये । फिर इसको खूब पीस-कर काजल सा बना लेना चाहिये । इसमें धनिया, जीरा, हींग; इनको घी में भूनकर मिला दिया जाय । फिर गुड़ की चाशनी बनाकर इसमें पुरानी इमली, आर्द्रक का रस और नीबू का सत मिलाकर उपरोक्त सनाय का चूर्ण मिला देना चाहिये । यह चटनी उत्तम विरेचक है ।

(२) सौंफ, मुनक्का, सोंठ, अंजीर, सनाय इनका खूब तेज क्वाथ करके इसमें कॉफी मिलाकर छान लेना चाहिये । इसमें दूध मिलाकर पिला देना चाहिये । रोगी को गरम वस्त्र से ढांप देने पर पसीना आता है ।

सुरमा—भीमसेनी कपूर, शुद्ध मोती की सीप, समुद्रफेन, निर्मली के बीज, श्वेत मिर्च, सेंधा नमक, पिप्पली, करञ्ज बीज, इनको समान भाग लेकर सौंफ के अर्क में पीसकर लगाना चाहिये ।

बवासीर के लिये—नीलकण्ठी, खूबकला प्रत्येक डेढ़ तोला, हंस-राज, जलनिम्ब, बकायन की मींग, नीम की मींग, कुश्तासंग जीरा, बेल की गिरी प्रत्येक वस्तु ५ ५ तोला लेकर खूब खरल करके पानी के साथ खाना चाहिये । दूध नहीं पीना चाहिये ।

ब्रह्मास्त्र—पत्रक हरताल, पीली कौड़ी, सीप प्रत्येक १ तोला, शङ्ख ६ तोला, गोदन्ती, हिंगुल प्रत्येक २ तोला, फिटकिरी २२ तोले—गिलोय ७० तोले सबको कूट-छानकर गिलोय के रस में भावना देकर गजपुट देना चाहिये । मात्रा १ से ६ रत्ती ज्वर में गाजवाँ के अर्क के साथ; जरयान में—मक्खन के साथ; निमोनिया में शहद के साथ देना चाहिये ।

आर्त्तव के न होने पर आनेवाला हिस्टीरिया—गेरू, तगर, जटामांसी, टङ्कण, मुसब्बर—इनको समान भाग लेकर जटामांसी के रस से ७ भावना देकर चने के बराबर की गोली बनाना चाहिये ।

नवापत्ति ज्वरांकुश—रससिंदूर, प्रवाल, स्वर्ण, रौप्य, बङ्ग, लोह, अभ्रक, मुक्ता, ताम्रभस्म प्रत्येक समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये । सब प्रकार के ज्वरों में उपयोगी है ।

अनुपान—पटोलपत्र रस ।

कास—पान का पत्ता, आद्रक, तुलसी मंजरी, लौंग १, कपूर थोड़ा-सा—इनको पीसकर लेने से वृद्धों की शुष्क कास को विशेषतः आराम होता है ।

चिकित्सा-स्थान

रोगों का विभाग कई प्रकार से किया गया है। जैसे—कुछ चिकित्सक संक्रामक रोगों या ज्वरों का एक विभाग करके पीछे से आशयों के अनुसार विभाग करते हैं। और कोई प्रथम ही से आशय-सम्बन्धी विकारों के क्रम से विभाग करते हैं। यहाँ पर निम्न प्रकार से विभाग किया है।

प्रकरण—प्रथम	शरीर के सामान्य रोग
प्रकरण—दूसरा	मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—तीसरा	श्वासोच्छ्वास क्रिया-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—चौथा	रक्ताशय-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—पाँचवाँ	पक्वाशय-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—छठा	मूत्राशय-सम्बन्धी रोग
प्रकरण—सातवाँ	आँख, कान, नाक, मुख के रोग
प्रकरण—आठवाँ	त्वचा के रोग
प्रकरण—नवाँ	मिश्रित क्षुद्र-रोग
प्रकरण—दसवाँ	स्त्रियों के रोग
प्रकरण—ग्यारहवाँ	बालकों के रोग
प्रकरण—बारहवाँ	विष-रोग
प्रकरण—तेरहवाँ	तात्कालिक चिकित्सा

ज्वर

ज्वर कोई स्वतंत्र रोग नहीं है, अपितु दूसरे रोगों का लक्षण है। जैसा कि कहा है—

पसीने का रुक जाना, शरीर में गरमी, अंगों में अकड़ाव ये तीनों लक्षण जिस रोग में इकट्ठे हो जायँ, उसको 'ज्वर' समझना चाहिये। इस ज्वर का प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी समय अनुभव हो जाता है

चरक में लिखा है कि जन्म के समय और मृत्यु के समय प्रत्येक व्यक्ति को ज्वर होता है।

'ज्वर' के कई कारण हैं— मुख्यतः मिथ्या आहार-विहार ही इस ज्वर का मुख्य सबब है। अनार्य-चिकित्सा ने ज्वरों के कारण अनेक प्रकार के कृमि माने हैं; इन कृमियों की भिन्नता के कारण ज्वरों के नाम भी पृथक्-पृथक् माने गये हैं।

परन्तु इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि कृमि तभी हम पर हावी बन सकते हैं; जब हमारा शरीर उनके लिये योग्य भूमि बना हुआ हो। सींची हुई, कमाई हुई, जोती हुई जमीन ही में बीज भली प्रकार और सुगमता से उगते हैं। इसी प्रकार यदि किन्हीं कारणों से शरीर निर्बल हुआ होगा, तो कृमि रोग को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं, नहीं तो ऊसर भूमि में पड़े हुए बीज की तरह वहीं नष्ट हो जाते हैं।

ज्वर के सामान्य लक्षण—आर्य-वैद्यक में लिखा है कि ज्वर की उत्पत्ति 'क्रोध' से हुई है। इसलिये इस रोग में पित्त के लक्षण विशेषतः प्रधानरूप से होते हैं। साथ ही मिथ्या आहार-विहार के कारण दोष कुपित होकर आमाशयस्थ रसों को कुपित कर देते हैं। इनके कुपित होने से स्वेदवह-स्रोतसों के मुख बन्द हो जाते हैं; जिससे पसीना आना रुक जाता है।

दोषों के कुपित होने के भेद से ज्वरों में भी वात-ज्वर, पित्त-ज्वर, कफ-ज्वर, द्वन्द्वज-ज्वर, सन्निपात-ज्वर और आगन्त-ज्वर इस प्रकार से भेद हो जाते हैं। परन्तु इन रोगों में निम्न लक्षण सामान्य हैं। यथा—बिना परिश्रम के भी थकावट का अनुभव होना चित्त की अस्थिरता, रंग में परिवर्त्तन, मुख के स्वाद का बदल जाना, आँखों से पानी का झरना, थोड़ी देर में शीत की रुचि और थोड़ी ही देर में गरमी की रुचि होती है। जम्भाई बहुत आती है, शरीर का अंग-प्रत्यंग टूटता हुआ प्रतीत होता है, शरीर में भारीपन, रोमाञ्चता, भोजन में अरुचि, आँखों के सामने धुँधलापन, रोगी का दिल गिरा रहता है, शीतता का अनुभव होता है। यदि ज्वर में वायु प्रधान हो, तो रोगी को बहुत जम्भाई आती है, पित्त की प्रबलता में आँखों के अन्दर जलन होती है, और कफ के कारण भोजन में अरुचि विशेषतः होती है।

सामान्य चिकित्सा—ज्वर प्रायः आमाशय का आश्रय करके होता है, इसलिये सबसे प्रथम सामान्य चिकित्सा लंघन या उपवास करना है। लंघन और उपवास से पित्त की उष्णिमा घट जाती है। जो कार्य अनार्य चिकित्सक विवेचन देकर करते हैं, वही कार्य आर्य चिकित्सक लंघन से करते हैं। आर्य-चिकित्सा में दोषों का शमन शरीर स्वयं करता है और चिकित्सक केवल इसमें सहायता करता है। इस लङ्घन से शरीर दोषों का पाचन करता है। इस पाचन के समय में चिकित्सक ज्वर के लिये 'पाचन' बरतते हैं। आर्य-चिकित्सा में उन कषायों का नवीन ज्वर मे निषेध किया हुआ है, जिनसे शरीर का संशोधन होता है; क्योंकि चिकित्सा का सिद्धान्त 'रोगी के बल की रक्षा करना' है। इसलिये उपवास में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी के शारीरिक बल में न्यूनता न आने।

रोगी यदि बलवान हो, तो उसको वमन देना चाहिये। वमन देने से श्लेष्मा बाहर आजाती है। रोगी को शान्त रखना चाहिये, उसको बिस्तर पर लेटाकर रखना चाहिये। कमरे में शुद्ध वायु आनी चाहिये। प्रयत्न ऐसा करना चाहिये कि वायु का प्रवाह रोगी के ऊपर सीधा न आवे। जबतक दोषों का परिपाक न होजाय, तबतक शोधन आदि कषाय नहीं देने चाहिये।

पिपासा—ज्वर में रोगी को प्यास बहुत होती है, इसके लिये बर्फ चूसने के लिये दी जाये, तो आराम होजाता है। यदि बर्फ का मिलना सम्भव न हो, तो कपड़े को ताजे पानी में भिगोकर उसे चूसने के लिये देना चाहिये। अथवा मुस्ता, पित्तपापड़ा, उशीर, चन्दन लाल, नेत्रबाला और सोंठ मिलाकर २ तोला—इनको दरकच करके ४ सेर पानी में काढ़ा करना चाहिये। जब दो सेर रह जाय, तब छानकर रोगी को पिलाना चाहिये।

दाह—प्रायः सब ज्वरों में रोगी विशेष दाह प्रतीत होती है। इसके लिये यदि ताप-परिमाण १०५ अंश तक पहुँच रहा हो, तो उसके सिर पर ठण्डे पानी या बर्फ की पट्टी रखनी चाहिये। यदि इससे भी आराम न पड़े, तो कोहनी से लेकर अँगुलियों तक. और घुटने से लेकर पाँव तक दोनों हाथ-पाँव को बर्फ मिले ठण्डे पानी से बार-बार पोंछना चाहिये। इस प्रकार करने से रोगी की गरमी बहुत कुछ शान्त हो जाती है। यदि इससे भी आराम न पहुँचे, तो शीत पानी की बस्ति देनी चाहिये। इससे रोगी की गरमी

बहुत कुछ कम हो जाती है। यदि यह भी उपाय सफल न हो, तो रोगी के सारे शरीर को ठण्डे पानी से स्पंज कर देना चाहिये। १५-२० मिनट तक स्पञ्ज करने पर ताप परिमाण घट जायगा। उस समय उसको शुष्क तौलिये से पोछकर नरम वस्त्र से ढाँप देना चाहिये, जिससे पसीना आजाय। यदि सम्भव हो, तो स्वेदक दवाई या गरम चाय या कॉफी-दूध पिला देना चाहिये, जिससे पसीना भली प्रकार हो।

यदि यह उपाय भी सम्भव न हो, तो रोगी को चित पीठ के भार लेटाकर उसकी नाभि पर काँसे का कटोरा रखकर उसमें ऊपर से ठण्डे पानी की धारा गिरानी चाहिये अथवा आँवले को पीसकर उसके द्वारा नाभि के चारों-ओर आलवाल करके उसमें ठण्डा पानी भर देना चाहिये।

वमन—कई ज्वरों में रोगी को वमन बहुत ज़ोर से होता है, यहाँ तक कि कुछ भी औषधि उसके पेट में नहीं टिकती। इस अवस्था में किसी प्रकार की दवाई का देना उत्तम नहीं। रोगी को पूर्णतः लंघन कराना चाहिये। बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये। कौड़ी-प्रदेश पर बर्फ या राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। यदि संभव हो, तो नारियल का पानी घूँट-घूँटकर पीने को देना चाहिये। नीबू को चूसना चाहिये या नीबू की सकंजबीन को घूँट-घूँटकर पीना चाहिये। कई बार इमली या आलू-बुखारे का हिम-कषाय मीठा मिलाकर पीने से विशेष लाभ देता है। गिलोय के काढ़े में मधु मिलाकर देना चाहिये।

मलबन्ध—यह शिकायत खास ज्वर में पाई जाती है। अनार्य-चिकित्सक पहले ही रात को ब्लुगिल या कैलोमल देकर प्रातः सेलाईन मैगनेशियम सल्फेट देते हैं। परन्तु आर्य-वैद्यक में यह बात नहीं। उनका विचार है कि जबतक रोगी स्वस्थ न हो जाय, या प्रकृति स्वयं इस ओर अभिरुचि न करे, रोगी को दस्त लाने की औषधि नहीं देना चाहिये। साधारणतः नर्म, मृदु रेचक यदि रोगी को दिया जाय (विशेषतः पित्त-ज्वर के लक्षणों में), तो कोई हानि नहीं होती। इसके लिये गुलकन्द सबसे उत्तम है। अथवा गरम या शीत पानी की वस्ति भी देनी उत्तम है। यदि रोगी दवाई ले सके, तो हरीतकी, अमलतास, कुटकी, निशोथ, आँवला इनके काढ़े को पीना चाहिये। यदि रोगी के हो, तो कड़वी तुम्बी और अमलतास बराबर भाग लेकर इनको गुड़ में मिलाकर लम्बी बत्ती बना लेना चाहिये। इस बत्ती को

गुदा में रखने से मल आजाता है। निशोथ का चूर्ण शर्करा के शरबत के साथ देना उत्तम है। तुर्बद ३ माशे, सोंठ ३ रत्ती, बिस्फाइज १॥ माशे, गुलकन्द ३५ माशे। इनको देने से मलबन्ध हटता है। ज्वर उतरने पर यदि मलबन्ध रहे, तो आकाश-बेल, बिस्फाइज प्रत्येक १०॥ माशे, काबुली हरड़, काली हरड़ प्रत्येक २४॥ माशे, मिलाकर चूर्ण बना लेना चाहिये। मात्रा साढ़े दस माशे बूरे के साथ मिलाकर दें।

अमलतास का माजूम—तुर्बुद सफेद १४० माशे, बनफसा १०५ माशे, नमक हिन्दी, मुलहठी प्रत्येक २४ माशे, सौंफ, रूमी सौंफ प्रत्येक १७ माशे, सकमूनिया ३५ माशे, अमलतास का गूदा ४५० माशे, बादाम का तेल १४० माशे, शर्करा और शहद ४५० माशे मिलाकर माजूम बना लेना चाहिये। दस्तों के लिये यह उत्तम चटनी है। अमलतास, हरीतकी, कुटकी, निशोथ, आमलकी इनका काढ़ा देना भी उत्तम है।

विरेचन—(१) कई बार रोगियों में मलबन्ध न होकर अतिसार हो जाता है। इससे रोगी की शक्ति घट जाती है। इसके लिये रोगी को चूने का निर्मल पानी पीने के लिये देना चाहिये। और पाठा, गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, अतीस, चिरायता, इन्द्रजौ मिलित २ तोले; इनको ३२ तोले पानी में पकाकर ८ तोले शेष रखकर पान करना चाहिये। (२) गिलोय, कूड़े की छाल, मोथा, चिरायता, नीम की छाल, अतीस और सोंठ अथवा, सोंठ, कूड़ा छाल, गिलोय, मोथा इनका काढ़ा पान करना चाहिये।

कास—(१) पिप्पली, पिप्पलीमूल, बहेड़ा और सोंठ इनके चूर्ण को मधु के साथ अथवा बाँस के रस में मधु मिलाकर पीना चाहिये। (२) बहेड़ा छाल, लवङ्ग, मिर्च, इनके बराबर कत्था; सबको बबूल के काढ़ा की भावना देकर गोली बनानी चाहिये। इस गोली को रोगी अपने मुख में रक्खे रहें।

अरुचि—ज्वर में प्राय: करके भोजन में अरुचि हो जाती है। इसके लिये उसके दाँतों को और जीभ को प्रतिदिन नीम की या अन्य किसी कड़ुवी तिक्त दातून से साफ करवा देना चाहिये। रोगी को सैन्धव नमक और मिर्च के साथ नीबू चूसने के लिये देना चाहिये। जरिश्क का देना भी उत्तम है। अथवा नीबू, बिजौरा, आर्द्रक, पोदीना, अनार का पानी,

शर्करा, जीरा, इलायची, कालोमिर्च इनको मिलाकर चटनी बनानी चाहिये।

खाँसी—बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, धमासा, परवल, काकड़ाश्रृङ्गी, भारंगी, कुटकी, शठी, इनका काढ़ा अथवा क्षुद्रादि काढ़ा देना चाहिये।

प्रलाप—ज्वर के अधिक होने पर रोगी बेहोश हो जाता है। वह बहुत बकता है। इस अवस्था में उसके सिर पर बर्फ के पानी का या कोलन वाटर की पट्टी रखनी चाहिये। रोगी को गुलाब या केवड़े के जल में तर पङ्खे से हवा करते रहना चाहिये। हाथ और पाँव पर शीत परिसेक करना चाहिये।

दोषानुसार ज्वर की चिकित्सा

वात-ज्वर—जम्भाई विशेष रूप में आती है, ज्वर और दर्द के कारण रोगी को नींद नहीं आती, मुँह सूखा रहता है, छींक नहीं आती, अंग में रूखापन रहता है, अङ्ग-प्रत्यङ्ग टूटते प्रतीत होते हैं, प्राय: मल-बन्ध रहता है।

उपाय—(१) बेल, अरणी, श्योनाक, काश्मरी, पाटला, गिलोय, आमलकी, धनिया सब मिलाकर दो तोले इनका काढ़ा करके पान करना चाहिये। (२) सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय इनका काढ़ा अथवा धमासा, सोंठ, कुटकी, पाठा, शठी, बाँसा और एरण्डमूल इनका काढ़ा पीना चाहिये। (३) गिलोय, पिप्पली, पिप्पलीमूल, सोंठ, इनका कषाय या (४) सोंठ, धनिया, देवदारु, बड़ी कटेरी इनका काढ़ा पीने से, (५) गिलोय, शतावरी रस में गुड़ मिलाकर पीने से वात-ज्वर शान्त होता है। गुडूच्यादि काढ़ा इस रोग के लिये उत्तम है।

पित्त-ज्वर—(१) किसमिस, सौंफ, खूबकला, मुलहठी, बनफसा, चिरपौटा मकोय, गुलकन्द इनका कषाय मिश्री के साथ पीना चाहिये। (२) मिश्री, सौंफ, मकोय और बनफसा इनका कषाय पीना चाहिये। (३) पित्तपापड़े का क्वाथ अकेला अथवा चन्दन, नेत्रबाला और नागरमोथा के साथ देना चाहिये। (४) नेत्रबाला, लालचन्दन, उशीर, मोथा, पित्तपापड़े का क्वाथ शीतल करके पान करना चाहिये। (५) परवल पत्र, यव, धनिया मुलहठी इनके काढ़े में मधु मिलाकर देना चाहिये। (६) धमासा, पित्तपापड़ा, प्रियंग,

चिरायता, वासक, कुटकी इनके क्वाथ में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। (७) बेर के या आम के कोमल पत्तों को कांजी में पीसकर शरीर पर मलना चाहिये। अथवा रोगी को कांजी में भिगोई चादर से ढाँप देना चाहिये।

कफ-ज्वर—इस ज्वर में भोजन के अन्दर अरुचि हो जाती है। अंगों में ढीलापन रहता है, गति मन्द रहती है, रोगी आलसी रहता है, मुँह में फीकापन रहता है। मल-मूत्र में सफेदी रहती है। शरीर में भारीपन रहता है, रोगी को नींद बहुत आती है।

उपाय—बिजौरे की जड़, सोंठ, ब्राह्मी, पिप्पलीमूल, इनके काढ़े में यवक्षार मिलाकर पीना चाहिये। (२) पिप्पली चूर्ण मधु के साथ खाना चाहिये; (३) कायफल, कूठ, पुष्करमूल, काकड़ाशृङ्गी, पिप्पली चूर्ण इनको मधु के साथ खाना चाहिये। (४) अष्टांगावलेहिका—कायफल, कूठ काकड़ाशृङ्गी, अजवायन, कालाजीरा, त्रिकटु, इनके चूर्ण को शहद के साथ खाना चाहिये। (५) कटेरी, गिलोय सोंठ, पिप्पली इनका काढ़ा पीना चाहिये। (६) कटुकी, नीम, अतीस, सोंठ, पिप्पली, मिर्च और इन्द्रजौ इनका काढ़ा पान करना चाहिये। (७) भारङ्गी, कुलिञ्जन, चिरायता, शठी, मिर्च, देवदारु, जीरा, चविका, सोंठ, कूठ, वासा, गिलोय, पुष्कर-मूल, काकड़ाशृङ्गी इनके कषाय में पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। (८) देवदारु, बड़ी कटेरी, चीता, सोंठ, पोहकर-मूल इनके कषाय को पीना चाहिये।

वात-पित्त-ज्वर में—इस ज्वर में वात और पित्त के लक्षण मिले होते हैं। इसके लिये (१) कटेरी, बला, रास्ना, इन्द्रायण, गिलोय, मसूर की दाल इनका काढ़ा पीना चाहिये। (२) सोंठ, गिलोय, मोथा, चिरायता, शाल-पर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी और बड़ी कटेरी, गोखरू इनका काढ़ा। (३) गिलोय नीम की छाल, धनिया, पद्माख, लाल चन्दन मिलाकर २ तोला, जल ३२ तोला, पकाकर ८ तोला शेष रखना चाहिये। (४) अमलतास, मोथा, मुलहठी, उशीर, हरीतकी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, परवल, नीम-छाल, गिलोय, कटुकी, इनके काढ़े को पीना चाहिये। (५) गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरा-यता, सोंठ इनका कषाय पीना चाहिये। किरातादि कषाय, मधुकादि कषाय पीना चाहिये।

कफ-पित्त-ज्वर में—(१) पंचतिक्त कषाय—कण्टकारी, गिलोय,

सोंठ, कूठ, चिरायता इनका कषाय पीना चाहिये। (२) चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, गिलोय इनका काढ़ा अथवा (३) गिलोय, इन्द्रजौ, नीमछाल, परवल, कटुकी, सोंठ, लाल चन्दन, नागरमोथा इनके काढ़े में आधा तोला पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पान करना चाहिये। (४) कटुकी-चूर्ण १ तोला, शर्करा १ तोला मिलाकर गरम पानी में मिलाकर पीना चाहिये। (५) अमलतास, हरड़, पिप्पली-मूल, मोथा इनका काढ़ा पीना चाहिये।

कफ वात-ज्वर में—मोथा, सोंठ और चिरायता प्रत्येक २ तोला मात्रा लेकर काढ़ा करके पीना चाहिये। (२) नीम-छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु, कायफल, कटुकी, वच इनका काढ़ा पीना चाहिये। (३) हरीतकी, धनियाँ, मोथा, सोंठ, नेत्रबाला, पित्तपापड़ा, कायफल, वच, भारङ्गी, देवदारु इनके काढ़े में मधु और हींग मिलाकर पान करना चाहिये। यह उत्तम पाचन है। (४) मोथा, सोंठ, चिरायता इनका दो तोला लेकर काढ़ा बनाना चाहिये, यह काढ़ा दीपन, पाचन और आमाशय-दोष को नष्ट करता है।

सन्निपात-ज्वर—आर्य-वैद्यक में सन्निपात-ज्वर १३ प्रकार के बताये गये हैं। यथा—संधिक, अंतक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, शीताङ्ग, तन्द्रिक, कण्ठ-कुब्ज, कर्णिक, भुग्ननेत्र, रक्तष्ठीवी, प्रलापक, जिह्वक और अभिन्यास।

सामान्य चिकित्सा—ज्वरों की सूक्ष्मांश की विवेचना करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं, इसलिये सब ज्वरों में उपयोगी एवं निरुपद्रवी चिकित्सा यहाँ लिखी जाती है।

(१) कण्टकारी, बड़ी कटेरी, सोंठ, धनिया, देवदारु इनका काढ़ा देना चाहिये। (२) द्वादशांग—दशमूल के साथ कूठ और पिप्पली मिलाकर इनका या चतुर्दशांग— दशमूल, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ अथवा दशमूल, शठी, काकड़ाशृङ्गी, कूठ, धमासा, भारङ्गी, इन्द्र जौ, पटोल, कटुकी, यह अष्टदशांग काढ़ा देना चाहिये। (३) चिरायता, मोथा, गिलोय, सोंठ, पाठा, बला, मृणाल या लाल चन्दन, पद्माख, कटुकी और पृश्निपर्णी इनका हिम कषाय देना चाहिये। (४) चिरायता, सोंठ, मोथा, गिलोय इनका काढ़ा मधु के साथ अथवा सोंठ के स्थान में पित्तपापड़ा और कटुकी मिलाकर इनको देना चाहिये। (५) पित्तपापड़ा, जायफल, कूठ, उशीर, चन्दन लाल, नेत्रबाला, सोंठ, काकड़ाशृङ्गी, पिप्पली इनका काढ़ा उत्तम है। (६) बेर के

पत्तों को पीसकर इनको जल में घोलकर फिर छानना चाहिये । इसमें नमक मिलाकर पीने से पित्त-ज्वर शान्त होता है । (७) मुनक्का, खूबकला, गिलोय इसमें प्रत्येक १-१ तोला लेकर और कासनी ६ माशे मिलाकर काढ़ा करना चाहिये । यह काढ़ा सब ज्वरों में उपयोगी है । (८) धनिये को जल में पीसकर, इसमें शर्करा मिलाकर पीने से पित्त-जन्य दाह शान्त होता है । (९) हाथ और पाँव में बहुत जलन होती हो, तो खारा नमक और गेहूँ के तुष को मिलाकर इनसे रगड़ना चाहिये । (१०) मक्खन में नमक मिलाकर काँस के पात्र से मलना चाहिये । (११) अजवायन एक माशा, पिप्पली १ दाना इनको सायंकाल पानी में भिगो देना चाहिये । प्रातःकाल पिप्पली को निकाल के अजवायन को सौ बार पानी से धोना चाहिये, जिससे वह छिलके-रहित हो जाय । इसमें १ माशा नमक मिलाकर पिप्पली के साथ पीस लेना चाहिये । इसको पीतल के बर्तन में छानकर काढ़ा करना चाहिये । जब दो पल रह जाय, तब छानकर पीना चाहिये । (१२) ब्राह्मी ८ माशा, गावजबाँ ४ माशा, शङ्खपुष्पी ४ माशा, मिर्च ४ माशा, मुनक्का ३६ माशे इनकी १ माशा की गोली बनानी चाहिये । यदि आवश्यकता हो, रोगी को मलबन्ध भी हो, तो इसमें गुलकन्द मिला लेना चाहिये ।

(१३) पित्त ताप शरीर वल्लरी सा सखी 'बद हकोम दवाई' ।
औषधं शृणो मृगाक्षि ..नोक्ष 'जा गुलाब गुलकन्द खशदे' ॥
(१४) ज्वरादि ता या कटुकान्कषायान्नपचेत् किं वद वैद्य देयम् ।
निबोध हंसी मधुर प्रचारे "वहां बनफ्सा शर्बत पिलावे" ॥

(१५) गुलाब और केवड़े का अर्क मिलाकर १ कुडव, सफेद चन्दन का बारीक चूर्ण १ पल, इनको मिलाकर रात्रि में रख देना चाहिये । प्रातःकाल १ कुडव जल मिलाकर पकने के लिए रखना चाहिये, जब आधा रह जाय, तब छानकर इसमें शर्करा मिलाकर फिर पकाना चाहिये । जब गाढ़ी हो जाय, तब उतारकर इसमें मुलहठी, छोटी इलायची, शीतल मिर्च, गिलोय का सत्त प्रत्येक १ तोला और वंशलोचन ८ माशे और थोड़ा-सा कर्पूर मिला देना चाहिये । इसके ऊपर चाँदी और सोने के वर्क छिड़क देना चाहिये । इससे पित्त-ज्वर की पीड़ा इस प्रकार से नष्ट होती है, जैसे कि रुक्मिणी कृष्ण की पीड़ा को मिटाती है । (१४) चन्दन के बुरादे से

शरबत बनाकर उसमें केले की फलियों के टुकड़े-टुकड़े करके रख देना चाहिये। इनको खाने से पित्त शान्त होता है। (१५) गोदन्ती भस्म को मक्खन में देना चाहिये। (१६) फिटकिरी को पीसकर इसमें से आधी फिटकिरी को मिट्टी के बर्तन में रखकर बीच में थोड़ा-सा गड्ढा बना देना चाहिये। इसमें थोड़ी संखिया रखकर ऊपर से आधी फिटकिरी डाल देना चाहिये। फिर इसको ढाँप करके सन्धि को बन्द कर देना चाहिये। फिर थोड़े-से उपलों में भस्म करना चाहिये। मात्रा १ रत्ती।

(१७) सोंठ, धमासा, छाल नीम की पोहकर लीजिये,
जड़ एरण्ड की पदकचूर अरडूसा तोला।
भाग बराबर ले टका भर औषध सारी,
दीजिये करके काथ वात-ज्वर रहे न प्यारी।
पाँच दिवस तक दे, येही औषध प्यारी,
न जाने कहाँ जाये वात-ज्वर की बीमारी॥

(१८) दोनों कटेरी, नागरमोथा, सोंठ गिलोय,
चिरायता नेत्रबाला आन।
छः-छः मासे तोल बराबर ले आओ,
कर दो भाग, काथ एक पिलाओ॥

(१९) खील धान की ले पानी में डार,
ता में मिश्री डाल पी, पित्त दाह मिट जाये॥

(२०) शंख-भस्म हरताल समान, आठ टंकनु बिचार,
नीला तोथा टंक तीन पुट दे तीन कुंवार।
औषधि सम्पुट में धरि गजपुट दे प्रहार चार,
एक रत्ति जो प्रमाण गहि, खांड से दीजिये जासु भार॥

शास्त्रीय औषधि—(ज्वर होने पर) हिंगुलेश्वर, मत्युञ्जय; ज्वर चूड़ामणि, कस्तूरी भूषण, द्राक्षादि काथ, अभयादि काथ, पञ्चानन रस, सौभाग्यवटी, (ज्वर उतरने पर) पंचवक्त्र रस, स्वर्ण सत्त्व, चन्दनादि लोह।

यूनानी औषधि—(१) ककड़ी, खीरे के बीज की मींगी, काहू के बीज, रब्बूसूस, मुलमहठी, तुरंजबीन सबको बराबर लेकर कूट छानकर बिहीदाने के या ईसबगोल के लुवाब में गोली बनाकर मुँह में रखना चाहिये;

(२) अथवा खसखस का शर्बत देना चाहिये; अथवा (३) सूखा बनफसा ३५ माशे, तुबु्द सफेद साढ़े तीन माशे, रब्बूसूस पौने दो माशे, सकमूनिया ६ रत्ती छानकर साढ़े सत्रह माशे लालबूरा मिलाकर गरम पानी के साथ देना चाहिये। ये तीनों वस्तुयें रोगों की प्यास बुझाते हैं। (४) गुलाब के फूल ३५ माशे, बालछड़, साढ़े दस माशे, कासनी के बीज, ककड़ी का गूदा, बादखुर बोया प्रत्येक १४ माशे, मुलहठी साढ़े सत्रह माशे, कूट-छानकर टिकिया बनावें। मात्रा साढ़े चार माशे। (५) पीली हरड़, रेवतचीनी, उस्सार योगाफिस, अफसन्तीन का निचुड़ा हुआ पानी गुलाब के फूल प्रत्येक साढ़े तीन माशे, केसर डेढ़ माशे कासनी के पानी में गोली बनाना चाहिये। यह पुराने ज्वरों में उपयोगी है। (६) सुक साढ़े दस माशे, लादन ७ माशे, गुलाब के फूल, चिरायता प्रत्येक साढ़े सत्रह माशे, केसर साढ़े तीन माशे इनको कूट-छानकर तुलसी के रस में मिलाकर आमाशय पर लेप करने से वमन रुक जाता है। (७) सौंफ की जड़, मुलहठी, पीली हरड़ प्रत्येक ३५ माशे, रूमी सौंफ साढ़े दस माशे, मस्तगी ७ माशे, अफसन्तीन, गाफिस, काली हरड़, गन्ध बेल की जड़ प्रत्येक साढ़े चौबीस माशे, ऊंट कटरी १४ माशे, मुनक्का ७० माशे, इनको औटाकर देना चाहिये। इससे प्यास बुझती है। (८) गाफिस साढ़े दस माशे, गुलाब के फूल २२१ माशे, बंशलोचन १४० माशे, इसकी मात्रा ७ माशा है। इसमें बालछड़ और तुरञ्जबीन भी मिलालें तो उत्तम है। इससे मूत्र बहुत आता है। (९) गिले इरमानी, शाहबलूत भुना हुआ, चूका के बीज, गुलाब के फूल प्रत्येक १४ माशे, वंशलोचन कहरवा प्रत्येक साढ़े दस माशे, जरिश्क साफ २१ माशे, इसको सेब के रुब्ब, ईसबगोल का लुआब इसके साथ खाना चाहिये। इससे अतिसार बन्द होता है।

आगन्तुक ज्वर

शस्त्र आदि की चोट से अथवा काम, क्रोध, भय इत्यादि के कारण शरीर के अन्दर ज्वर उत्पन्न हो जाता है। इसको आगन्तुक ज्वर कहते हैं। जो ज्वर शरीर के अन्दर से उत्पन्न होता है, उसमें प्रथम दोषों के अन्दर विकार आता है। परन्तु जो ज्वर बाह्य कारणों से उत्पन्न होता है, उसमें दोषों के अन्दर परिवर्त्तन पीछे आता है। आगन्तुक ज्वर में प्रथम ज्वर उत्पन्न होता है। पीछे दोषों के अन्दर कोप होता है। भूतादि के आवेश से जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसमें तीनों दोष कुपित होते हैं।

विषकृत-ज्वर में—मुख का रंग बदल जाता है, रोगी को अतिसार रहता है। भोजन में अरुचि, पिपासा, अङ्गों में सुई चुभने की वेदना और मूर्च्छा होती है।

औषधि के सूँघने के ज्वर में—मूर्च्छा, शिरोवेदना और अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं।

काम ज्वर में— चित्तभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, अरुचि, हृदय-वेदना, गात्र सूख जाता है।

अभिचार और अभिशाप— मोह, तृष्णा, उद्विग्न-चित्तता, रोदन और कम्प रहता है।

चिकित्सा—अभिघात या क्रोध-जन्य ज्वर में पित्त-ज्वर की चिकित्सा करनी चाहिये। औषधि की गन्ध से उत्पन्न ज्वर में पित्त-नाशक क्रिया एवं चतुर्जात, (दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर) कपूर, शीतल चीनी, अगरु, केसर, लौंग का कषाय पीना चाहिये। अभिचार और अभिशाप से उत्पन्न ज्वर में होम, दान आदि करना चाहिये। क्रोधज और काम-जन्य ज्वर में इष्ट वस्तु की प्रतीत तथा स्त्री-सेवा करने से शान्त हो जाता है।

ज्वरातिसार

ज्वर के साथ अतिसार प्रायः रहता है। ज्वर में अपथ्य करने से, पित्त-कारक भोजन करने से, विकृत पानी के पीने से, जल्दी विरेचन लेने से यह रोग हो जाता है। जिस ज्वर में पित्त का प्रकोप होता है, उसमें भी यह रोग हो जाता है। ज्वर की जो दवाइयाँ हैं, वह अतिसार उत्पन्न करती हैं, और अतिसार की दवाइयाँ ज्वर को बढ़ाती हैं। साधारणतः इस ज्वर में औषधि की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जब रोग बढ़ रहा हो या रोगी निर्बल हो जाय, उस समय इस रोग की चिकित्सा करनी पड़ती है।

चिकित्सा—१—रोगी को लंघन करना चाहिये। २—धनिया, सोंठ, प्रत्येक एक-एक तोला इनको ३२ तोला पानी में काढ़ा करके, ८ तोला शेष रखकर दो-तीन बार पीना चाहिये। ३—पृश्नपर्णी, बला, बिल्व, सोंठ, नीला कमल, धनिया इनका काढ़ा पीना चाहिये। ४—धनिया, इन्द्रजौ, मोथा, इनको जल में घोलकर, कपड़े में छानकर दो-तीन बार पीना चाहिये। ५—धतूरे के मूल की छाल १ तोला, शोधित हिंगुल २ तोला, सुहागे की खील १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, सोंठ ½ भाग इनको पान के रस में रखकर मटर के बराबर की गोली बनानी चाहिये। मात्रा—धनिये का भीगा हुआ जल और मधु। ६—उशीरादि पाचन—उशीर, नेत्रबाला, धनिया, सोंठ, वाराहक्रान्ता, धाय के फूल, लोध्र, बिल्व सब मिलाकर दो तोला, जल आध सेर, शेष आध पाव रखकर देना चाहिये। ७—गुडूच्यादि पाचन—गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ, बिल्व, मोथा, नेत्रबाला, पाठा, चिरायता, कूटज छाल, लाल चन्दन, उशीर, पद्माख इनको नं० ६ की भाँति पकाकर देना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—रामबाण, सर्वाङ्ग-सुन्दर ह्रीवेरादि-क्वाथ, कनक-सुन्दर, रस-पर्पटी, आनन्द-भैरव रस, कर्पूर-रस।

पथ्य—अनार का रस, जौ का पानी, भात और लस्सी, गूलर, बकरी का दूध देना चाहिये।

विषम ज्वर

जिस समय कोई भी ज्वर लगातार कई दिन तक रहता है अथवा रुक-रुककर देर तक आता रहता है, उस समय ज्वर किसी धातु का आश्रय कर लेता है। नवज्वर 'रस' धातु का आश्रय करके होता है। पीछे से ज्यों-ज्यों ज्वर पुराना होता जाता है, वह गम्भीर धातु में उतरता जाता है। अर्थात् रस से रक्त में पहुँचता है, रक्त से मांस में, मांस से मेदा में, मेदा से अस्थि में, अस्थि से मज्जा में और मज्जा से शुक्र में आजाता है। शुक्र में पहुँचने पर यह ज्वर असाध्य हो जाता है।

जबतक दोष 'रस' धातु में रहता है, तबतक रोगी को ज्वर प्रतिदिन आता है। इसको 'सन्तत' ज्वर कहते हैं। यह सात, नौ, दस या बारह दिन तक रहता है। जब दोषरक्त धातु का आश्रय कर लेते हैं, तो ज्वर २४ घण्टे में दो बार आता है, अर्थात् या तो दिन में एक बार और रात्रि में एक बार आता है अथवा दिन में दो बार या रात्रि में दो बार आता है। इसको 'सतत' कहते हैं। जब दोष 'मांस' का आश्रय लेते हैं, तब इसे 'अन्येद्युष्क' ज्वर कहते हैं। यह ज्वर २४ घण्टे में एक बार आता है। जब ज्वर 'मेद' धातु का आश्रय कर लेता है, तब तीसरे दिन ज्वर होता है। अर्थात् बीच में एक दिन रोगी अच्छा रहता है। जब ज्वर 'मज्जा' धातु का आश्रय कर लेता है, तब इसको 'चतुर्थक' ज्वर कहते हैं। इसमें रोगी दो दिन अच्छा रहता है। चतुर्थक ज्वर दो प्रकार से प्रभाव दिखाता है अर्थात् एक तो जंघा से या पाँव से ज्वर चढ़ता है और दूसरा सिर से ज्वर चढ़ता है। कई बार इस प्रकार से भी हो जाता है कि आज ज्वर नहीं आया, फिर दो दिन लगातार आया और फिर एक दिन नहीं आता। यह एक दूसरे प्रकार का विषम ज्वर है।

विषम ज्वर का कारण—ज्वर के अन्दर मिथ्या आहार-विहार करना है। नूतन ज्वर में बल-पूर्वक ज्वर के हटाने के लिये दी गई औषधि अन्य धातुओं को कुपित करके विषम ज्वर को उत्पन्न कर देती है। आम-ज्वर में इसीसे संशोधक या शामक औषधि का देना निषिद्ध है। ज्वर में प्रथम लंघन कराके फिर पाचन देना चाहिये। जिस समय दोषों का पाचन

भली प्रकार हो जाय, उस समय विरेचक औषधि या शामक औषधि (कटु-रस—परवल, चिरायता, गिलोय) देनी चाहिये।

परन्तु अनार्य-चिकित्सा में मलेरिया विषम ज्वर का कारण एक कीटाणु माना जाता है। यह कीटाणु एक विशेष प्रकार के स्त्री-मच्छर के काटने से रक्त में पहुँचता है। कई बार दूषित पानी के (जिसमें कीटाणुओं के अण्डे होते हैं) पीने से भी यह रोग हो जाता है। जिस समय कृमि रक्त में पहुँच जाता है, उस समय रक्ताणु टूटने लगते हैं और श्वेताणु बढ़ जाते हैं। रक्त के साथ फिरते हुए ये कीटाणु प्लीहा में आजाते हैं, और वहाँ एकत्रित रहते हैं। वहीं पर इनकी वृद्धि होती है। जिस समय ये प्लीहा से बाहर आते हैं, उस समय रोगी को ज्वर होता है, और जब फिर रक्त से वापस प्लीहा में आजाते हैं, उस समय ज्वर उतर जाता है। प्लीहा का आश्रय करने से प्लीहा बढ़ जाती है। इसलिये मलेरिया-रोगी की प्लीहा प्राय: बढ़ी होती है।

इन कीटाणुओं के कई भेद हैं। जिनके भेद से ज्वरों के स्वभाव में भी भेद आजाता है। यथा—

१-सतत-ज्वर—इसमें ज्वर प्रतिदिन आता है। प्राय: प्रात: होता है। २-तृतीयक—इसमें ज्वर बीच के दिन में सर्वथा नहीं आता और जब आता है, तो प्राय: दोपहर में आता है। ३-चतुर्थक—इसमें दो दिन बीच में ज्वर नहीं आता, और जब चढ़ता है, तो दोपहर के पीछे चढ़ता है। इन सब में सतत-ज्वर प्राय: करके आता है। इस ज्वर में शीत, उष्ण और स्वेद—ये तीन अवस्थायें, जिनका वर्णन आगे किया जायगा, स्पष्ट नहीं होतीं। सतत ज्वर में ज्वर अनियमित रहता है। परन्तु शेष दोनों ज्वरों में तीनों अवस्थायें बहुत साफ होती हैं।

सतत-ज्वर

इस प्रकार के ज्वर में ज्वर प्रतिदिन प्रात: चढ़ता है और तीसरे पहर के समीप उतर जाता है। ज्वर आने से शरीर में भारीपन, निर्बलता बेचैनी, जम्भाई आना, आमाशय-प्रदेश पर कुछ उद्विग्नता तथा शरीर पर खाज भी प्रतीत होने लगती है। किसी-किसी रोगी में बेचैनी अधिक होती है; साथ ही किसी विशेष अवयव में, यथा—पाँव, टाँगों, कटि में दर्द होता

है और हाथ, पाँव एवं आँखों में जलन होती है। कानों में शब्द का सुनाई देना, झनझनाहट या शिर-दर्द रहता है। रोगी की जीभ प्रायः मैली रहती है। प्रायः बेचैनी रहती है और कभी-कभी वमन भी हो जाता है। रोगी कभी धूप को पसन्द करता है और कभी छाया को। इन लक्षणों के थोड़ी देर पीछे रोगी को कँपकपी और सर्दी लगने लगती है। रोगी का चेहरा उतर जाता है, अँगुलियाँ श्वेत हो जाती हैं, त्वचा शुष्क और खुरदरी प्रतीत होती है।

शीत अवस्था—इस अवस्था के प्रारम्भ होने पर रोगी काँपने लगता है। उसके दाँत चरचराने लगते हैं, जिस प्रकार सरदी के कारण गरीबों के दाँत बजते हैं। कई बार यह अवस्था ऊपर लिखे हुये लक्षणों बिना ही आजाती है। ओंठ, नाक, कान नीले पड़ जाते हैं; श्वास तेज हो जाती है; ताप-परिमाण बढ़ जाता है; रोगी की नाड़ी तेज हो जाती है। जिह्वा श्वेत और शुष्क हो जाती है; रोगी की पीठ, कमर या अङ्गों में तीव्र वेदना होती है; साथही कभी-कभी जी मचलाता और वमन भी होता है। जिस समय अवस्था समाप्त होने लगती है, उस समय शरीर के अन्तःभागों में गरमी का अनुभव होने लगता है। साधारणतः यह अवस्था आधे घण्टे तक रहती है। इस अवस्था में कितने भी गरम कपड़े क्यों न डाले जायँ, रोगी की कम्प कभी बन्द नहीं होती।

गरम अवस्था—शीत अवस्था के बीतने पर रोगी को गरमी प्रतीत होने लगती है। वह अपने ऊपर के वस्त्रों को उतारकर फेंकता है। सबसे प्रथम गरमी का अनुभव ग्रीवा और चेहरे पर होता है। रोगी का चेहरा लाल हो जाता है। फिर धीरे-धीरे सारा शरीर गरम हो जाता है। यहाँ तक कि दूसरे आदमी को रोगी का स्पर्श आग की भाँति गरम प्रतीत होता है। नाड़ी तेज और दृढ़ रहती है; शंख-प्रदेश की धमनियों में धड़कन दिखाई देती है। रोगी प्रायः बेचैन और विक्षुब्ध रहता है। शीत और उष्ण दोनों अवस्थाओं में रोगी को बार-बार मूत्र-त्याग की इच्छा होती है। मूत्र की राशि अधिक रहती है, परन्तु मूत्र गरम, गँदला और गाढ़ा-पीला होता है।

स्वेद अवस्था—इसके पीछे रोगी को पसीना आने लगता है सबसे प्रथम पसीना मुँह और ग्रीवा पर आता है। फिर धीरे-धीरे सारे शरीर पर होने लगता है। इस अवस्था में रोगी के मूत्र-त्याग की प्रवृत्ति

भी कम हो जाती है, प्यास बढ़ जाती है। नाड़ी अपनी वास्तविक स्थिति में लौट आती है। रोगी इस अवस्था में आराम अनुभव करता है। रोगी अपने को पहले की भाँति स्वस्थ समझने लगता है, परन्तु कुछ कमजोरी की शिकायत अनुभव करता है। ये तीनों अवस्थायें साधारणतः छः घण्टों में समाप्त हो जाती है। कभी-कभी इसके पूर्व भी समाप्त हो जाती है और कभी-कभी अधिक समय भी ले लेती है। रोगी का मूत्र गँदला, गाढ़ा-पीला और क्षारीय होता है।

ज्वर के समय रोगी का ताप-परिमाण साधारण ताप से बढ़कर १०५ तक पहुँच जाता है। लक्षणों के प्रारम्भ होने से कई घण्टे पूर्व ही ताप-परिमाण बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। उसके पीछे कँपकपी आरम्भ होती है। जब ज्वर लगातार कई दिनों तक रहने लगता है, तब ताप-परिमाण कुछ कम हो जाता है। परन्तु जबतक क्रमि नष्ट नहीं होते, रोगी पूर्णतः स्वस्थ नहीं होता।

कई बार ऐसा भी होता है कि इस अवस्था में शीत अवस्था का अनुभव नहीं होता, या थोड़ा होता है। प्रायः शिर-दर्द रहता है, साथ ही रोगी बेहोश हो जाता है। वह अपने मित्रों को भी पहचान नहीं सकता; व्यर्थ की बकवाद करने लगता है। कई बार आमाशय विक्षुब्ध हो जाता है; रोगी का वमन चालू रहता है। भोजन या औषधि कोई भी रोगी के पेट में नहीं टिकती। इस रोग में यकृत या प्लीहा भी आक्रान्त हो जाते हैं। इन दोनों अवयवों के स्थानों पर रोगी को दर्द रहता है। बहुत कम अवस्थाओं में मूत्र के अन्दर रक्त आता है।

उपाय—चिकित्सा का उद्देश्य यह रखना चाहिये कि शीत और उष्ण अवस्था को जितना छोटा बना सकें, उतना छोटा करें। रोगी को बिस्तर पर लेटा देना चाहिये, उसके ऊपर गरम कम्बल डाल देना चाहिये, पाँव पर पानी से भरकर गरम बोतलें या गरम ईंट रख देना चाहिये। रोगी को गरम चाय या ठण्डा पानी—जो भी पसन्द करे—पीने के लिये अधिक से अधिक मात्रा मे देना चाहिये। रोगी को चारपाई के नीचे बर्त्तन में गरम राख भरकर रख देना चाहिए। वमन का देना कई बार बड़ा उपयोगी होता है, परन्तु प्रथम अवस्था में वमन का देना उत्तम नहीं। यदि

रोगी को वमन की इच्छा हो, विशेषत: जब कि भोजन के पीछे आक्रमण हुआ हो, तो वमन दे देना उत्तम है। इसके लिये राई या गरम पानी दे देना चाहिये। परन्तु प्रत्येक रोगी को वमन या विरेचन देना उत्तम नहीं। वमन या विरेचन देने से रोगी के आराम में विघ्न पड़ता है और उसे बेचैनी रहती है; साथ ही शीत लगने का भय भी रहता है। 'एन्टीपाईरीन' का मिश्रण या सुरा खार को गरम पानी में मिलाकर देना चाहिये।

द्वितीयावस्था में रोगी को शीत पानी खूब पिलाना चाहिये। इससे पसीना अधिक मात्रा में आयेगा। रोगी के शरीर को ठण्डे पानी से स्पञ्ज कर देना चाहिये और इस पानी में सिरका भी मिला लेना चाहिये। शिर पर बर्फ के पानी की पट्टी रखनी चाहिये। साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया की थोड़ी मात्रा देनी चाहिये, इससे पसीना बहुत आयेगा और आमाशय का विक्षोभ भी कम हो जाता है। नीबू की सिकञ्जी, (नीबू का रस पानी में निचोड़कर उसमें नमक या मीठा मिलाकर) देना चाहिये।

जिस समय रोगी को पसीना होने लगे-- यदि पसीना बहुत न आये), तो रोगी को ढककर रखना चाहिये और पीने के लिये चाय और ठण्डा पानी देना चाहिये, जिससे पसीना खुलकर आये। यदि रोगी निर्बल हो, तो थोड़ी-सी शराब भी देना चाहिये, रोगी को जल्दी बैठने न देना चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को वस्त्र बदलते हुये सरदी न लग जाय। उसके पसीने को सूखी हुई तौलिया से पोंछ देना चाहिये।

ज्वर के आक्रमणों के बीच में रोग की चिकित्सा करनी चाहिये। यदि आँतें साफ़ न हों, जिह्वा मैली हो और रोगी का यकृत काम न कर रहा हो, तो विरेचन देना चाहिये। इस रोग के लिये 'क्युनीन' उत्तम औषधि है। इसे 'शीयरी' शराब के साथ अथवा पानी में घोलकर नीबू का रस मिलाकर देना चाहिये। इसकी मात्रा ३,४,६,८,१० ग्रेन तक एक बार में रखनी चाहिये और प्रत्येक ३ घंटे के अन्तर से देना चाहिये। क्युनीन यहाँ तक देनी चाहिये कि कानों में बजना या शिर में झनझनाहट आरम्भ हो जाय। जिस समय ये लक्षण आरम्भ हो जायें, उस समय क्युनीन देना बन्द कर देना चाहिये। रोगी को दूध में घी डालकर पिलाना चाहिये। ज्वर उतरने के पश्चात् जितनी जल्दी क्युनीन दी जायगी, उतना ही अधिक लाभ निश्चित

है। यदि आँतें साफ हों, तो पसीना आने के समय रोगी को क्युनीन दे देना चाहिये। यदि रोगी को वमन हो, तो ज्वर के समय क्युनीन देना निष्फल है। यदि जरूरत प्रतीत हो, तो इंजैक्शन द्वारा देना चाहिये। बाजार में फीकी क्युनीन मिलती है, इसको पानी में घोलकर नीबू का रस मिलाकर देना चाहिये। यदि यह चिकित्सा की जायगी, तो दूसरा आक्रमण होगा ही नहीं अथवा धीमे रूप में होगा। जिन लोगों को यह ज्वर बार-बार होता है, वे इसके आने को तुरन्त पहचान लेते हैं। यदि वे ज्वर से पहले क्युनीन का एक मात्रा ले लें और आँतों को साफ रक्खें, तो रोगी को आराम हो जाता है। कई बार क्युनीन की बड़ी मात्रा देने की आवश्यकता होती है और कई बार रोगी को थोड़ी ही मात्रा रोगी को हानि करती है। भोजन हल्का और सुपच लेना चाहिये। वायु परिवर्त्तन करना उत्तम है।

इस रोग में यकृत, प्लीहा और फेफड़े भी आक्रान्त हो जाते हैं। इस अवस्था में इनकी चिकित्सा के अन्दर क्युनीन मिलाकर देना चाहिये। इस रोग में साधारणत: कोई विशेष उपद्रव नहीं होता। इसका परिणाम प्राय: पाण्डु-रोग या प्लीहा का बढ़ना है।

यदि क्युनीन से लाभ न हो, तो यह सन्देह हो जाता है कि वास्तव में यही रोग है अथवा और दूसरा। इसके लिये ब्लुपिल देकर प्रात: विरेचन देना चाहिये। जबतक मल का रंग स्वस्थ पुरुष की भाँति न आजाय, इसे देते रहना चाहिये। साथ ही रक्त के अन्दर क्षार बढ़ाने के लिये 'एफर वैसिंग' (झागदार मिश्रण) देना चाहिये। इस चिकित्सा के पीछे फिर एक बार क्युनीन अजमानी चाहिये।

क्युनीन के अतिरिक्त 'आरसनिक' एक दूसरी उत्तम ओषधि है, जो ज्वर को रोकती है। क्युनीन से यदि सफलता न मिले, तो 'आरसनिक' देना चाहिये।

जब ज्वर बार-बार प्रतिदिन आता हो, तो टिंचर वार्बर्ग देकर देखना चाहिये। इसमें एलोज, ओपीयम, क्युनीन, रुवर्ब आदि उत्तम औषधियाँ पड़ी हैं। इसको देने से पूर्व कैस्टर ऑयल या अन्य विरेचन से आँतों को साफ कर लेना चाहिये। जब ज्वर चढ़ने लगे, उस समय ४ ड्राम मात्रा को बिना पानी मिलाये रोगी को पिला देनी चाहिये और शेष ४ ड्राम मात्रा ३ घन्टे के

पीछे दे देनी चाहिये। प्रथम और दूसरी खूराक के बीच में एवं दूसरी खूराक के एक घन्टे तक रोगी को कोई भोजन, सिवा पानी के नहीं देना चाहिये। खूराक लेने के पीछे रोगी को बिस्तर पर लेट जाना चाहिये। यत्न करना चाहिये कि रोगी को पसीना बहुत आये।

बच्चों की अवस्था में—एक स्वस्थ बच्चा जब अपनी रोज की खूराक में कमी करने लगे, उसको जम्भाई या अकड़ाइयाँ आने लगें और किसी बीमारी की शिकायत न करे, तो ज्वर का सन्देह करना चाहिये; विशेषत: जब कि उसके हाथ और पाँव ठंडे हों और शरीर के अन्दर थर्मामीटर से ज्वर मालूम पड़ता हो। यही लक्षण विद्रधि से भी उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों में ज्वर प्राय: सन्तत होता है। प्राय: ऐसा भी देखा गया है। कि जब गर्भवती स्त्री को मलेरिया होता है, तो गर्भ में बच्चे को भी रोग हो जाता है। इस समय गर्भ की कँपकपी को माता अनुभव करती है। इन बच्चों की चिकित्सा भी उसी प्रकार होती है, जैसे कि युवाओं की। क्युनीन या अन्य औषधियों को अवस्था के साथ देना चाहिये।

सन्तत ज्वर

इस ज्वर को तेइया या चौथैइया नाम से प्राय: सब लोग पहचानते हैं। इस ज्वर का आक्रमण ठीक उसी प्रकार, उन्हीं लक्षणों से, होता है, जिस प्रकार सतत ज्वर में होता है। इस ज्वर में उष्ण अवस्था २-३ घण्टों में शान्त न होकर ६-८ घण्टों में समाप्त होती है। नाड़ी अधिक तेज हो जाती है, श्वास भारी हो जाता है, रोगी बहुत बेचैन रहता है, ज्वर जल्दी चढ़ता है और देर में उतरता है, ताप-परिमाण १०६ तक रहता है, नाड़ी १०० से १२० तक (१ मिनिट में) हो जाती है; चेहरा लाल तमतमाता हुआ रहता है और आँखें लाल, रक्त से परिपूर्ण होती हैं। रोगी प्राय: प्रलाप करता है, शरीर पीला हो जाता है, यह पीलापन या तो सहसा होता है, अथवा शनैः-शनैः होता है। रोगी का आमाशय प्राय: विक्षुब्ध रहता है, उसको हिचकियाँ आती हैं, वमन होती है, वमन में हरा-पीला पित्त बाहर आता है। ६ या ८ घण्टे के पीछे रोग घटना प्रारम्भ होता है। कई बार १२ घण्टे तक भी रोग के घटने के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते। इस

अवस्था में रोगी को पसीना होने लगता है, ज्वर घट जाता है, नाड़ी नर्म हो जाती है और कभी-कभी रोगी सोने लगता है। कई बार लक्षणों का उतराव बहुत ढोला होता है, यहाँ तक कि कई बार प्रथम शीत अवस्था का पता भी नहीं चलता। साधारणतः लक्षणों का घटाव प्रातःकाल आरम्भ होता है और दोपहर तक रोगी स्वस्थ रहता है। तीव्र अवस्था में घटते हुये लक्षणों का पता लगाना सरल नहीं होता; परन्तु लक्षण घटते अवश्य हैं। यदि ज्वर पूर्ण-रूप से कभी न उतरे, तो सन्तत ज्वर का सतत से अथवा टाईफाईड ज्वर से भेद करना कठिन हो जाता है। इसके लिये रोगी को बिस्तर पर लेटाकर ताप-परिमाण देखना चाहिये और केवल द्रव भोजन देना चाहिये। बस, जो कुछ तुम कर सकते थे, तुमने कर दिया; अब चिकित्सक को बुलाकर उससे सहायता लेनी चाहिये।

इस ज्वर का प्रथम आक्रमण प्रायः २४ घन्टे रहता है और दूसरा आक्रमण (यदि उचित उपाय से न रोका जाय, तो) पहिले से अधिक लम्बा होता है। रोग का समय साधारणतः एक सप्ताह से लेकर ३ सप्ताह है, परन्तु यह इससे भी अधिक रह सकता है। सातवां, चौदहवां और २१ वाँ दिन प्रायः खतरनाक होता है। इन दिनों में या तो ज्वर घट जाता है, अथवा दुगुना बढ़ जाता है। अच्छे होनेवाले रोगियों में ताप-परिमाण और नाड़ी घट जाती है और आमाशय-विक्षोभ शान्त हो जाता है। रोगी को पसीना बहुत आता है। बुरे रोगियों में कमजोरी बढ़ जाती है, मल और मूत्र में रक्त आने लगता है, ठण्डा पसीना होता है, प्रलाप, बेहोशी रहती है, संक्षेप से, रोगी की अवस्था टाइफाइड जैसी रहती है।

इस ज्वर में प्रायः अन्तः अवयव आक्रान्त हो जाते हैं, आमाशय में विक्षोभ बहुत होता है, जिसके कारण रोगी को वमन बहुत होता है, विशेषतः उष्ण अवस्था में। आमाशय का विक्षोभ ही कई बार इस रोग का मुख्य लक्षण होता है, रोगी भोजन या औषधि किसी भी वस्तु को पसन्द नहीं करता। मस्तिष्क पर प्रभाव होने से कई बार रोगी मूर्च्छित हो जाता है। इसलिये ज्वर उतरने के समय या और समय में भी रोगी को सम्भालकर खड़ा करना चाहिये। मस्तिष्क में विक्षोभ या शोथ होने से खोपड़ी में गरमी, प्रलाप होता है और आँख का श्वेत भाग लाल हो जाता है, रोगी पूर्णरूप

से बेहोश हो जाता है और अन्त में तन्द्रा होजाती है। इस रोग में फेफड़ों के अन्दर भी सूजन हो जाती है।

चिकित्सा—यदि अन्तः अवयव आक्रान्त न हों, तो सबसे प्रथम विरेचन देना चाहिये। विरेचन से इतना हो जाना चाहिये कि रोगी का मल साधारण की भाँति हो जाय। बच्चों के लिये दिन में दो-तीन बार साइट्रेट आफ मेगेनेशिया को देना उत्तम है। शिर-दर्द के लिये शिर पर शीत परिषेक करना चाहिये, कनपटियों पर, कानों के पीछे जौंक लगवानी चाहिये। ज्वर घटने के प्रथम बार जब कि त्वचा गीली हो, तो १५ ग्रेन क्युनीन को १ ड्राम नीबू के रस में और २ औन्स पानी मिलाकर देना चाहिये। इसके पीछे प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से ६ ग्रेन क्युनीन देते रहना चाहिये, जबतक त्वचा में गरमी और रुक्षता न आये। यदि ज्वर दो दिन तक न आये, तो क्युनीन की मात्रा को धीरे-धीरे घटाते जाना चाहिये। यदि ज्वर एक बार उतरने के पीछे फिर चढ़ जाय, तो विरेचन देकर फिर क्युनीन देनी चाहिये। इस प्रकार दो, तीन, चार बार देने से ज्वर अवश्य रुक जाता है। यदि चिकित्सक की सलाह न मिल सके और आमाशय में विक्षोभ हो, तो जब-तक ज्वर के लक्षण शान्त न हो जायँ, क्युनीन नहीं देनी चाहिये। वमन को रोकने के लिये बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये; अथवा $\frac{1}{4}$ ग्रेन पल्व एपिकॉक को प्रत्येक दो घन्टे के अन्तर से पानी के साथ देना चाहिये। आमाशय पर राई का प्लास्टर लगाना चाहिये।

जिस समय मस्तिष्क आक्रान्त हो और तीव्र अतिसार हो रहा हो, उस समय क्युनीन नहीं देना चाहिये। रोगी को पुष्टिकारक भोजन देना चाहिये। इसके लिये लाज,जौ का पानी और दूध उत्तम है। यदि रोगी निर्बल हो जाय अथवा मूर्च्छित हो रहा हो, जिह्वा शुष्क या भूरी हो, नाड़ी निर्बल और तेज हो, रोगी में प्रलाप हो, तो १ ड्राम की मात्रा में ब्रांडी देना चाहिये। यदि रोगी बहुत निर्बल हो, तो उसे उठने नहीं देना चाहिये, यहाँ तक कि बिस्तर पर भी खड़े नहीं होने देना चाहिये।

जब आमाशय में विक्षोभ हो, तो स्वाद-रहित क्युनीन को नाइट्रिक एसिड डाइल्यूट के साथ देना चाहिये या इंजैक्शन द्वारा देना चाहिये। यदि

वमन बहुत हो, तो क्लोरोफार्म में कपड़े को भिगोकर आमाशय पर रखना चाहिये, ऊपर से रेशम या घड़ी के शीशे से ढक देना चाहिये। विरेचन के लिये प्रथम कैलोमल को देना उत्तम है।

आंत्र-ज्वर—टाइफाईड ज्वर में और इस रोग में निम्न प्रकार से भेद कर सकते हैं:—

आंत्रिक

यह धीरे-धीरे चढ़ता है। कँपकपी थोड़ी होती है। प्रथम कुछ दिनों तक ताप-परिमाण नहीं बढ़ता। इस रोग का कारण शारीरिक निर्बलता है। प्राय: पहले ही से अतिसार रहता है, मल का रंग पीला रहता है। आँतों में दर्द और दबाने से पीड़ा होती है। गुलाबी रंग के दाने निकलते हैं, ज्वर का उतराव बहुत धीरे-धीरे होता है, प्राय: प्रात:काल होता है। कामला बहुत कम होता है, आमाशयिक-लक्षण—बेचैनी, जी मचलाना, वमन प्राय: होता है।

सतत-ज्वर

ज्वर एकदम से चढ़ता है। कँपकपी बहुत होती है। ज्वर प्रारम्भ में प्रथम दिन से चढ़ता है। रोग का कारण मलेरिया होता है। प्रथम मलबन्ध अथवा काला-पीला मल आता है। वमन के पीछे आमाशय और प्लीहा पर दर्द होता है। किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते। प्रतिदिन घट जाता है, प्राय: प्रात:काल ज्वर चढ़ता है। कामला प्राय: होता है। आमाशयिक लक्षण प्राय: होते हैं।

आर्य-औषधि—१—कालमेघ, तुलसी-पत्र, बिल्व-पत्र इनको कूट करके रस निकाल लेना चाहिये। यह रस दो तोला, हल्दी के पत्रों का चूर्ण १ आना भर, शोरा १ आना भर; इनके साथ देना चाहिये। २—रस-सिन्दूर १ भाग, कुटकी २ भाग, शोरा ३ भाग, श्वेत आक की जड़ के रस में पीसकर, ४ रत्ती की गोली बनाकर आर्द्रक-रस के साथ दिन में तीन बार देनी चाहिये। ३—अमलतास का गूदा, पिप्पली, मोथा, कुटकी, हरीतकी प्रत्येक

एक-एक तोला करके काढ़ा करना चाहिये। यह पाचन आँतों को साफ करता है। ४—मुलहठी, लाल चन्दन, मोथा, आँवला, धनिया, उशीर, गिलोय,पटोल-पत्र का काढ़ा मधु और शर्करा मिलाकर देना चाहिये। ५—मोथा, आँवला, गिलोय, सोंठ, कण्टकारी इनके काढ़े में पिप्पली-चूर्ण २ माशा, मधु २ माशा मिलाकर देना चाहिये। ६—उशीर, लाल चन्दन, मोथा, गिलोय, धनिया और सोंठ के काढ़े में शर्करा और मधु मिलाकर देना चाहिये। ७—सोंठ, गिलोय, मोथा, लाल चन्दन, उशीर, धनिया इनके काढ़े में शर्करा और मधु मिलाकर देने से तृतीयक ज्वर शान्त होता है। ८—काला जीरा गुड़ के साथ देना चाहिये। ९—हरड़, शालपर्णी, सोंठ, देवदारु, आँवला, बाँसा इनके काढ़े में शर्करा और मधु मिलाकर देने से चतुर्थक ज्वर नष्ट होता है।

शास्त्रीय-औषधि—ज्वर-चूड़ामणि, हिंगुलेश्वर, मृत्युञ्जय, लक्ष्मी-विलास।

डैंग्यू फ़ीवर

इस ज्वर का प्रथम लक्षण शिर-दर्द, बेचैनी, सर्दी का लगना; पीठ में, हाथ-पाँव में, सन्धियों में और अक्षि-गोलकों में तीव्र दर्द होता है। इसके साथ थोड़ा या बहुत ज्वर भी रहता है। कई बार एक ही सन्धि में तीव्र दर्द होता है, अन्य लक्षण नहीं होते। प्रथम लक्षण बेचैनी के प्रारम्भ होने के १२ घण्टे पीछे चेहरे पर लाल रंग की कोढ़ उत्पन्न होती है, और छाती, हथेली एवं अन्य स्थानों पर ४८ घण्टे के पीछे लाल दाने निकलते हैं। ज्वर का ताप-परिमाण १०३ या १०४ अंश तक बढ़ जाता है और नाड़ी की गति १ मिनट में १२० तक पहुँच जाती है। परन्तु ताप-परिमाण एवं नाड़ी की वृद्धि कुछ समय तक रहती है। साधारणतः यह रोग भयानक नहीं है। ज्यों ही दाने छिपने लगते हैं, ज्वर भी घटने लगता है। दो-तीन दिन में रोगी पूर्णतः अच्छा हो जाता है। उसका ज्वर और दर्द सब शान्त हो जाते हैं। इसके पीछे फिर दूसरी बार ज्वर और दाने निकलते हैं। ये दाने प्रथम हाथों पर निकलते हैं। ये खसरे से मिलते-जुलते हैं। इस बार का आक्रमण रोगी को पहले से अधिक निर्बल बना देता है। संधि-वात की भाँति इसमें भी

सन्धियों में शोथ, कड़ापन और दर्द होता है। कभी-कभी ग्रीवा एवं छाती की ग्रन्थियाँ भी सूज जाती हैं। इसका फिर तीसरा आक्रमण होता है। प्रत्येक आक्रमण में रोगी अधिक ही निर्बल होता जाता है। यह रोग संक्रामक एवं व्यापक रूप से होता है। यह रोग युवाओं, शिशुओं और बच्चों में भी पाया जाता है। इस रोग में अस्थियों के अन्दर बहुत दर्द होता है, इससे इसे हड्डी तोड़ बुखार (Break Bone Fever) भी कहते हैं।

चिकित्सा—आँतों की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि मलबन्ध हो, तो विरेचक औषधियाँ देनी चाहियें। यदि ज्वर बहुत हो, तो 'साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया' देना चाहिये। यदि रोगी को नींद न आती हो, दर्द बहुत हो, और शिर-दर्द न हो, तो १० से १२ ग्रेन डॉवर्स पाउडर या २० ग्रेन क्लोरल रात्रि में देना चाहिये। सोडियम सैलिसिलेट का देना भी उत्तम है। सैलेसीन १० ग्रेन और सोडियम सैलिसिलेट १० ग्रेन १ औंस पानी में मिलाकर देना चाहिये। यदि इसके आक्रमण हों, तो क्युनीन (क्युनीन सैलीसिलेट उत्तम है) देना चाहिये। गरम पानी मे सोडा कार्ब घोलकर, उससे स्नान कराना चाहिये। टिंचर बैलोडोना १० बूँद, १ औंस पानी में मिलाकर दिन मे तीन बार देना चाहिये। इससे दर्द कम हो जाता है।

आर्य-औषधि—(१) इन्द्रजौ, परवल, कटुकी या परवल अनन्त-मूल, मोथा, पाठा, कुटकी; अथवा, नीम-छाल, हरड़, आँवला, बहेड़ा, द्राक्षा, मोथा, इन्द्रजौ—इनका काढ़ा देना चाहिये। (२) सोंठ, पिप्पली-मूल, तालमखाना, मार्कण्डिका, अमलतास, नेत्रबाला, हरड़—इनके काढ़े मेंयवक्षार मिलाकर देना चाहिये। (३) पंचमूल का काढ़ा रोगी को देना चाहिये। (४) भारंगी, मोथा, पित्तपापड़ा, कूठ, सोंठ, हरड़, पिप्पली, बिल्व, श्योनाक, गम्भारी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, गोखरू—इनका काढ़ा दिलवाना चाहिये।

शारङ्गी औषधि—ज्वरांकुश, चण्डेश्वर, पञ्चानन रस, हिंगुलेश्वर, और मृत्युञ्जय-रस देना चाहिये।

सैरिब्रो स्पाइनल फ़ीवर

इस रोग में मस्तिष्क की कलाओं के अन्दर शोथ हो जाती है। रोगी के अन्दर आक्षेप विशेषत: ग्रीवा की मांस-पेशियों में होते हैं। मेरु-दण्ड के साथ-साथ दर्द भी नीचे को जाती है। यह रोग टाइफाइड, टाइफस या रिलैप्सिंग ज्वर में होता है। कई बार ये आक्षेप ही स्वयं मुख्य लक्षण बन जाते हैं। जब यह रोग स्वतन्त्र-रूप से हो, तो इसका कारण कृमि होता है।

चिकित्सा—रोगी के सिर पर नारायण-तैल मलना चाहिये, नासा में डालना चाहिये, कान में डालना चाहिये। खाने को वात चिन्तामणि (बृहत्), चतुर्मुख आदि देने चाहियें।

रिलैप्सिंग फ़ीवर

यह रोग आक्रमण देकर होता है, अर्थात् पाँचवें या सातवें दिन, पीछे होता है। इस रोग का एक कृमि है। यह रोग प्राय: करके दुर्भिक्ष के समय होता है, इसलिये इसको दुर्भिक्ष-जन्य ज्वर भी कहते हैं। यह रोग अन्तर देकर होता है और प्रत्येक अन्तर में पहले से कम तीव्र होता है, साथ ही इसके अन्तरों का समय भी बढ़ता जाता है। इस ज्वर का आरम्भ सर्दी लगने से, मस्तिष्क की शिरो-वेदना से, पीठ, कमर और भुजाओं के दर्द से और शक्ति ह्रास से होता है। ये लक्षण १ घन्टे से लेकर कई घन्टों तक रहते हैं। इसके पीछे त्वचा सहसा गरम और शुष्क हो जाती है। शिर-दर्द, पीठ और भुजाओं का दर्द एवं प्यास बढ़ जाती है। दूसरे या तीसरे दिन पसीना आता है, परन्तु लक्षणों में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ज्वर का ताप-परिमाण १०४ से १०८ अंश फार्नहाइट तक हो जाती है, नाड़ी १ मिनट में ११० से १०० तक पहुँच जाती है। साधारणत: इस ज्वर में किसी प्रकार के दाने नहीं निकलते, परन्तु कभी-कभी गुलाबी रङ्ग के दाने देखने में भी आजाते हैं। 'कामला' इस रोग में मुख्य लक्षण है, यह या तो धीरे-धीरे होता है अथवा सहसा हो जाता है। पहले जिह्वा गीली रहती है, इसका पृष्ठ पीला होता है, परन्तु कुछ समय पीछे बीच में शुष्क और भूरा हो जाता है। रोगी को प्राय: मलबन्ध रहता

है, आँतों में दर्द रहता है, यकृत और प्लीहा बढ़ जाते हैं। शिर एवं भुजाओं में तीव्र दर्द रहता है, परन्तु प्रलाप बहुत कम होता है।

पाँचवें या सातवें दिन सब लक्षण सहसा घट जाते हैं, ज्वर एकदम उतर जाता है, रोगी को बहुत पसीना आता है। रोगी को अतिसार हो जाता है, अथवा नाक एवं आँतों से रक्त-स्राव होने लगता है। ज्वर के सब लक्षण कुछ समय के लिये सर्वथा शान्त हो जाते हैं, जिह्वा साफ़ [illegible] करता है। वह शक्ति प्राप्त करने लगता है, उसे इस रोग का आक्रमण नहीं होता। प्रायः पाँचवें या सातवें दिन पीछे पहलेवाले लक्षण फिर लौट आते हैं। इस बीच में नाड़ी स्वस्थ अवस्था की अपेक्षा कुछ मन्द रहती है। यह आक्रमण ३ से ५ दिन तक रहता है और फिर सहसा लक्षण शान्त हो जाते हैं। कई बार तीसरा आक्रमण भी होता है। प्रत्येक आक्रमण में रोग का वेग घटता जाता है और बीच का अन्तर बढ़ता जाता है।

इस रोग का कृमि रुग्ण व्यक्ति के रक्त में पाया जाता है। यह रोग श्वास के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुँचता है। यह कृमि पतले धागे की भाँति होता है, इसकी गति कॉर्क निकालनेवाले 'स्क्रू' की भाँति बलेटे की खाई हुई होती है।

यह रोग प्रायः दुर्भिक्ष के समय फैलता है। साथ ही अधिक भीड़ में, स्वच्छ वायु के अभाव में यह रोग विशेषतः फैलता है। इस रोग से १८ प्रतिशतक मृत्यु होती है।

चिकित्सा— रोगी को खुली वायु, तम्बू, झोपड़ी में रखना चाहिये उसे दूध, जौ का पानी आदि पोषक भोजन देना चाहिये। स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। यदि मलबन्ध हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। रोगी को प्रतिदिन ताजे पानी से स्पञ्ज करना चाहिये। यदि रोगी निर्बल हो रहा हो और नाड़ी क्षीण हो जाय, तो शक्ति-वर्द्धक औषधियाँ देनी चाहिये। आक्रमणों के बीच में क्युनीन देनी चाहिये। ज्वर के बन्द होने पर कुछ दिनों तक रोगी को पोषक और शक्ति-वर्द्धक भोजन देना चाहिये।

टाइफाईड

इस ज्वर को आंत्रिक ज्वर भी कहते हैं; क्योंकि इस रोग में आँतें आक्रान्त होती हैं। यह रोग कई बार पानीवाली टट्टियों के खराब होने से हो जाता है। टट्टियों के खराब होने से दूषित वायु, जो नीचे नालियों मे बहती रहती है, ऊपर आकर घर मे भर जाती है। कई बार यह रोग दूषित पानी के पीने से होता है। दूध के द्वारा भी यह रोग संक्रमित होता है। यह रोग रोगी के सक्रान्त कपड़ों से भी दूसरों मे फैलता है। यह रोग श्वास से या स्पर्श से नहीं फैलता। इस रोग का मुख्य कारण एक कृमि है, जो निगले जाने पर रोग उत्पन्न करता है। यह रोग तीसरे सप्ताह मे विशेषतः फैलता है। यह रोग युवा पुरुषों पर वृद्धों की अपेक्षा अधिक आक्रमण करता है। यह रोग वसन्त-ऋतु मे अधिकतर होता है। रोग के संक्रमण और रोग के बढ़ने के बीच का समय ७ से २१ दिन है; परन्तु प्रायः १० से १४ दिन के बीच मे रोग बढ़ जाता है।

लक्षण—रोग का आक्रमण शनैः-शनैः होता है। रोगी अपने को कुछ अस्वस्थ अनुभव करने लगता है, अगों मे दर्द, शिर-दर्द, भूख का नष्ट होना और गर्मी मालूम होती है। परन्तु रोगी यह समझता है कि [illegible] सी अस्वस्थता है। वह अपना कार्य करता रहता है। कई बार यह रोग सहसा हो जाता है। प्रायः प्रथम मलबन्ध रहता है, परन्तु कभी-कभी रोगी को पहले ही मे अतिसार रहता है। इसके अतिरिक्त और भी लक्षण होते हैं; जैसे—आमाशय-विकार, बेचैनी, वमन, भोजन को ग्रहण करने की असमर्थता। इन्हीं लक्षणों से कई बार इसको आमाशयिक ज्वर भी कह देते हैं। नाड़ी तेज और भरी हुई, त्वचा गरम और उष्ण, भूख नष्ट हो जाती है, जिह्वा मैली रहती है और रोगी को अतिसार रहता है। ज्वर दोपहर के पीछे बढ़ जाता है और प्रातःकाल थोड़ा घट जाता है, यह अन्तर प्रायः १-२ अंश का होता है। मूत्र गँदला और गहरा-पीला होता है। रात्रि को बेचैनी अधिक बढ़ जाती है; चेहरा पीला, गालों पर लालिमा होती है, आँखें साफ और चमकदार होती हैं।

अतिसार में मल पतला, पीला और विशेष गन्ध-युक्त होता है। यदि रोगी के दक्षिण कोष्ठ पर हाथों से दबाव दिया जाय, तो

उसके चेहरे से पीड़ा का अनुभव होता है। कोष्ठ में कठोरता अनुभव होती है। ज्वर के दसवें या बारहवें दिन छाती और पीठ पर गुलाबी रङ्ग के दाने दिखाई देते हैं, जो दबाने से नष्ट हो जाते हैं और फिर उठ आते हैं। ये दाने चौथे-पाँचवें दिन शान्त हो जाते हैं। अच्छे होनेवाले रोगियों में विशेषतः बच्चों में दाने निकलने के पीछे ज्वर कुछ घट जाता है। ऐसी अवस्था में रोगी तीसरे सप्ताह के प्रारम्भ से अच्छा होने लगता है। अब ज्वर के उतराव में भी स्पष्ट अन्तर दीखता है। अतिसार घट जाता है, जिह्वा साफ हो जाती है, अङ्गों का दर्द शान्त हो जाता है, रोगी रात्रि में सोता भी है, ज्वर का ताप-परिमाण घट जाता है, भूख बढ़ जाती है। प्रायः दूसरे सप्ताह में रोगी में प्रलाप हो जाता है, पहले ही रात्रि में रहता है और पीछे बढ़ जाता है। रोग के बढ़ने पर जिह्वा खुश्क, लाल, चमकदार और फटी हुई होती है; दाँतों पर मैल जम जाती है। ओठ फट जाते हैं, इसमें रक्त निकलता है। रोगी का मांस और शक्ति क्षीण हो जाती है। वह पड़ा रहता है और प्रायः उसे यह मालूम नहीं होता कि उसके चारोंओर क्या हो रहा है। यदि रोगी के लक्षण बुरे हों, तो वह बिलकुल बेहोश रहता है। उसका ताप-परिमाण बढ़ जाता है, वह कपड़ों को चुनता है, हाथ काँपते हैं। हाथों में कँपकपी, कपड़ों को चुनना जितना अधिक होगा, उतना ही आंत्रो के अन्दर विकार अधिक समझना चाहिये। पुतली का फैलना, नाक से रक्त-स्राव मूत्र एवं मल से रक्त-स्राव होना, प्रलाप, आक्षेप हों, तो समझना चाहिये कि रोगी की अवस्था बुरी है।

रोगी का ताप-परिमाण बार-बार देखना चाहिये। रोगी का ताप-परिमाण प्रातःकाल १०५ अंश फार्नहाइट पहुँचता है और दिन में किसी समय १०७ अंश तक पहुँच जाता है। भयानक रोगियों में ज्वर १०५ अंश तक प्रथम सप्ताह में पहुँच जाता है, दूसरे सप्ताह में ज्वर सायंकाल १०५ से कुछ बढ़ जाता है और प्रातः १०५ अंश से कुछ घट जाता है। तीसरे सप्ताह में ज्वर प्रातःकाल घट जाता है और चौथे सप्ताह में और भी कम हो जाता है। सहसा अथवा अनियमित रूप से ताप-परिमाण का बढ़ना इस बात का साक्षी है कि स्थानिक उपद्रव, जैसे—आंतों में ताजे व्रणों का होना, व्रण का रक्त के साथ फटना, आध्मान, फेफड़ों में शोथ आदि

लक्षण होते हैं। ताप-परिमाण का सहसा घटना इस बात का द्योतक है कि आँतों से सहसा रक्त-स्राव होने लगता है। इस रोग में नाड़ी की स्पन्दन प्रहेरी रहती है। ज्वर का समय ३ से ४ सप्ताह होता है; परन्तु इसका आक्रमण दूसरा होता है, जो प्राय: १५ प्रतिशतक होता है।

उपद्रव— अतिसार, रक्त-स्राव, आंत्रों में आध्मान, मूर्च्छा, पेरिटोनियम की शोथ, प्लीहा या यकृत का बढ़ना, आमाशय का विक्षोभ रहता है।

चिकित्सा—रोगी को खुले हवादार कमरे में रखना चाहिये। प्रकाश रोगी की आँखों पर पड़ने नहीं देना चाहिये। कमरे में पूर्ण शान्ति रखनी चाहिये। बिस्तर बहुत गुदगुदा नहीं रखना चाहिये, बिस्तर पर रबर का टुकड़ा या मोमजामा बिछा देना चाहिये। रोगी के लिये दो बिस्तर रखने चाहिये ; एक दिन के लिये और दूसरा रात्रि के लिये। रोगी को हिलने-डुलने से मना करना चाहिये, उसे सहायता देकर करवट देना चाहिये और आराम के साथ उठाकर एक बिस्तर से दूसरे पर ले जाना चाहिये। रोगी की स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। शय्या-व्रण का ध्यान पहले ही से रखना चाहिये। रोग के सारे समय में मुँह और दाँतो को साफ रखना चाहिये। रोगी के शरीर को प्रतिदिन स्पंज करना चाहिये। जिस स्थान को स्पंज करे, उसे साथ-साथ खुश्क करते जाना चाहिये। रोगी को सर्दी से बचाना चाहिये। इससे रोगी का ताप-परिमाण घट जायगा। शिर-दर्द के लिये बालों को छोटा-छोटा कटवाकर उसपर बर्फ का कपड़ा या कोलन वाटर रखना चाहिये। वमन और प्यास के लिये बर्फ चूसने के लिये देनी चाहिये। रोगी को केवल दूध देना चाहिये, वह भी थोड़ा-थोड़ा करके। ३ से ५ सेर तक दूध २४ घण्टे में दे देना चाहिये। रोगी को ६ या ८ सप्ताह तक किसी भी प्रकार का कठिन भोजन नहीं देना चाहिये। नारंगी का पानी या सोडा-वाटर आदि के पीने से पेट में आध्मान हो जाता है। इस रोग में मृत्यु प्राय: अनुचित भोजन देने के कारण होती है। यदि प्रथम सप्ताह के पीछे नाड़ी तेज हो जाय और शक्ति में क्षीण हो जाय, तो उचित मात्रा में (१ से २ ड्राम) ब्रांडी देना चाहिये। यदि इसके देने से जिह्वा गीली हो जाय, ताप-परिमाण गिर जाय, नाड़ी धीमी हो जाय, त्वचा

और अधिक तर हो जाय, प्रलाप में कमी आजाय, तो समझना चाहिए कि उत्तेजक औषधि अच्छा काम कर रही है, एन्टीपाईरीन ५ ग्रेन, पानी १ औन्स और ब्रांडी १ ड्राम मिलाकर प्रत्येक चार घण्टे के अन्तर से देकर और शिर पर ठण्डा पानी रखकर कभी भी इस ज्वर में ताप-परिणाम को घटा सकते हैं। जबतक २४ घण्टे में ९-१० बार मल-प्रवाहण न हो, अति-सार को नहीं रोकना चाहिये। इसके लिये पल्व एपिकॉक को प्रातः और सायं २ ग्रेन की मात्रा में देना चाहिये, और निशास्ते की वस्ति देनी चाहिये। यदि आँतों से रक्त-स्राव हो, तो १ पाइन्ट पानी में १ ड्राम फिटकिरी का चूर्ण मिलाकर वस्ति देनी चाहिये। और रोगी को कह देना चाहिये कि वह इसको अन्दर रोके। दूध में चूने का पानी मिला कर देना भी उत्तम है। यदि त्वचा गीली हो, रोगी को थोड़ा या सर्वथा दर्द न हो, नींद न आती हो और प्रलाप हो, तो क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये। साधारणतः नींद लाने की कोई भी दवाई अपने आप बिना चिकित्सक की सम्मति के नहीं देना चाहिये। १० ग्रेन डॉवर्स पाउडर दिन में दो बार नींद के लिये दे सकते हैं। यदि रोगी बेहोश हो, तो मूत्राशय को खाली करने का ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये केथेटर-शाला का यंत्र डालना चाहिये।

इस रोग में औषधियों से उतना लाभ नहीं होता, जितना परि-चर्य्या से हो जाता है। तोभी दवाइयाँ इसमें सहायता करती हैं। सैलोल या केलोमल को आँतों की रक्षा के लिये देना उत्तम है। इस अवस्था में केलोमल ३ ग्रेन की मात्रा में प्रत्येक दो घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। जब ज्वर १०५ से बढ़ जाय, तो शीत पानी का स्नान देना चाहिये। अथवा कोहनी से लेकर हाथों तक के भागों को शीत पानी में भिगोये हुये वस्त्र से लपेट देना चाहिये। रोगी को मलबन्ध हो, तो एरण्ड, तैल या लिक्विड पैराफीन देनी चाहिये। इसकी मात्रा १ से ४ ड्राम है। इस रोग में एनिमा देना भी उत्तम है। प्रयत्न यह करना चाहिये कि आँतें साफ रहें। परन्तु कुछ चिकित्सक मलबन्ध को पसन्द करते हैं, इसलिये वह इस लक्षण को हटाने का यत्न भी नहीं करते।

इस रोग में क्लोरीन मिक्सचर का उपयोग करना चाहिये। इसको बनाने के लिये ३० ग्रेन पोटासियम क्लोरेट को एक बारह औन्स की नीली,

स्टोपर्ड बोतल में डालकर ऊपर से इसमें ४ ड्राम लेज हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला देना चाहिये। बोतल को गरम पानी में रखना चाहिये, जिससे क्लोरिन गैस बन जाय। फिर ३० ग्रेन क्युनीन सल्फेट को १२ औन्स पानी में मिलाकर थोड़ा-थोड़ा करके बोतल में डालते जाना चाहिये। और हिलाते जाना चाहिये। इसको अन्धेरे में रखना चाहिये। यह दवाई प्रत्येक ३ या ४ घन्टे के अन्तर से देनी चाहिये। इससे आंतें साफ हो जाती हैं और रोगी के अन्दर का संक्रमण भी नष्ट हो जाता है।

जीर्ण ज्वर

नूतन ज्वर में मिथ्या आहार-विहार, स्त्री-सेवा करने से या उचित उपाय न करने से यह ज्वर शरीर के अन्दर रह जाता है। इसमें रोगी को अनुभव होता है कि उसके अन्दर ज्वर है। शरीर की त्वचा गरम होती है और अन्दर सरदी रहती है; अथवा बाहर सरदी रहती है और अन्दर गरमी रहती है। यह ज्वर प्रायः यक्ष्मा-रोग के पूर्वरूप में मिलता है। रोगी के हाथ और पाँव से अङ्गारे या आग की चिनगारियाँ निकलती प्रतीत होती हैं। ज्वर का वेग मन्द रहता है, ताप १०० या ९९ हो रहता है, परन्तु नाड़ी संख्या में अधिक बढ़ जाती है।

उपाय—१—नीम के पत्ते, हल्दी का पत्ता, कालमेघ इनका रस मधु के साथ देना चाहिये। २—गिलोय, शेफालिका, पित्तपापड़ा, आर्द्रक इनका रस मधु के साथ देना चाहिये। ३—पिप्पली, परवल, चिरायता, नाटाकरंज, लाल चन्दन, बड़ी हरड़, सहजन की छाल, गोखरू प्रत्येक ४ आना भर, जल आध सेर, शेष आध पाव, इस पाचन को देना चाहिये। ४—इस रोग में गिलोय का रस मधु के साथ या पिप्पली के साथ अथवा वृहत्पंचमूल के काढ़े के साथ पिप्पली का चूर्ण देना चाहिये। ५—कटेरी, गिलोय और सोंठ इनके काढ़े में दो माशा पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पान करना चाहिये। ६—शेफालिका के पत्तों के रस में मधु मिलाकर देना चाहिये। रोगी का शरीर यदि ऊपर से ठण्डा हो, तो अगर्वादि तैल ऊपर मलना चाहिये। यदि त्वचा गरम हो, तो

चन्दनादि तैल मलना चाहिये। इसी प्रकार किरातादि तैल या लाक्षादि तैल का भी मलना उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—चन्दनादि लौह, नवायस लौह, सर्वतोभद्र-रस, बसन्त-मालती-रस, पुटपाक-विषम ज्वरान्तक लौह, अमृतारिष्ट, किरातादि तैल, घृत-पान विशेष उत्तम है।

पथ्यापथ्य—पथ्य—लंघन, वमन, पसीना लाना, यवोदक, पाचन, शोधक औषधियाँ पथ्य हैं।

अपथ्य—दिन में सोना, स्नान, तैल मलना, मैथुन, चलना, क्रोध, आँधी वायु का झोंका, व्यायाम ये अपथ्य हैं।

प्लेग (महामारी)

यह एक भयानक रोग है। जिस समय फैलता है, उस समय भयानक और व्यापकरूप में फैलता है।

लक्षण—रोगी की शक्ति गिर जाती है, कँपकँपी होती है, वमन होता है, जिसमें काले रंग का स्राव होता है, आँखें भारी और लाल अंगारे की भाँति होती हैं। रोगी को ज्वर बहुत ऊँचा होता है, कक्षा या वंक्षण में चुभनेवाला दर्द होता है। यहाँ पर ग्रन्थि बढ़कर एक पिडिका बन जाती है। इसके अतिरिक्त शरीर पर धब्बे निकलते हैं। इन धब्बों में पानी भर जाता है। अच्छे होनेवाले रोगियों में पसीना बहुत आता है; परन्तु बुरे रोगियों में अतिसार, नाक या आँतों से रक्तस्राव और प्रलाप होता है। रोगी को बहुत बेचैनी रहती है, मांस-पेशियों में ऐंठन होती है। बुरे रोगियों में समय २ से ३ दिन होता है और रोगियों में २ से ३ सप्ताह होता है। संक्रमण होने के कुछ ही घन्टों पीछे रोग बढ़ जाता है। इस रोग का कारण एक कृमि है, जो वायु-मण्डल, मक्खियों, कपड़ों तथा रोगी के सम्बन्ध में आये हुये वस्तुओं के स्पर्श से यह रोग होता है अथवा चूहों के या अन्य प्राणियों के मरने से यह रोग फैलता है। जिन अवस्थाओं में प्लेग उत्पन्न होता है, वे अवस्थायें निम्न हैं— गरमी, नमी, पानी या समुद्र के किनारे बस्ती का होना, निचली और पोली जमीन, भीड़वाले और बुरे वायु-मण्डलवाले मकानों में रहना,

प्राणियों एवं वनस्पतियों का सड़ना, अपूर्ण या दूषित भोजन का मिलना है।

इस रोग के कई भेद हैं—

१. ब्युबोनिक प्लेग — इस प्लेग में कक्षा, वंक्षण, गले में ग्रन्थि निकल आती है या ग्रन्थि लिम्फैटिक ग्लैण्ड (लसीका ग्रन्थि) के सूजने से हो जाती है।

२. न्यूमोनिक प्लेग — इस रोग में फेफड़ों के अन्दर शोथ उत्पन्न हो जाती है।

३. सैरीबुल प्लेग—इस रोग में तन्द्रा विशेष होती है। इसके अन्दर मस्तिष्क के अन्दर सूजन हो जाती है।

४. सेप्टीसीमीक प्लेग—इसमें रक्त के अन्दर विष उत्पन्न हो जाता है। ज्वर अधिक होता है।

५. गेस्टोइन्टेसटाईनल प्लेग—इस रोग में वमन, विरेचन अधिक होता है।

इस रोग का संक्रामण मक्खी के काटने से होता है। मक्खी के काटने से त्वचा पर खाज होती है। रोगी उस स्थान को नाखूनों से खुजलाता है, इससे विष रक्त में पहुँच जाता है। ये मक्खियाँ प्रायः चूहों पर आश्रय लेती हैं। जिस समय चूहा मरता है, उस समय मक्खी उड़ती है। यह मक्खी साधारणतः तीन-चार फीट से ऊँची नहीं उड़ सकती। इसलिये यह प्रायः हाथ या टाँगों पर काटती है। इनके काटने से जो ग्रन्थि पास में होती है, वही अधिक सूजेगी। जैसे हाथ में मच्छर काटने से कक्षा की ग्रन्थि सूजेगी। इसके अतिरिक्त जो स्थान नंगे रहते हैं, उनपर ही मच्छर प्रायः काटता है। इसलिये इस रोग के समय हाथों को दस्ताने से ढक कर रखना चाहिये, और पाँव में जुराबें पहनना चाहिये। सोते समय हाथ-पाँव पर तैल मलना चाहिये।

प्लेग से बचने का उपाय—जिस समय चूहे मरने लगें, उस समय उस स्थान को छोड़ देना चाहिये और स्थान-स्थान पर चूना बिछा देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो कार्बोलिक के लोशन से धोना चाहिये। रोग से बचने के लिये ऐन्टीप्लेग वैक्सीन का इन्जैक्शन लगवाना

चाहिये। इसके लगवाने से रोगी के अन्दर कृत्रिम प्रतिशक्ति आजाती है। जिस प्रकार चेचक के टीके के लगाने से चेचक के लिये प्रतिशक्ति आजाती है।

उपाय—इस रोग का कोई निश्चित उपाय नहीं है। इस रोग में रोगी को विशेषरूप से उत्तेजित रखना चाहिये। रोगी को रुग्ण वायुमण्डल से अलग निकालकर स्वच्छ वायुमण्डल में ले जाना चाहिये। कार्बोलिक लोशन में रुई भिगोकर रोगी को सूँघने के लिये देना चाहिये। रोगी को धूप में, खुली वायु में रखना चाहिये। धूप न सही जाय, तो उसको रोगी से बचाना चाहिये, परन्तु प्रकाश में कमी नहीं आने देना चाहिये। रोगी के पास भीड़ नहीं आने देना चाहिये। रोगी के मल-मूत्र को जन्तु-नाशक वस्तुओं से धो देना चाहिये।

रोगी को अभयादि क्वाथ, द्वात्रिंशग क्वाथ, द्राक्षासव, त्रिफला क्वाथ देना चाहिये। इस रोग के लिये सबसे उत्तम उपाय निम्नलिखित है—

रोगी को चण्डेश्वर रस और कस्तूरी भैरव को मकरध्वज के साथ बदल-बदलकर प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। रोगी को द्राक्षासव या अंगूर की शराब अथवा ब्रांडी की मात्रा को थोड़ा पानी के साथ बराबर देते रहना चाहिये। इस रोग में डा० डी० गोपलाचालू के आरोग्याश्रम का बना हुआ 'हेमाद्रि पानकम्' इस रोग की खास एवं अनुभूत दवा है। इसे विशेषरूप में बरतना चाहिये।

अनार्य-उपाय—इस रोग के लिये 'साईलीन' को १ से २ बूँद मात्रा में देना चाहिये। इसके अतिरिक्त एसिड कार्बोलिक को १ से २ बूँद मात्रा में विशेषतः देना चाहिये। ज्वर के समय सिर पर बर्फ की बोतल या पट्टी रखना चाहिये। टिंचर आयोडीन रैक्टीफाईड स्प्रिट में लगाकर रोगी को २-३ बूँद करके देते रहना चाहिये। ये सब वस्तुयें विष-नाशक हैं। इसके अतिरिक्त हृदय को उत्तेजित रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त एडर नैलाना आदि का इंजैक्शन किया जाता है।

गाँठ का उपाय—(१) इस ग्रन्थि को यथाशक्ति बढ़ाने का यत्न करना चाहिये। ग्रन्थि जितनी ही अधिक बढ़ेगी, उतना ही अधिक लाभ होगा। इसको बढ़ाने के लिये प्रथम इसे छेड़ना नहीं चाहिये। पीछे से जोंक लगवा

देना चाहिये। जोंक के लगवाने से रक्त का दबाव कम हो जाता है। ग्रन्थि को पकाने के लिये जमालगोटा, चीतामूल की छाल, आक का दूध, चूना, गुड़, भिलावे का फल शोधन किया हुआ—इनका लेप ग्रन्थि को फोड़ देता है। (२) चूना, शहद और मुर्गी के अण्डे का लेप करना चाहिये। (३) गण्ठे को गरम करके, इसमें हींग भरकर, गाँठ के ऊपर रखनी चाहिये। (४) पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। (५) घी के सौ बार मजीठ के कषाय में धोकर लगाना चाहिये। इसमें ठंडक बढ़ती है। (६) अलसी, राई, नमक—इनकी पुल्टिस बाँधनी चाहिये।

यूनानी उपाय—दिल को मर्दी एवं पुष्टिकारक उपायों से बल पहुँचाना चाहिये। इसके लिये शर्बत अनार, शर्बत सेव, शर्बत बिही, खट्टे नीबू का शर्बत, नारंगी का शर्बत देना चाहिये। कपूर और चन्दन छाती पर लेप करे। बतपमा, नोलोफर, चन्दन, कपूर इनको गुलाब में पीसकर लेप करना चाहिये। ग्रन्थि पर पछने लगाकर सींगी लगवानी चाहिये। रसौंत, गिले अरमानी, मामीसा आदि वस्तुओं का लेप करना चाहिये। खाने के लिये गौ का दूध और चावल देना चाहिये। शहद और सफेद बूरा मिलाकर सूजन पर रखना चाहिये।

चेचक

यह एक संक्रामक रोग है। इसके अन्दर छाले निकलते हैं। इसका आक्रमण एक बार होकर फिर नहीं होता। जबतक छालों में पीव नहीं भर जाती, त्वचा पर से छिलके पूर्णरूप से नहीं उतर जाते, तबतक यह रोग विशेषत: फैलता है। इस ज्वर का प्रथम लक्षण उपस्थित होने पर उसके पीछे दस सप्ताह तक भी इससे संक्रमण फैल सकता है। संक्रमण वायु-मण्डल के अतिरिक्त कपड़ों से, बिस्तर से भी फैल सकता है। संक्रमण लागू होने से लेकर रोगोत्पत्ति होने का समय १२ दिन होता है। इस रोग का प्रथम लक्षण कँपकपी लगाना होता है। इसके पीछे गरमी और फिर सरदी, फिर गरमी इस प्रकार से होता रहता है। रोगी को तन्द्रा, बेचैनी, जी मच-लाना, वमन, शिर-दर्द, पीठ कमर में दर्द तथा प्राय: गले में शोथ रहता है। फिर ज्वर हो जाता है, नाड़ी तेज़ हो जाती है, त्वचा गरम हो जाती है, ज्वर

१०४-१०५ अंश फार्नहाइट तक बढ़ जाता है। यदि इस बीच में मस्तक पर हाथ फेरें, तो थोड़ी-सी गाँठ दिखाई देती है। ये गाँठें फुन्सी उत्पन्न होने से पूर्व दिखाई पड़ जाती हैं। दो या तीन दिन के पीछे लाल रंग के दाने चेहरे और मुख पर उत्पन्न हो जाते हैं। इनके निकलने पर ज्वर थोड़ा घट जाता है, अर्थात् १०१ से १०२ अंश तक हो जाता है। जितने अधिक दिनों में दाने निकलेंगे, उतना ही रोग कम भयानक होगा। तीसरे चौथे दिन ये दाने सारे शरीर पर फैल जाते हैं, पाँचवें दिन ये दाने छाले का रूप धारण कर लेते हैं, अर्थात् इनमें पानी भर जाता है। इनका आधार गोल हो जाता है और केन्द्र में से दब जाते हैं, एवं किनारा सूजा हुआ होता है। छालों का बीच से दबा होना ही इस रोग का मुख्य चिन्ह है। यही चिन्ह इस रोग का चिकेनपॉक्स से भेद कराता है। अगले तीन दिनों में इन छालों के अन्दर का पानी पीब का रूप धारण कर लेता है और आगे अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। जिस समय छालों में पीब भर जाती है, उस समय रोगी के शरीर से एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है। यदि रोगी तीव्र हो, तो चेहरा सूज जाता है। इस सूजन के कारण आँखें बन्द रहती हैं। १० वें दिन ये छाले सूखने लगते हैं। प्रथम चेहरे के पीछे से हाथ और पाँव के छाले सूखते हैं। चौदहवें दिन ये छाले सूखकर छिलकों का रूप धारण कर लेते हैं। २० वें या २१ वें दिन ये छिलके गिरने लगते हैं। इनके गिरने पर त्वचा लाल भूरी-सी रह जाती है। छालों के भरने पर त्वचा में 'गड्ढे' रह जाते हैं। जिस समय दाने अपनी पूर्ण अवस्था पर पहुँच जाते हैं, उस समय एक बार फिर ज्वर बढ़ता है। इस बार फिर १०४-१०५ अंश फार्नहाइट तक पहुँच जाता है। इस ज्वर को द्वितीय ज्वर कहते हैं। यह ज्वर प्रायः बारहवें दिन होता है और बुरे रोगियों में यही समय सबसे अधिक खतरनाक होता है। सारी अवस्था में जिह्वा मैली रहती है, कभी-कभी सूज भी जाती है। युवाओं में सारी अवस्था के अन्दर प्रायः कब्ज रहती है। बच्चों में रोग की समाप्ति के दिनों में अतिसार हो जाता है।

बुरे रोगियों में छाले मोटे, बड़े या आपस में जुड़े हुये होते हैं। इस अवस्था में ज्वर बहुत तेज़ होता है, रोगी को प्रलाप रहता है, रोगी बेभान अवस्था में मर जाता है। तेज अवस्था में दाने, नाक, जिह्वा और आँख एवं

मुख, गले में भी उत्पन्न हो जाते हैं। मुख से बहुत अधिक लार गिरती है और हाथ-पाँव सूज जाते हैं। बच्चों में यदि इस रोग के समय दाँत भी निकल रहे हों, तो उनमें आक्षेप बहुत होते हैं।

चेचक के पीछे कुछ नियत चिन्ह बाकी रह जाते हैं। यथा—फुन्सियों के चिन्ह, आँख के रोग, कान के रोग, सन्धियों के समीप पीब का एकत्रित हो जाना, रोगी निर्बल रह जाता है।

चिकित्सा—रोगी को यथासम्भव सबसे पृथक् रखना चाहिये। हो सके, तो उसे अलग मकान में बदल देना चाहिये। रोगी में पर्याप्त वायु आने देना चाहिये; परन्तु कमरे को बहुत ठण्डा नहीं होने देना चाहिये। रोग के समय में और पीछे स्वच्छीकरण के सब नियम पालन करने चाहिये। चेचक के जर्म्स कपड़ों में, दीवारों में, काग़ज़ों पर बहुत देर तक जीवित रहते हैं। इसलिये स्वच्छता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। परिचारकों को चाहिये कि वे रोगी के श्वास से बचे रहें। रोगी को एकाध टट्टी रोज करवा देनी चाहिये। इसके लिये साइट्रो मैगनेशिया या सिड्लिटिज पाउडर देना चाहिये। टाँगों और हाथों पर प्रतिदिन ताजे पानी से स्पंज करना चाहिये। आँखों को प्रतिदिन गरम दूध और पानी से धोना चाहिये। यदि आँखें रुग्ण हों, तो फिटकिरी के गरम लोशन से धोकर किनारों पर वैसलीन लगा देना चाहिये। घी का लगाना अच्छा नहीं; क्योंकि इससे मक्खियाँ रोगी के ऊपर आती हैं। भोजन दूध, साफ जौ का पानी और कांजी देना चाहिये। ११ वें या बारहवें दिन जब द्वितीय ज्वर के कारण रोगी की शक्ति घटी हुई प्रतीत हो और नाड़ी निर्बल हो, तो अमोनिया या ब्रांडी देना चाहिये। जिस समय पीब बन जाय, उस समय रोगी को सूखे हुये उपले की राख पर लेटा देना चाहिये। इससे पीब सूख जायगी। जिस समय छाले सूखने लगें, उस समय रोगी के कपड़े बार-बार बदलने चाहिये और रोगी निर्बल न हो, तो प्रतिदिन स्नान करवाना चाहिये। कमजोरी की अवस्था में क्युनीन का देना उत्तम है।

चेचक के निशानों से रोगी को बचाने के लिये बहुत यत्न किया गया है। रोगी की त्वचा को जितना भी अधिक हो, उतना साफ रखना चाहिये। बहुत ही धीरे से सब स्राव को धो देना चाहिये। पीछे से आटा या निशास्ता

सारे शरीर पर, चेहरे पर छिड़क देना चाहिये। इससे खाज कम हो जायगी। जैतून का तेल, कोल्ड क्रीम, हैजेलीन आदि शरीर पर मलना चाहिये। १ भाग कार्बोलिक एसिड और १० भाग तेल मिलाकर आधे शरीर पर प्रतिदिन मलना चाहिये। कार्बोलिक एसिड से सब प्रकार की बदबू कम हो जाती है। जब छाले फट जायँ, तो जिंक ऑक्साइड को निशास्ता एवं टॅनिक एसिड में मिलाकर छिड़कना चाहिये। रोगी को खुजलाने से बचाना चाहिये। यदि रोगी बच्चा हो, तो उसके हाथों को बाँध देना चाहिये; क्योंकि खुजलाने से निशान बढ़ जाते हैं।

चेचक का टीका—टीका करवाने से मनुष्य के अन्दर एक प्रकार की कृत्रिम शक्ति आजाती है। इससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती। इसके करवाने से रोग नहीं होता; यदि होता भी है, तो तीव्र रूप में नहीं होता। टीका यथासम्भव बचपन में लगवाना चाहिये। और दूसरी बार १७ वर्ष की आयु में लगवाना चाहिये। स्वस्थ शिशुओं में टीका जन्म के तीसरे महीने में करवा देना चाहिये। अथवा दाँत निकलने से पहले अथवा यदि रोग फैला हो, तो और भी जल्दी करवा देना चाहिये। यदि बच्चे को आंतों का या त्वचा का कोई विकार हो, या बच्चा निर्बल हो, तो जबतक उसके दाँत न निकले, तबतक टीका नहीं लगवाना चाहिये। टीके के लिये सबसे उत्तम समय शीत ऋतु है।

टीके के दूसरे दिन पछनों के स्थान पर छोटी-छोटी फुन्सियां निकल आती हैं। पाँचवें दिन गोल मोती के समान दाने बन जाते हैं, जिसमें लसीका भरी होती है। ८ वें दिन ये दाने पूर्णरूप में बढ़ जाते हैं और इनका केन्द्र भाग बीच में दब जाता है। इसके साथ-साथ थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी हो जाता है, अथवा भुजा सूज जाती है और कभी-कभी कक्षा की ग्रन्थियाँ भी सूज जाती हैं। ११ वें दिन ये छाले फट जाते हैं, एक छिलका रह जाता है। २० वें दिन ये छिलके भी गिर जाते हैं और इनके स्थान पर एक स्थिर चिन्ह बचा रहता है। यदि इन पछने के कारण फुन्सियों के चारों ओर लाल चकर न बने, तो समझना चाहिये कि टीके में कमी रही। इस प्रकार का टीका सफल नहीं हो सकता।

टीके के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बच्चा इन

फुंसियों को रगड़ या छील न दे। यदि वह ऐसा कर देगा, तो बहुत सूजन हो जायगी। इस अवस्था में पुल्टिस बाँधनी चाहिये, जबतक सूजन साफ और स्वस्थ न हो जाय। इसके पीछे सादा प्रलेप लगाना चाहिये।

आर्य-औषधि—(१) मसूरिका रोग में सबसे प्रथम परवल और नीम के काढ़े में वच, मुलहट्ठी, इन्द्रजौ और मैनफल मिलाकर वमन करवाना चाहिये। रोगी के शरीर पर चन्दन को घिसकर उसमें हुरहुर का रस मिलाकर अथवा केवल हालों का रस मधु के साथ या ब्राह्मी रस मधु के साथ पिलाना चाहिये। यदि रोगी बलवान हो, तो विरेचन देना चाहिये और निर्बल हो, तो शामक औषधि देनी चाहिये। इस प्रकार से दोषों का शोधन होने पर मसूरिका का ज्वर कम हो जाता है। बासी पानी में शहद मिलाकर पीने से दाह शान्त होती है। (२) दुरालभा या अनन्तमूल को तण्डुल-जल के साथ पीसकर पीने से बसन्त रोग शान्त होता है। (३) मसूरिका के दानों को पकने के समय गिलोय, मुलहठी, किशमिश, गन्ने की जड़,अनार की छाल इनके काढ़े में गुड़ मिलाकर पीना चाहिये। इससे मसूरिका शीघ्र पक जाती है, वायु कुपित नहीं होती। (४)परवल मूल और गन्ने के स्वरस को पीना चाहिये। (५) नीम, पित्तपापड़ा, पाठा, परोलपत्र, चन्दन, लालचन्दन, नेत्रवाला, कुटकी, आमलकी, वासा, दुरालभा इनके क्वाथ में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। (६) द्राक्षा, गम्भारी, खजूर, परोल, नीम-छाल, वासा, लाजा, आमलकी, धमासा इनका क्वाथ चीनी मिलाकर पिलाना चाहिये। (७) शिरीस, गूलर, पीपल, वट, इनकी छाल का चूर्ण घी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (८) बिजौरे के केशर को काँजी में पीसकर लेप करने से दाह शान्त होती है। (९) पीव पर तण्डुलोदक से सेंक करना चाहिये। (१०) बेर के चूर्ण को गुड़ के साथ खाने से मसूरिका शीघ्र पकती है। (११) बेरी के कोमल पत्तों को पीसकर पानी में डालकर मथना चाहिये। इससे जो झाग उत्पन्न हो, उससे रोगी के शरीर पर लेप करना चाहिये। इसी प्रकार नीम के पत्तों की झाग से भी लेप करना चाहिये। (१२) यदि पीव बहुत निकलती हो, तो पंचवल्कल चूर्ण या कपड़े में छने हुये गोमय-भस्म (गोबर की राख) को रोगी के शरीर पर छिड़कना चाहिये। (१३) राल, देवदारु, लोहबान, चन्दन, अगर, गुग्गुल इनका धुवाँ रोगी के पास अवश्य करना चाहिये। इससे वायु

शुद्ध रहती है। (१४) कण्ठ-शुद्धि के लिये पिप्पली, हरड़ का चूर्ण मधु के साथ खाना चाहिये। (१५) चन्दन, वासा, गिलोय, मोथा, द्राक्षा इनका शीत कषाय पिलाना चाहिये। (१६) मोती और स्वर्ण-भस्म को लौंग के चूर्ण एवं ब्राह्मी स्वरस के साथ पीना चाहिये। खाने के लिये बाजरा देना चाहिये। (१७) बबूल के छोटे पेड़ की जड़ को चूसना चाहिये। (१८) गले में शोथ बहुत हो, तो आँवला और महुये के काढ़े में शहद मिलाकर गलाले करवाना चाहिये। (१९) आँखें खिँच गई हों, तो महुए और त्रिफले के काढ़े से आँखों को धोना चाहिये। (२०) आँख में व्रण पड़ा हो, तो एरण्ड के तैल की बूँद गेरनी चाहिये। (२१) कचनार की छाल का काढ़ा अकेला या मैनफल के साथ पिलाने से दाने शीघ्र निकल आते हैं।

यूनानी उपाय— (१) मोती अनविधे इसकी भस्म या गुलाबजल में बनी हुई पिष्ठि को देना चाहिये। (२) उन्नाब को पिलूड़ी और गावजबाँ के अर्क में पीसकर शर्करा मिलाकर खूबकला का काथ देना चाहिये। (३) बाँस की जड़, बाकला का चून, खरबूजे के बीजों की मींग, चावल, मिश्री, बादाम की मींगी जौ का चून सब समान भाग लेकर मुर्गी के अण्डे की सफेदी में मिलाकर लगाने से फफोले के चिन्ह मिटते हैं। (४) जली हुई बकरी की पुरानी मेंगनियाँ, तथा ठीकरा। खरबूजे के बीज, निशास्ता, धोये हुये चावल, चना का चून, प्रत्येक ३॥ माशे, बकायन के बीज, कूठ, जराबन्द प्रत्येक १७॥ माशे, बाँस की जड़ ७० माशे इनको कूट-छानकर बाकले के पानी में या जौ के पानी में मिलाकर रात्रि के समय लेप करना चाहिये। इससे मुख को चिन्ह मिट जाते हैं।

खसरा

यह एक संक्रामक रोग है, इसमें ज्वर होता है और एक बार होकर फिर दूसरी बार उसी व्यक्ति को यह रोग नहीं होता। संक्रमण होने के ८वें से १४वें दिन के अन्दर इस रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग का प्रारम्भ सर्दी से, ज्वर से होता है, सिर में ठण्डक प्रतीत होता है। आँखें लाल, सूजी हुई होती हैं, आँखों से पानी झरता है। गले में सूजन हो जाती

है। ठोढ़ी के नीचे की ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं। रोगी को छींकें आती हैं, नाक से पानी झरता है, खाँसी और अँगों में दर्द रहती है। जिह्वा श्वेत एवं किनारों पर लाल होती है। तीसरे दिन की समाप्ति में या चौथे दिन के प्रातःकाल मस्तक और चेहरे पर, फिर कोष्ठ, छाती और अन्त में हाथ और पाँव पर छोटे, गोल लाल रंग के दाने होते हैं। ये त्वचा के पृष्ठ से बहुत उठे हुये नहीं होते। ये आगे बैठते हैं और अर्धचन्द्राकार हो जाते हैं। इन दानों का रंग गाढ़ा लाल ईंट की भाँति होता है। इन दानों पर दबाव देने से दाने दब जाते हैं, परन्तु दबाव के हटा लेने पर फिर उठ आते हैं। ज्वर और खाँसी जारी रहती है। परन्तु खाँसी ढीली पड़ जाती है। चार या पाँच दिन पीछे सब दाने सूखने लगते हैं, प्रथम चेहरे के सूखते हैं, फिर अंगों के सूखते हैं। दो दिन के पीछे सब दाने सूख जाते हैं, त्वचा पर बहुत खुजली रहती है। यह खुजली दो समय बहुत होती है, १—जब दाने अपनी पूर्ण प्रौढ़ावस्था पर पहुँचे होते हैं और २—जब ये घटने लगते हैं। इस ज्वर में चेचक की भाँति दाने निकलने पर ज्वर स्थायी रूप में नहीं घटता, अपितु दाने के सूखने तक बना रहता है और सूखने पर घटने लगता है। यह घटाव धीरे-धीरे होता है और उतरकर फिर चढ़ता नहीं। यदि ज्वर १०३ अंश फार्नहाइट तक पहुँच जाय, तो अवस्था को भयानक समझना चाहिये। निर्बलता का अधिक होना, जिह्वा का खुश्क एवं भूरा होने पर, जामुनी रंग के दानों का होना भय की अवस्था को बताता है।

खसरे के साथ केवल खाँसी ही नहीं होती, बल्कि निमोनिया भी हो जाता है। कई बार अस्थि-शोथ या कान का रोग हो जाता है। कई अवस्थाओं में खाँसी बहुत दिनों तक बनी रहती है, जिससे छाती निर्बल हो जाती है।

खसरा—इस रोग का प्रारम्भ सर्दी या प्रतिश्याय से होता है, मुँह के अन्दर एक विशेष प्रकार का जामुन के रंग का चिन्ह हो जाता है। दानों का रंग गाढ़ा लाल होता है। ये दाने त्वचा के पृष्ठ से अधिक ऊँचे नहीं उठते।

चेचक—इस रोग में सर्दी या प्रतिश्याय का कोई लक्षण नहीं होता। इस रोग में प्रायः वमन एवं कटि-प्रदेश पर दर्द होता है, जो दाने निकलने से पहले आरम्भ हो जाता है।

चिकित्सा—रोगी को बिस्तर पर लेटाकर रखना चाहिये। इससे ताप-परिमाण बढ़ता नहीं। रोगी को हवा से बचाना चाहिये। इससे श्वास-प्रणाली की कास एवं निमोनिया से बचा सकते हैं। रोगी को सब प्रकार से स्वच्छ रखना चाहिये। रोग का प्रारम्भ होने पर गरम पानी में स्नान कराना चाहिये और त्वचा को खुश्क करके रोगी को बिस्तर पर लेटा देना चाहिये। यदि परिचर्या में सावधानी बरती जाय, तो डरने की कोई बात नहीं। गरम स्नान से दाने शीघ्र बाहर निकल जायँगे। रोगी को ठण्ड से बचाना चाहिये। कमरे में शुद्ध वायु पर्याप्त मात्रा में आने देना चाहिये। कमरे में अन्धकार रखना चाहिये, जिससे आँखों पर चौंध न लगे। त्वचा की रूक्षता या खाज को मिटाने के लिये क्रमशः एक-एक अंग को ताजे पानी से स्पंज करना चाहिये। हाथ और पाँव पर वैसलीन मलनी चाहिये। रोगी को बहुत प्यास लगती है, इसके लिये ताजा पानी, पानी और दूध, लैमोनेट या नीबू की सिकंजबीन अथवा इमली का पानी देना चाहिये। यदि मलबद्ध हो, तो कैस्टर ऑयल या सनाय का चूर्ण (पंचसनार चूर्ण) देना चाहिये। यदि एक बार इससे लाभ हो जाय, तो बार-बार विरेचन नहीं देना चाहिये। यदि रोगी को ज्वर हो, तो साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया देना चाहिये। कास के लिये यूक्लिप्टस ऑयल, टिंचर बैंजीयन कम्पाउण्ड का अथवा १ भाग सिरका और ३ भाग गरम पानी—इनका भपारा लेना चाहिये। यदि रोगी का श्वास तेज चलता हो, तो छाती पर राई का प्लास्टर अथवा अलसी का पुल्टिस बाँधनी चाहिये। यदि दानों के छिप जाने के पीछे भी कास रहे, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि दाने सहसा निकल जायँ, तो रोगी अधिक गिर जाता है। इसके लिये गरम पानी में स्नान कराना चाहिये।

रोग को फैलने से रोकने का एक यही उपाय है कि रुग्ण व्यक्ति को पृथक कर दिया जाय।

चिकेन पॉक्स (छोटी माता)

यह एक संक्रामक रोग है। प्रायः बच्चों में होता है। इस रोग में दाने निकलते हैं, परन्तु बहुत निर्बल अवस्था में। इस रोग का संक्रमित होने का समय १० से १६ दिन है। संक्रमण होने पर २४ घण्टे के अन्दर थोड़ा-सा ज्वर हो जाता है। इसके साथ सर्दी, लाल दाने निकलते हैं। ये दाने प्रथम पीठ पर, फिर मुख पर और पीछे से और अंगों पर निकल आते हैं। दाने निकलने के साथ रोगी को खाज होती है। कई बार दाने एक ही बार निकलते हैं और कई बार दो-दो, तीन-तीन बार निकलते हैं। दाने निकलने के साथ ज्वर भी बढ़ता जाता है। दानों के छिपने के पीछे ज्वर भी घट जाता है। इन दानों में तीसरे दिन एक प्रकार का स्वच्छ द्रव आजाता है। चौथे दिन छाले फट जाते हैं और पाँचवें या छठे दिन पतले छिलके गिर पड़ते हैं। इनके गिरने के पीछे त्वचा पर किसी प्रकार का कोई चिन्ह नहीं बचता। ये छाले किसी भी समय देखे जा सकते हैं। इनमें कभी भी चेचक की भाँति केन्द्र में गड्ढा नहीं पड़ता। बुरे रोगियों में इन छालों के अन्दर पीव भर जाती है। अच्छे होनेवाले रोगियों में ज्वर बहुत नहीं चढ़ता।

इस रोग में रोगी को मृदु विरेचन देना चाहिये और उसको आराम से रखना चाहिये। इस रोग में ३ सप्ताह के किसी प्रकार का भय नहीं रहता।

विसर्प

यह एक त्वचा का संक्रामक रोग है, इसमें त्वचा तथा इसके निचले तन्तुओं में एक प्रकार की सूजन हो जाती है। इस शोथ का कारण एक कृमि है। यह रोग प्रायः उन व्यक्तियों में होता है, जिनका शरीर निर्बल होता है। यह निर्बलता मद्य के कारण, दूषित भोजन के कारण, स्वच्छता के अभाव से, अशुद्ध वायु से, अथवा अन्य किसी भी कारण से हो सकती है। यह रोग प्रायः मुख पर होता है। इसमें चेहरा चमकदार लाल हो जाता है, इसमें सूजन आजाती है, है। यह रक्तिमा दबाने से कुछ सेकंडों के लिये

नष्ट हो जाती है। कई बार यह सूजन इतनी अधिक होती है कि नाक, आँख, गाल एक हो जाते हैं। रक्तिमा प्रारम्भ होने से पूर्व रोगी को सरदी, कँपकँपी, शिर-दर्द, बेचैनी, होती है। इसके पीछे वमन होकर ज्वर चढ़ जाता है। रोगी को प्रायः मलबन्ध रहता है। रक्तिमा का किनारा थोड़ा-बहुत अवश्य स्पष्ट होता है। इसमें बहुत जलन होती है, और कभी-कभी छोटे-छोटे छाले भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग के साधारण रूप में बीमारी का समय १० से १४ दिन है। चार दिन तक सूजन बढ़ती है। इसके पीछे यह घटने लगती है। घटते समय छाले बनते हैं, त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और त्वचा पीली, नर्म हो जाती है।

तीव्र रोगों में ज्वर का ताप-परिमाण १०२ अंश से १०४ अंश तक पहुँच जाता है। कभी-कभी प्रलाप भी हो जाता है। त्वचा के निचले [illegible]

कभी-कभी पीव बनकर विद्रधि या नाड़ी-व्रण का रूप धारण कर लेती है। यदि शोथ मस्तिष्क की तरफ़ चली जाय, तो भयानक सिद्ध होती है।

यह रोग प्रायः घाव पर, अथवा जिस स्थान पर शल्य-कर्म किया गया है, वहाँ पर, अथवा जहाँ पर पछना किया गया है, उस भुजा में यह रोग प्रायः करके होता है। इसके होने पर त्वचा लाल हो जाती है और सूज जाती है। जब यह रोग व्रण पर आक्रमण करता है, तो स्राव बन्द हो जाता है और जब व्रण भर जाता है, तो फिर से खुल जाता है। बच्चे की नाभि से प्रायः संक्रमण उनके शरीर में फैल जाता है।

चिकित्सा—रुग्ण स्थान पर ठण्डे पानी में कपड़ा भिगोकर रख देना चाहिये। ऊपर से रेशम का कपड़ा ढक देना चाहिये। लाल स्थान पर दिन में दो बार लाइकर फैराई परक्लोराईड लगाना चाहिये। यदि इसको या १० ग्रेन सिल्वर नाइट्रेड को १ औन्स पानी में मिलाकर रुग्ण स्थान से दो इञ्च अधिक लगा दिया जाय, तो बीमारी आगे नहीं बढ़ती। रोगी को सोडा सल्फेट या कैस्टर ऑयल पहले देना चाहिये। रोगी की शक्ति को उत्तम भोजनों से स्थिर रखना चाहिये। एन्टीपाइरीन ५ ग्रेन और १५ बूँद टिंक्चर ऑफ आयर्न, इनको १ औन्स पानी में मिलाकर प्रत्येक ४ घन्टे के अन्तर से देना चाहिये, जबतक साधारण न हो जाय। यदि इनमें छाले

पड़ जायँ, तो इनको फोड़ना नहीं चाहिये। सुखाने के लिये 'एरीस्टोल' का चूर्ण छिड़कना चाहिये। यदि पीव बन जाय, तो छेद न करना चाहिये। यदि रोग किसी व्रण पर आक्रमण करे, तो तीव्र जन्तुनाशक औषधि बरतनी चाहिये। पीछे से एरीस्टोल या आयडोफार्म को छिड़कना चाहिये।

इस रोग का पूर्ववर्त्ती कारण वायु की कमी है। इसलिये रोगी को खुली वायु में रखना चाहिये। परन्तु वायु के झोंके से बचाना चाहिये। हर समय पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिये। रोगी के बिस्तर की चद्दर प्रतिदिन बदल देनी चाहिये। स्राव से यदि वस्त्र खराब हो जायँ, तो तुरन्त बदल देना चाहिये। रोगी के सब स्रावों को नष्ट कर देना चाहिये। संक्षेप में इस रोग के अन्दर पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिये।

आर्य-औषधि—(१) पंच वल्कल काढ़े का उपयोग करना चाहिये। इसके पानी से व्रण धोना चाहिए। (२) पद्माख, शैवाल, इनको पीसकर लेप करना चाहिये। (३) कसेरू, सिंघाड़ा, पद्माख, गिलोय, शैवाल, नीला कमल, कमल का कीचड़ इन वस्तुओं का लेप करना चाहिये। (४) पुण्डरीक, कमल, मजीठ, पद्माख, उशीर, लालचन्दन, मुलहट्टी इनको दूध में पीसकर लेप करना चाहिये। (५) किशमिश, अमलतास, गम्भारी, त्रिफला, एरण्ड बीज, पालूफल, निशोथ, हरीतकी इनका कल्क लेप करना चाहिये। (६) मसूर, मटर, मूँग इनको पीसकर घी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (७) खैर की छाल, सप्तपर्ण, मोथा, वासा, अमलतास का पत्र, देवदारु, कसेरू इनका लेप करना चाहिये (८) अमलतास, लसूड़े के पत्तों का या शिरीष और मकोय का लेप करना चाहिये। (९) दशांग लेप या जात्यादि घृत बरतना चाहिये।

विसूचिका (हैजा)

विसूचिका या हैजा दो प्रकार से होता है—

१—यह रोग सहसा उत्पन्न हो जाय, २—धीरे-धीरे उत्पन्न हो। इसमें अतिसार के साथ दर्द बिलकुल नहीं होता। यह रोग १ से १० दिन तक या इससे भी अधिक रह सकता है। इस रोग का आक्रमण रात्रि में या

उषाकाल में होता है, जब वायु-मण्डल का ताप-परिमाण एवं मनुष्यों का ताप-परिमाण सबसे कम होता है। इस रोग में प्रारम्भ ही से निर्बलता एवं शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है। पहले आँतों की मांसपेशियों के अन्दर आक्षेप होते हैं, इनके साथ ही अतिसार प्रारम्भ हो जाता है। आमाशय की पेशियों के आकुञ्चन से वमन प्रारम्भ हो जाता है। प्रथम खाया हुआ भोजन बाहर आता है, उसके पीछे पित्त और फिर पानी बाहर होता है। इन स्रावों में पहले रंग (पीलापन) होता है, परन्तु शीघ्र ही इनका रंग नष्ट हो जाता है, अर्थात् स्राव श्वेत या चावलों के धोवन की भाँति हो जाते हैं। इसका कारण पित्ताशय में पित्त का न बनना है। थोड़े ही घण्टों में रोगी १०,१५,२० बार मल-प्रवाहण करता है, जिसका रंग चावलों के धोवन की भाँति ही होता है।

प्रथम दस्त बड़े वेग से आता है। इससे रोगी को कुछ आराम प्रतीत होता है। रोगी को इससे थकावट हो जाती है, आमाशय के कौड़ी-प्रदेश पर बेचैनी रहती है। इस रोग में वमन बार-बार होता है। इसका भी रंग चावलों के धोवन की भाँति होता है। इसी समय तीव्र आक्षेप होते हैं। पाँव के अँगूठे और अँगुलियों में गुदगुदी होती है। यहाँ से आक्षेप जंघा, टाँग आदि की मांस-पेशियों में फैल जाते हैं। पाँव के अँगूठे और अँगुलियाँ नीली एवं झुर्रियोंवाली हो जाती हैं। मूत्र प्रथम गँदला और गहरा पीला होता है और पीछे से सर्वथा आना बन्द हो जाता है। वृक्कों में मूत्र नहीं बनता, मूत्राशय खाली रहता है। आमाशय के कौड़ी-प्रदेश पर जलन और खिंचावट अनुभव होती है और दबाने से रोगी को दर्द का अनुभव होता है। जिह्वा सफेद हो जाती है, मुँह का स्वाद कड़वा रहता है। लार का स्राव थोड़ा या बिलकुल नहीं होता, मुँह खुश्क हो जाता है, रोगी को प्यास बहुत लगती है और वह ठण्डे पानी के लिये बहुत तरसता है। नाड़ी निर्बल रहती है, एवं साधारण अवस्था से अधिक तेज चलती है। इसका स्पन्दन ९८ अंश तक पहुँच जाता है। त्वचा ठण्डी रहती है, किसी प्रकार का ज्वर नहीं रहता। रोग के प्रारम्भ में ताप-परिमाण गिर जाता है। रोगी गरमी एवं नींद आने की शिकायत करता है और बिना किसी कपड़े के ओढ़े नंगा लेटना चाहता है। कानों में झनझनाहट सुनाई देती है। रोगी प्रायः बेचैन रहता है।

प्रायः रोगी बिस्तर की पाँयत पर इकट्ठा हो जाता है। अन्त में रोगी के अन्दर निर्बलता बराबर बढ़ती जाती है। रोगी अब ठण्डा होने लगता है। यदि यह अवस्था रुक जाय, तो नाड़ी तेज हो जाती है; परन्तु मुश्किल से अनुभव होता है। स्राव बन्द हो जाते हैं, इसी प्रकार आकुञ्चन भी बन्द हो जाते हैं। त्वचा ठण्डे पसीने से तर हो जाती है। नाखूनों की एवं ओष्ठ की अवस्था बदल जाती है। सारा शरीर मुरझाया हुआ प्रतीत होता है, शिश्न और अण्ड-कोष भी छोटे हो जाते हैं और अँगुलियों पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। रोगी की वाणी निर्बल होती जाती है। जिह्वा और श्वास ठण्डे होते हैं। बुद्धि साफ होती है।

मरनेवाले रोगी के चिन्ह—आँखें अन्दर की ओर धँस जाती हैं और इनमें चमक होती है। पुतली का आकार साधारण रहता है, नाक नोकीली दीखती है। गालों में गड्ढे पड़ जाते हैं और जबड़ा नीचे को झुक जाता है। ताप-परिमाण स्वस्थ अवस्था से नीचे गिर जाता है। नाड़ी के धड़कन का अनुभव नहीं होता, रोगी को हिचकियाँ आती हैं। मल बेहोशी में निकल जाता है और सारा शरीर नीला-सा हो जाता है। मृत्यु से एक या दो घण्टे पहले प्रायः शिर, मस्तक और छाती में गरमी अनुभव होने लगती है। यह लक्षण मृत्यु का सूचक है, क्योंकि इसका कारण छोटी रक्त-वाहिनियों का विकसित होना है।

अच्छे होनेवाले रोगियों के लक्षण—धीरे-धीरे दस्तों का और वमन का बन्द होना, त्वचा गरम होने लगती है. नाड़ी भारी चलने लगती है, वाक्-शक्ति में शक्ति आने लगती है, मूत्र आने लगता है एवं दस्तों में रंग भी आने लगता है। कौड़ी-प्रदेश की जलन रुक जाती है और रोगी नींद अनुभव करने लगता है। कई बार आशा-रहित रोगी भी जी उठते हैं। रोगी में वमन करने की सामर्थ्य जबतक बनी रहती है, तबतक रोगी असाध्य नहीं होता। परन्तु जबतक रोगी को मूत्र न आजाय, उसे खतरे से रहित नहीं समझना चाहिये। अच्छे होनेवाले रोगियों में साधारणतः ७२ घण्टे के पीछे तक मूत्र आ सकता है। यदि वृक्क अपना कार्य प्रारम्भ न करें, तो यूरिया या अन्य विष जो मूत्र से निकलते हैं, रक्त में घुलकर विष उत्पन्न करते हैं। रोगी का चेहरा लाल एवं शिर गरम हो जाता है। रोगी को

प्रलाप रहता है । रोगी की मृत्यु "यूरीमिया" से हो जाती है । रोगी का ताप-परिमाण मृत्यु से कुछ पूर्व बढ़ जाता है । यह गरमी मृत्यु के पीछे भी कुछ घन्टों तक रहती है । रोग का समय कई घन्टों से लेकर कई दिनों तक है और यदि रोग-जन्य दूसरे परिणाम भी हो जायँ, तो समय और बढ़ जाता है ।

इस रोग के अन्दर कई बार औरतों में योनि-मार्ग से लाल-सा स्राव होता है जो आर्त्तव से मिलता-जुलता है । कई बार यह रोग व्यापकरूप में न होकर वैयक्तिक रूप ही में मिलता है ।

कारण—इस रोग के निश्चित कारण का अभी तक कुछ पता नहीं चला । इतना निश्चित है कि इस रोग का कारण 'विष' है । यह विष पुरुषों में सम्भोग से, गन्दगी के नलों से, भोजन से, पानी से, विशेषतः पानी मिलाये हुये दूध से, स्वादु भोजनों के अधिक खाने-पीने से होता है । इस रोग के अन्दर रोगी के आंत्रों में एवं उसके स्रावों में एक कृमि मिलता है । लोगों का यह विचार है कि यह कृमि ही इस रोग का कारण है । परन्तु अभी तक इस बात के लिये कोई प्रमाण नहीं मिले । यह सत्य है कि यदि संक्रमण के सब मार्ग रोक लिये जायँ, तो रोग आगे नहीं फैलता । यह रोग प्रायः पानी के मार्ग से फैलता है । यह रोग तीर्थ-स्थानो में, जैसे—पुरी, मथुरा, हरद्वार, मक्के आदि में प्रायः मिलता है । हरद्वार का कोई कुम्भ और पुरी का रथयात्रा-समारोह कभी भी इस रोग से खाली नहीं जाता । इसलिये यह बात साफ है कि यह रोग पानी के द्वारा अधिक फैलता है । पानी के अन्दर रोग के कीटाणु बहुत शीघ्रता से वृद्धि करते हैं, विशेषतः यदि सूर्य का ताप पानी पर पड़ रहा हो । शुद्ध पानी में कृमि १० दिन में मर जाते हैं । दूध में यदि दूषित पानी मिला दिया जाय, तो वह भी खराब हो जाता है और रोग को फैलाने में सहायक हो जाता है । यदि कीटाणु रोगी के कपड़ों पर सूखने दिये जायँ, या रोगी के स्रावों को खुला छोड़ दिया जाय, तो भी शक्ति पाकर कृमि रोग उत्पन्न कर देते हैं । इस रोग की उत्पत्ति में पूर्ववर्ती कारण भी सहायता करते हैं । ये कारण निम्न हैं:—वात-संस्थान की निर्बलता, तम्बाकू या मद्य का पीना, लम्बी थकानेवाली पैदल-यात्रा, थकावट, भीड़वाले स्थानों में सोना, प्रातःकाल की

सर्दी, ताप-परिमाण का सहसा परिवर्तन, नर्मी, धूल, दुर्भिक्ष और इस रोग से घबराहट। यह रोग उन व्यक्तियों में अधिक खतरनाक होता है, जो स्वच्छता का ध्यान नहीं रखते, अथवा उन स्थानों में भयङ्कर रूप धारण करता है, जहाँ पर सफ़ाई का प्रबन्ध अच्छा नहीं है। इसलिये इस रोग की उत्पत्ति में तीन बातों की आवश्यकता है। १—रोग का कीटाणु, २—संक्रमण का माध्यम, ३—पूर्ववर्त्ती कारण। इसलिये हैज़ा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में स्पष्टरूप से संक्रमित नहीं होता; जैसे चेचक एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में स्पष्ट रूप में चला जाता है। यह संक्रामक रोग है, जैसे टाइफाइड। संक्रामित होने के लिये इसको माध्यम की आवश्यकता रहती है।

चिकित्सा—इस रोग का कोई निश्चित उपाय अभी तक नहीं मिला। तथापि उत्तम परिचर्य्या से, कामला की चिकित्सा से, औषधियों के देने से बहुत-से रोगी बचाये जाते हैं। अतिसार के प्रारम्भ होते ही चिकित्सा करने में सफलता की बहुत आशा रहती है। हैजे की उपस्थिति में यदि अतिसार हो जाय, तो इसकी तुरन्त चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये; अन्यथा यह अतिसार हैजे में बदल जायगा।

ज्यों ही रोगी को अतिसार हो, उसी समय क्लोरोडीन ३० बूँद, ४ ड्राम ब्रांडी और ४ ड्राम पानी मिलाकर प्रत्येक २ घन्टे के अन्तर से देना चाहिये। रोगी को आराम देना चाहिये। यदि अतिसार अधिक हो, तो उत्तेजक औषधि देनी चाहिये। यदि कोई भी औषधि न मिले, तो बीस बूँद स्प्रिट कैम्फर को आधे-आधे घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। यदि क्लोरोडीन की दो खूराक देने पर या स्प्रिट कैम्फर की आठ खूराक देने पर भी अतिसार बन्द न हो, तो १० ग्रेन डोवर्स पाउडर को प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

रोगी के मूत्र को प्रवाहित करने के लिये १ ड्राम स्प्रिट ईथर नाईट्रोसाई और २ औन्स पानी मिलाकर प्रत्येक १ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस समय डोवर्स पाउडर दे रहे हों, उस समय इसको नहीं देना चाहिये। दस्त बन्द होने पर डोवर्स पाउडर देना बन्द कर देना चाहिये। यदि बेचैनी या

वमन बहुत हो, तो रोगी के कौड़ी-प्रदेश पर राई का लेप करना चाहिये। रोगी को आराम से बिस्तर पर लेटा देना चाहिये। बिस्तर पर मोमजामा बिछा देना चाहिये। जबतक अतिसार बन्द न हो जाय, कुछ भी खाने को नहीं देना चाहिये। पीछे से चाय, साबु, अगारूट देना चाहिये। साथ में पोर्ट वाइन मिलाकर थोड़ा-थोड़ा देना चाहिये। परन्तु प्रायः रोगी भोजन लेना पसन्द नहीं करता, अथवा जो लेता है, वह भी वमन हो जाता है। इस अवस्था में चाय के छोटे चम्मच से आधे-आधे घण्टे बाद खूराक (चाय या जौ का पानी) देना चाहिये। प्यास के लिये बर्फ, ठंडा पानी, सोडावाटर देना चाहिये। चूसने के लिये बर्फ देनी चाहिये। पानी में सिरका या सल्फ्यूरिक एसिड मिलाकर देना चाहिये। अम्लीय माध्यम में कीटाणु जीवित नहीं रहता। पानी से आमाशय के भर जाने पर वमन सुगमता से होता है। जबतक रोगी को मूत्र आता हो, तबतक निराश होने की कोई बात नहीं। मूत्र-प्रवाहण को और भी बढ़ाने के लिये कटि-प्रदेश पर राई का लेप, राई की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। जिस समय मूत्र का प्रवाहण शीघ्र बन्द हो जाय, उस समय भी यही उपाय काम में लाना चाहिये। सर्दी और आकुञ्चनों को हटाने के लिये हाथों से रगड़ना चाहिये। भूसी की थैलियों को गरम करके रखना चाहिये। कपड़ों पर गरम तारपीन का तेल डाल देना चाहिये। राई की पुल्टिस बाँधनी चाहिये।

यदि इस चिकित्सा को प्रारम्भ में बरता जाय, तो रोगी के बचने की बहुत कुछ आशा होती है, परन्तु यदि वमन और विरेचन चालू रहें, तो रोगी मूर्च्छित हो जाता है। अब कोई भी दवाई मुँह से नहीं दी जा सकती। मूर्च्छित अवस्था में कोई भी दवाई मुँह से देना व्यर्थ है; क्योंकि आमाशय इसको ग्रहण नहीं करता। आमाशय में एकत्रित होकर ज्वर को उत्पन्न करती है। मूर्च्छा की अवस्था में इस बात का यत्न करना चाहिये कि रोगी की उष्णिमा कम न हो। रोगी को गरम रखने के साथ पर्याप्त वायु पहुँचाना चाहिये। रोगी को शान्त लेटे रहने देना चाहिये, उसे उठने नहीं देना चाहिये। श्वास में काठिन्य हो, तो छाती पर राई की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। हाथ-पाँव पर सोंठ की या काँसी के पात्र से, अथवा सूखे कपड़े से, या हाथों से मालिश करना चाहिये। प्यास को रोकने के लिये शराब

६० बूँद की मात्रा में देना चाहिये। और कोई उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये।

रोगी को सबसे पृथक् कर देना चाहिये। परिचारकों के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति को उनके पास जाने नहीं देना चाहिये। रोगी के साथों के कपड़ों के लिये स्वच्छीकरण के नियमों का पालन करना चाहिये।

रोग के पीछे की निर्बलता में भोजन का विशेष ध्यान रखना चाहिये। भोजन द्रव देना चाहिये। इसके लिये सागु, अरारूट, जौ का पानी, चूने का पानी और दूध देना चाहिये।

विसूचिका के पिछले परिणाम—(१) ज्वर—इसमें ताप-परिमाण ऊँचा नहीं चढ़ता और कुछ ही घण्टों में उतर जाता है। त्वचा पर लाल दाने निकल आते हैं। अथवा यही ज्वर तीव्र रूप में भी हो जाता है, ज्वर होने के कुछ घन्टों पीछे जिह्वा श्वेत हो जाती है, फिर जल्दी ही भूरी एवं सूख जाती है। दाँतों पर काले दाग पड़ जाते हैं, आँखें लाल होती हैं, गाल लाल एवं नाड़ी तेज होती है, त्वचा का पृष्ठ गरम होता है। रोगी को प्रलाप रहता है, और पीछे से वह अचेत होजाता है। यह अवस्था ४ से ८ दिन तक रहती है। इस बीच में रोगी या तो अच्छा हो जाता है, या मर जाता है।

(२) सन्यास—इस रोग का आक्रमण या तो ज्वर के साथ होता है, अथवा ज्वर के बिना होता है। साथ ही मूत्र भी बन्द हो जाता है। इस रोग का कारण मूत्र में और पित्त में निकलनेवाली वस्तुओं का रक्त के अंदर घुल जाना है।

(३) जिन रोगियों को पहले अजीर्ण की शिकायत रहती है, उनमें हैजे के पीछे हिचकी रोग हो जाता है। इसके कारण रोगी कोई भी खूराक नहीं ले सकता। रोगी आराम से लेट नहीं सकता और शरीर में बहुत गिर जाता है।

चिकित्सा—रोगी की त्वचा की बढ़ती हुई गरमी को शीतल पानी के स्पंज से रोक सकते हैं और यदि मूत्र पर्य्याप्त मात्रा में न आता हो, तो कटि-प्रदेश पर राई का प्लास्टर लगाना चाहिये अथवा सींगी या 'ड्राईकपिंग' करना चाहिये। पीने के लिये स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई देना चाहिये। यदि

रोगी को वमन हो, तो साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया को थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। जिस समय जिह्वा भूरी और खुश्क हो, नाड़ी निर्बल हो, रोगी को प्रलाप होता हो, तो पोर्टवाइन ६० बूँद प्रत्येक घन्टे के अन्तर से देना चाहिये। बर्फ का पानी रोगी को पीने के लिये देना चाहिये। दूध बहुत थोड़ी मात्रा में रोगी को देना चाहिये।

जिस समय जिह्वा खुश्क और भूरी हो, उस समय अमोनिया कार्ब २ ड्राम, सल्फ्यूरिक ईथर ४ ड्राम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई ४ ड्राम, पानी १२ औंस मिलाकर १ औंस की मात्रा में प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

जब अचेतनता या सन्यास की अवस्था उत्पन्न हो जाय, उस समय हाथ और पाँव को गरम रखना चाहिये, शिर को ठण्डा रखना चाहिये। वृक्क, यकृत एवं गले के पिछले भाग पर राई का लेप करना चाहिये। रोगी को यदि हिचकियाँ बहुत हो रही हों, तो दूध में एक तिहाई चूने का पानी मिलाकर देना चाहिये। यदि उपरोक्त उपायों से वमन और हिचकियाँ बन्द न हों, तो क्लोरोफॉर्म की दो-तीन बूँद एक गिलास भर पानी में मिलाकर देना चाहिये।

पहचान—हैजे को निम्न रोगों से, निम्न लक्षणों द्वारा पृथक् कर सकते हैं—

अतिसार—अतिसार में आकुञ्चन एवं विसूचिका के प्रारम्भिक लक्षण मिलते हैं। परन्तु मल का रंग चावलों के धोवन की भाँति नहीं होता। मूत्र भी बन्द नहीं होता।

संखिये का विष—इस रोग में दस्त और वमन होते हैं; परन्तु मूत्र का अवरोध नहीं होता। साथ ही मल का रङ्ग भी चावलों के धोवन की भाँति नहीं होता। इसमें श्लेष्मा या रक्त मिला होता है, जैसे प्रवाहिका में होता है।

दूषित पानी—इससे भी वमन, विरेचन, पेट में ऐंठन आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु इसमें भी मूत्र का अवरोध नहीं होता और दस्त या वमन का रङ्ग हैजे की भाँति होता है।

उपाय—१—कर्पूर, अफीम, लाल मिर्च, हींग इनको पानी से पीसकर,

आधी रत्ती की गोली बनाकर आध-आध घंटे के अन्तर से पुदीने के पानी के साथ देना चाहिये। २—प्याज का अर्क इस रोग के लिये उत्तम औषधि है, जितना भी हो सके, उसे देना चाहिये। ३—अपामार्ग की जड़ को पानी में पीसकर पीना चाहिये। ४—करैले के रस में तिल का तैल मिलाकर या कच्ची मूली के रस में पिप्पली-चूर्ण मिलाकर अथवा, ५—बेल, सोंठ इनका काढ़ा अथवा बेल, सोंठ और कायफल का काढ़ा देना चाहिये। ६—प्यास के लिये कपूर से सुगन्धित जल थोड़ा-थोड़ा करके देना चाहिये। ७—कबाब-चीनी १ तोला, मुलहठी आधा तोला, कज्जली ४ आना भर; मधु में मिलाकर थोड़ा चटाना चाहिये। इससे वमन रुकता है। ८—हिचकी के लिये—केले के पत्तों का रस नाक में नस्य देना चाहिये अथवा राई को पीसकर ग्रीवा, पृष्ठ-वंश पर मलना चाहिये। ९—मूत्र-प्रवाहण के लिये—गुलाब या कमल के पत्तों के रस को शर्करा के साथ या पाषाण-भेद के काढ़े के साथ यवक्षार को या केवल यवक्षार को पानी से देना चाहिये। १०—अङ्गों के शीतल हो जाने पर मूर्च्छितावस्था में—मृत-संजीवनी-सुरा, मकरध्वज, चन्द्रोदय, कस्तूरी देना चाहिये। ११—उदर में दर्द हो, तो तारपीन के तेल से उष्ण परिषेक करना चाहिये। १२—शरीर में अधिक गरमी हो, तो सिर पर मक्खन मलना चाहिये या प्रवाल-भस्म को मधु के साथ देना चाहिये। रोगी को चेतन करने के लिये हाथ-पाँव को गरम रखना चाहिये। १३—कूठ, सैन्धव और कांजी इनको मिलाकर लेप करने से उदर-वेदना शान्त होती है। १४—लौंग, नागर-मोथा, जायफल इनका पानी पीने के लिये देना चाहिये। इससे वमन और प्यास शान्ति होती है। १५—दालचीनी, तेजपात, अगरु, रास्ना, सहजन की छाल, कूठ, वच, सौंफ; इन सबको कांजी में पीसकर उदर पर लेप करने से दर्द शान्त होता है।

शास्त्रीय औषधि—लहसुनादि-वटी, कर्पूरासव, कर्पूर-रस, महा-गन्धक, रामबाण-रस।

यूनानी उपाय—(१) पुदीना, नीम का फूल, इनको प्याज या लहसुन के अर्क में मिलाकर बेर के बराबर गोली बनाकर प्याज के अर्क के साथ देना चाहिये। (२) भीमकपूर, गुलनार, छोटी इलायची, प्रत्येक आधा

टंक, जरिश्क, मुनक्का १ टंक, अनार का शरबत १ तोला, इनको मिला-कर चाटना चाहिये। (३) पपीता, दरियाई नारियल—इनको पानी में घिस-कर पिलाना चाहिये। (४) अदरक पौने दो तोला, काली मिर्च एक तोला, आक के फूल १ तोला—सबको पीसकर, चने के बराबर गोली बनाकर देना चाहिये। (५) आक की जड़ को आर्द्रक या सोंठ के रस में मिलाकर चने के बराबर गोली बनानी चाहिए। (६) जहरमोहरा खताई गुलाबजल में या पानी में घिसकर देना चाहिये। (७) बाँसकपूर, पपीता, जहरमोहरा—इन तीनों को गुलाबजल में मिलाकर देना चाहिये। (८) सिकंजबीन सादी चटानी चाहिये।

वात-व्याधि

आर्य-वैद्यक-शास्त्र में वात-विकार अस्सी प्रकार के माने गये हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन निदान-प्रकरण में किया जा चुका है। यहाँ पर रोगों के कारणों का प्रथम समूह रूप में निदान और चिकित्सा लिखकर फिर पृथक्-पृथक् मुख्य-मुख्य रोगों की विवेचना की जायगी।

कारण—शीत लगने से, रूक्ष और ठण्डा खाने से, अति स्त्री-सेवा से, अति जागरण से, विषमासन से, मल-मूत्र आदि स्वाभाविक वेगों के रोकने से, अति रक्त-स्राव से, धातुओं के क्षय से, चोट आदि लगने से, चिन्ता, शोक, क्रोध, उपवास आदि से, दुर्बलता के कारण—घोड़ा, साइकिल आदि की सवारी से, पाचन-क्रिया के विकार से शरीर के अन्दर वायु कुपित होती है। यह वायु कुपित होकर सम्पूर्ण शरीर में या किसी एक अवयव में विकार उत्पन्न करती है।

लक्षण— संधियाँ संक्रमित हो जाती हैं; स्थान-स्थान पर दर्द का अनुभव होता है; हाथ, पाँव, सिर सुन्न प्रतीत होते हैं। जिस स्थान पर वायु का कोप अधिक होता है, उसी स्थान के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अंग हिलाने में दर्द होता है। अंग लाल और सूजा होता है। कभी-कभी इसके साथ ज्वर भी हो जाता है। नाड़ी तेज हो जाती है। रोगी को प्यास लगती है; मलबन्ध रहता है। मूत्र में अम्लता बढ़ जाती है।

पथ्यापथ्य—अरहर, गेहूँ, उड़द, कुलथी, लाल चावल, परवल, शोभाञ्जन, घी, दूध लहसुन, तेल आदि पदार्थ पथ्य हैं। चिन्ता, जागरण, मलबन्ध होना, वमन, उपवास, कसरत, रुक्ष शीत भोजन, क्रोध, शोक, उद्वेग, बेचैनी, मद्य, मैथुन, सवारी आदि वस्तुयें अहितकर हैं।

चिकित्सा—एरण्ड, रास्ना, गुग्गुल, जहरकुचला, वत्सनाग और लहसुन इस रोग के लिये उत्तम औषधि मानी जाती है।

एरण्ड—इस रोग का नाम 'वातारि' है। अर्थात् यह वातरोग का शत्रु है। वातरोग में रुक्षता, शूल और शोथ ये तीनों लक्षण होते हैं। एरण्ड इन तीनों लक्षणों को नष्ट करता है। इस काम के लिये एरण्ड की जड़, पत्ते, बीज और तेल का काम पड़ता है। जकड़े हुए अङ्ग को ढीला करने के लिये इसके पत्ते तेल में गरम करके बाँधे जाते हैं। इसके मूल का काढ़ा जौखार मिलाकर पिलाना चाहिये। सोंठ के काढ़े में एरण्ड-तैल मिलाकर पीने से शोथ-युक्त सन्धि-वात मिटती है। रास्नादि क्वाथ आदि में एरण्ड-तैल मिलाकर पीने से बहुत लाभ होता है।

गुग्गुल—वायु रोगों के लिये गुग्गुल प्रसिद्ध दवाई है। वायु के जीर्ण रोगों में गुग्गुल शोधन तथा मारक गुण के लिये काम आता है। वायु के तीव्र आक्रमण में गुग्गुल का उपयोग करना निरर्थक है। जिस समय तीव्र आक्रमण शान्त हो जाय या वायु-रोग का प्रारम्भ हो, उस समय गुग्गुल को देना उत्तम है। चसका तथा शूलवाले भाग पर गुग्गुल की पट्टी बाँधनी चाहिये। योगराज गुग्गुल इस रोग की मुख्य दवा है। इससे शरीर में शक्ति आती है।

रास्ना—इस रोग के लिये सर्वोत्तम दवाई है। चरक में कहा है कि ८० प्रकार के वात-रोगों में रास्ना उत्तम औषधि है। रास्ना पञ्चक, रास्ना सप्तक, महारास्नादि क्वाथ आदि क्वाथों में रास्ना का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक औषधि में रास्ना की बड़ी मात्रा डालनी चाहिये।

लहसुन—वायु के रोगों में इसका उपयोग कई प्रकार से किया जाता है। लहसुन की चटनी बनाकर अथवा इसको सेंधा नमक और तिल-तैल के साथ खाना चाहिये। संचल, अजवायन, हींग, सैंधव, सोंठ, मिर्च,

पिप्पली—इनके चूर्ण से पाँचगुना लहसुन और लहसुन का चौथा भाग तैल मिलाकर खाना चाहिये। मात्रा—१ तोला।

अनुपान—एरण्ड-क्वाथ।

वत्सनाग – यह वायु के रोग में बरता जाता है। इसका अन्त: और बाह्य दोनों प्रकार से उपयोग किया जाता है। इसका तैल मलने के काम आता है। तीव्र आक्रमण के समय इसको देना उचित नहीं।

ज़हरकुचला—वायु के रोगों में विशेष उपकारी है। वायु के पुराने रोगों में विशेष लाभदायक है।

मालकंगणी—वात-व्याधि में गरम होने से बरती जाती है, शिरो-रोग में, उन्माद में इसका व्यवहार अधिक होता है। अकरकरा आदि वातहर औषधियों के साथ बरती जाती है।

सामान्य उपाय— (१) चक्रमर्द के पत्तों का शाक या गोली वात-व्याधि को नष्ट करती है, (२) तिल १ प्रस्थ, गुड़ १ प्रस्थ, भिलावा २ पल, इनकी गोली खाने से वात-व्याधि शनैः-शनैः हटती है। (३) रसकपूर, हिंगुल, दालचिकना, चाँदी के वर्क प्रत्येक १-१ कर्ष लेकर, तवे पर नमक से आलवाल बनाकर, बीच में इनको रख दे। ऊपर से चीनी का पात्र ढककर मीठी आँच से पकाना चाहिये। पीछे से ऊपर लगी हुई वस्तु को उतार लेना चाहिये। इसका नाम अमीर रस है। मात्रा १ रत्ती। अनुपान—दूध और चावल। (४) उशवा, चोबचीनी का काढ़ा मधु के साथ लेने से संधिवात को अच्छा करता है, अनुभूत है। (५) संखिया, जायफल, जावित्री, अजवायन, खुरासानी अजवायन, देशी अजवायन, भाँग के बीज, लौंग प्रत्येक तीन अक्ष, मालकंगनी ६ अक्ष, कस्तूरी और केसर थोड़ा-थोड़ा मिलाकर पाताल यंत्र से तैल निकालकर मलना चाहिये। (६) करीर की नई लकड़ी का तेल निकालकर (पाताल-यंत्र विधि से) पाँव पर मलने से पाद-हर्ष रोग शान्त होता है। कड़वे तेल में लाक्षा को मिला-कर आग पर इतना गरम करना चाहिये कि वह इसमें एक रस हो जाय, पीछे से इसको मलना चाहिये। (८) मोर के पंख (मयूर-पिच्छा) की राख तैल में मिलाकर लगाने से 'खल्ली' रोग नष्ट होता है। (९) दूध में एरण्ड

के बीजों को उबालना चाहिये। जब इनका मावा हो जाय, तो हनु पर बाँधने से हनु-ग्रह मिटता है। (१०) जरदे को एरण्ड के स्वरस के साथ रगड़कर गुनगुना लेप करने से वात पीड़ा शान्त होती है। (११) भैंस के मूत्र को कपड़े में छानकर हल्दी के साथ पीने से आमवात रोग शीघ्र शान्त होता है। (१२) बेर, कुलथी, देवदारु एरण्ड पीसकर गरम करके लेप करना चाहिये।

कोष्ठगत वायु की चिकित्सा—जिस समय वायु आमाशय में कुपित होती है, उस समय मल-मूत्र रुक जाता है, हृत्पीड़ा, गुल्म, अर्श और पार्श्व-शूल आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग में विशेषतः क्षार [illegible]

टूटने लगते हैं। इनके लिये तेल से चिकनी वस्तियाँ और स्वेद देना चाहिये। आमाशय में वायु का कोप हो, तो षडधरण योग गरम पानी के साथ ७ रत्ती की मात्रा में देना चाहिये। पक्वाशय में वायु का कोप हो, तो स्निग्ध विरेचन (तैल आदि) देना चाहिये। हृदय में वायु का कोप हो, तो शाल-पर्णी के साथ दूध को पकाकर देना चाहिये। अथवा गिलोय के रस के साथ मिर्च चूर्ण, या पुराना गुड़, अश्वगन्धा, बहेड़ा, या देवदारु और सोंठ इनको जल के साथ पीसकर प्रातःकाल लेना चाहिये।

धातुगत वायु की चिकित्सा त्वचा में वायु के कुपित होने पर शीतल प्रलेप देना चाहिये। माँस और मेदोगत वायु के होने पर विरेचन और रक्त मोक्षण तथा शामक औषधि देनी चाहिये। शुक्रस्थ वायु यदि कुपित हो जाय, तो स्त्री आदि के आलापादि द्वारा हर्षोत्पादन करना चाहिये, बलकर और शुक्रजनक औषधि देनी चाहिये। यदि शुक्र का मार्ग अवरुद्ध हो, तो विरेचन देना चाहिये। गर्भ शुष्क हो जाय, तो सिता, मुलहठी और काश्मीरी फल इनको दूध के साथ पकाकर देना चाहिये।

अपतंत्रक-चिकित्सा—इस रोग में वायु कुपित होकर हृदय, शङ्ख और मस्तिष्क-प्रदेश को पीड़ित करके शरीर को धनुष की भाँति झुका देती है। इस रोग में रोगी मूर्च्छित हो जाता है। उसकी आँखें बन्द रहती हैं। हरीतकी, बच, रास्ना, सैन्धव, अम्लवेतस, इनका चूर्ण १ तोला, घृत २ तोला मिलाकर खाने से अपतंत्रक रोग नष्ट होता है।

अपतानक लक्षण—वायु कुपित होकर, कफ के साथ मिलकर, शरीर की धमनी का आश्रय लेकर शरीर को दण्डे की भाँति कठोर बना देती है। अर्थात् देह की आकुञ्चन-शक्ति नष्ट हो जाती है। इस रोगी को २ तोला दशमूल आधसेर जल में काढ़ा करके, जब आधा पाव रह जाय, तब इसमें पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। रोगी के शरीर पर तैल-मर्दन करना चाहिये।

पक्षवध-चिकित्सा (लकवा) १—जिस समय शरीर का एक भाग क्रिया-रहित हो जाता है, उस समय उस पार्श्व के अंगों में स्पर्श और क्रिया-ज्ञान दोनों नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में तीव्र विरेचन और वस्ति-क्रिया करनी चाहिये। तैल-स्नान उत्तम है। माष, कौंच, एरण्डमूल, बला इनके काढ़े में हींग और सैन्धव प्रत्येक १ माशा मिलाकर पान करना चाहिये। २—पिप्पलीमूल, चीतामूल, पिप्पली, सोंठ, रास्ना और सैन्धव, इनके कल्क-द्वारा माष के काढ़े में तैल पकाकर मर्दन करना चाहिये।

अर्दित—इस रोग में मुँह एक पार्श्व में मुड़ जाता है। रोगी मुँह से सीटी नहीं बजा सकता। इस रोग के लिये लहसुन को तिल के तैल के साथ खाने से लाभ होता है। २—बला और पञ्चमूल (बृहत्) का काढ़ा पीना चाहिये। ३—बला, उड़द, कौंच, एरण्ड-मूल और गन्धतृण का काढ़ा पीना चाहिये; साथ ही विरेचन लेना चाहिये।

हनुग्रह—इस रोग में जबाड़ी खिंची रहती है। यह रोग 'टैटिनस' कीटाणु के कारण अथवा कुचला विष में होता है। कभी-कभी वात के कुपित होने पर मूर्च्छा में भी हो जाता है। इस रोग में स्वेद देना चाहिये।

मन्यास्तम्भ—इस रोग में गर्दन अकड़ी रह जाती है। रोगी गर्दन को दायें-बायें सुगमता से हिला नहीं सकता। इसके लिये (१) मुर्गी के अण्डे के द्रव-भाग में सेन्धा नमक और घी मिलाकर थोड़ा गरम करके ग्रीवा भाग पर मलना चाहिये। (२) सरसों का तेल या असगन्ध की जड़ पीसकर प्रलेप लगाने से विशेष लाभ होता है। (३) दशमूल या पञ्चमूल का काढ़ा इस रोग में पिलाना चाहिये।

जिह्वास्तम्भ— इस रोग में रोगी की जीभ नहीं हिलती। रोगी

जीभ को उठा नहीं सकता अथवा मोड़ नहीं सकता। इसके लिये स्निग्ध पदार्थों के गलाले करवाने चाहिये। कल्याणकावलेह—हल्दी, वच, कूठ, पिप्पली, सोंठ, जीरा, खुरासानी अजवायन, मुलहठी, सैन्धा नमक, घी में इनकी चटनी बनवाकर चाटना चाहिये।

गृध्रसी—इस रोग में दर्द नितम्ब से आरम्भ होकर जंघा के अन्तः या बाह्य पार्श्व से होता हुआ पाँव की गिट्टे या अँगूठी तक पहुँचता है। इसका कारण 'सियाटिका' नाड़ी में दर्द का होना है। इसीको यूनानी में 'इरकुन्निसा' कहते हैं।

उपाय—१—त्रिफला-क्वाथ के साथ एरण्ड-तैल १ माशे तक पीना चाहिये। २—निर्गुण्डी के पत्तों का काढ़ा। ३—एरण्ड-मूल, बेल, छोटी और बड़ी कटेरी; इनके काढ़े को संचल नमक के साथ। ४—गो-मूत्र के साथ एरण्ड-तैल पान करने से अथवा इसमें पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीने से। ५—रास्ना ८ तोला, गुग्गुल १० तोला इनको घी के साथ गोली बनाकर एक तोला मात्रा में गरम जल के साथ लेना चाहिये। ६—दूध, चावल और शिला पर पीसे हुये छिलके-रहित २ तोला एरंड के बीज; इनकी खीर बनाकर खाना चाहिये। ७—दशमूल, बला, रास्ना, गिलोय, सोंठ; इनके काढ़े में एरंड का तैल मिलाकर पीना चाहिये। ८—मुण्डी, पाषाण-भेद प्रत्येक ६७॥ माशे, जखन्द मुर्दरिज ३३॥ माशे, तुतली के बीज आध सेर; इनको कूट-छानकर, इसमें १०॥ माशे बूरा मिलाकर सौंफ के अर्क के साथ खाना चाहिये। दर्द के प्रारम्भ ही में किब्न की जड़, अकरकरा, जरांराह, कबूतर की बीट और भिलावा इनको शहद में मिलाकर चूतड़ पर लेप करना चाहिये। तुम्बी खिँचवाना भी उत्तम है। अनार्य-चिकित्सा में अफीम और एकोनाइड का इंजैक्शन देना भी उत्तम है।

विश्वाची—इस रोग के अन्दर हथेली और अँगुलियों की कण्डरा जो बाहु के पश्चिम भाग से आती है, उसके अन्दर वायु कुपित होकर हाथ की क्रिया आकुञ्चन, प्रसारण आदि को रोक देती है। यदि यह रोग स्कन्ध ही में रुका रहता है, तो इसे अवबाहुक कहते हैं। इस रोग के लिये दशमूल, बला और माष इनके काढ़े में तैल या घी मिलाकर पान करना चाहिये।

क्रोष्टुक-शीर्ष—इस रोग में घुटने के अन्दर शोथ उत्पन्न हो जाती है। इसके अन्दर तीव्र शूल उत्पन्न होती है।

उपाय—गिलोय, आँवला, हरीतकी, बहेड़ा इनके काढ़े में एरण्ड का तैल मिलाकर इसके साथ २ तोला गुग्गुल या २ छटाँक दूध के साथ ४ तोला एरण्ड-तैल अथवा आध सेर गाय के दूध के साथ विधारे का चूर्ण सेवन करने से लाभ होता है।

पाद-दाह—बहुत चलनेवाले व्यक्तियों में यह रोग होता है। पाँव से गरमी निकलती है। इसके लिये उड़दों को शीतल जल के साथ पीसकर पाँव पर लेप करना चाहिये। पाँव पर घी या कद्दू रगड़ना चाहिये, मक्खन का लेप करना चाहिये। फोकी सींगी भी लगवाना उत्तम है।

शिराग्रह—वैरीकोजवेन्स—इस रोग में पिंडली की रगें मोटी हो जाती हैं और इनमें गाँठें पड़ जाती हैं। यह रोग प्राय: चिट्ठीरसों को, या खड़े रहनेवाले नौकरों को, अथवा धोबियों को बहुत होता है।

उपाय—इस रोग में रक्त को निकलवाना, विरेचन देना चाहिये। पाँव को बाँधकर रखना चाहिये। यारजफवकरा, हजरये इरमानी (गिले अरमनी), लाजवर्द, मगसूल और अफसन्तीन का काढ़ा तुर्बद मिलाकर देना चाहिये। प्रातःकाल उन्नाव १० दाने, मकोय १० माशे, सफेद बूरा ३५ माशे, इनको मिलाना चाहिये।

लूनी-प्रलूनी—इन दोनों रोगों में वेदना आंत्रों या मूत्राशय से उत्पन्न होकर क्रमशः गुदा और उपस्थ में निकलती है। यह वेदना तीव्र होती है। यदि वेदना नीचे को जाय, तो 'लूनी' रोग और यदि ऊपर को जाय, तो 'प्रलूनी' रोग समझना चाहिये।

उपाय—पिप्पल्यादि गण का काढ़ा तैल के साथ अथवा नमक को पानी में मिलाकर, या यवक्षार के साथ हींग खाना चाहिये।

आध्मान-प्रत्याध्मान—(१) पेट में वायु के रुकने से उदर में अफारा हो जाता है, पेट फूल जाता है, उदर में गुड़गुड़ ध्वनि होती है। पिप्पली-चूर्ण २ तोला, निशोथमूल-चूर्ण ८ तोला, शर्करा ८ तोला, इनको आधा तोला मात्रा में मधु के साथ खाना चाहिये। (२) देवदारु, वच, कूठ, सौंफ, हींग

और सैंधव इनको कांजी में पीसकर लेप करने से आध्मान-रोग और शूल शान्त होता है।

वस्तिवात—(१) मूत्राशय में वायु कुपित होकर मूत्र का अवरोध कर देती है। इसके लिये यवक्षार का चूर्ण गरम पानी के साथ। (२) कुष्माण्ड का रस, खीरे के बीज पीने चाहिये। (३) आँवला पीसकर वस्ति-प्रदेश पर लगाना चाहिये। (४) कपूर की बत्ती शिश्न में प्रविष्ट करनी चाहिये। यदि वायु के कुपित होने से बार-बार मूत्र आता हो, तो बला, मुर्वा और दालचीनी इनके चूर्ण को समान भाग शर्करा के साथ मिलाकर २ तोला मात्रा में आध सेर दूध के साथ खाना चाहिये।

त्रिकशूल—(१) कटि-प्रदेश पर जो शूल होता है, उसको त्रिकशूल कहते हैं, नितम्बास्थियें और मेरुदण्ड की अस्थियों का जहाँ मेल होता है, उस स्थान का नाम 'त्रिक' है। इस स्थान पर जो शूल उत्पन्न होती है, उसको त्रिकशूल कहते हैं। इसके लिये सोंठ या दशमूल-क्वाथ में एरण्ड-तैल मिलाकर देना चाहिये। (२) गोखरू और सोंठ का काढ़ा पीना चाहिये। (३) गुग्गुल घी में खाना चाहिये। (४) लहसुन घी में खाना चाहिये। (५) सिंहनाद गुग्गुल खाना चाहिये।

कटिग्रह—इस रोग में कटि (कमर) अकड़ जाती है। रोगी आगे या पीछे अथवा दायें-बायें कठिनता से मुड़ता है। इसको साधारण बोलचाल में 'चनका' कहते हैं। इसको होशियार आदमी तोड़ते हैं। रोगी को चारपाई पर चित्त लेटाकर उसको दबाना चाहिये। फिर उसे कहना चाहिये कि दक्षिण हाथ से भूमि का स्पर्श वाम पार्श्व में करो। इस बार इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वाम पार्श्व अपनी असली स्थिति से न हिले। (१) शुद्ध जहरकुचला का उपयोग करना चाहिये। मात्रा—आधा से १ रत्ती। (२) जहरकुचला, अफीम और मिर्च की २ रत्ती की गोली बनाकर देना चाहिये। (३) साबर-श्रृङ्ग को घिसकर लगाना चाहिये। (४) गोमूत्र के साथ हरड़ बड़ी खानी चाहिये। (५) श्वेत सरसों, मुसब्बर, सहजन छाल मिर्च, हींग, आर्द्रक, विड्लवण, धतूर का रस इनका लेप गरम करके करना चाहिये। (६) लाख, सहजन-छाल, धतूर के पत्ते और सेन्धा नमक इनको पीसकर प्रलेप लगाने से व्यथा नष्ट होती है।

अनिद्रा—नींद न आने के कई कारण हैं। शूल, चिन्ता आदि के कारण नींद नहीं आती। परन्तु उन्माद-रोग के प्रारम्भ में नींद का न आना इस रोग का मुख्य चिन्ह है। १—सबसे प्रथम कारण को दूर करना चाहिये। मस्तिष्क में गरमी हो, तो नींद नहीं आती; इसके लिये शीत उपचार करना चाहिये। कुष्मांड-पाक, दूधी-पाक अथवा हलुवा देना चाहिये। २—रात्रि में सोने समय गरम पानी से नहाना चाहिये; पाँव को गरम पानी में रखना चाहिये; शिर पर ठंडा पानी रखना चाहिये; शीतल तेल लगाना भी उत्तम है। उद्वर्त्तन करना उत्तम है। ३—पिप्पलीमूल का चूर्ण गुड़ के साथ खाना चाहिये। ४—अफीम तथा भाँग आदि कृत्रिम वस्तुओं से बचना चाहिये। ५—नारियल के जल में मिश्री, हरड़, आँवला, बहेड़ा भिगोकर, प्रातः छानकर पीना चाहिये। ६—रास्ना, कच्चा परवल और शतावर का रस मिलाकर इसके साथ मकरध्वज १ रत्ती देना चाहिये।

बेशुद्धि—कारण—मस्तिष्क पर आघात, मस्तिष्क-रोग, मूर्च्छा, सर्प-दंश, अफीम, दारू आदि विष, अति शीत, अति गरमी, भूख, बाई, हिस्टीरिया, आक्षेप आदि कारणों से बेशुद्धि होती है।

उपाय—१—जिन कारणों से बेशुद्धि होती है, उनको हटाना चाहिये। २—आँख और मस्तिष्क के ऊपर ठंडा पानी छिड़कना चाहिये। ३—अकरकरा, कपूर, लहसुन का रस, दालचीनी, नकछींकनी, पिप्पली आदि का नस्य देना चाहिये। ४—चूना और नौसादर-आमोनिया सुँघाना चाहिये। ५—छाती पर राई का लेप करना चाहिये, बस्ति देनी चाहिये, मूत्र निकालना चाहिये।

तन्द्रा—इस रोग के कारण रोगी बेसुध पड़ा रहता है। यह रोग कफ और वायु के कारण होता है।

उपाय—१—जिस रोग में यह लक्षण हो, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। २—रोगी को कस्तूरी, अकरकरा, चन्द्रोदय, बछनाग, पिप्पली, सोंठ, देना चाहिये। ३—अनार्य-चिकित्सा के इंजैक्शन—स्ट्रिकनीन, एड्रनैलीन, पिट्रोध्युनी और डिजीपटेलिस आदि का इंजैक्शन देना चाहिये। ४—दालचीनी, पिप्पली, त्रिकटु आदि उष्ण दवाइयों का आँख में अंजन करना चाहिये।

चक्कर—रोगी के सामने चक्कर दिखाई देते हैं, अपना सिर और मस्तिष्क घूमता हुआ दिखाई देता है। क्विनीन को अधिक मात्रा में खाने से, तम्बाकू, दारू आदि के खाने से, पाण्डु या रक्तस्राव के कारण शरीर में निर्बलता आने पर, विषैली वस्तुओं के सूंघने से चक्कर आने लगता है। पित्त का कोप इस चक्कर का कारण है। इसलिये पित्त-शामक औषधि देनी चाहिये। १—शतावरी-रस का पान करना चाहिये। २—स्वर्ण-भस्म का उपयोग करना चाहिये।

प्रलाप—यह लक्षण प्रायः तीव्र ज्वरों में होता है। रोगी के सिर पर ठण्डे पानी की पट्टी या बर्फ का बैग अथवा कोलन-वाटर रखना चाहिये। हाथ और पाँव को ठण्डे कपड़े से लपेट देना चाहिये। शीत पानी की बस्ति देना उत्तम है। नाभि पर आँवले पीसकर लेप करना चाहिये।

दाह—शरीर के अन्दर बहुत दाह होती है। इस रोग का कारण भी शरीर की गरमी है। १—कांजी या सिरके और पानी में वस्त्र भिगोकर रोगी को ओढ़ा देना चाहिये। उशीर और श्वेत चन्दन को गुलाबजल में पीसकर लेप करना चाहिये। ३—केले या कमल की शय्या बनाकर उनपर लेटाना चाहिये। ४—खस के पंखे को गुलाबजल में भिगोकर उससे हवा करना चाहिये। ५—घी को मजीठ के पानी में सौ बार धोकर शरीर पर लगाना चाहिये। ६—दूध या गन्ने का रस पिलाना चाहिये। ७—चन्दन, पित्तपापड़ा, उशीर, खस, मोथा, पद्माख और आँवला सब मिलाकर २ तोला इनको आध सेर जल में पकाकर १ छटाँक शेष रखना चाहिये। इस काढ़े में मधु मिलाकर देना चाहिये। ८—पित्तपापड़ा, मोथा, उशीर इनके शीतल काढ़े में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये।

नींद का बहुत आना—कई बार रोगी को बहुत नींद आती है। इसके लिये तुलसीकास का पानी सिर पर डालना चाहिये। २—बकायन का तेल, कूठ, जुन्दबेदस्तर, जंगली प्याज, मवजीज, अकरकरा सिरके में पीसकर लगवाना चाहिये। खाने के लिये दिवालमुश्क देना चाहिये।

बहुत जागना—कद्दू का तेल, स्त्रियों के दूध में मिलाकर नाक और कान में डालना चाहिये। २—बनफसा, नीलोफर, कद्दू का पानी;

हरा धनिया, खुरासानी अजवायन, पोस्त का छिलका और जो औटाकर सिर पर डालें। ३—काहू की पत्ती का पानी, तर धनिये का पानी, खसखस का शीरा, नीलोफर के तेल से लखलखा बनाकर सुँघाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—वात-चिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्मुख, मकरध्वज, नारायण-तैल, हिमसागर-तैल, वात-गजांकुश, योगराज गुग्गुल, सिंहनाद गुग्गुल, रसोन-पिण्ड, रास्नादि-क्वाथ, अमरसुन्दरी वटी, विष-मुष्टिका वटी, त्रयोदशाङ्ग गुग्गुल, वरशाशा, अजमोदिका-चूर्ण।

स्मृति-शक्तिहीनता— १—प्रात:काल प्रतिदिन शतावरी और ब्राह्मी-शाल के पत्तों का रस ६ माशा धारोष्ण दूध के साथ खाना चाहिये। २—मूसली का चूर्ण १ तोला, आँवले का चूर्ण ४ तोला, मुलहठी का चूर्ण ३ तोला, शठी का चूर्ण २ तोला, वंशलोचन और जटामांसी प्रत्येक आधा भाग। इस चूर्ण को ३ आना मात्रा में मक्खन, शहद, शर्करा तथा धारोष्ण दूध के साथ पीना चाहिये।

पथ्य— बादाम, पिस्ता, अखरोट, घी, धारोष्ण दूध, मक्खन, मिश्री।

शास्त्रीय औषधि—कल्याणावलेह, अश्वगन्धारिष्ट, महाब्राह्मी-घृत अश्वगन्धा-घृत, च्यवनप्राश, अमृतप्राश-घृत।

सन्धिवात

इस रोग का आक्रमण दो प्रकार से होता है, एक तीव्र और दूसरा पुरातन। इस रोग की सम्भावना उन पुरुषों में अधिकत: रहती है, जिनके मूत्र में यूरिक एसिड अधिक आता है और यह रोग वृद्धों की अपेक्षा युवकों में अधिक पाया जाता है। इस रोग का तात्कालिक कारण सर्दी या भिनाश का लाना है। जब यह रोग होता है, तो ज्वर, तीव्र नाड़ी, गरम त्वचा, जिह्वा मैली और मूत्र गंदला होता है। इस मूत्र को थोड़ी देर रख लिया जाय, तो मैला निक्षेप तैरता दिखाई देता है। दर्द प्राय: किसी बड़े जोड़ में आरम्भ होता है। वह अंश सूज जाता है, लाल हो जाता है और हिलाया-डुलाया नहीं जा सकता। थोड़ा-सा स्पर्श भी रोगी बरदाश्त

नहीं करता। यह भी सम्भव है कि शोथ बहुत-से या सारे जोड़ों पर आक्रमण करे, परन्तु प्राय: एक दिन में १ या २ ही जोड़ आक्रान्त होते हैं, पीछे से सब आक्रान्त हो जाते हैं। ऐसा भी होता है कि एक पार्श्व में रोग प्रारम्भ होगया और दूसरे पार्श्व का जोड़ स्वस्थ रहा। इसके अतिरिक्त रोगी के पसीने में बहुत खटास होती है, जो रोगी को आराम लेने नहीं देती। इस पसीने के कारण कभी-कभी छोटे-छोटे दाने भी निकल आते हैं। इनका कारण गरमी और नमी है, परन्तु इनमें कोई खतरा नहीं। इस रोग का समय १४ दिन से ३ सप्ताह है, इस बीच में रोगी पूर्णत: शान्त होता है अथवा सन्धियों में कठोरता और दर्द शेष रह जाता है। यदि ताप-परिमाण १०५ फारनहाइट तक पहुँच जाय, तो समझना चाहिये कि रोगी का हृदय आक्रान्त होगया है।

इस रोग का मुख्य उपद्रव हृदय का आक्रान्त होना है। कई बार इस उपद्रव के कारण हृदय के आक्रान्त होने से मूर्च्छा भी हो जाती है। परन्तु साधारणत: जब हृदय आक्रान्त होता है, उस समय वाम पार्श्व में तीव्र या धीमे से चुभनेवाले दर्द का अनुभव होता है। यह दर्द गहरी साँस लेने से बढ़ जाता है। छाती तंग या खिंची हुई (जकड़ी हुई) प्रतीत होती है, हिचकियाँ भी किसी कदर आती हैं, श्वास में थोड़ी-बहुत कठिनता होती है। हृदय की गति अनियमित हो जाती है, जिसका अनुभव नाड़ी द्वारा हो जाता है, अर्थात् नाड़ी अनियमित, मन्द, छोटी तथा एक विशेष प्रकार का धक्का देती है। इसलिये आवश्यक है कि इस रोग में हृदय के आक्रान्त होने की सम्भावना प्रथम दिन से रखनी चाहिये और प्रतिदिन हृदय तथा नाड़ी को देखना चाहिये। यह भी हो सकता है कि इस रोग के कारण हृदय में निक्षेप जमा हो जायँ। इसके अतिरिक्त कपाटियों के रोग भी हो सकते हैं। हृदय के आक्रान्त होने पर श्वयथु का होना बहुत सम्भव है, जिसके कारण कि जल्दी या देर में मृत्यु हो सकती है।

पुरातन संधिवात—यह रोग प्राय: वृद्ध पुरुषों में होता है, विशेषत: उनमें, जिनका पोषण निर्बल होता है। पुरातन संधिवात का एक रूप संधियों की अस्थियों पर आक्रमण करता है, दूसरा रूप मांस-पेशियों पर आक्रमण करता है। इसको 'मस्क्युलर रोमेटिज्म' कहते हैं। इस रोग में दर्द बड़ी सन्धियों

में होता है। कभी-कभी इनमें शोथ भी हो जाता है, परन्तु छोटी सन्धियाँ यथा अंगुलियों के जोड़ प्राय: बच जाते हैं। परन्तु जब बड़ी सन्धियों के साथ छोटी सन्धियाँ भी आक्रान्त हो जाती हैं, तब इसको रोमेटिक गाऊट' कहते हैं। सन्धियों को आक्रान्त हुये यदि बहुत दिन हो जायँ, तो कभी-कभी उनके हिलाने से शब्द भी सुनाई देता है। यह शब्द इस प्रकार का होता है, मानों हड्डियाँ टूट रही हैं। इस रोग में न तो ज्वर होता है और न पसीना होता है। कई बार गरमी से दर्द कम हो जाता है और कई बार गरमी से दर्द बढ़ जाता है।

चिकित्सा—तीव्र आक्रमण मे रोगी को सम्पूर्ण समय बिस्तर पर रखना चाहिये। उसके अंगों को रुई या फलालेन से ढक देना चाहिये। सन्धियों पर क्षारीय लोशन लगाना चाहिये। इसके लिये सोडाबाई कार्ब का पूर्ण घोल (पानी में जितना घुल सके उतना) अथवा इसका गाढ़ा लेप बनाकर प्रलेप करना चाहिये। दर्द बहुत हो, तो पोस्तों के डोडों का सेंक देना उत्तम है। और पोस्तों के डोडों ही के पानी में कपड़ा भिगोकर अङ्ग पर लपेट देना चाहिये। ऊपर से पतला रेशम लपेट देना चाहिये, जिससे वह उड़ न जाय। यदि हिलने-डुलने में दर्द न हो, तो प्रतिदिन ९८ फार्नेहाइट गरम पानी में स्नान देना चाहिये। पानी में सोडाबाई कार्ब घोल देना उत्तम है। रोगी की आँतों को स्वच्छ रखने के लिये अवश्य समय-समय पर विरेचन देते रहना चाहिये और सोडियम सैलिसिलेट के मिश्रण को दिन में तीन बार कम से कम देना चाहिये। यदि हृदय-दर्द आरम्भ हो जाय, तो राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। छाला उठाना या जौंक का लगवाना भी उत्तम है। दर्द बहुत हो और नींद न आती हो, तो १० से १५ ग्रेन की मात्रा में डोवर्स पाउडर देना चाहिये।

आर्य-औषधि — (१) लहसुन, सोंठ और निर्गुण्डी इनका काढ़ा पीना चाहिये। (२) दशमूल या सोंठ के काढ़े के साथ एरण्ड-तैल पीना चाहिये। (३) निशोथ १२ माशा, सैन्धव २ माशा, शुण्ठी-चूर्ण २ माशा, इनको मिलाकर कांजी के साथ पीना चाहिये। (४) चीतामूल, कुटकी, पाठा, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय इनका काढ़ा पीना चाहिये। (५) रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखरू, एरण्ड-मूल, पुनर्नवा और सोंठ इनका काढ़ा

पीना उत्तम है। (६) पान या आक के पत्तों को गरम करके सन्धि पर बाँधना चाहिये। सहजन की छाल को पीसकर लेप करना चाहिये। (७) मधु और चूने को मिलाकर दर्दवाले भाग पर लगाना चाहिये। (८) सुवा देवदारु, कूठ और सैन्धा नमक को पीसकर आक के दूध में मिलाकर लेप करना चाहिये। (९) वत्सनाग का तेल मलना भी उत्तम है। (१०) बनफसा, पित्तपापड़ा, इमली, आलूबुखारा, मुनक्का, हरड़ शीरीखित और तुरञ्जवीन इनका काढ़ा करके वंशलोचन के साथ देना चाहिये। (११ अफीम, जङ्गली सेब की जड़ इनको काहू के पानी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (१२) बाबूने का तेल मलना भी उत्तम है। (१३) यदि दर्द बहुत हो, तो भाँग के बीज १७॥ माशे और अफीम ३ माशे इनको रत्ती के बराबर गोली बनाकर देना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—रास्ना सप्तक-योगराज गुग्गुलु, चोपचीनी पाक, महारास्नादि काढ़ा, एरण्ड-पाक, नारायण-तैल, वातगजाङ्कुश, किशोर गुग्गुल उत्तम है।

पथ्य—रोगी को जौ का दलिया, दूध, घी, तेल, गेहूँ, कुलथी, परवल, लहसुन, सहजन तथा गरम एवं स्निग्ध पदार्थ पथ्य हैं। **अपथ्य**—चिन्ता, जागरण, मलमूत्र का रोकना, वमन, मेहनत, लंघन, चना, वाल, पत्तों के शाक, वात उत्पन्न करनेवाले पदार्थ, मद्यपान, स्त्री-सेवन, आदि सब निषिद्ध हैं।

आमवात (गठिया)

इस रोग का कारण शरीर में यूरिक एसिड की अधिकता का होना है। यह एसिड जब तन्तुओं में निक्षिप्त होने लगता है, उस समय इस रोग का प्रारम्भ होता है। यूरिक एसिड कई कारणों से बनता है, परन्तु उन सबका कारण यही है कि जिस समय यकृत रुग्ण होजाता है, उस समय यह अधिक मात्रा में बनता है। जैसे—मद्यपान। कई बार यह रोग वंश-क्रमागत के रूप में आता है, अथवा यकृत और वृक्क के रुग्ण होने से भी यूरिक एसिड शरीर में बढ़ जाता है। गठिया का एक रूप सोसक के

चिरकालीन विष भी उत्पन्न हो जाता है। कुछ बातों में यह रोग संधिवात से मिलता है। परन्तु इस रोग में प्रथम छोटी सन्धियाँ आक्रान्त होती हैं, जैसे पाँव के अँगूठे की या हाथों की अँगुलियों की सन्धियाँ, सन्धिवात रोग में बड़ी सन्धियाँ आक्रान्त होती हैं। गठिया रोग उन लोगों में प्राय: करके होता है, जिनकी जिन्दगी ऐश और आराम में बीतती है, और सन्धिवात उन लोगों में होता है, जिनको पूरे वस्त्र भी शरीर ढकने के लिये नहीं जुड़ते और जिनको पेट भर भोजन भी नसीब नहीं होता। गठिया प्राय: ३०-३५ साल की आयु के पीछे होता है और सन्धिवात १६-१८ वर्ष की आयु में पकड़ लेता है। परन्तु कई बार दोनों रोग साथ में मिलकर रोगी को घेर लेते हैं।

इस रोग का प्रारम्भ या आक्रमण जब होने लगता है, उस समय रोगी का मन विक्षुब्ध हो जाता है, ज्वर, शिर-दर्द तथा अजीर्ण के लक्षण होने लगते हैं। प्राय: करके इसका आक्रमण रात्रि में होता है। आक्रान्त स्थान पर (जो स्थान प्राय: पाँव का अँगूठा होता है) चूर्णित करनेवाला दर्द होता है, प्रात:काल नष्ट हो जाता है। इस दर्द के कारण अँगूठा लाल, सूजा हुआ और चमकदार होता है, दबाने से दर्द प्रतीत होता है। ये लक्षण प्रात:काल दर्द के शान्त होने पर भी बने रहते हैं। इस रोग में जो पसीना आता है, उसकी प्रतिक्रिया आम्ल होती है, रोगी का स्वभाव चिडचिड़ा होता जाता है। प्रथम मूत्र गँदला, गाढ़ा पीला और स्वच्छ होता है, पीछे से राशि में अधिक हो जाता है, और इसमें निक्षेप बैठता है, जो ईंट के चूरे से मिलता है। दर्द रात्रि में बढ़ जाता है और प्रात:काल कम हो जाता है। इस प्रकार से प्रत्येक रात्रि में जो दर्द होता है, वह पिछली रात्रि की अपेक्षा अधिक होता है। यद्यपि सूजन के बढ़ने के साथ दर्द घट जाता है, परन्तु बहुत थोड़ा। जब दर्द और शोथ शान्त हो जाते हैं, उस समय आक्रान्त स्थान की त्वचा पीली और मुरझाई हुई हो जाती है। रोग शान्त हो जाता है और कई महीनों तक इसका आक्रमण नहीं होता। बार-बार आक्रमण होने से व्रण और पथरी बनने की आशङ्का हो जाती है। इस रोग में अँगुलियाँ भी उपरोक्त लक्षणों के साथ आक्रांत हो सकती हैं। गठिया रोग से आक्रान्त व्यक्ति के नाखून कठोर, टूटनेवाले तथा इनपर रेखायें पड़ जाती हैं। बहुत कम अवस्थाओं में ऐसा होता है कि रोग का

आक्रमण पाँव के अँगूठे से हट कर आमाशय पर हो जाय। जब ऐसा होता है, तो उस समय कौड़ी-प्रदेश पर दर्द, आध्मान, मूर्च्छा, बेचैनी और कमजोर अनियमित नाड़ी रहती है। इस रोग के कारण शरीर के अन्य-अन्य अवयव भी आक्रान्त हो सकते हैं। जिसमें भ्रम, कास, श्वास, त्वचा या आँख अथवा कान, हृदय, मस्तिष्क के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि इन अवयवों में यूरिक एसिड एकत्रित हो जाता है।

चिकित्सा—सबसे प्रथम रोगी को सोडियम सल्फेट या अन्य औषधियों से विरेचन देना चाहिये। परन्तु विरेचन से रोगी की शक्ति निर्बल नहीं होने देना चाहिये। स्थानिक चिकित्सा को रुई या फलालैन से लपेट देना चाहिये। रुई को सोडा बाईकार्ब के घोल में (४ ड्राम १ औन्स पानी में) तर कर लेना चाहिये, रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। सब अवस्थाओं में रोगी को गरम रखना चाहिये, सर्दी के कारण गठिया अन्तः-अवयवों में चला जाता है। पूर्ण विश्राम देने के साथ रोगी को दूध, जौ का पानी, दलिया, सागू देना चाहिये। इस रोग में नमकीन पानी विशेषतः पीना चाहिये। सोडावाटर इस रोग में उत्तम है। इस रोग में गरम, उत्तेजक औषधियों से, मद्य से यथासम्भव बचना चाहिये।

रोगी को मांस-रहित भोजन खाना चाहिये। शर्करा और घी, मिठाई से भी परहेज रखना चाहिये। रोगी को साइट्रेट आफ मैगनेशिया प्रातःकाल पीना चाहिये, जिससे आँतें खुली रहें।

इस रोग के लिये अनार्य-चिकित्सा में सबसे उत्तम औषधि "कौल-चिकम" है। ३० बूँद कौलसीकम वाइन को पोटास बाईकार्ब के साथ प्रत्येक चार घन्टे के अन्तर से लेना चाहिये। इससे २४ घण्टे में दर्द कम हो जाता है। यदि हृदय-रोग की थोड़ी-सा सम्भावना हो, तो इस दवाई को बिना चिकित्सक की सम्मति के नहीं देना चाहिये। दर्द के स्थान पर थोड़ा-सा क्लोरोफार्म रुई के ऊपर रखकर बाँध देना चाहिये। यदि आराम न हो, तो लैड एसिटेट १ ड्राम, मार्फिया एसिटेट ३ ग्रेन, पानी ८ औन्स मिलाकर गरम करके लगाना चाहिये। सोडियम सैलिसिलेट १० ग्रेन देना अच्छा है।

(१) लीथिया साइट्रेट १० ग्रेन, साईट्रिक एसिड ३ ड्राम, सीरप

आरिक्ड २ ड्राम, पानी १६ औन्स। (२) सोडा बाईकार्ब ३ ड्राम, पानी १६ औन्स।

प्रत्येक मिश्रण में से दो-दो औन्स लेकर मिलाकर पीना चाहिये; इससे झाग उत्पन्न होती है।

रोग से बचने के लिये विशीवाटर, कार्लस बैड वाटर, हैरोगेट, लैमिंगटन वाटर पीना चाहिये।

यूनानी उपाय—(१) सनाय, पीली हरड़, उन्नाब, लसोड़ा, इमली, पित्तपापड़ा, कासनी, आलूबुखारा, किशमिश, शीरीखिस्त, तुरञ्जबीन इनका कषाय देना चाहिये। (२) रोटी का गूदा, अण्डे की जर्दी, अफीम, भाँग के बीज, केसर इनका लेप करना चाहिये। (३) बाबूना, सोया, खितमी, सलारस, वूल, एलुवा, जुन्दबेदस्तर, फरफयून, मेथी का लुआब, अलसी के बीज का लुआब लेप करना चाहिये। (४) रसौत, एलुवा, चन्दन, भामीसा की सलाई, केसर प्रत्येक ७ माशे, गिले अरमानी ३॥ माशे, कर्नब जली हुई १४ माशे कूटकर मकोय के पानी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (५) पीली हरड़ १७॥ माशे, मुनक्का ३५ माशे, पित्तपापड़ा ३१॥ माशे, बिस्फाइज गारीकून कूटकर, बहेड़ा, आँवला, उस्तखदूस, नीबू की जड़ की छाल, हिना के पत्ते प्रत्येक ३॥ माशे, कन्तूरयून १०॥ माशे, सबको १॥ सेर पानी में औटावे। जब आध सेर शेष रहे, तब १०॥ माशे आकाश बेल डालकर और छानकर इसमें से पाव भर लेकर ४॥ माशे तुर्कद, ३॥ माशे यारजफयकरा और १॥ माशे नमक मिलाकर पीना चाहिये।

आर्य-औषधि—(१) सोंठ तथा गिलोय का काढ़ा पीना चाहिये। (२) सोंठ और गोखरू का काढ़ा पीना चाहिये। (३) रास्ना, देवदारु, भिलावा, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, एरण्ड-मूल, पुनर्नवा और गिलोय इनके काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। (४) सोंठ के काढ़े में एरण्ड-तैल मिलाकर पीना चाहिये। (५) पुनर्नवा, हरड़, अजवायन इनका चूर्ण छाछ में पीना चाहिये। (६) हरड़ १२ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवायन ३ भाग, खुरासानी अजवायन २ भाग, सेंधानमक २ भाग इनका चूर्ण गरम पानी में पीना चाहिये। (७) खंड-शुण्ठी—सोंठ ३२ तोला, घी ८० तोला, दूध १२८ तोला, खाँड़ २०० तोला, इनका पाक करके इसमें सोंठ, मिर्च, पिप्पली,

दालचीनी, तमालपत्र, इलायची प्रत्येक चार-चार तोला मिलाकर पाक करना चाहिये। (८) गोमूत्र के साथ गुग्गुल पीना चाहिये। (९) सोंठ, हरड़ और गिलोय के काढ़े में गुग्गुल मिलाकर पीना चाहिये। (१०) देवदारु, वच, मोथा, सोंठ, अतीस, हरड़ इनके चूर्ण को गरम जल के साथ पीना चाहिये (११) पुनर्नवा क्राथ में सोंठ मिलाकर पीना चाहिये। (१२) एरण्ड-तैल देना चाहिये। (१३) हरीतकी-चूर्ण को एरण्ड-तैल के साथ मिलाकर देना चाहिये।

शास्त्रीय ओषधि – रास्ना सप्तक, महारास्नादि काथ, अजमोदादि चूर्ण, शुण्ठी-पुटपाक, अमृता गुग्गुल, योगराज गुग्गुल, मेथीपाक रसोनपिण्ड।

वातरक्त (कुष्ठ)

कुष्ठ—यह एक भयानक रोग है और यह इस प्रकार का रोग है, जो वंश आदि में लगातार उतरता रहता है। शास्त्र में लिखा है कि जिस कुल में यह रोग हो, उसके कुल में विवाह नहीं करना चाहिये। इस रोग का कारण एक कीटाणु माना जाता है, जिसको 'वैसिलस लैप्री' कहते हैं। यह कीटाणु त्वचा, वात-नाड़ियों में, ग्रन्थियों में मिलती है। इस रोग में कान की गुद्दी और माथे की त्वचा बहुत आक्रान्त होती है।

इस रोग के तीन रूप हैं—१—इस रूप में गोल चक्के या धब्बे होते [illegible] श्वेत हो जाते हैं। रुग्ण त्वचा में स्पर्श-ज्ञान नष्ट हो जाता है। यह अंगुलियों में, पाँव के अँगूठे में अथवा चेहरे पर या शरीर के किसी भाग में हो जाते हैं। इसको वात-नाड़ियों में होनेवाली नर्ब या एनैसथैटिक लेप्रोसी कहते हैं। २—इस रूप में धीरे-धीरे उभार उत्पन्न होते हैं, यह उभार ठोस होते हैं, इनका आकार भिन्न होता है। पिन के शिर से लेकर गूलर तक बड़े होजाते हैं। देखने में विचित्र मालूम होते हैं। इस रूप को उदुम्बर कुष्ठ कहते हैं। अन्त में इस रुग्ण भाग में व्रण बन जाता है, और यह व्रण आगे बढ़कर त्वचा और अस्थि को खा लेता है, इससे पाँव के अँगूठे और अँगुलियाँ नष्ट हो जाती हैं। ३—तीसरा रूप ऊपर के दोनों प्रकार के रूपों का मिश्रण

है। यह रोग पैतृक होता है, परन्तु रुग्ण व्यक्ति के स्राव के लगने से भी उत्पन्न होजाता है। एक प्रकार से संक्रामक रोग है।

इस रोग के लिये कोई इलाज नहीं है, परन्तु उत्तम भोजन, खुली वायु और शक्तिवर्द्धक औषधियाँ इस रोग को बढ़ने से कुछ काल तक रोक सकती हैं।

संखिया इस रोग के लिये उत्तम मानी जाती है। गर्जन आॅयल २ ड्राम और चूने का पानी २ ड्राम मिलाकर पीना चाहिये। १ भाग तेल और ३ भाग चूने का पानी मिलाकर दिन में दो बार दो घन्टे तक त्वचा पर मलना चाहिये। जो व्यक्ति इन रोगियों में रहें, उनको पूर्ण स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिये।

वातरक्त

इस रोग में रक्त खराब हो जाता है। एक प्रकार से यह भी कुष्ठ का ही भेद है। इसका कारण भी विरुद्ध आहार (यथा—मछली और दूध) खट्टे, मीठे, नमकीन, क्षार, माँस, तिल, सुरा, आसव आदि पदार्थों को खाने से, क्रोध, दिन में सोना, रात में जगना इत्यादि कारणों से कोमल व्यक्तियों में, विशेषत: स्थूल पुरुषों में यह रोग होता है।

लक्षण—वातरक्त या कुष्ठ होने से पूर्व या तो पसीना सर्वथा नहीं आता, बहुत अधिक मात्रा में आता है, स्थान काला हो जाता है। स्पर्श-शक्ति का लोप हो जाता है। यदि किसी स्थान पर किसी कारण से क्षत हो जाय, तो उसमें बहुत दर्द होता है, सब सन्धियाँ ढीली पड़ जाती हैं, आलस्य, अवसन्नता, पिड़िका की उत्पत्ति, घुटने, कटि, जङ्घा में सुई के समान वेदना होती है, स्पर्श-शक्ति का ह्रास, स्थान के रंग में परिवर्त्तन हो जाता है।

उपाय—यदि रोग त्वचा और मांस में आश्रित हो, तो इसको उत्तान अवस्था कहते हैं और जब रोग मेद आदि धातुओं के अन्दर चला जाय, उस समय इसको गम्भीर अवस्था कहते हैं। वातरक्त रोग में तीव्र उष्ण प्रलेप, उपनाह, विरेचन आदि क्रियायें करनी चाहिये। सींगी या पछने लगवाना उत्तम है। (१) गिलोय के काढ़े में शिलाजीत अथवा गिलोय और त्रिफला-क्वाथ में गुग्गुल मिलाकर पीना चाहिये। (२) देर तक गिलोय का

चूर्ण या इसका स्वरस पान करना चाहिये। (३) गिलोय-क्वाथ को घी के साथ पीने से वात-रोग, गुड़ के साथ पीने से मलावरोध, शर्करा के साथ पीने से पित्त, मधु के साथ पीने से कफ, सोंठ के साथ आमवात तथा एरण्ड-तैल के साथ पीने से वातरक्त शान्त होता है। (४) कटुकी, गिलोय, मुलहठी, सोंठ इनके कल्क को मधु और गोमूत्र के साथ पीने से वात-रक्त शान्त होता है। (५) तीन या पाँच हरड़ गुड़ के साथ खाकर ऊपर से गिलोय का काढ़ा पीने से अवश्य लाभ होता है। (६) वासा, पंचमूल, गिलोय, एरण्ड-मूल, गोखरू इनके काढ़े में एरण्ड तैल, हींग और सैन्धव लवण मिलाकर पान करने से वात-रक्त शान्त होता है। (७) एरण्ड-मूल, वासा, गोखुर, गिलोय, रास्ना, तालमखाना-मूल इनके काढ़े को पीना चाहिये। (८) गुड़ के साथ पिप्पली खाने से या गुड़ के साथ हरड़ खाने से वातरक्त रोग शान्त होता है। (९) रास्ना, गिलोय, मुलहट्टी, बला इनको दूध के साथ पीसकर लगाने से वात-रक्त शान्त होता है। (१०) गृह-धूम, वच, कूठ, सौंफ, हरिद्रा, दारुहरिद्रा इन सबको जल में पीसकर प्रलेप देने से रोग शान्त होता है। (११) गिलोय, सोंठ, धनिया प्रत्येक २ तोला लेकर काढ़ा करना चाहिये। (१२) वासा, गिलोय और अमलतास इनके काढ़े में एरण्ड-तैल मिलाकर पीने से, (१३) पटोल, कुटकी, शतावरी, त्रिफला, गिलोय काढ़ा का पान करने से वात-रक्त शान्त होता है। (१४) सप्तपर्ण की छाल, कुटकी, अनन्तमूल, स्वर्णमुखी, मजीठ, दारुहरिद्रा, मुलहट्टी, चोपचीनी, केला प्रत्येक १ तोला १ सेर जल में पाक करके जब आध पाव रह जाय, तब प्रातःकाल पीना चाहिये। इससे दस्त साफ आती है। (१५) गन्धक २ रत्ती, रक्त-वर्ण गैरिक १ रत्ती, घीकुँवार का रस १ तोला, इनको प्रतिदिन पीना चाहिये। (१६) नीम के फूल शुष्क करके उनका चूर्ण कर लेना चाहिये। इसी प्रकार अमलतास के फूल सुखाकर चूर्ण करना चाहिये। ये दोनों चूर्ण मिलित ४ आना, लोह-भस्म १ रत्ती, कच्ची हल्दी और परवल के रस के साथ खाना चाहिये। (१७) कच्चे प्याज का रस, प्रातःकाल पीने से रक्त-वृद्धि होती है।

शास्त्रीय औषधि—बृहत मंजीष्ठादि क्वाथ, चन्द्रप्रभा गुटिका, किशोर-गुग्गुल, गोक्षुरादि गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, गुडूच्यादि तैल, सोमराजी तैल, पंचतिक्तघृत, अमृतांगुर लोह।

रक्त-पित्त

इस रोग के कारण शरीर के अन्दर कुछ परिवर्त्तन आजाते हैं। यह रोग या तो स्पष्ट रूप में होता है, अथवा छिपा हुआ होता है। आर्य-वैद्यक में इस रोग के कारण तीक्ष्ण, क्षार, उष्ण, लवण आदि पदार्थों का अति सेवन, एवं अति ताप, कसरत, अति पन्थ, शोक, मैथुन आदि एवं आहार-विहार की अनियमता से पित्त विकृत होकर रक्त को कुपित करता है। पित्त और रक्त की आपस में बहुत समानता है, दोनों की गन्ध एवं वर्ण एक-सा है, दोनों ही उष्ण हैं और दोनों पास-पास रहते हैं। उपरोक्त कारणों से कुपित रक्त धमनियों की दीवारों को विदीर्ण करके बाहर आता है। इसके तीन रास्ते हैं। १—जब यह मुख, नाक, या कान से बाहर आता है, इसको ऊर्ध्वग रक्त-पित्त कहते हैं। २—जब रक्त शिश्न या गुदा अथवा योनि से स्रवित होता है, तब इसको अधोगामि रक्त-पित्त कहते हैं। ३—जब रक्त सारे शरीर से रोम-कूपों से निकले।

अनार्य-चिकित्सा में इस रोग का कारण ताजी वनस्पति, शाक आदि वस्तुओं का भोजन में अभाव है। इसके अतिरिक्त अँधेरे में रहना इस रोग की उत्पत्ति का दूसरा कारण है।

छिपा हुआ रक्त पित्त—इसके कई रूप में हैं; १—रूप में यह बिना किसी लक्षण के बहुत दिनों तक बहुतथोड़ी मात्रा में होता रहता है। २—इसके कारण जो पहला लक्षण मिलता है, वह यह होता है कि रोगी पीला हो जाता है। ३—इस रोग का पता इस प्रकार से चलता है कि थोड़ी-सी घुरूंड व्रण का रूप धारण कर लेता है, अथवा अन्य रोग-जन्य निर्बलता बहुत देर में अच्छी हो ; ४—अन्य रोग यथा लैाहरी-सार (मुगलीफोड़ा) या देहली सोर आदि लक्षणों में भी इस रोग का होना बहुत सम्भव है। ५—कई बार इस रोग के कारण सन्धिवात-जन्य शूल होता है, आँख के नीचे सूजन हो जाती है। मुँह में व्रण हो जाता है, जिह्वा लाल हो जाती है, मसूड़े अच्छे रहते हैं। ६—प्राय: करके यह रोग इस रूप में होता है कि दाँतों के मसूड़े सूज जाते हैं। ७—कई मनुष्यों में इसके कारण और कुछ अपूर्ण पोषण के कारण (भोजन की न्यूनता से) कोष्ठ में श्वयथु

उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण हृदय में बहुत धड़कन होती है। ८—कई बार इसके कारण अतिसार हो जाता है। ९—चिरकालीन अच्चि-शोथ भी इसका रूप है। १०—इसके कारण गठिया रोग भी हो जाता है। ११—यह रोग बेरेबरी (एक प्रकार का रोग, जो अपूर्ण पोषण के कारण होता है) के लक्षण के रूप में हो सकता है। १२—इस रोग के कारण परप्युरा हो सकता है। इस रोग में त्वचा (विशेषत: टाँगों) पर भिन्न-भिन्न आकार के काले धब्बे उत्पन्न हो जाते हैं। इन धब्बों का कारण त्वचा के नीचे रहनेवाली रक्त-वाहिनियों में रक्तस्राव होता है।

स्पष्ट रक्तस्राव—इस रोग में मसूड़े सूज जाते हैं, रोगी का दिल गिर जाता है। अंगों में मीठा दर्द रहता है, हृदय में धड़कन रहती है, श्वास छोटा हो जाता है। जिह्वा मैली और मोटी हो जाती है। चेहरे का रंग मटमैला हो जाता है, ओठ नीले या पीले हो जाते हैं। आँखों के चारोंओर काली रेखा आजाती है। मसूड़े सूज जाते हैं, पोले हो जाते हैं। और थोड़ा दबाने से इनमें रक्तस्राव होने लगता है। दाँत प्राय: ढीले होते हैं; श्वास में दुर्गन्धि आती है। रोग के बढ़ने के साथ-साथ शरीर दिखाई देने लगता है। थोड़े से दबाव या आघात से व्रण उत्पन्न हो जाता है। पुराने जख्म ताजे हो जाते हैं, सन्धियाँ सूज जाती हैं। रोगी को नाक या अन्य अवयवों से रक्त-स्राव आने लगता है। हृदय कमजोर हो जाता है।

उपाय—रोगी को ताजी सब्जियाँ खाने को देनी चाहिये। विशेषत: नमक अधिक देना चाहिये। नारियल का पानी या ताजा दूध (डिब्बों का नहीं), नीबू का रस, (अभाव में पोटाशियम साइट्रेट १० ग्रेन) दिन में दो-तीन बार देना चाहिये। सब प्रकार के फल, सिरका गन्ना आदि देना चाहिये। विरेचन के लिये इमली या सोडियम सल्फेट देना चाहिये। दाँतों के लिये अनार की छाल के काढ़े में फिटकरी मिलाकर देना चाहिये। अतिसार के लिये बेल का शर्बत पीना उत्तम है। यदि रोगी में निर्बलता बहुत आजाय, तो उसको लेटाकर रखना चाहिये।

रोग से बचने के लिये ताजी सब्जियाँ, नीबू, प्याज, अमचूर का उपयोग करना चाहिये।

सामान्य उपाय—१—इस रोग के लिये वासक एक उत्तम औषधि गिनी जाती है। इसे स्वरस या पुटपाक-विधि से किसी भी प्रकार से देना चाहिये। २—पेठा-कुष्माण्ड—इनका स्वरस या अवलेह उत्तम है। ३—धनिया, आँवला, बाँसा, किशमिश और पित्तपापड़ा; इनका शीत कषाय देना चाहिये। ४—गूलर के रस में मधु मिलाकर। ५—वासक के स्वरस के साथ पिप्पली व हरड़ मधु के साथ। ६—पका हुआ गूलर, खजूर, जम्भारी, हरड़ अथवा अकेली द्राक्षा को पीसकर मधु के साथ खाने से अवश्य लाभ होता है। ७—किशमिश, लाल चन्दन, लोध्र प्रियंगु; इन सब द्रव्यों का चूर्ण वासक के रस में मधु के साथ पीना चाहिये। ८—दूब का रस मधु के साथ पीना चाहिये। ९—पलाश के फूलों को दुगुनी शर्करा में मथकर पानी या दूध के साथ खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—वासाघृत, दूर्वाद्य-घृत, वासावलेह, कुष्माण्डावलेह, चन्द्रकला-रस, उशीरासव, च्यवनप्राश, द्राक्षासवलेह।

ऊर्ध्व रक्तपित्त के लिये नकसीर देखिये और अधोगामी रक्त-पित्त के लिये अर्श और योनि-रोग देखिये।

यदि रक्त सम्पूर्ण शरीर से स्रवित हो, तो उस समय रोगी के बल के अनुसार विरेचन देना चाहिये। इस प्रकार की दवा देनी चाहिये, जो रक्त को गाढ़ा करे; जैसे—कैलशियम क्लोराइड या कहरुआ, जरिश्क कासनी, अनारदाने का खिसाड़ा, उन्नाव का शरबत भी उत्तम है। प्रातःकाल प्रतिदिन उन्नाव दस आने पानी में औटाकर छानकर पीना चाहिये।

विशेष सूचना—यदि रोगी बलवान हो, और मूर्च्छा आदि उपद्रव का भय न हो, तो रक्त-स्राव को एकदम बन्द नहीं कर देना चाहिये। वृद्ध या निर्बल मनुष्य के रक्तस्राव को एकदम से रोकना चाहिये।

पथ्य—चावल, बथुवा, गुल्फा, साठी, जौ, मूँग, मोठ, तुवर, परवल, बड़, पीपल, गूलर, घिया, ककड़ी आदि शाक, अनार, आँवला, नारंगी फल उत्तम है।

अपथ्य—व्यायाम, धूप, मल और मूत्र का अवरोध, घोड़े की सवारी, धूम्रपान, गुड़, दही, सुपारी आदि पदार्थ हानिकारक हैं।

१०१

एक उत्तम उपाय—१—चार पाँच जपा के फूल तोड़कर इनको दो-तीन नीबुओं के रस में डाल देना चाहिये। पीछे से दो-दो पल गुलाब और केवड़े का अर्क मिला देना चाहिये। इसमे एक अञ्जली भर श्वेत बूरा मिलाकर शीशी के मर्त्तवान में रख देना चाहिये। ऊपर से पानी भर देना चाहिये। तीसरे दिन इनको छानकर एक शीशी में भर लेना चाहिये। उस शीशी को ठण्डे पानी या बर्फ में रखना चाहिये। इसका रंग लाल रक्त के समान होगा। इसकी मात्रा २ तोला है। इसी प्रकार से जामुन और फालसा से भी बनाना चाहिये। २—खजूर को मधु के साथ पीसकर खाने से रक्त-पित्त अवश्य शान्त होता है।

गलगंड (कण्ठमाला)

इस रोग के अन्दर शरीर के ऊपर गाँठें बढ़ जाती हैं। ये गाँठें शरीर के अन्दर की लसीका ग्रन्थियाँ होती हैं। जहाँ पर लसीका ग्रन्थियाँ अधिक होती हैं, वहाँ पर यह रोग स्पष्ट हो जाता है। साथ ही रोग का कारण जिस स्थान पर होगा, उस स्थान के समीपवर्त्ती ग्रन्थियाँ प्रथम आक्रान्त होती हैं। उदाहरण के लिये—यदि रोग का कारण फेफड़ों में है, तो गले की ग्रन्थियाँ आक्रान्त होंगी। यह रोग उन व्यक्तियों में अधिक होता है, जो निर्बल तथा अपूर्ण खूराक पर रहते हैं। इस रोग का कारण रक्त-दोष है। इस रोग का कारण वंश-क्रमागत दोष भी है। यदि पिता बहुत तमाकूपिता हो या माता को गर्भावस्था के समय श्वेतप्रदर हो जाय, तो बच्चे में भी यह रोग हो जाता है।

इसके अतिरिक्त अनार्य-चिकित्सक इस रोग को यक्ष्मा का रूप मानते हैं। उनके विचार से इस रोग का कारण ट्युबरकल वैसिलाई (यक्ष्मा की कृमि) है। इससे उनका विचार है कि यह रोग उन व्यक्तियों में विशेषतः होता है, जिनके माता-पिता को यक्ष्मा-रोग है। जिन बच्चों में यह रोग होना होता है, उनके बाल काले, ऊपर का ओष्ठ मोटा, नाक के नथने चौड़े, रुग्ण या एक अजीब किस्म का चेहरा या हाथ छोटे, चौड़े नख, जिनपर रेखायें पड़ी होती हैं, बिना अनुपात का शरीर और अङ्ग होते हैं। इस रोग-वाला बच्चा निर्बल होता है। उसकी प्रतिभा मन्द होती है। उसके गले की

ग्रन्थियाँ बड़ी होती हैं, जो पककर विद्रधि बन जाती हैं। टौंसिल बढ़े होते हैं। कान से स्राव होता है, आँखों में शोथ रहता है और त्वचा के रोग भी हो जाते हैं। बच्चा सदा निर्बल बना रहता है। उसके गले की ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं और सन्धियाँ भी आक्रान्त हो जाती हैं।

इसका एक दूसरा रूप है, जिसमें यह रोग मन्द रूप से होता है। इसमें रोगी का सौन्दर्य बढ़ जाता है। रोगी की त्वचा पतली, चेहरा साफ, ओष्ठ और गाल लाल (गुलाब-जैसे) नीली चमकती हुई आँखें, बड़ी-बड़ी पुतलियाँ, लम्बे पलकों के बाल, रेशम के समान सिर के भूरे बाल, अंडाकृति चेहरा, नाजुक हाव-भाव, छोटी-छोटी अस्थियाँ तथा शिरायें स्पष्ट दिखाई देती हैं। इन व्यक्तियों की प्रतिभा बड़ी तेज़ होती है और बहुत जल्दी जागृत हो जाती है। इन बच्चों में काम, क्षीणता या मस्तिष्क में पानी भरना आदि उपद्रव होते हैं। यह रोग यद्यपि पैतृक होता है, परन्तु ग़रीबी जीवन के कारण, नमी में रहने से भी हो जाता है। शराबियों में या औपसर्गिक प्रमेह से आक्रान्त व्यक्तियों में भी पाया जाता है। इसके साथ ही समीपवर्त्ती सम्बन्धियों में विवाह करने से भी यह रोग हो जाता है। मुसलमानों में इस रोग का दूसरा किस्म प्रायः देखने में आता है।

उपाय--रोगी को खुली वायु में, उत्तम भोजन पर रखना चाहिये। कॉड लिवर ऑयल या मांस-रस को देना उपयोगी है। अनार्य-औषधि में इस रोग के लिये पोटाशियम आयोडाईड, सीरप फैराई आयोडाइड, हाइपोफॉस्फेट ऑफ लाईम, आयर्न तथा रक्त-शोधक औषधियाँ बरती जाती हैं। बाहर लगाने के लिये टिंचर या लिनिमैन्ट आयोडीन या रेड आयोडाईड ऑफ मर्करी ऑयन्टमेन्ट बरती जाती है।

आर्य-औषधि--१--इस रोग में कांचनार औषधि का उपयोग विशेषतः किया जाता है। इसका चूर्ण या काढ़ा गुग्गुल के साथ दिया जाता है। प्रायः रक्त-शोधक चिकित्सा की जाती है। २--कड़वी तुम्बी के बीच में पानी या शराब ७ दिन तक पीना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि--कांचनार गुग्गुल, गन्धक रसायन, मंजीठादि क्वाथ, वरुण क्वाथ, चन्द्रप्रभा, अमृता गुग्गुल, किशोर गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, दशमूलारिष्ट।

बाहर लगाने के लेप—१—छुछुन्दरी तेल ४ सेर, छुछुन्दरी मांस १ सेर, पानी १६ सेर, इनमें तेल पकाकर लगाना चाहिये। २—हस्तिकर्ण पलाशमूल को तण्डुलोदक के साथ पीसकर लेप करना चाहिये। ३—सरसों, महजनबीज, सनबीज, अलसी, जौ, मूली के बीज; इनको खट्टी छाछ में मिलाकर लेप करना चाहिये। ४—नीम के रस में बछनाग पीसकर लेप करना चाहिये। ५—चित्रकमूल, भिलावा, हीराकसीस, थोरा का मूल इनको कपास के रस में या चावलों के धोवन में पीसकर लगाना चाहिये। ६—श्वेत एरण्ड के बीजों के चूर्ण को भेड़ के दूध में उबालकर, इस दूध से घी बनाकर जङ्गल (हनीले-हरे रंग का रंगने के काम में आता है) के साथ लगाना चाहिये। ७—मूँग और कपास के बीजों की राख मिलाकर घी के साथ लगानी चाहिये। ८—अजवायन के चूर्ण को कम्पिल्ल में मिलाकर घी के साथ लगाना चाहिये। ९—गाय के घृत में सुहागा मिलाकर लगाना चाहिये।

यूनानी-औषधि— १—राल, जंगली प्याज, गूगल, कर्नब की जड़, कूट-छानकर सिरका, शहद और जैतून के तेल में मिलाकर लेप करते हैं। २—राई, उटङ्गन के बीज, समुद्री भाग, जरावन्द. गुग्गुल, अगीला, पुराना जैतून, सफेद मोम इनको मिलाकर लेप करना चाहिये। ३— हकीमों का कहना है कि यदि ताजे सींग के भीतर की चपटी हड्डी की राख प्रातःकाल सात दिन तक १ माशे की मात्रा में ले ली जाय, तो सब प्रकार की कंठमाला दूर हो जाती है।

पाण्डु

इस रोग में रक्त की न्यूनता हो जाती है। 'रक्त की न्यूनता' से अभिप्राय दो प्रकार है—१—रक्त की राशि न्यून हो जाय, २—रक्त के अन्दर रहनेवाले रक्त-कणों में न्यूनता आजाय। रक्त-कणों की न्यूनता आने से उस अवस्था में भी न्यूनता आजाती है, जिसके कारण वे लाल दिखाई देते हैं। यह लाल रंग हिमोग्लोबीन के कारण है, जो लोह के अंश से बनी है। और ये लोह के अंश ओषजन को ले जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस रोग के कारण रक्त में द्रव का भाग बढ़ जाता है।

कारण—इस रोग के बहुत-से कारण हैं। परन्तु मुख्य कारण भोजन की न्यूनता, धूप की कमी, चिरकालीन मलबन्ध, अति परिश्रम और भोजन का अपूर्ण होना; चिन्ता, उद्विग्नता, मलेरिया की भूमि में या नमी में रहना इस रोग के पूर्ववर्त्ती कारण हैं। इसके सिवा कई रोगों के कारण भी यह रोग होता है। यथा—टेप वार्म के कारण, बार-बार गर्भवती होने के कारण, देर तक दूध पिलाने से, अर्श के कारण, प्लीहा के कारण बार-बार मलेरिया ज्वर के आक्रमण से अत्यार्त्तव से, मासिक धर्म के अधिक आने से।

लक्षण—रोगी की त्वचा पीली हो जाती है, चेहरे का रंग काला पड़ जाता है, चेहरा उतर-सा जाता है। आँखें श्वेत हो जाती हैं, आँखों के चारोंओर काली रेखायें पड़ जाती हैं, नाक, ओष्ठ, मुँह के अन्दर की श्लेष्म-कला भी रक्तहीन हो जाता है। गालों का रक्त बदल जाता है, लाल गुलाब के स्थान पर श्वेत पड़ जाती हैं। शरीर का भार घट जाता है, मुँह कुछ सूजा हुआ प्रतीत होता है। रोगी का शरीर ठंडा हो जाता है। हाथ और पाँव ठण्डे मालूम होते हैं और इनसे आग निकलती हुई प्रतीत होती है। थोड़ी-सी भी सर्दी से कास, गले में सूजन या अतिसार हो जाता है। रोगी की भूख घट जाती है, मूत्र, प्लीहा और प्रायः मलबन्ध रहता है। रोगी को प्रायः शिर-दर्द रहता है। यह दर्द शङ्ख-प्रदेशों पर या चोटी के स्थान पर होता है। ले ख्या लेटने से शान्त हो जाता है, और खड़ा होने से फिर होने लगता है। अंगों में दर्द का होना प्रायः करके होता है। स्त्रियों में रजोधर्म अनियमित, गंदला, पतला, पानीवाला या दर्द-युक्त होता है। श्वेत-प्रदर इस रोग का उपद्रव है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है, श्वास छोटा होता जाता है, विशेषतः पहाड़ पर चढ़ने के समय या सीढ़ियों पर चढ़ते समय श्वास में कठिनता का अनुभव होता है। हृदय में धड़कन, वाम पार्श्व में दर्द, मूर्च्छा की अभिरुचि, कानों में झनझनाहट, आँखों के सामने काले धब्बे दिखाई देना, नाक से रक्तस्राव और गहरी नींद (घुर्राटेवाली) आती है। खट्टे डकारों का आना, अध्मान आदि अजीर्ण के लक्षण होते हैं। स्वभाव चिड़-चिड़ा हो जाता है, स्मृति घट जाती है और एक बात पर ध्यान नहीं जमता। रोगी निराशावादी या औरत हिस्टीरिया के स्वभाव की हो जाती है। यदि

रंग कुछ समय तक रहे, तो प्लीहा बढ़ जाती है, पाँव पर सूजन आजाती है, जो दिन के समय बढ़ जाती है और रात्रि में सोने से प्रातः घट जाती है।

क्लोरोसिस—यह रोग प्रायः करके औरतों में होता है। त्वचा का रंग हरा-पीला-सा होता है, आँखें अन्दर को घुसी प्रतीत होती हैं। उनके चारोंओर काली रेखायें होती हैं। भूख बिलकुल कम हो जाती है। इस रोग का कारण स्लेट, पेंसिल, मिट्टी, राख आदि का खाना है। रोगी प्रायः शिकायत करता है कि उसके सिर में और वाम पार्श्व में बहुत चुभता हुआ दर्द हो रहा है। मूत्र का रंग पीला और मात्रा में अधिक होता है। साथ में हिस्टीरिया के लक्षण भी उपस्थित होते हैं। रोगी को प्रायः मलबन्ध रहता है। साथ ही मासिक ऋतु के समय पीठ और कटि में तीव्र दर्द होता है, पाँव भी कभी-कभी सूज आते हैं। आर्य-वैद्यक में इस रोग को 'कामला' या कुम्भ-कामला कहते हैं।

चिकित्सा – प्रतिदिन थोड़ा-बहुत व्यायाम करना चाहिये। सोने या काम करने के कमरे में पूर्ण वायु आनी चाहिये। भोजन इस प्रकार का होना चाहिये, जिससे रोगी को पोषण मिले। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को अजीर्ण न हो। शीत या ताजे पानी में स्नान करना चाहिये। इस रोग में लोह विशेष उपयोगी है, इसलिये शक्तिवर्द्धक औषधियों में इस प्रकार की औषधि देनी चाहिये, जिनमें लोह अवश्य हो। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि लोह से मलबन्ध न पड़ जाय, इसलिये विरेचक औषधि समय-समय पर देते रहना चाहिये। लोहवाले कई उत्तम-उत्तम मिश्रण लिखे गये हैं, जिनमें फेराई एट क्युनीन साइट्रेट, रिडिस्युड आयर्न, टिंचर ऑफ स्टील आदि का उपयोग किया गया है।

आर्य-औषधि—१—मिश्री के साथ कटुकी का चूर्ण खाने से, २—द्रोणपुष्पी (गोमा) के रस का अञ्जन करने से, ३—देवदाली (कड़वी तुम्बी) का नस्य लेने से पाण्डु-रोग शान्त होता है। ४—कोमल मूली के स्वरस में शर्करा या नौसादर मिलाकर पीने से लाभ होता है। ५—सनाय १२ माशे, पिण्ड-खजूर १६ माशे, मजीठ ६ माशे इनको एक कुडव जल में सायंकाल भिगोकर प्रातःकाल हाथों से मलकर, फिर छानकर पीने से लाभ

होता है। ६—मण्डूर-भस्म, हरड़, कुटकी इनका चूर्ण गोमूत्र के साथ पीने में, मिट्टी के खाने से उत्पन्न कामला-रोग शान्त होता है। ७—त्रिफला और हल्दी के साथ घृत पकाकर पीना चाहिये। ८—त्रिफला, नीम, गिलोय, बाँसा, कुटकी, चिरायता इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीना चाहिये। ९—लोह-भस्म घी और शहद के साथ खाना चाहिये। १०—गिलोय-पत्र के स्वरस में तक्र मिलाकर पीना चाहिये। ११ २ तोला हल्दी और ८ तोला दही खाना चाहिये। १२—पिप्पली-चूर्ण आधा आना भर और कच्ची हल्दी का रस आधी छटांक, परवल का रस आधा छटाँक इसके साथ खाना चाहिये। १३—पुनर्नवाष्टक—पुनर्नवा, नीम-छाल, परवल, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहरिद्रा, हरीतकी प्रत्येक चार आना भर लेकर आधा सेर जल में पकाकर चौथाई रहने पर देना चाहिये। यदि विरेचन हो, तो कटुकी के स्थान पर इन्द्रयव और हरीतकी के स्थान पर मोचरस मिलाकर देना चाहिये। १४—हल्दी-चूर्ण ३ रत्ती, कटुकी-चूर्ण २ आना भर, हरीतकी-चूर्ण ४ आना भर इनको आँवले के हिम कषाय के साथ पान करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—नवायस-लोह, योगराज, आरोग्य-वर्धनी, वर्धमान पिप्पली, त्रिफला घृत, मलने के लिये किरातादि तैल।

यूनानी औषधि—बड़ी हरड़, शाहतरा, अफसन्तीन, आलूबुखारे का काढ़ा इसको देकर विरेचन करवाना चाहिये। विरेचन के पीछे कासनी के बीज, खीरे के बीज, आलुबुखारा, इमली, मीठी घिया के बीज, सादा वेद का अर्क इन सबको मकोय के अर्क में भिगोकर छान लेना चाहिये। फिर इसमें शर्बत नीलोफर या शर्बत बिजूरी मिलाकर पिलाना चाहिये।

पथ्यापथ्य—पुराना जौ, गेहूँ, दूध, खजूर, मूँग, मसूर, परवल, आम, छाछ, गन्ना, लहसुन, आँवला, घी सब पथ्य हैं। मलबन्ध, वमन, मूत्रावरोध, स्नान न करना, स्त्रीसंग, दारू, विदाही अन्न अपथ्य है।

शोथ (श्वयथु)

इसको कोई स्वतंत्र रोग नहीं मानना चाहिये। यह कई रोगों में लक्षण रूप से प्रगट होता है। श्वयथु—इसमें एक प्रकार की शोथ होती है, जिस शोथ का कारण यह होता है कि रक्त का द्रवांश रक्त से पृथक होकर शिथिल तन्तुओं में एकत्रित हो जाता है। यह द्रवांश धमनियों की दीवारों से चू जाता है। यह स्वतंत्ररूप से भी हो जाता है, जब रक्त-संचार में किसी प्रकार की रुकावट आजाय। जिस प्रकार तंग गार्टर पहनने से टाँग में शोथ उत्पन्न हो जाती है। श्वयथु के स्थान प्राय: अधोशाखायें—टाँग और उदर हैं। हृदय या गुर्दे के रोगों में यह चेहरे या शरीर पर भी हो सकता है। इस रोग की पहचान इस प्रकार से हो जाती है। यदि शोथ के स्थान को अँगुली से दबाया जाय, तो इसमें एक गड्ढा पड़ जाता है, जो अँगुली के हटाने पर धीरे-धीरे फिर भर जाता है। जिस प्रकार रबर की गेंद को दबाने से उसमें गड्ढा पड़ जाता है और दबाव हटा लेने पर फिर भर जाता है।

श्वयथु का सम्बन्ध किसी न किसी कारण से अवश्य होता है; जैसे—शीत का लगना, वृक्क के रोग, हृदय और फेफड़ों के रोग, यकृत या प्लीहा के रोग, पाण्डु, कृमि-जन्य अथवा मासिक-धर्म के विकार। कोई न कोई कारण इस लक्षण को उत्पन्न करता है।

शीत के लगने से श्वयथु—१—सर्दी के लगने के पीछे प्राय: एक-दम से होती है। रोगी जब नमी या ठण्डी हवा में बैठता है और विशेषत: जब रोगी को पसीना आया हुआ हो, तो यह रोग प्राय: हो जाता है। त्वचा की क्रिया ठण्डी वायु लगने से सहसा बन्द हो जाती है और द्रवांश त्वचा के निचले शिथिल तन्तुओं में एकत्रित हो जाता है। इस अवस्था को 'एनासारका' कहते हैं। वृक्कों के रोग के कारण भी यह अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था की चिकित्सा के लिए रोगी को गरम रखना चाहिये और विरेचन देना चाहिये, जिससे पानी की भाँति दस्त आए। मूत्र का प्रवाह बढ़ाने के लिये विरेचक औषधियाँ देनी चाहिये। गरम पानी में स्नान कराना भी उत्तम है।

२--वृक्क रोग के कारण जो श्वयथु होती है, उसमें प्रायः पलकों के निचले शिथिल तन्तुओं में द्रवांश एकत्रित हो जाता है। इसके अतिरिक्त गुह्य-मार्गों में, पाँव में तथा टाँगों में भी द्रव भर जाता है।

३—हृदय और फेफड़ों के कारण जो शोथ होती है, वह टाँगों में और हाथों में होती है और फिर सारे शरीर में फैल जाती है। यह रोग पैतृक होता है।

४—यकृत और जिगर के कारण जो श्वयथु होती है, वह प्रथम उदर पर प्रभाव करती है। पैर फूल जाता है। इसमें पानी भर जाता है, जिसको जलोदर या कहते हैं। चिरकालीन मद्यपान, उपदंश, चिरकालीन पर्यावरण शोथ, मलेरिया आदि निर्बल करनेवाले रोग इसके कारण हैं।

५—पांडु-रोग के कारण जो शोथ होती है, वह प्रायः न तो फैलती है और न शरीर के अन्दर पहुँचती है। बशर्ते कि रोग के कारण पेट के कृमि न हों। यह प्रायः पाँव, गिट्टे और भ्रू पर होती है। इस अवस्था में रक्त से द्रवांश के निकलने का कारण रक्त का निर्बल होना या रक्तवाहिनियों का रुग्ण होना होता है।

६—आर्त्तव के विकार से उत्पन्न होनेवाली श्वयथु अन्य प्रकार की शोथ की भाँति भयानक नहीं है। यह प्रायः पाँव में होती है, परन्तु कभी-कभी हाथों में तथा चेहरे पर भी हो जाती है। यह शोथ सायंकाल के समय विशेषतः बढ़ जाती है। यह प्रायः करके पांडु-जन्य शोथ से मिलती है।

उपाय-- जिस रोग से श्वयथु का सम्बन्ध हो, उसी रोग की चिकित्सा करनी चाहिये। १—गुड़ के साथ आर्द्रक, या गुड़ के साथ सोंठ, गुड़ के साथ हरड़ या गुड़ के साथ पिप्पली प्रतिदिन २-२ तोला मात्रा बढ़ाकर पीना चाहिये। २—पिप्पली, सोंठ और गुड़ के साथ पीने से शोथ नष्ट होती है। ३—पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ अथवा निशोथ, दन्तीमूल, त्रिकटु, चीता इनके द्वारा दूध पकाकर पीना चाहिये। ४—त्रिफला २ तोला, गोमूत्र, आध सेर; इनका क्वाथ करके आध पाव शेष रखकर पीना उत्तम है। ५—पिप्पली, रेत, खल, सहजन-छाल, अलसी; इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करना चाहिये। ६—एरण्ड-तैल पीना चाहिये। ७—गोखरन, मुण्डी और नमक; इनका कषाय अथवा मुण्डी कषाय में नौसादर और नमक मिलाकर

पीना चाहिये । ८—अजवायन, जीरा, पुनर्नवा, सौंफ प्रत्येक १ भाग, मकोय दो भाग, इनका अर्क पीना चाहिये ।

शास्त्रीय औषधि—पुनर्नवाष्टक, पथ्यादि क्वाथ, पुनर्नवादि क्वाथ, विरेचक औषधि, दुग्धवटी । पाँव पर या शोथ के स्थान को ऊँचा उठाकर रखना चाहिये । इसपर पट्टी बाँधना अच्छा है । साथ ही मकोय के पत्तों का लेप भी उत्तम है ।

उदर-रोग (प्लीहा-रोग)

साधारणत: प्लीहा सामने में आमाशय से और पीछे से पसलियों से ढकी होती है । स्वस्थ अवस्था में इसका अनुभव नहीं होता । प्लीहा के रोग मलेरिया से सम्बन्धित हैं । यह रोग प्राय: ज्वर के आक्रमणों के बराबर होने का परिणाम है । शीतज्वर की शीतावस्था में रक्त त्वचा के पृष्ठ से खिंचकर प्लीहा में भर जाता है । इससे प्लीहा असाधारण रूप में रक्त से भर जाती है और तन्तु तन जाते हैं । यदि वाम पार्श्व में पसलियों के नीचे दबायें, तो दर्द का अनुभव होता है । कभी-कभी यह दर्द वाम कटि-प्रदेश की ओर या वाम स्कन्ध की ओर बढ़ती है, जिससे रोगी वाम पार्श्व में सुगमता से नहीं लेट सकता । रोगी को बेचैनी रहती है और कभी-कभी वमन भी हो जाता है । वमन में रक्त भी आता है, परन्तु मल में रक्त अधिक आता है । नाक से भी रक्त-स्राव हो जाता है । जब शोथ घट जाती है, उस समय पार्श्व भरा हुआ और फैला हुआ प्रतीत होता है । तीव्र शोथ प्राय: कुछ दिनों में शान्त हो जाती है । इस समय रोगी को पसीना बहुत आता है, अतिसार होता है और मूत्र में गाढ़ा निक्षेप होता है । प्लीहा के अन्दर जो शोथ प्रथम होती है, वह स्वयं शान्त हो जाती है । परन्तु बार-बार आक्रमण होने के कारण तन्तुओं की शक्ति नष्ट हो जाती है । इस कारण अब वह अपनी असली हालत में नहीं आ सकते । साथ ही रक्त के निक्षेप प्लीहा में एकत्रित होते रहते हैं । इन निक्षेपों के कारण और तन्तुओं की शक्ति नष्ट हो जाने से स्थायी प्लीहा-वृद्धि हो जाती है । इस अवस्था में प्लीहा को पसलियों के नीचे वाम पार्श्व में दबाकर अनुभव कर सकते हैं ।

चिरकालीन शोथ—प्लीहा के बढ़ने का मूल कारण तीव्र शोथ का बार-बार आक्रमण होना है। परन्तु कई बार यह वृद्धि इतने शनैः-शनैः होती है कि रोगी को कुछ भी प्रतीत नहीं होता। जब प्लीहा भारी हो जाती है, बढ़ जाती है और वाम-पार्श्व में दर्द होने लगता है, उस समय इस रोग का पता चलता है। प्लीहा के बढ़ने के साथ-साथ बच्चों में मामूली ताप भी रहता है। यदि सायंकाल ताप-परिमाण से ताप देखें, तो वह १०० अंश फार्नहाइट होता है। प्लीहा जब बढ़ जाती है, तो वह कठोर तथा टूटनेवाली तथा सुगमता से फट जाती है।

प्लीहा में रक्त बनता है। जब यह आक्रान्त हो जाती है, उस समय रक्ताणुओं में कमी आजाती है। रक्ताणुओं के कम होने से रोगी पीला और फीका हो जाता है, जिह्वा पीली, रक्त-शून्य, आँखें श्वेत हो जाती हैं, बार-बार अतिसार के आक्रमण हो जाते हैं। किसी एक हद तक रोगी स्वस्थ हो सकता है। उस अवस्था के पीछे औषधियाँ निष्फल होती हैं। वह अवस्था यह है कि जबतक प्लीहा रक्त को लेती और देती रहती है, तबतक कुछ आशा है। प्लीहा की वृद्धि होने के साथ रोगी निर्बल हो जाता है, पाँव और पेट पर शोथ हो जाती है। अतिसार या प्रवाहिका-रोग स्थिर हो जाता है।

आर्य-औषधि में उदर-रोग आठ प्रकार के गिने हैं; यथा—वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, बद्धगुदोदर, क्षतोदर, दकोदर।

उपाय—जिस समय रोगी के पार्श्व में दर्द आरम्भ हो जाय, उस समय गरम पानी का सेक करना चाहिये। यदि रोगी को अतिसार न हो, तो सोडियम सल्फेट से विरेचन देना चाहिये। इस रोग में क्युनीन और आयर्न देना उत्तम है। दूध पीने के लिये देना चाहिये। पेट पर रेड ऑयन्ट-मेन्ट ऑफ मर्करी का लेप करना चाहिये।

आर्य-औषधि—१—मुसव्वर १ तोला, हींग २ तोला, बड़ी हरड़ ४ भाग; इनके चूर्ण को गरम पानी के साथ पीना चाहिये। २—गो-मूत्र के साथ एरण्ड का तैल देना चाहिये। ३—चाता-मूल, हरिद्रा और आक का पीला पत्ता; इसको पुराने गुड़ के साथ खाने से प्लीहा शान्त होती है। ४—लहसुन, पिप्पली-मूल, हरड़ इनको गो-मूत्र के साथ खाना चाहिये। ५—तिलक्षार, यवक्षार,

द्रवन्ती-क्षार, शुद्ध भिलावा, पिप्पली प्रत्येक समभाग और सबके बराबर पुराना गुड़ मिलाकर सरफोंका-मूल ४ माशा। इसको तक्र के साथ पीना चाहिये। ६—अमलबेत, सहजन, पिप्पली, मिर्च और सैन्धव इनका काढ़ा पीना चाहिये। ७—तिल, अलसी, एरण्ड का बीज, सरसों; इनका लेप करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—गुड़-पिप्पली, अर्क-लवण, लोकनाथ-रस, वज्र-क्षार, चित्रक-पिप्पली।

यूनानी औषधि—जरिश्क, खुर्पे के बीज, ककड़ी के बीज, खरबूजे के बीज, घिये के बीज की मींगी प्रत्येक ३ दिरम, गोंद अरबी १ दिरम, गुलाब के फूल २ दिरम, बंशलोचन, चन्दन सफेद प्रत्येक ½ दिरम, कासनी के बीज ४ दिरम।

विधि—१—जरिश्क को सिर्के व गुलाब मे मलकर शेष दवाइयों को कूट छानकर जरिश्क का पानी मिलाकर रक्खें। इसकी सात मात्रायें हैं। इसकी एक मात्रा कासनी के पानी व सिकञ्जबीन के साथ लेना चाहिये।

२—लेप—रसौत, गिले अरमानी, पीली अंजीर, अमलतास का गूदा, गेहूँ की भूसी, मकोय का अर्क; इनको सिर्के में पीसकर लेप करना चाहिये।

३—विरेचन—बड़ी हरड़, छोटी हरड़, काबुली हरड़ प्रत्येक १ दिरम; निशोथ, गुलाब के फूल प्रत्येक १ दिरम, कासनी ४ दिरम, कुसुम के बीज, अफसन्तीन, अनीसुन, सौंफ प्रत्येक एक मिस्काल, अफतीमून २ दिरम, श्वेत चीनी २ मिस्काल, इरमनी का पत्थर १ दिरम इनको कूट-छानकर २ दिरम की मात्रा में शर्बत बिजूरी के साथ देना चाहिये।

४—विरेचक गोलियाँ—नीबू की जड़ की छाल और अफतीमून दोनों को बराबर कूट-छानकर शहद में मिलाकर दो दिरम की मात्रा देनी चाहिये। हकीमों का कहना है कि झाऊ की लकड़ी का प्याला बनाकर उसीमें भोजन करना चाहिये और पानी पीना चाहिये।

५—हंसराज जूफा, संभालू के बीज इन सबको बराबर कूट-छानकर शहद में मिलाकर माजून बनाना चाहिये। मात्रा दो दिरम।

६—अफसन्तीन, बालछड़, करूमानो, अजखर, किबु की जड़, गुलाब के फूल, गूगल इनको झाऊ के पत्तों के पानी में या तुतली मे मिलाकर सिर्का

डालकर लेप करना चाहिये। इससे तिल्ली को ताकत मिलती है। बाजरे की भूसी और नमक का सेक करना चाहिये।

७—सुहागा, पोदीना, तुतली इनको सिर्के और शहद में मिलाकर लेप करना चाहिये।

८—अञ्जीर या मूली को सिरके में मिलाकर खाना चाहिये।

९—जवाखार को तितली के पानी और सिर्के में मिलाकर लेप करना चाहिये।

जलोदर

इस रोग का कारण उदर में पानी का एकत्रित हो जाना है। यह पानी उदर की पर्य्यावरण कला में भर जाता है। इस रोग के कारण वे ही हैं, जो शोथ रोग के कारण हैं।

लक्षण—रोगी को यदि चित्त लेटा दिया जाय, तो उसके पार्श्व बढ़ जाते हैं अर्थात् पार्श्वों का व्यास सामने के व्यास से अधिक होता है। रोगी के पार्श्व में हाथ रखकर दूसरे हाथ से दूसरे पार्श्व में टकोर दें, तो इस हाथ को उसका स्पन्दन अनुभव होता है, जिस प्रकार की मशकों में मालूम होती है। खड़े होने पर दबाव नीचे की ओर बढ़ जाता है।

उपाय—इस रोग का उपाय एकमात्र पानी निकालना है। इसके लिये चिकित्सक की सम्मत्ति लेनी चाहिये। साधारणतः निम्न उपाय लाभदायक हैं, विशेषतः यदि पानी की मात्रा अधिक नहीं हुई।

(१) **दूध**—रोगी को दूध विशेषरूप से देना चाहिये, पानी और सब खूराक बन्द करके दूध ही देना चाहिये। इसको गोमूत्र के साथ या त्रिफला काढ़े के साथ देना चाहिये। (२) भिलावा—नारसिंह-चूर्ण यदि दूध के साथ दिया जाय, तो उत्तम है। (३) दुग्धवटी इसमें उपयोगी है। ऊटनी का दूध इस रोग में उपयोगी है।

यूनानी ओषधि—(१) रेवतचीनी आधा दिरम, निशोथ २ दिरम, जरबिन्द गोल २ दोडा, गुग्गुल आधा दिरम, अनीसून १ डाग इ

सबको पीसकर दो गोली बनानी चाहिये। एक गोली खाकर अजवायन और अनीसून का काढ़ा पीना चाहिये।

(२) पानी सुखानेवाले लेप—मेथी जंगली, कबूतर की बीट, वतम का गोंद, पुरानी चर्बी में मिलाकर लेप करना चाहिये। (३) गौ का गोबर, बकरी की मींगनी, जौखार, अंगूर की लकड़ी की राख, गन्धक इनको सिरके में मिलाकर लेप करना चाहिये। (४) बुरओ अरमानी, सौसन की जड़ प्रत्येक ३ दिरम, बकरी की मींगनी ५० दिरम, कर्मकल्ले के बीज ७ दिरम इन सबको पीसकर सौंफ तथा कासनी के पानी में मिलाकर पेट पर लेप करना चाहिये। (५) सनाय ७ दिरम, काबुली हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक ५ दिरम, बनफसा, नीलोफर, कासनी के बीज, प्रत्येक ३ दिरम, बेदाना मुनक्का १०१ दिरम, आलुबुखारा, उन्नाव प्रत्येक दस दाना, लसौड़ा २० दिरम, अमलतास का गुदा, तुरञ्जबीन १० दिरम यह देना चाहिये। इस रोग में ऊँट और बकरी का दूध देना उत्तम है।

मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग

मस्तिष्क के साथ सम्बन्ध रखनेवाले रोगों का समावेश इस प्रकरण में किया गया है। लकवा, पक्षाघात, उरूस्तम्भ, धनुर्वात, आक्षेप वायु आदि स्पष्ट रूप में वायु से सम्बन्ध रखते हैं, इसीलिये आर्य-वैद्यक में इनको वात-व्याधि के अन्दर समाविष्ट किया गया है। साथ ही उन्माद, अपस्मार या शिरो-रोग आदि रोगों का भी वायु के साथ उसी प्रकार सम्बन्ध है, जिस प्रकार धनुर्वात आदि का है। परन्तु शास्त्र में इनको पृथक् गिना है। इसलिये जिन रोगों में वायु की प्रधानता मिली है, उन सबका (मुख्य २ रोगों को) रोगों का समावेश इस प्रकरण में कर दिया गया है।

सन्यास

इस रोग के आक्रमण तीन रूप में होते हैं। जैसे—

(१) रोगी भूमि पर गिर पड़ता है, उसकी ज्ञान और क्रिया-शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। ऐसा मालूम होता है कि रोगी गहरी नींद में सो रहा है। चेहरा तमतमा हुआ और श्वास परिश्रम से आता है, नाड़ी भरी हुई और धीमी होती है। पुतली विकम्पित अथवा एक फैली हुई और दूसरी साधारण होती है। मुँह एक पार्श्व में झुक जाता है। साथ में आक्षेप होते हैं। ये आक्षेप प्राय: शरीर के पार्श्व में रहते हैं। यदि आक्षेप सहसा प्रारम्भ हो जाय, तो वृक्क रोग की आशङ्का करनी चाहिये।

(२) इस रूप में रोग चेतावनी देकर आता है। चेतावनी के लक्षण निम्न हैं—भ्रम, बेचैनी, रुग्णावस्था, मूर्च्छा की प्रतीति, शिर-दर्द, एक प्रकार के दबाव का अनुभव, सर का खिंचा रहना या शिर में गरमी का अनुभव होना, मलबन्ध, गदला मूत्र, विचारों में स्थिरता वाक् शक्ति का ह्रास, चेहरे का लाल होना, नाक से रक्तस्राव, आँखों के सामने प्रकाश कम दिखाई देना एक वस्तु की दो वस्तु प्रतीत होना, कानों में आवाज़ की प्रतीति, भुजाओं में शिथिलता, स्मृति-शक्ति का लोप, तथा रोगी पाण्डु-वर्ण हो जाता है। इस रूप में जब आक्रमण होता है, उस समय के लक्षण प्राय: 'मूर्च्छा' से मिलते हैं; अर्थात् नाड़ी मन्द हो जाती है, आता हुआ श्वास, चेहरे का पीला हो जाना, शरीर के पृष्ठ का ठण्डा हो जाना और वमन का यत्न करना।

(३) इस रूप में सहसा एक पार्श्व का पक्षाघात हो जाता है, अथवा केवल एक रंग या हाथ ही का पक्षाघात होता है। इस अवस्था मे रोगी रुग्ण पार्श्व को हिला-डुला नहीं सकता, अथवा अङ्ग को कठिनाई से उठाता है। तीव्र रूप में मुँह एक पार्श्व में मुड़-सा जाता है, इससे रोगी जीभ को सीधा नहीं रख सकता। रोगी की वाक्-शक्ति विकृत हो जाती है, इसलिये वह अपने इशारों से बताता है। प्रतिभा भी नष्ट हो जाती है।

प्रथम दोनों रूपों में इस रोग का आक्रमण चेतावनी देकर होता है। यथा—धीमी शब्दयुक्त और आधाश्वास (रोगी जितना श्वास अन्दर लेता है, उसमें से कुछ श्वास बाह्य श्वास के साथ ही बाहर कर देता है)

मुँह से झागदार लार स्रवित होती है। जबाड़ी बन्द हो जाती है, रोगी किसी वस्तु को निगल नहीं सकता। यदि मुँह में पानी डालें, तो वह ओष्ठों के प्रान्त से बाहर हो जाता है। यदि मुँह के अन्दर भी चला जाय, तो मुश्किल से निगला जाता है। चेहरा लाल या पीला हो जाता है, आँखें मन्द, सुस्त और साफ होती हैं; पुतली संकुचित होती है, मुँह एक पार्श्व में मुड़ा होता है, अंग क्रिया-रहित एवं कठोर हो जाते हैं, परन्तु कभी-कभी आक्षेप भी होते हैं, अथवा आक्षेप एक पार्श्व में होते हैं। रोगी की भुजायें ठण्डी हो जाती हैं और शरीर पसीने से स्नान कर लेता है। या तो मलबन्ध रहता है अथवा बिना इच्छा के मल निकल जाता है, मूत्र भी स्वतन्त्र रूप से निकल आता है, अथवा जबतक मूत्राशय नहीं भरता, तबतक रुका रहता है, पीछे से बूँद-बूँद करके चूता रहता है। नाड़ी प्रथम मन्द होती है, पीछे तेज और भरी हुई होती है। यदि नाड़ी एक मिनट में ६० तक गिर जाय, अथवा ११० तक बढ़ जाय, तो दोनों अवस्थायें रोगी के लिये बुरी हैं। साधारण ताप-परिमाण में थोड़ा-सा भी अन्तर होना रोगी के लिये उत्तम लक्षण है, परन्तु यदि बहुत अन्तर आजाय, तो रोगी के लिये भयानक अवस्था है।

इस रोग के आक्रमण का समय २-३ घण्टे से लेकर कुछ दिनों तक रहता है। जितनी ही देर तक यह रह जाय, उतना ही भयानक है। यह रोग धीरे-धीरे शान्त हो जाता है, अथवा इसमें अपूर्ण स्वस्थता आती है। रोगी का मन स्वस्थ नहीं होता, अथवा शरीर का अङ्ग पैरेलाइज्ड हो जाता है। अथवा रोगी को चेतना नहीं आती। वह और गहरी नींद में आजाती है, अन्त में मृत्यु हो जाती है।

इस रोग के पूर्ववर्त्ती कारण—आयु ५ वर्ष से ऊपर, लिंग—पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा अधिक आक्रान्त होते हैं।

शरीर की रचना—मोटी ग्रीवा बड़ी छाती, कफ-प्रकृति का चेहरा, शरीर में दृढ़ता; वंशक्रमागत निर्बलता; अधिक खाना और अधिक पीना; शरीर के अन्दर गठिया-रोग की प्रकृति; लगातार मलबन्ध रहना; पाण्डु-रोग; यकृत के रोग, हृदय और वृक्क के रोग। इस रोग का तात्कालिक कारण मस्तिष्क के अन्दर रक्त का संचय होना, भारी बोझ

उठाना, कोई मानसिक आघात, तीव्र कामेच्छा, अति उष्णिमा आमाशय में अधिक खाना, तंग जुराबें अथवा ग्रीवा के चारोंओर तंग कपड़े पहनना; किसी प्रकार के स्राव का, जो एकत्रित होकर बहता है, सहसा रुक जाना; जैसे—अर्श में।

इस रोग का तात्कालिक आक्रमण साधारणतः रक्तस्राव के होने पर होता है। यह स्राव त्वचा के पृष्ठ पर हो, अथवा मस्तिष्क में हो, अथवा श्लेष्म-कलाओं में हो। इस रोग का कारण रक्तवाहिनियों के फटने का है। रक्तवाहिनियों में रक्त का चक्का बनने से भी रक्तवाहिनियाँ फट जाती हैं। दूसरा कारण मस्तिष्क में पानी भर जाना है।

इस रोग को निम्न रोगों से भेद करना चाहिये—

(१) **मूर्च्छा से**—मूर्च्छा प्रायः युवाओं में, वात-प्रकृतिवाली या हिस्टीरीकल स्त्रियों में होती है और सन्यास-रोग वृद्ध पुरुषों में। मूर्च्छा कुछ मिनटों में अच्छी हो जाती है, नाड़ी बहुत स्पष्ट होती है।

(२) **मद्यजन्य मूर्च्छा से**—रोगी का इतिवृत्त, रोगी के मुँह और नाक से मद्य की गन्ध का आना; मद्य-जन्य दौरे से पुतलियाँ समान होती हैं, जब कि सन्यास में एक पुतली संकुचित और दूसरी विकसित होती है; रोगी को शोर से या ऊँची आवाज़ से जगा सकते हैं; परन्तु सन्यास-रोग में नहीं। मद्यपान में गति दोनों पार्श्वों में होती है और सन्यास-रोग में एक पार्श्व में होता है।

(३) **अफीम के विष से**—रोगी का इतिवृत्ति, सन्यास का आक्रमण प्रायः भोजन के मध्य में अथवा ठीक भोजन के पीछे होता है; यदि अफीम भोजन में दी जाय, तो लक्षण २० से ३० मिनट के पीछे उत्पन्न होते हैं। अफीम में श्वास के अन्दर और मुख में गन्ध होती है। यदि रोगी को वमन आजाय, तो इसमें भी अफीम की गन्ध मिलती है। अफीम के रोगी को हिला-डुलाकर अथवा जोर से बोलकर या शिर पर पानी की धार गिराने से जगा सकते हैं, परन्तु फिर से वह बेहोश हो जाता है। सन्यास रोगी के पाँव में यदि चींटी भरी जाय, या पिन चुभोयें, तो वह पाँव को पीछे खींच लेता है। परन्तु अफीम के रोगी को चुभाने या गुदगुदाने का कुछ भी अनुभव नहीं होता। अफीम का विष प्रायः युवाओं में विशे-

षतः युवतियों में होता है, जब सन्यास वृद्ध पुरुषों में होता है। सन्यास-रोग प्रायः मोटे या पतले पुरुषों में होता है। सन्यास का आक्रमण सहसा हो जाता है और अफीम का आक्रमण धीरे-धीरे होता है।

(४) **अपस्मार से**—अपस्मार-रोग में श्वास अपूर्ण रहता है। सन्यास में इस प्रकार नहीं होता। अपस्मार-रोग के अन्दर अंगों में आक्षेप होता है। आँखें ऊपर को पलकों के अन्दर चली जाती हैं। इसलिये केवल आँखों का सफेद भाग दिखाई देता है। रोगी जब गिरता है, उसके मुँह से एक आह निकलती है। इस प्रकार का कोई भी लक्षण सन्यास-रोग में नहीं होता।

चिकित्सा—रोगी के गले के कपड़ों को ढीला कर देना चाहिये, सिर को थोड़ा-सा उठा देना चाहिये, रोगी को खूब हवा करनी चाहिये। माथे और शिर पर ठंडा पानी या बर्फ की थैली रखनी चाहिये। पिंडलियों पर और पाँव में राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। रोगी को लेटाना चाहिये। रोगी के पाँव को गरम पानी में १० मिनट तक रखना चाहिये। पीछे से इनमें गरम बोतलें रखनी चाहिये। पिण्डलियों पर राई का प्लास्टर १ घंटे तक लगातार रखना चाहिये। यदि राई का प्लास्टर न मिले, तो शुष्क कपड़े से या कांसे के बर्त्तन से अथवा सोंठ को पीसकर उससे मलना चाहिये। शिर और कन्धों को दक्षिण पार्श्व में मोड़ देना चाहिये। घर में पूर्ण शान्ति रखनी चाहिये। मकान में यदि सम्भव हो, तो अन्धेरा रखना चाहिये। रोगी के किनारे १ या दो से अधिक व्यक्ति नहीं रहने चाहिये। जबतक चिकित्सक की सम्मति न हो, तबतक रक्तस्राव बन्द नहीं करना चाहिये। यदि रोगी निगल सके, तो १ औन्स सोडियम सल्फेट को ४ औन्स पानी में घोलकर पिलाना चाहिये। जबतक रोगी निगल न सके, तबतक उसको किसी प्रकार की दवाई या अन्य वस्तु नहीं देना चाहिये। किसी भी अवस्था में उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये। सब अवस्थाओं में हींग की वस्ति शीघ्र से शीघ्र देना चाहिये। यदि रोगी ६-७ घन्टे तक बेहोश पड़ा रहे और मूत्र-त्याग न करे, तो शलाका-यन्त्र से मूत्र निकाल लेना चाहिये।

यदि मूर्च्छा का आक्रमण भोजन के पीछे हो, तो रोगी वमन का यत्न करेगा। इसके लिये उसके अन्दर पङ्ख से गुदगुदी करना चाहिये। यदि

रोगी वमन का यत्न न करे, तो किसी प्रकार की वामक औषधि नहीं देना चाहिये, क्योंकि वमन की क्रिया के बढ़ने से रक्त शिर की ओर जाकर उप-द्रव उत्पन्न करता है। जब आक्षेप बन्द हो जाय, तो मल को निकालने का यत्न करना चाहिये। रोगी को हल्का भोजन देना चाहिये। यदि रोगी की प्रकृति गठियावाली हो, तो शाक-भाजी और दूध देना चाहिये। उत्तेजक औषधियाँ या मानसिक श्रम से रोगी को बचाना चाहिये।

सन्यास से बचाने के लिये—रोगी को विरेचन देना चाहिये और पोटाशियम ब्रोमाइड की बड़ी मात्रा देनी चाहिये।

रोगी के अच्छे होने पर उसे प्रतिदिन अनीसून, सौंफ, गावज़बाँ प्रत्येक १॥ माशे और गुलकन्द ३५ माशे मिलाकर जुलाब देना चाहिये। रससिन्दूर, पिप्पली-चूर्ण और मधु को मिलाकर सेवन करना चाहिये।

मूर्च्छा

मूर्च्छा कई कारणों से उत्पन्न होती है। यह रक्त के अधिक मात्रा में निकलने से, डर से या अचानक किसी प्रकार का मानसिक धक्का लगने से होती है। कभी-कभी पेट पर मुक्का आदि मारने से, तीव्र दर्द के कारण अथवा स्त्रियों में मासिक धर्म के विकार से उत्पन्न होती है। आमा-शय के विकृत होने से अथवा हृदय के रोग के कारण भी इसका आक्रमण हो जाता है। अधिक गरमी से, भीड़वाले घर में बैठने से, दुर्गन्धि या क्रूर शब्दों के सुनने से भी इसका आक्रमण होता है। यह रोग प्रायः करके युवाओं में या युवतियों में होता है, जिनकी प्रकृति वातिक होती है। इस रोग का सबसे प्रथम लक्षण भ्रम है। रोगी का चेहरा पीला हो जाता है। तीव्र मूर्च्छा का रोगी पीला हो जाता है, बेचैन हो जाता है, नाड़ी धीमी हो जाती है, पुतली फैल जाती है। तेज़, अनियमित तथा कठिनाई से श्वास आता है। ओष्ठ पीले हो जाते हैं, भुजायें ठण्डी हो जाती हैं। रोगी मृतक की भाँति बन जाता है।

रोगी को आराम से लेटा देना चाहिये, शिर को शरीर से थोड़ा नीचे रखना चाहिये। रोगी को खुली वायु में रखना चाहिये। अंगों को मलना

चाहिये । मोर के पंखों के जलाकर उसका धुआँ नाक में डालना चाहिये । यह अमोनिया से भी अच्छी दवा है । यदि पंखों की भस्म न मिले, तो रोगी को स्मेलिंग साल्ट सुँघाना चाहिये । इसके लिये चूना और नौसादर मिलाकर सुँघाना चाहिये । यदि मूर्च्छा देर तक रहे, तो हृदय पर राई की पुल्टिस लगानी चाहिये । रोगी के लेटाकर रखना चाहिये । उसका सिर नीचे रखना चाहिये अथवा टाँगों के बीच में मोड़ देना चाहिये । इस प्रकार के रोगी को बाहर घुमाना चाहिये । शक्ति-वर्द्धक औषधि देना चाहिये । आँतों को साफ़ रखना चाहिये । यदि शिर को नीचा रखा जाय, जिससे शिर में रक्त जाय, तो शीघ्र आराम हो जाता है ।

साधारण उपाय—(१) सोंठ, गिलोय, कण्टकारी, कूठ, पिप्पली-मूल; इनका काढ़ा पिप्पली-चूर्ण के साथ पीना चाहिये । (२) ताम्र-भस्म आधी रत्ती, उशीर-मूल आधी रत्ती, नागकेसर आधी रत्ती; इनको शीतल जल के साथ देना चाहिये । (३) मधु के साथ त्रिफला-चूर्ण देना चाहिये । (४) एक मिट्टी के पात्र में राल को पिघलाकर इसमें केशर का चूर्ण मिलाकर चीनी के पात्र में डाल देना चाहिये । (१ पल राल में दो माशे केशर) इसका नाम ममायिका है । मात्रा—१ रत्ती से लेकर २ रत्ती तक । इसको घी और दूध के साथ देना चाहिये । (५) जंगल में पड़े हुये गौ के सूखे हुये गोबर को जलाकर भस्म कर लेना चाहिये । इसको तुल्य के साथ मिलाकर नास लेना चाहिये । (६) दुरालभा के काढ़े में घी मिलाकर देना चाहिये ।

यूनानी औषधि—(१) जहरमोहरा, खताई को केवड़े के अर्क में घिसकर चाट लेना चाहिये । फिर सेब का मुरब्बा चाँदी-सोने के वर्क में लपेटकर खाना चाहिये । फिर गावजबाँ (सेवती के फूल) कच्चा रेशम, प्रत्येक ७ माशे, चन्दन सफेद ३॥ माशे, बिल्लीलोटन के पत्ते ५॥ माशे; इनको बेंत के अर्क में भिगोकर पीना चाहिये । (२) वंशलोचन, गावजबाँ, कासनी के बीज प्रत्येक १०॥ माशे, आँवला, मुनक्का ५२॥ माशे, चन्दन सफेद, गुलाब के फूल, अनबिधे मोती, कहरुवा, प्रवाल-भस्म प्रत्येक १४ माशे, केशर १॥ माशे, चाँदी के वर्क २॥ माशे, शर्बत सेवकन्दी सबसे दुगुना मिलाकर माजून बना लेना चाहिये ।

शीत परिसेक, शीत पानी में स्नान करना, मणि और हारों का पहनना, शीत प्रलेप, पंखों की वायु, शीत पानी और केवड़े या गुलाब का पानी सब प्रकार की मूर्च्छाओं में उपयोगी है।

मृगी (अपस्मार)

कारण—यह रोग पैतृक है अथवा पेट में कृमि होने के कारण, दाँतों के निकलने के समय अथवा मानसिक या शारीरिक परिश्रम अधिक करने से या मस्तिष्क-रोग के कारण होता है। जिन व्यक्तियों में इस रोग की प्रवृत्ति होती है, उनमें निर्बलता, भय, कामेच्छा, कृमि, रक्त की अधिकता, अजीर्ण या किसी प्रकार के स्राव का सहसा बन्द हो जाना; जैसे—विसर्प में या स्त्रियों में मासिक-धर्म के सहसा बन्द होजाने से यह रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त दाँतों का सड़ना, शिश्न की अग्र त्वचा का लम्बा होना या हस्त-मैथुनादि दूषित आदतों के कारण भी यह रोग हो जाता है।

इस रोग का हिस्टीरिया से भेद करना चाहिये। रोगी की चेतनता पूर्णतः नष्ट हो जाती है। रोगी का चेहरा बिगड़ जाता है। एकान्त में एक गम्भीर चीख होकर दौरा आता है। रोगी को गहरी नींद आती है, जो मूर्च्छा में समाप्त होती है। हिस्टीरिया में इस प्रकार का कोई लक्षण नहीं होता।

रोगी को दौरा आने से पहले एक चक्कर दिखाई देता है। यह चक्कर अंगों में, सिर में दिखाई देता है। रोगी को भ्रम, बेचैनी, आँखों के सामने काली रेखायें, चक्कर दिखाई देता है। नाक से दुर्गन्ध आती है, कानों में आवाज सुनाई देती है, हाथ-पाँव में गुदगुदी या चींटी चलने का अनुभव होता है। यह दौरा शरीर के दोनों पार्श्वों में होता है।

अपस्मार का आक्रमण थोड़ी-सी चेतावनी से होता है। रोगी की चेतनता या क्रिया-शक्ति नष्ट हो जाती है, इसलिये यदि वह खड़ा रहता है, तो गिर जाता है अथवा बिना किसी चेतावनी ही के रोगी गिर जाता है। रोगी एक जोर की चीख से गिर जाता है। उसके हाथ और पाँव में आक्षेप हो जाते हैं। आँख और मुख की मांस-पेशियों में आकुञ्चन होते हैं। कई बार प्रथम आकुञ्चन से रोगी का शिर मुड़ जाता है। इससे यह प्रतीत होता

है कि रोगी अपने कन्धे की ओर कुछ देख रहा है। पुतलियाँ आँख की निचली पलकों के नीचे आजाती हैं, इसलिये आँख का श्वेत भाग नजर आजाता है। पुतली फैल जाती है और प्रकाश का सहन नहीं करती। चेहरा प्रथम पीला होता है, और फिर लाल हो जाता है। त्वचा शीत और चिकनी होती है। हाथ तने हुये होते हैं और भुजायें मुड़ जाती हैं। श्वास कठिन और शब्द-युक्त होता है, और ऐसा मालूम होता है कि श्वास रुक रहा है। जवाड़ी खिंची होती है, और मुँह से झाग आती है। यह झाग कभी-कभी रक्त-युक्त भी होती है। मल और मूत्र बिना किसी इच्छा के बाहर आजाते हैं। यदि आक्षेप २ या ५ मिनट तक लगातार जारी रहें, तो रोगी क्रिया-रहित, अचेतन तथा बेहोश हो जाता है।

चिकित्सा—यदि आक्रमण से पहले दौरे का पता चल जाय, तो राई का वमन देना चाहिये। इसके देने से दौरा रुक जाता है। यदि पेट भरा हुआ न हो, तो शीत पानी पिलाना चाहिये। आक्रमण के समय रोगी को पीठ के भार लेटाना चाहिये और शिर को थोड़ा-सा ऊँचा कर देना चाहिये। मुँह पर ठण्डे पानी का छींटा देना चाहिये। पंखे से हवा करना उत्तम है। शीत उपचार के सिवा और कोई उत्तम उपाय नहीं है। ग्रीवा और छाती को नङ्गा कर देना चाहिये, सब तङ्ग कपड़ों को ढीला कर देना चाहिये। रोगी को इस बात से बचाना चाहिये कि वह अपने अंगों को चोट न पहुँचा ले। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को पकड़ते हुये किसी प्रकार की चोट या आघात उसको न पहुँचे, साथ ही अपनी अंगुली को भी बचाना चाहिये कि उसके दाँतों में न आजाय। जीभ को काटने से बचाने के लिये मुँह में चम्मच या कार्क का टुकड़ा दे देना चाहिये। पीने के लिये कुछ भी नहीं देना चाहिये। दौरे के पीछे रोगी को सोने देना चाहिये। यदि रोगी को नींद न आये, तो गरम दूध या पोटाशियम ब्रोमाईड की मात्रा देनी चाहिये। सब प्रकार के मद्य से बचना चाहिये।

दौरा उतर जाने के पीछे व्यायाम तथा किसी पेशे में लग जाना चाहिये। सब प्रकार के मद्य, तम्बाकू, बुरी आदतों से बचना चाहिये। मलबन्ध, कृमि, सड़े हुये दाँतों की चिकित्सा करनी चाहिये। यदि यह रोग औरत में हो, तो उससे मासिक स्राव के विषय में पूछना चाहिये और यदि

विकार हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। पोटाशियम ब्रोमाईड को थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। शक्ति वर्द्धक औषधियें का भी देना उत्तम है। साधारणत: अपस्मार-रोग-ग्रस्त व्यक्ति को मलबन्ध नहीं होने देना चाहिये। उसके शिर को ठण्डा रखना चाहिये, पाँव गरम रखने चाहिये, मन में किसी प्रकार की चिन्ता या उद्विग्नता नहीं रहनी चाहिये, कभी भी तंग वस्त्र नहीं पहनने चाहिये। व्यसनों से बचना चाहिये। जो भोजन अजीर्ण उत्पन्न करें, उनसे बचना चाहिये।

दौरे के समय एमाईल नाईट्रेड या ईथर और क्लोरोफार्म को उचित मात्रा में थोड़ा-थोड़ा सुँघाना चाहिये। दौरे के बोच के समय यह दवाई देना चाहिये—पोटाशियम आयोडाईड १ ड्राम, पोटाशियम ब्रोमाईड १ ड्राम, अमोनियम ब्रोमाईड आधा ड्राम, अमोनिया कार्ब ४० ग्रेन, पानी ८ औन्स। भोजन से पूर्व चाय का एक छोटा चम्मच इस दवाई का पीना चाहिये, और सोते समय १ औन्स मात्रा पीनी चाहिये।

हिस्टीरिया

यह रोग प्राय: स्त्रियों में होता है, विशेषत: उनमें जो आराम को जिन्दगी व्यतीत करती हैं, और जिनको कोई चिन्ता आजाय। इस रोग का आक्रमण दो प्रकार से होता है, १—देर तक वात-नाड़ियों पर प्रभाव रहने से, २—आक्षेप या फिट का दौरा होने से। इनमें रोगी या तो वातिक लक्षणों से आक्रान्त होता है, अथवा उसे दौरा हो जाता है।

वातिक लक्षण मुख्यत:—अध्मान, हिचकी, हृदय की धड़कन, श्वास में काठिन्य, चेहरे का लाल होना, गले में रुकावट का प्रतीत होना, शरीर के अन्य भागों में दर्द होता है। रोगी का वाम पार्श्व, वाम चूचक, सन्धियाँ भी प्राय: आक्रान्त हो जाती हैं। रोगी को यह वहम हो जाता है कि उसके आंतों में, गर्भ में, या उसके गले में कुछ विकार है, जब कि वास्तव में कुछ भी नहीं होता। इसके अतिरिक्त वह मानता है कि उसकी सन्धियाँ स्थिर होगई हैं, उसका मूत्र रुक गया है, वह समझने लगता है कि मुझको कुछ निगला नहीं जा सकता। ज्योंही रोगी की त्वचा स्पर्श की जाती

है, वह चिल्लाता है, परन्तु वास्तव में दबाने से कोई दर्द बढ़ता नहीं। मुँह से या चेहरे से किसी प्रकार की दर्द का पता नहीं चलता। पलकें गिर जाती हैं। रोगी का ताप-परिमाण बढ़ता नहीं। इन रोगियों में हिस्टीरिया का इतिवृत्त रहता है। इस प्रकार के रोगी बहुत बहाने करते हैं। प्रायः करके इन रोगियों में मासिक धर्म की गड़बड़ी रहती है, या कृमि होते हैं।

कई बार इस रोग के दौरे में दूसरे आक्षेप होते हैं। जैसे—हिचकी लेना, जम्भाई आना, गले में किसी प्रकार की रुकावट का अनुभव होना है। इस रोग से ग्रस्त रोगी जब गिरता है, तो किसी आराम-वाले स्थान पर गिरता है, जिससे उसके शरीर को चोट न पहुँचे। रोगी प्रायः चिल्लाता है या हँसता है। आक्रमण के पीछे हल्के पीले रंग का पेशाब बहुत अधिक मात्रा में आता है।

चिकित्सा—रोगी के कपड़े ढीले करके सिरके, गुलाब-जल या कोलन वाटर के छींटे देने चाहिये, पङ्खों से खूब वायु करनी चाहिये। अमोनिया या परों का धुँवा, स्मेलिंग सौल्ट सुँघाना चाहिये। भुजाओं को मलना चाहिये। रोगी के सिर और छाती पर ठण्डे पानी का तरेड़ा देना चाहिये। कई बार यह रोग दूसरे रोगों को धोखा दे देता है। जिससे कई बार चिकित्सा से अवस्था और भयानक बन जाती है। आक्रमणों के अन्तर में उत्तम भोजन, शुद्ध वायु, व्यायाम, मानसिक श्रम, आंत्रों का ध्यान और शीत-स्नान करना चाहिये। मासिक धर्म का विकार हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

साधारण उपाय—१—मुलहठी के काढ़े के साथ घीकार का रस मिलाकर, उसमें घी मिलाकर खाना चाहिये। २—विषखपरा के स्वरस का नस्य लेने से अपस्मार रोग शान्त होजाता है। ४—खटमल के रक्त का नस्य लेना भी उत्तम है। ५—हरीतकी २, आमलकी १, विडंग १, जटामांसी १, हल्दी का पत्ता १, हींग आधा, कपूर चौथाई भाग इनका आधा आना परिमाण की गोली करके गरम जल के साथ खाना चाहिये। ६—तेल के साथ लहसुन, दूध के साथ शतावरी, मधु के साथ ब्राह्मी का चूर्ण खाना चाहिये। ७—प्रातःकाल मधु के साथ वच-चूर्ण खाना चाहिये।

८—कुम्हड़े के रस के साथ मुलहठी का चूर्ण खाना चाहिये। ९—जटामांसी का नस्य, या धूम-पान करने से या इसका चूर्ण खाने से विशेष लाभ होता है।

शास्त्रीय औषधि—वृहत चिन्तामणि, अश्वगन्धारिष्ट, योगेन्द्र-रस, छागलाद्य घृत, ब्राह्मी घृत, चैवस घृत।

यूनानी औषधि — १—गुलाब के फूल, मस्तगी, कुन्दरू के छोटे-छोटे टुकड़े, अगर,बालछड़ इनको गुलाब के अर्क में पीसकर लेप करना चाहिये। गर्म जवारिश खाने को देना चाहिये। २—दिमाग की शक्ति को बढ़ाने के लिये अम्बर और गुलाब सूँघना चाहिये। ३—पारवान भेद, हव्बुतगर, मरमकी, जराबन्द तवील इन चारों दवाओं को बराबर लेकर कूट-छानकर शहद में मिलाकर खाना चाहिये। ४—इन्द्रायण का गूदा, करेले का निचोड़ा हुआ पानी, कालीमिर्च, सोंठ जुन्दवेदस्तर इनमें से जो मिल जाय, उसका पानी नाक में छोड़ना चाहिये।

शिर-दर्द

शिर-दर्द — स्वतन्त्र रोग होने की अपेक्षा प्रायः करके यह दूसरे रोगों के लक्षण के रूप में होता है। शिर-दर्द प्रायः करके निम्न रूपों में मिलता है।

(१) अजीर्ण के कारण शिर-दर्द—इस दर्द के कारण, आमाशय, आँत्र या यकृत के विकार होते हैं। जिस समय आमाशय खराब होता है, उस समय जो शिर-दर्द होता है, वह मस्तिष्क में होता है, इसके साथ जी मचलाता है। दर्द का स्वभाव चुभने का होता है। अधिक खाने या पीनेवाले मजबूत व्यक्तियों में दर्द बिना जी मचलाने की शिकायत के हो जाता है। इस प्रकार का दर्द सोडावाटर से या साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया को पानी में पीने से आराम हो जाता है। यदि खाना खाने के पीछे दर्द उत्पन्न हो जाय, तो राई को पानी में घोलकर पिलाना चाहिये। वमन के होने से दर्द शान्त हो जाता है। यदि आँतों में या यकृत में विकार हो, तो शिर जकड़ा

हुआ प्रतीत होता है और दर्द का स्वभाव इस प्रकार का होता है, मानो कोई हथौड़े मार रहा है। इस अवस्था में विरेचन देना चाहिये।

(२) वात-जन्य शिर-दर्द--यह रोग उन वात-प्रकृतिवाले पुरुषों में होता है, जो सदा चिन्ताग्रस्त रहते हैं और वात-प्रकृतिवाली स्त्रियों में मासिक-धर्म के समय हो जाता है। जिन पुरुषों में यह रोग होता है, उनके चेहरे पीले, कमजोर और जल्दी से लाल या उत्तेजित हो जाते हैं। किसी भी मानसिक उत्तेजना या तरङ्ग आने पर एकदम से दर्द होने लगता है। यह दर्द एक ही स्थान पर रहता है, या शिर के एक पार्श्व में रहता है, अथवा सारे शिर में मीठा दर्द रहता है। कभी-कभी इस दर्द के कारण आँख की दृष्टि में भी अन्तर आजाता है। आँख के सामने एक छोटा-सा काला बिन्दु दिखाई देता है। फिर वह धीरे-धीरे बड़ा हो जाता है। वात-जन्य शूल, जो स्त्रियों में मासिक-धर्म के समय होती है, उसे साधारणत: मिग्रेन कहते हैं। जिन लड़कियों में हिस्टीरिया का दौरा प्राय: होता रहता है, उनमें यह रोग प्राय: करके होता है। दाँत के खराब होने से जबड़े में वात-जन्य दर्द होने लगता है। जिन व्यक्तियों में वात-जन्य दर्द होने लगता है, उनको प्राय: आक्रमण से पूर्व कुछ शीत लगता है और मन कुछ गिर जाता है। ये व्यक्ति जब प्रात: उठते हैं, तब उनको थोड़ा-सा शिर-दर्द का अनुभव होता है, परन्तु पीछे से शान्त हो जाता है। अथवा तीव्र दर्द के कारण इन व्यक्तियों की नींद खुलती है। ये व्यक्ति किसी भी प्रकार के भोजन को निगल नहीं सकते और अपने को रोगी अनुभव करते हैं। शिर में चुभने की-सी वेदना होती है, क्रियायें दर्द का द्योतन करती रहती हैं। पुतली संकुचित, चेहरा पीला और आँखों के नीचे काली रेखायें दिखाई देती हैं। शिर के अन्दर गरमी मालूम होती है और शीत-परिसेक से कुछ शान्त होती है। रोगी एकान्त में शान्त लेटना चाहता है। यदि रोगी को पूर्ण रूप से वमन हो जाय, तो दर्द शान्त हो जाता है।

वात-जन्य शिर-दर्द आमाशय, यकृत के विकार के बिना भी हो जाता है। इस स्थिति में वमन आदि होकर भी रोग शान्त नहीं होता। कइयों में दर्द इस कारण होता है कि वे व्यापार के आनन्द में फँसे होते हैं और असमय में भोजन कर लेते हैं। ये लोग किसी प्रकार का व्यायाम

नहीं करते और तम्बाकू का अधिक उपयोग करते हैं। वमन, नींद और अमोनिया इस रोग में थोड़े समय के लिये शान्ति दे देती हैं। वात-जन्य शिर-दर्द से बचने के लिये आदतों को बदलना चाहिये। चाय और कॉफी को छोड़कर दूध और सोडावाटर पीने के लिये देना चाहिये। तम्बाकू की आदत कम करनी चाहिये, स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिये। आर्त्तव के समय यदि शिर-दर्द हो, तो पोटाशियम ब्रोमाइड को देना चाहिये।

(३) **ट्राईफेशियल**—इस प्रकार के दर्द में शूल मस्तिष्क से उठकर तीन रेखाओं में बहती है। इनमें से एक रेखा (सुप्रा और बोटल) भ्रू के ऊपर की अस्थि का भेदन करके आती है, दूसरी रेखा गालों की अस्थियों से आती है। यह अस्थियाँ आँखों के नीचे हैं। इसकी तीसरी रेखा निचले हनु के मध्य भाग में दोनों ओर से आकर मिलती हैं। ऊपर की शाखा प्रायः करके आक्रान्त होती है। इसके कारण भ्रू पर बड़ा दर्द होता है। परन्तु कई बार यह दर्द आँख तक ही नियमित रहता है। परन्तु जब इस नर्व की मध्य शाखा आक्रान्त होती है, उस समय ऊर्ध्व हनु या दाँत आक्रान्त होता है, विशेषतः जब कि दाँत सड़े हुये हों। परन्तु जब इसकी तीसरी शाखा आक्रान्त होती है, उस समय दर्द अधो हनु में रहता है। उस समय दाँत या आधी जिह्वा आक्रान्त हो जाती है। जब तीनों शाखायें आक्रान्त होती हैं, उस समय आधा मुख या आधा शिर दर्द-युक्त रहता है। इस दर्द को सूर्य्या-वर्त्त भी कहते हैं, क्योंकि जब सूर्य उदय होता है और जबतक रहता है, तबतक दर्द रहता है। सूर्य की गरमी के साथ-साथ दर्द भी बढ़ता जाता है। जब इसके आक्रमण रुक-रुककर होते हैं, उस समय इसको "इन्टर मीटैन्ट हेडेक" कहते हैं।

भ्रुवों पर जो दर्द होता है, वह शीत-ज्वर के कारण भी हो जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि ज्वर का आक्रमण आज होता है और दर्द अगले दिन होता है। यह दर्द निश्चित समय पर होता है; जैसे— प्रतिदिन या एक दिन छोड़कर होता है। इस दर्द की रेखा 'सुप्रा और बीटल' नर्व के साथ-साथ जाती है और माथे में फैलती है। यदि भौं के मध्य में नाक के पार्श्व में एक तिहाई भाग पर अँगुली रक्खें, तो एक निम्न-प्रदेश दिखाई देता है। इसी निम्न-प्रदेश में यह नर्व गुज़रती है। दर्द बहुत तीव्र होता है। यहाँ

तक कि रोगी किसी काम को नहीं कर सकता। आँख और नाक से पानी निकलता है। साधारणतः यह दिनभर रहता है; परन्तु कभी-कभी दो-तीन घण्टे रहकर शान्त हो जाता है। अजीर्ण के कारण वात-प्रकृतिवालों में यह दर्द बढ़ जाता है। गरमी लगना, थकान, रात तक काम करना, शीत लगना, नमी, डिनर पार्टीज़, सहभोज, आराम न करना आदि कारण इस दर्द को बार-बार उत्पन्न कर देते हैं। जब स्त्री बार-बार गर्भ के धारण करने से, देर तक दूध पिलाने से, अति आर्त्तव-स्राव से कमज़ोर हो जाय, उस समय भी दर्द बार-बार हो जाता है।

चिकित्सा—भारतवर्ष में यह रोग प्रायः मलेरिया के कारण होता है। इसलिये ५-६ ग्रेन किनीन को प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। एक ग्रेन किनीन और तीन ग्रेन निशास्ता मिलाकर सूँघना चाहिये। कई बार विद्युत्-धारा से, दर्द के स्थान पर दबाने से, सिर के बाँधने से, अँधेरे और शान्त कमरे में सोने से भी आराम हो जाता है। हाथों को सिर के ऊपर रखने से भी आराम हो जाता है। इस रोग में शीर्षासन चमत्कारिक प्रभाव करता है अथवा रोगी की पाँयत पर्याप्त ऊँची कर देनी चाहिये। गरम चाय या गरम कॉफी अथवा अमोनिया कई बार रोगी को आराम देती है। दर्द के समय साधारणतः कोई दवा असर नहीं कर सकती। शङ्ख-प्रदेशों पर या माथे पर राई का प्लास्टर या जोंक लगवाना चाहिये। क्लोरल हाईड्रेट और कपूर को समान मात्रा में मिलाकर रुग्ण-प्रदेश पर मलना चाहिये। बर्फ या शीत उपचार से प्रायः आराम हो जाता है; परन्तु कभी-कभी गरम उपचार से भी दर्द घट जाता है। बार-बार आक्रमण होने का कारण मलेरिया के साथ निर्बलता, आमाशय तथा यकृत के रोगों का होना है। इसलिये प्रथम अजीर्ण की चिकित्सा करके, पीछे से किनीन देना चाहिये। बुरे दाँतों की चिकित्सा करनी चाहिये। स्त्री के विषय में मासिक-धर्म की अनियमता के प्रश्न पर भी विचार करना चाहिये।

यदि किनीन से लाभ न हो, तो लोह; यदि लोह से आराम न हो, तो आरसनिक प्रयोग करके देखना चाहिये। प्रत्येक औषधि को कम से कम १४ दिन तक बरतना चाहिये। एण्टीपाइरीन को १०-१५ ग्रेन की मात्रा में २ औंस पानी में घोलकर दिन में तीन बार देना चाहिये। परन्तु दो दिन से

अधिक नहीं देना चाहिये। क्लोरोफार्म को रुई में भिगोकर किसी स्थान पर रख देना चाहिये। ऊपर से घड़ी का शीशा ढक देना चाहिये, जिससे उड़े नहीं।

(४) **मस्तिष्क-जन्य शिर-दर्द**—इस दर्द के भिन्न-भिन्न रूप बड़ी उम्रवाले व्यक्तियों में मिलते हैं। साधारण बोलचाल में कहा जाता है कि मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह बढ़ गया है। साधारणतः यह एक चेतावनी का चिन्ह है, जो सन्यास, सनस्ट्रोक, मृगी, बवासीर या अन्य किसी स्राव के सहसा अवरोध को या स्त्रियों में ऋतु बन्द होने को बताता है। इस अवस्था में रोगी के शरीर के अन्दर रक्त की अधिकता रहती है। तीव्र अवस्थाओं में चुभनेवाला दर्द, लाल आँखें, तमतमाता हुआ चेहरा होता है। सिर ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसीने इसे बाँध रक्खा है। प्यास और कुछ ज्वर होता है।

यदि दर्द थोड़ा हो, तो विरेचन देना चाहिये। किसी प्रकार की उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये। भोजन सादा होना चाहिये। धूप से बचना चाहिये। यदि दर्द तीव्र हो, तो कुरसी पर शान्ति से बैठकर सिर पर परिसेक करना चाहिये, बालों को छोटा करा देना चाहिये। कनपटी या शङ्ख-प्रदेश पर ८-१० जलौकायें लगवाना चाहिये।

(५) **गाउटी हेडेक**—सन्धिवात या आमवातके कारण शिर-दर्द कपाल की मांस-पेशियों में होता है। दर्द शिर से पृथक् मालूम होता है। यदि माथे को घिसें, तो दर्द बढ़ जाता है। शरीर के अन्य भागों में भी दर्द होता है; मूत्र में लाल निक्षेप होते हैं। इस रोग की चिकित्सा के लिये क्षार तथा कॉलचिकम देना चाहिये।

सामान्य चिकित्सा—१—केसर और मिश्री इनको मिलाकर थोड़ा गरम करके लेप करने से शिर-दर्द में आराम होता है। २—आधाशीशी-रोग में—जिस पार्श्व में दर्द हो, उससे दूसरे पार्श्व की नाक में नौसादर या नमक या अपामार्ग का चूर्ण पानी में घोलकर एक या दो बूँदें कान, नाक या आँख में डालना चाहिये। ३—खरबूजे के बीजों को घी में भूनकर और शर्करा मिलाकर (हलुवे के रूप में) खाने से आराम होता है। ४—बर्फ या सोंठ, लौंग, कपूर और अर्जुन तथा श्वेत चन्दन इनको घिसकर लेप

करना चाहिये। ५—नौसादर को पानी में घोलकर उसके अन्दर वस्त्र भिगोकर शिर पर रखना चाहिये। ८—दो छोटी इलायची, १ बड़ी इलायची, १ माशा कपूर इनको लेप करना चाहिये।

९—'लेना दोस्त बदाम पोस्त फलके दाना चिरौंजी तिली,
राई औ पिस्ता खरी वजन में एक पैसा भरी।
छ: माशे पुनि लोहबान कुचिला पोनेंजु तोला सही,
घी मांही करि लूपरी मगज के दर्दी कु काफी वही॥'

१०—कड़ुवी तुम्बी के बीजों का नस्य लेने से आराम होता है। ११—चार रत्ती पिप्पली, १ रत्ती मैनफल और २ रत्ती अफीम इनके चूर्ण को घी में भूनकर सूँघने से सूर्य्यावर्त्त, अधशीशी नष्ट होती है। १२—तगर, नीलोफर, लालचन्दन और कूठ इनको पीसकर लेप करना चाहिये। १३—शारिवा, कूठ, नीलोफर कूठ इनको कांजी में पीसकर लेप करना चाहिये। १४—सूर्य्यावर्त्त रोग में गुड़ के साथ घी या मालपुये तथा हलुवा खाना चाहिये। १५—४ माशा शर्करा, ४ माशा केसर इनको ८ तोले घी में भूनकर, फिर घी में पीसकर कुछ गरम करके नस्य लेना चाहिये। १६—शर्करा-मिश्रित दूध या नारियल-जल का नस्य लेना चाहिये। १७—चूल्हे की लाल मिट्टी और मिर्च पूर्ण समान भाग में मिलाकर नस्य लेना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—षड्बिन्दु तैल, मयूराद्य-घृत, महालक्ष्मी-विलास, गोदन्ती-भस्म, दशमूल-तैल, भृङ्गराज-तैल।

यूनानी औषधि—(आधाशीशी में) १—नीलोफर, बनफसा, खितमी के पत्ते, काहू, गुलाब के फूल पानी में औटाकर दर्द के स्थान पर डालना चाहिये। २—दम्बुल अरववैन, केसर, सभग अरबी, अफीम इनको अण्डे की सफेदी में मिलाकर शंख-प्रदेशों पर लगाना चाहिये। ३—काहू के बीज, अजवायन खुरासानी कतीरा और अफीम इनको सिर्के में पीसकर लगाना चाहिये। ४—गुलरोगन शिर पर मलना चाहिये। यह सब शिर-दर्दों के लिये उत्तम है। ५—सब प्रकार के शिर-दर्दों में विरेचन देना उत्तम है। इसके

लिये—पीली हर्द, काबुली हर्द, आलूबुखारा, मुनक्का, उन्नाव, मुलहठी, इमली, बनफसा और लिसोड़ा इनका काढ़ा करके इसमें तुरञ्जबीन या शीरीखिस्त और अमलतास मिलाकर रोगी को पिलाना चाहिये। ६—एलुवा, तुर्बुद, अनीसून, रूमी मस्तगी, सकमूनिया, नमक हिन्दी इन सबको कूट-छानकर शहद में मिलाकर चने के बराबर गोलियाँ बनाकर खानी चाहिये, या यलुवा, तुर्बुद, गारीकून, रूमीमस्तगी, नमक हिन्दी इनको शहद के साथ गोली बनाकर (चने के बराबर) रात को देना चाहिये। ७—वात-जन्य शूल के लिये—विस्फायज, उस्तखद्दूस, मुनक्का, गावजबां, वोदरजवोया, आलूबुखारा, अफतीमून इनके काढ़े में तुरञ्जबीन मिलाकर देना चाहिये। इससे विरेचन होता है।

मदात्यय, पानात्यय

यह रोग शराबियों में पाया जाता है। इस रोग में और अन्य प्रलापों मे भेद होता है। यह रोग देर तक लगातार पान करने से अथवा एक ही बार में बड़ी मात्रा में शराब पीने से हो जाता है। शराबी लोग इस रोग से प्राय: आक्रान्त होते हैं, विशेषत: जब उनको किसी प्रकार का कोई दूसरा रोग हो जाय या चोट लग जाय। रोगी अपने चारोंओर भयानक वस्तुओं को (जैसे—साँप, चूहे या चितकबरे कुत्तों को) देखता है, विशेषत: रात्रि में। उसके हाथ काँपते हैं, उसकी आंखें चारोंओर फिरती है, उसकी पुतली निर्बल होती है, उसकी त्वचा भीनी। उसको न नींद आती है और न भूख रहती है। प्राय: रोगी शान्त होता है और बिना बल प्रयोग किये सुगमता से वश में आजाता है। परन्तु कई बार रोगी चाकू या उस्तरे को छिपाये होता है, उसका ध्यान रखना चाहिये। बुरे रोगियों में अचेतनता हो जाती है। मृत्यु से पूर्व श्वास भारी हो जाता है, अंगों में गुदगुदी होने लगती है, मल और मूत्र बिना इच्छा के बाहर होने लगते हैं। कभी-कभी आक्षेप भी हो जाते हैं।

मानसिक भ्रम इस रोग में विशेष होते हैं। रोगी चिल्लाता है कि उसके बिस्तर के नीचे साँप है। उसे कुर्सी से घड़ी की आवाज़ सुनाई देती

है, कभी अपने को बड़े भारी धन का स्वामी समझता है। कभी सिपाही मानता है, कभी कुछ समझता है।

इस रोग का भेद मस्तिष्क-शोथ से उत्पन्न प्रलाप से करना चाहिये। मस्तिष्क-शोथ के कारण उत्पन्न प्रलाप में ज्वर या धूप का इतिवृत्त होता है, जब कि मद्य-जन्य प्रलाप में मद्य का इतिवृत्त होता है। मद्य-जन्य प्रलाप में शिर-दर्द नहीं होता और प्रकाश भी असह्य नहीं होता। इस रोग में ज्वर के लक्षणों का अभाव होता है, त्वचा भीनी होती है। मस्तिष्क-जन्य प्रलाप में यह लक्षण नहीं होता। मद्य-जन्य प्रलाप में रोगी के श्वास के अन्दर मद्य की गन्ध होती है। यदि प्रलाप का निश्चय न हो, तो मद्य-जन्य प्रलाप ही की चिकित्सा करनी चाहिये।

चिकित्सा—सबसे प्रथम रोगी को नींद लाने का यत्न करना चाहिये। यदि चिकित्सक पास में हो, तो मॉर्फिया का इन्जैक्शन दिलवाना चाहिये। यदि यह सम्भव न हो,तो ३० ग्रेन पोटाशियम ब्रोमाइड और १० ग्रेन क्लोरल १ औंस में मिलाकर प्रत्येक ४ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। रोगी जब उठता है, तो अपने को स्वस्थ पाता है। कई अवस्थाओं में सबसे प्रथम विरेचन देने की आवश्यकता होती है। ये अवस्थायें निम्न हैं—जब चेहरा लाल, तमतमाता हुआ हो, जिह्वा बहुत मैली हो, श्वास में दुर्गन्धि हो, रोगी का इतिवृत्त यह बताता हो कि उसने खाने के साथ शराब पिया है, तो विरेचन देना उत्तम है। रोगी को जौ का पानी पर्याप्त मात्रा में पीने के लिये देना चाहिये।

चिरकालीन मद्यपान—इस रोग के लक्षण निम्न हैं—बेचैनी, नींद का न आना, मानसिक शक्तियों का ह्रास, आत्म-शक्ति की कमी, तमतमाता या लाल धब्बोंवाला चेहरा, आँखें लाल और पानीवाली, गालों और नथनों की रक्त-वाहिनियों में स्पन्दन प्रतीत होता है। हाथों में कम्पन, मैली जिह्वा, श्वासों में दुर्गन्धि, आँतों में अनियमता होती है। यदि मद्यपान की आदत को रोका न जाय, तो यकृत-विकार, आमाशय के चिरकालीन विकार, सनकी, मस्तिष्क का नर्म हो जाना तथा अपूर्ण या पूर्ण पक्षाघात हो जाता है।

इस रोग की चिकित्सा के लिये रोगी को मद्य से सर्वथा पृथक

रखना चाहिये। उसे खाने को दूध तथा अन्य भोजन पर्याप्त मात्रा में देना चाहिये। प्रातःकाल सोडावाटर और दूध मिलाकर देना उत्तम है। मद्य की हविस को मिटाने के लिये टिंचर कैप्सीसाई ३० बूँद या टिंचर जिंजरफोर्ट को २ औन्स पानी में मिलाकर देना चाहिये। सब अवस्थाओं में निम्न मिश्रण उपयोगी है—पोटाशियम ब्रोमाइड १ ड्राम, टिंचर कैप्सीसाई १॥ ड्राम स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक ६ ड्राम, कैम्फर वाटर ६ औंस, १ औंस मात्रा में दिन में तीन बार देनी चाहिये।

आर्य-औषधि—खजूर, किशमिश, फालसा, अनार के रस में शीतल माध्वीय मद्य मिलाना चाहिये। शीतल स्थान में रखना, शीत पानी का स्पर्श, कमल के पत्तों की छाया, मणि और मुक्ता का धारण, चन्दन और खस का लेप करना चाहिये। चव्य, संचल, हींग, सोंठ, अजवायन, इनका चूर्ण मद्य के साथ पीना चाहिये। मद्यपान करके यदि रोगी तत्क्षण घी के साथ मिलाकर खा ले, तो मद्य असर नहीं करता।

उन्माद

यह एक मानसिक रोग है, इस रोग में मन की स्थिति अव्यवस्थित हो जाती है। बुद्धि, स्मृति, प्रतिभा आदि सब नष्ट हो जाती है। इस रोग में रोगी का मन स्थिर हो जाता है।

प्रकार—उन्माद रोग के कई भेद हैं; परन्तु तीन भेद मुख्य हैं:—

(१) **चित्तभ्रम**—इस रोग में मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है, उसके मन में नाना प्रकार की लहरें उठती हैं, रोगी बकता है, तूफान करता है, रोगी को कुछ होश नहीं रहता, गाता है, रोता है, हँसता है, सोता नहीं, नाचता है, किसीको मारने दौड़ता है।

(२) उदासीनता—इस रोग में मनुष्य पागल नहीं हो जाता, परन्तु उसको चारोंओर निराशा ही दिखाई देती है। यहाँ तक कि वह अपने जीवन से भी निराश हो जाता है।

(३) बुद्धिनाश—इस रोग में मनुष्य की बुद्धि निर्बल हो जाती है। वह कभी शान्त बैठ नहीं सकता। बिना अर्थ के बोलता है, गाता है, चलता है, सभ्यता की मर्यादा का उल्लंघन करके सब कार्य करता है। स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है।

इसके अतिरिक्त चौर्योन्माद, धार्मिक उन्माद, कामोन्माद आदि अनेक प्रकार के उन्माद हैं।

कारण—उन्माद के बहुत-से कारण हैं—(१) पैतृक क्रमागत, (२) निकट सम्बन्धियों में या सगोत्र में विवाह, (३) अति दारू पीने से, (४) अफीम, तम्बाकू, भाँग, गाँजा आदि व्यसनों से, (५) अति स्त्री-सेवन या हाथ-रस से, (६) मानसिक क्षोभ से, चिन्ता से, धन से, धन आदि के नाश से; (७) सहसा खुशी से, (८) मस्तिष्क के अधिक श्रम से, उन्माद या चित्तभ्रम-रोग होता है।

उपाय—उन्माद रोगी की अवस्था बहुत दयनीय होती है। इस रोग में सबसे प्रथम विरेचन देना उत्तम है। विरेचन देने से रोगी के पेट को नर्म कर लेना चाहिये। पीछे से विरेचन देना चाहिये। आर्य-वैद्यक में इस रोग के लिये निम्न प्रयोग उत्तम गिने हैं—

(१) ब्राह्मी स्वरस ४ तोला, कूठ चूर्ण २ माशा, मधु ८ माशा (२) पुराने कुम्हड़े के बीज ८ माशा, कूठ चूर्ण २ माशा, मधु ८ माशा (३) श्वेत वच चूर्ण ८ माशा, कूठ २ माशा, मधु ८ माशा (४) शङ्खपुष्पी स्वरस ८ तोला, कूठ २ माशा, मधु ८ माशा ये चार योग उन्माद-नाशक हैं। (५) दस साल का घृत देना चाहिये। (६) घृत पुराना ४ आना, बहेड़े के बीजों का चूर्ण ६ आना, उत्कृष्ट मकरध्वज १ रत्ती, मधु ४ आना, मिश्री ८ आना इनको मिलाकर आधा सेर धारोष्ण दूध के साथ देना चाहिये। (७) ब्राह्मी स्वरस आधी छटाँक, कच्ची हल्दी का रस १ छटाँक, शतावरी-रस १ छटाँक, चीनी २ तोला, मक्खन २ तोला इनको मिलाकर ब्रह्मरन्ध्र पर मलना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—चतुर्मुख, योगेन्द्र रस, वात-चिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्मुख, त्रैलोक्य चिन्तामणि, रसराज, अश्वगन्धा घृत, माष तैल, नारायण तैल।

स्मरण-शक्ति बढ़ाने के उपाय—(१) प्रातःकाल शतावरी और ब्राह्मी शाक कूटकर प्रत्येक आधी छटाँक लेकर धारोष्ण दूध के साथ पीना चाहिये (२) कच्ची सिम्बल की मूल का चूर्ण ५, तोला आमलकी चूर्ण ४ तोला, मुलहठी चूर्ण ३ तोला, शठी चूर्ण २ तोला, वंशलोचन और जटामांसी आधा-आधा भाग इनके चूर्ण को ६ आना मात्रा में मक्खन, मधु, शर्करा दूध

के साथ मिलाकर खाना चाहिये। (३) बादाम, पिस्ता, अखरोट खाना चाहिये ।

यूनानी औषधि—(१) हरड़ काबुली, उस्तखद्दूस, मुनक्का, प्रत्येक ३५ माशे, शाहतरा, बिसफाईज, सनाय प्रत्येक साढ़े सत्रह माशे, इन दवाइयों को कूटकर डेढ़ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब आध सेर पानी बच जाय, तब नीचे उतारकर ३५ माशे अफतीमून डालकर छोड़ दे। जब ठंडा होजाय, तब छानकर उसमें साढ़े तीन माशे गरीकून और ७ माशे एलुवा महीन पीसकर मिलाना चाहिये। इसमें शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। (२) पीली हरड़ का छिलका, इमली, पित्तपापड़ा प्रत्येक ६५ माशे, आलू २० दाने, लसोड़ा ५० दाने, गुलाब के फूल, कासनी के बीज प्रत्येक साढ़े सत्रह माशे, कूटकर डेढ़ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब आधा सेर रह जाय, तब इसमें ३५ माशे अफतीमून मिलाकर छोड़ देना चाहिये। इसमें १ डांग (चार जौ के बराबर) सकमूनियाँ, निशोथ साढ़े तीन माशे, तुरञ्जबीन ७० माशे और शीरखिश्त मिलाकर पीना चाहिये। इन दोनों औषधियों से विरेचन होता है। (३) दिवाल मुश्क, नरकचूर, दरूनज। अकरबी, अनविधी मोती, कहरवा, मूँगे की जड़, प्रत्येक ३५ माशे, रेशम खाम, बहमन सफेद, बहमन लाल, बालछड़, छोटी इलायची के दाने प्रत्येक साढ़े सत्रह माशे, छरीला, पीपल, सोंठ, प्रत्येक १४ माशे, कस्तूरी ७ माशे, इनको कूटछानकर शहद में मिलाना चाहिये। (४) मुफर्रा नामी नौशदारू—गुलाब के फूल साढ़े उन्नीस माशे, नागरमोथा साढ़े सत्रह माशे, लौंग, रूमीमस्तगी बालछड़, प्रत्येक साढ़े दस माशे, सिरफा, जरनब (ब्राह्मी) केसर प्रत्येक ७; माशे इलायची के दाने, बिबासा, जायफल प्रत्येक साढ़े तीन माशे, आमला आधा सेर इनको साढ़े तीन सेर पानी मे औटाना चाहिये, जब डेढ़ सेर रह जाय, तब मलकर छान लेना चाहिये। इसमें शहद १ पाव मिलाकर औटाना चाहिये, जब गाढ़ा हो जाय, तब और दवायें मिलाकर इनमें थोड़-सा हींग मिला देना चाहिये। इस दवाई को दो महीने पीछे खाना चाहिये।

धनुर्वात (अपतानक)

इस रोग के अन्दर गला और जबाड़ी सख्त बन जाते हैं। रोगी मुँह को खोल भी नहीं सकता। यह अवस्था शीत या आमवात के कारण हो जाती है। इस रोग के अन्दर रोगी को निकालने में कठिनाई होती है, नाक और मुँह से बहुत पानी निकलता है। रोगी की कमर धनुष की भाँति झुक जाती है, अर्थात यदि रोगी पीठ के भार लेटना चाहे, तो उसकी पीठ ज़मीन से उठी रहती है, पाँव की एड़ी और स्कन्ध ही के ऊपर रोगी तुला हुआ रहता है। कई बार हाथ और प्रकोष्ठ आक्षेपों से बच जाते हैं। रोगी में आक्षेप इतने ज़ोर से होते हैं कि रोगी तनता रह जाता है। मांसपेशियें में कठोरता रहती है। जबतक रोगी सोता नहीं, तबतक पेशियें में कठोरता बनी रहती है। रोगी को श्वास कठिनता से आता है, त्वचा गरम होती है, पसीना आजाता है। रोगी की मृत्यु श्वास के घुटने से होती है। इसका कारण श्वास-प्रणाली के अग्र भाग या छाती के मांसपेशियें का स्थिर हो जाना है।

इस रोग का कारण एक कृमि है, जो घुड़साल में या गोबर में अथवा गन्दे स्थानों में रहता है। किसी प्रकार के छोटे व्रण से यह कृमि शरीर के अन्दर पहुँच जाता है।

इस रोग की चिकित्सा के लिये व्रण को तेज कार्बोलिक एसिड लगाकर बोरिक एसिड लगाना चाहिये। इस रोग के लिये 'एन्टीटैटनिक सीरम' का इंजेक्शन देना उत्तम है। यदि यह न मिले, तो कार्बोलिक लोशन का इन्जैक्शन देना चाहिये। दर्द को कम करने के लिये क्लोरल या क्लोरोडीन देनी चाहिये। मेरुदण्ड पर बर्फ की थैली रखनी चाहिये। यदि इससे आराम न मिले, तो ५ बूँद क्लोराफार्म, २० बूँद टिंचर ओपयाई, चीनी १ औन्स प्रत्येक ४ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

बच्चों में धनुर्वात—कई बार बच्चों में प्रसव के ३ से १० दिन के पीछे हनुस्तम्भ हो जाता है। बेचैनी, नींद का टूटना, जम्भाई लेना आदि इसके लक्षण होते हैं। इस रोग का कारण नाभिनाल से किसी संक्रमण का शरीर में पहुँच जाना है। बच्चे को माता का दूध देना चाहिये, जबाड़ी को चम्मच की डंडी से सावधानीपूर्वक खोलना चाहिये, दूध का एक तिहाई भाग चूर्णोदक से मिलाकर देना चाहिये। रोगी को अनीमा दूध और चूर्णोदक

से मिलाकर दिन में तीन बार देना चाहिये। दो बार गरम पानी का स्नान देना चाहिये।

यूनानी औषधि—धनुर्वात-रोग में बनफ्सा, खितमी, जौ का आटा, ईसबगोल का लुवाब और कद्दू का तेल मिलाकर लेप करना चाहिये अथवा जुन्दबेदस्तर, फरफयून और अकरकरा इनको चमेली के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये।

आँचकी

मूर्च्छा, अपस्मार, हिस्टीरिया, धनुर्वात आदि रोगों में यह लक्षण विशेषत: पाया जाता है। इस रोग का कारण वात-संस्थान पर विक्षोभ होना है। इस विक्षोभ के कई कारण हैं; जैसे—धनुर्वात रोग का कृमि, अन्य किसी प्रकार का विष, स्त्रियों में गर्भाशय के विक्षोभ से, वृक्क के रोगों से। बच्चों में—दाँत निकलने के कारण, कृमि-रोग से, मलबन्ध से यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण--जब ज़ोर से न हो, तो बच्चे का अँगूठा पीछे की ओर मुड़ जाता है, अँगुलियाँ तन जाती हैं और पाँव की अँगुलियाँ नीचे को खिंच जाती हैं। मुँह एक पार्श्व में झुक जाता है। बच्चे में जब ये लक्षण दिखाई दें, उस समय उसके भोजन, दाँत और।आँतों का ध्यान रखना चाहिये।

कई बार बच्चा रात को अचानक चीख मारकर उठ जाता है। वह डरता है, चिल्लाता है। प्राय: इस अवस्था में वह बेहोश होता है। वह यह नहीं जानता कि उसके चारोंओर क्या हो रहा है। उसे किसी पशु या और किसी वस्तु से भय प्रतीत होता है। इस रोग का मुख्य कारण नाक में किसी प्रकार की रुकावट या टौंसिल का बड़ा होना है। कई बार स्वप्न या अजीर्ण से, मूत्र के कारण बिस्तर के गीले होने से भी बच्चा चिल्ला उठता है। दाँत निकलने से, अजीर्ण के कारण, कृमि के कारण वात-संस्थान पर प्रभाव होता है।

चिकित्सा--गले के चारोंओर के वस्त्र ढीले कर देने चाहियें, खूब हवा करनी चाहिये, चेहरे पर ठण्डे पानी के छींटे देने चाहियें, गुलाब के अर्क से भीगे पंखे से हवा करनी चाहिये, पृष्ठ-वंश पर मालिश करना चाहिये, गरम पानी में कपड़े को निचोड़कर गले पर लगाना चाहिये। यदि भोजन

करने के पीछे दौरा आये, तो वमन कराना चाहिये। इसके लिये बच्चे के गले में अँगुली डालनी चाहिये। यदि मसूड़े कठोर हों, तो उनको चीर देना चाहिये। इस प्रकार से वमन न हो, तो वाइनम एपिकॉक देकर वमन कराना चाहिये। प्रायः इस प्रकार से रोग शान्त हो जाता है। यदि न हो, तो रोगी को गरम पानी में स्नान कराना चाहिये अथवा कम से कम उसके पाँव को राईवाले गरम पानी में रखना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी करना होता है कि बच्चे को शांत और गरम पानी में बारबार क्रमशः ५-१० मिनट तक स्नान देते हैं, इससे वह स्वस्थ हो जाता है।

'पोटाशियम ब्रोमाइड' का देना उत्तम है। कृमि तथा दाँतों की एवं मलबन्ध की चिकित्सा करनी चाहिये। वमन के पीछे रोगी को ब्रांडी और पानी देना चाहिये। इसके पीछे आँतों को खोलने का यत्न करना चाहिये। इसके लिये कैस्टर ऑयल या सोडा सल्फास उचित मात्रा में देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो ग्लैसरीन की बत्ती या पिचकारी से एनिमा देना चाहिये।

यदि बच्चा निर्बल हो और उसको अतिसार हो, तो सैलोल २ ग्रेन को शहद में मिलाकर देना चाहिये। ५ ग्रेन पल्व सिननमाई को ६० बूँद ब्रांडी के साथ १ औंस पानी या दूध में मिलाकर पीना चाहिये।

यूनानी उपाय—१—जैतून के तेल में हींग, अकरकरा और जुन्द-बेदस्तर मिलाकर मलना चाहिये। २—ईसबगोल का लुवाब अण्डे की सफेदी में मिलाकर मलना भी उत्तम है।

अर्दित

कारण—उपदंश की तीसरी अवस्था में जबकि मस्तिष्क आक्रान्त हो जाता है, उस समय यह रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त हँसने से, जम्भाई से या अखरोट, बादाम आदि कठिन वस्तुओं के तोड़ने से वायु कुपित होकर मुँह को एक पार्श्व में मोड़ देती है।

लक्षण—इस रोग के लक्षण स्पष्ट होते हैं। मुँह एक पार्श्व में मुड़ा हुआ होता है; रोगी यदि पानी का कुल्ला करना चाहे, तो वह कुल्ला नहीं कर सकता, मुँह से फूँक या सीटी नहीं मार सकता, हँसने में उसे कठिनता होती है।

इस रोग में फेशियल या त्रिशिरा नाड़ी में विकार आजाता है। उसीसे ये लक्षण उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा—उपदंश रोग हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। एरण्ड के तैल का जुलाब देना चाहिये। माष तैल के गरारे करने चाहिये, माष तैल मलना चाहिये। शिर के ऊपर ठण्डी हवा लगने नहीं देना चाहिये। उड़द के आटे का हलवा या बड़े खाना चाहिये। दस्त साफ रखना चाहिये। पोस्त के डोडों का सेक करना चाहिये।

लकवा

मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड की वात-नाड़ियों पर रक्त का या अन्य किसी प्रकार का दबाव पड़ने से, अथवा किसी विष के कारण उनकी शक्तियों के नष्ट होने से यह रोग होता है। इस रोग के अन्दर संज्ञावहा और चेष्टा-वहा नाड़ियों में क्षति आजाती है। इसमें क्षति आने से ये नाड़ियाँ जिस स्थान का पोषण करती हैं, उसके अन्दर भी क्षति आजाती है। इस क्षति का नाम ही पक्षाघात है, यह क्षति दो प्रकार से होती है।

१—शरीर की मध्य रेखा के एक पार्श्व में पक्षाघात हो जाता है, अर्थात् दक्षिण या वाम पार्श्व में शिर से लेकर पाँव तक का भाग 'पैरेलाईज्ड' हो जाता है। इसका नाम 'हमेप्लीजिया' है।

२—दूसरा रूप यह है कि कटि से निचला भाग अर्थात् दोनों टांगें 'पेरेलाइज्ड' हो जाती हैं, इसका नाम उरुस्तम्भ है।

कारण—इस रोग के बहुत-से कारण हैं, परन्तु मुख्य कारण आघात या उपदंश है। मस्तिष्क पर चोट लगने से वात-नाड़ियों की क्षति हो जाती है। इस क्षति के परिणाम-स्वरूप अंग में पक्षाघात रोग उत्पन्न हो जाता है। मद्यपान के कारण भी पक्षाघात उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त वृद्धा अवस्था में, हिस्टीरीया में, आक्षेप में भी पक्षाघात रोग हो जाता है।

लक्षण—मस्तिष्क में रक्तस्राव होने से पक्षाघात रोग सहसा उत्पन्न होता है, परन्तु आघात आदि के कारण अथवा मस्तिष्क या मेरुदण्ड की चोट से जो पक्षाघात होता है, वह शनैः शनैः होता है। रोगी सीधा होकर चल नहीं सकता। उसकी टांगें लड़खड़ाती हैं, वह गिरता-पड़ता हुआ चलता है।

रोगी को सबसे प्रथम जो अनुभव होता है, वह यह कि उसकी स्पर्श-शक्ति निर्बल हो रही है। इसकी परीक्षा के लिये यदि रोगी की आँखें बन्द करवाकर उसके रुग्ण अंग पर शनैः-शनैः पर या काग़ज़ फेरें, तो रोगी को उसके स्पर्श तक का पता नहीं होता। जबकि इसी दूसरे पार्श्व के अंग में स्पर्श-ज्ञान भलीभांति होता है। यहाँ तक कि यदि पिन या सुई भी चुभोई जाय, तो भी रोगी को उसका पता नहीं चलता। कई बार इस रोग का कारण रोगी के मूत्राशय का भी पक्षाघात हो जाता है, इससे रोगी स्वयं मूत्र-प्रवाहण नहीं कर सकता।

उपाय—प्रायः यह रोग असाध्य ही है। यदि रोग का कारण उपदंश है, और रक्त में उपदंश के कृमि मिलते हैं, तो उचित चिकित्सा से आराम होने की कुछ आशा है।

साधारणतः सब प्रकार के पक्षाघातों में वातहर क्रिया करनी चाहिये। वायु नष्ट करने के लिये वस्ति-चिकित्सा सबसे उत्तम है। वह भी घृत या तैल से संस्कृत वस्ति। आर्य-वैद्यक में इस कार्य के लिये उत्तम-उत्तम तैल लिखे हैं। जैसे रास्ना तैल, नारायण तैल, प्रसारणी तैल। इन तैलों को खाने में, अभ्यंग वस्ति में प्रयोग करनी चाहिये। तैल के प्रयोग से कड़ा और सूखा बाँस भी झुकाया जा सकता है, फिर इस मानव-शरीर के अंगों की क्या हस्ती? परन्तु साहस और धैर्य की आवश्यकता है।

साधारण उपाय—(१) रसोन कल्क को तिल के तैल के साथ खाना चाहिये। (२) बला और पंचमूल के साथ दूध पकाकर पीना चाहिये। (३) बला, कौंच, माष, गन्धतृण, एरण्ड मूल इनका काढ़ा पीना चाहिये। (४) सैंधवादि तैल मलना चाहिये। (५) कौंच के बीजों का चूर्ण ६ आना, लहसुन रस १ तोला, पुराना घृत ४ आना, मधु १० आना मिलाकर पान करना चाहिये। (६) अश्वगन्धा ४ आना, कौंच-बीज ४ आना, शालपर्णीमूल ४ चीतामूल ४ आना, बलामूल ४, एरण्डमूल ४, अनन्तमूल ४ आना, कुचला ½ आना, पानी आध सेर, शेष ¼ पाव, इस पाचन को सेवन करना चाहिये। (७) भिलावा, पिप्पलीमूल इनको पीसकर मधु में मिलाकर चाटना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—प्रसारणी तैल, माष तैल, बला तैल, महालक्ष्मी

विलास, वात चिन्तामणि, रसराज, छागलाद्य घृत, अश्वगन्धारिष्ठ, सात्वण स्वेद, योगराज गुग्गुल ।

यूनानी औषधि—दोना मरुवा, स-आतरा, अकरकरा, राई, किबु की जड़ की छाल, खट्टा अनारदाना, सोंठ इन दवाइयों को कूटकर काढ़ा करना चाहिये । फिर जंगली प्याज की बनी हुई शिकञ्जबीन में मिलाकर कुल्ला करवाना चाहिये । यह दवाई अर्दित रोग के लिये उत्तम है ।

कुचले का उपयोग इस रोग में विशेष किया जाता है । विष-तिन्दु कबटी इस रोग में प्राय: बरती जाती है । इसका तैल भी मलने के काम आता है ।

प्रकरण तीसरा

श्वास-संस्थान के रोग

गले में और छाती में श्वासनली, फेफड़े और हृदय आदि आवश्यक प्राणावयव आते हैं। ये सब मार्ग-स्थान हैं। इनका आपस में सम्बन्ध है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया और रक्त-संचार दोनों क्रियायें पृथक्-पृथक् हैं। श्वास-प्रश्वास के साथ फेफड़ों का सम्बन्ध है, और रक्त-संचार के साथ हृदय का। इसलिये इस प्रकरण में प्रतिश्याय, शोथ, हिचकी, दमा, कास, उर:क्षत आदि रोगों का वर्णन किया गया है।

हिचकी

कठिन, रूक्ष और मलबन्ध करनेवाले पदार्थों के खाने से, शीत पानी, शीत भोजन, धुवाँ से, अति वायु से, उदर-विकार से इस रोग की उत्पत्ति होती है। इस रोग में अचानक छोटा-सा आक्षेप होता है, जिसमें रोग श्वास को अन्दर लेता है। इसमें एक विशेष प्रकार का शब्द सुनाई देता है। यह शब्द लैरिंक्स से या श्वास-प्रणाली के ऊर्ध्व भाग से उत्पन्न होता है, ग्लोरिस एकदम बन्द हो जाता है, पीछे से बहि:श्वास होता है। इस प्रकार से ये आक्षेप कुछ-कुछ समय बाद चलते रहते हैं। यह रोग या तो कुछ समय में बन्द हो जाता है या कई घंटों तक स्थिर रहता है। यह रोग प्राय: अजीर्ण से उत्पन्न होता है या भोजन को जल्दी-जल्दी निगलने से; परन्तु कई बार यह यकृत और आमाशय के विकारों में लक्षण रूप से उपस्थित होता है। अथवा कॉलरा के पीछे या किसी भयानक बीमारी के लक्षण रूप में हो जाता है। यदि इस रोग का कारण अजीर्ण हो, तो थोड़ा-सा पानी पीने से या सोडाबाई कार्ब को जिंजर के साथ लेने से आराम हो जाता है। कई बार अजीर्ण में वमन भी कराया जाता है। इसके लिये राई से वमन देना चाहिये। स्प्रिट कैम्फर, क्लोरोडीन, सैलवो लेटाइल भी उत्तम औषधि है। बर्फ के टुकड़े का चूसना भी उत्तम है। गहरा अन्त:-श्वास भरकर उसको छाती के अन्दर रोकने से भी आराम हो जाता है, अथवा

कौड़ी-प्रदेश पर गद्दी रखकर पेट के चारोंओर पट्टी कसकर बाँध देनी चाहिये। अथवा गले के पास—कॉलर बोन (अक्षकास्थि) के गर्त में दबाव देने से भी आराम हो जाता है।

साधारण उपाय—१—मोर के पखों की भस्म तथा पिप्पली-चूर्ण मधु में चाटना चाहिये। २—मुलहठी का चूर्ण मधु में चाटना चाहिये। ३—लहसुन घी में खाना चाहिये। ४—भारंगी और सोंठ के चूर्ण को गरम पानी से पीना चाहिये। ५—हींग और उड़द इनका धुआँ या लौंग का धुआँ मुँह में भरकर नाक से निकालना चाहिये। ६—मधु के चाटने से रोग शान्त हो जाता है। ७—शर्करा और मिर्च-चूर्ण मधु के साथ चाटना चाहिये। ८—यवक्षार और मिर्च-चूर्ण पानी के साथ पान करना चाहिये। ९—शुद्ध ताम्र-भस्म को मधु के साथ खाना चाहिये॥ मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—शहद। १०—हींग और काली मिर्च घी मे पीसकर इनको काग़ज़ पर लगाकर चुरुट की भाँति पीना चाहिये। ११—छः आने भर कुटकी, ४ आने भर बहेड़ा और ६ आने भर हल्दी का पत्ता इनको रगड़कर पीना चाहिये। १२—नाभि-प्रदेश पर बर्फ या कासी के पात्र मे शीतल जल भरकर रखने से हिचकी रोग शान्त होता है।

शास्त्रीय औषधि—पिप्पल्यादि तैल, शङ्खपर्पटी, बज्रक्षार, श्वासारि चूर्ण।

ज़ुकाम

सर्दी या प्रतिश्याय रोग दो रूप में मिलता है—१—साधारण सर्दी के रूप में, २—इन्फ्लुयञ्जा-रोग के रूप में। साधारण प्रतिश्याय के लक्षण—नाक से पानी का आना, छींकों का आना, सर्दी या कँपकँपी का अनुभव, पीठ या कमर मे दर्द का अनुभव, गले मे सूजन और शिर तथा आँखों में भारीपन प्रतीत होता है। नाक के बन्द हो जाने से या स्राव के गाढ़ा हो जाने से माथे में दर्द रहता है। श्वास लेने मे कुछ ज़ोर लगाना पड़ता है। थोड़ा-सा ज्वर भी रहता है। रोगी की रुचि बदल जाती है। प्रायः करके ओष्ठ पर छोटी-छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं। यदि उचित ध्यान रक्खा जाय, तो तीसरे दिन के पीछे रोग घटने लगता है। इस रोग के तीव्र आक्रमण में लक्षण प्रायः वैसे ही होते है, जैसे- इन्फ्लुयञ्जा में होता

है । .ज़ुकाम का होना एक साधारण शिकायत है । इसका कारण नासिका की श्लेष्म-कला की शोथ है, जिस शोथ का कारण सर्दी है ।

सर्दी या तो ऋतु के परिवर्त्तन से होती है, अथवा वायु-परिवर्त्तन से भी यह रोग हो जाता है । इसके अतिरिक्त शीत वायु, शीत पानी, बर्फ, नया अन्न, ज़मीन पर सोने इत्यादि कारणों से होती है । इसके अतिरिक्त कफवर्द्धक वस्तुओं के सेवन करने से, दिन में सोने से, श्रम न करने से कफ कुपित हो जाता है ।

उपाय—(१) सर्दी से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह ऋतु-परिवर्त्तन का ध्यान रक्खे, और यथासम्भव बाहर खुली वायु में रहे । लोगों में यह भ्रम है कि ठंडे पानी में स्नान करने से या शीत वायु में बैठने से यह रोग हो जाता है । वास्तव में यह रोग उन व्यक्तियों ही में होता है, जो सहसा परिवर्त्तन को बर्दाश्त नहीं कर सकते । जिस समय शरीर में गरमी आई हुई हो, उस समय वस्त्र उतार देने से बर्फ के पानी से या बिजली के पंखे के नीचे बैठने से अथवा इस प्रकार के अन्य उपाय से, जिससे शरीर सहसा सर्दी अनुभव करने लगे या पसीना सूख जाय, यह रोग हो जाता है । इस अवस्था में सर्दी से अपने शरीर को बचाना चाहिये । इस रोग की साधारण चिकित्सा, हल्का भोजन, उपवास, साधारण ताप-परिमाण पर विश्राम करना चाहिये । क्युनीन और अमोनिया इस रोग की उत्तम औषधि है । इनको पृथक्-पृथक् या टिंचर क्युनीन अमोनिया के रूप में देना चाहिये । रोगी को तीव्र अवस्था में गरम पानी के अन्दर स्नान करना चाहिये । राई को गरम पानी में पाँवों को आधे घंटे तक रखना चाहिये । डोवर्स पाउडर १० ग्रेन की मात्रा में प्रत्येक ४ घंटे के अन्तर से देना चाहिये । कई बार स्प्रिट कैम्फर भी उत्तम प्रभाव दिखाती है, इससे सर्दी रुक जाती है । यह उस समय अधिक उपयोगी है, जबकि रोगी को कँपकँपी अधिक हो । गरम पानी में कपूर पीसकर गेरना चाहिये, उसके वाष्प सूँघने से आराम हो जाता है ।

टिंचर एकोनाइड १ ड्राम, पानी ८ औंस मिलाकर १ भाग प्रत्येक चार घंटे के अन्तर से लेना चाहिये । रोगी को बिस्तर पर आराम करना चाहिये । पानी यथेच्छ पीना चाहिये, जिससे खूब पसीना आये । मॉर्फिया हाइड्रोक्लोरेट २ ग्रेन, एकाशिया पाउडर २ ड्राम, बिस्मुथ सब-नाइ-

ट्रेट ६ ड्राम इनको मिलाकर सूँघना चाहिये। यूक्लिप्टस ऑयल को लौंग के तेल के साथ मिलाकर सूँघना भी उत्तम है। कार्बोलिक एसिड और लाइकर अमोनिया फोर्ट प्रत्येक ५ ड्राम और रैक्टीफाइड स्पिट २ औंस मिलाकर रखना चाहिये। इसकी १०-१५ बूँद स्याहीचूस की चार-पाँच तहें करके उसपर छिड़ककर सूँघना चाहिये। सूँघते समय आँखें बन्द कर लेनी चाहिये।

आर्य-औषधि—१—बिना लगे हुये पान के अन्दर छोटी इलायची, लौंग, कपूर, तुलसी-पत्र और थोड़ा सा आर्द्रक रखकर खाना चाहिये। २—आर्द्रक के बीच से चार टुकड़े इस प्रकार के करने चाहिये कि वह नीचे से जुड़ा रहे। फिर इसमें काला नमक भरकर आग की भूभल में दबा देना चाहिये। जब पक जाय, तब निकालकर खाना चाहिये। ३—दो आने भर चाय, दो आने भर तेजपत्र, दो आने भर अजवायन, ½ आना भर लौंग और आधा तोला मिश्री मिलाकर गरम जल में घोलकर रखना चाहिये। पीछे से गरम-गरम पीना उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—कफकेतु, कस्तूरी-भूषण, लक्ष्मी-विलास, कफ-राक्षसी, शितोपलादि चूर्ण, आर्द्रकावलेह, व्योषादि गुटिका।

स्वर-भेद

'लैरिंक्स' श्वास-प्रणाली के ऊपर का भाग है। यह वाक्शक्ति के उत्पन्न करने में भाग लेता है। इस स्थान की सूजन में प्रायः गले की सूजन या सर्दी मिली रहती है। यह रोग सर्दी से या चिल्लाने से, लेक्चर देने से या क्षय से अथवा उपदंश के कारण उत्पन्न होता है। यह इतने सूक्ष्म रूप में भी हो सकता है कि शब्द के अन्दर भारीपन आजाता है, अथवा सर्वथा बोलना बन्द हो जाता है। यह रोग या तो तीव्र होता है या पुराना हो जाता है, यहाँ तक कि कई महीनों तक रहता है। जिस समय यह तीव्र और भयानक रूप में हो, उस समय यह खतरनाक है। इस रोग में ज्वर, दर्द, गले में तंगी, भारी या काँपती हुई आवाज, शुष्क कास होती है। गले के ऊपर का भाग सूजा हुआ और शुष्क होता है, स्राव गाढ़ा और दुर्गन्धयुक्त होता है। बलगम कठिनता से बाहर आता है, गले में आवाज सुनाई देती है, निगलने में कठिनता होती है। नींद का न आना, दम घुटने का आक्रमण, श्वास की भूख और आक्षेप आदि लक्षण होते हैं। गला अन्दर

से लाल और सूजा हुआ होता है। जिह्वा को नीचे दबाकर देखने से श्वास-प्रणाली के ऊपर का भाग सूजा हुआ या एपिग्लैारिस सीधा और सूजा हुआ होता है। यह रोग डिफ्थिरीया के कारण भी हो जाता है। इसमें एक प्रकार की कला मुँह में भर जाती है।

चिरकालीन शोथ—यह रोग तीव्र आक्रमणों की उपेक्षा करने से, अथवा उपदंश या कैन्सर रोग के कारण होता है। यह रोग उनमें भी मिलता है, जो बहुत बोलते या पढ़ते हैं। इसलिये इसको "क्लर्जीमैन्स सोरथ्रोट" कहते हैं। रोग दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है, अन्त में शल्य-चिकित्सक को सहायता लेनी पड़ती है। इसके लिये आराम, संकोचक औषधियों से गलाले और गले में दवाई का लगाना फोरमेसीन्ट टैबलेट का चूसना उपयोगी है।

चिकित्सा—यदि रोग साधारण हो, अर्थात श्वास में भारीपन हो, जो प्रातःकाल मुख्यतः होती है, तो इसमें सर्दी से बचाना चाहिये; विशेषतः रात्रि में गले के चारोंओर फलालैन का कपड़ा लपेटकर रखना चाहिये। राई के पानी में पाँव रखने चाहिये। रोगी को बलगम निकालने का मिश्रण देना चाहिये। जिस समय रोग बढ़ा हुआ हो, उस समय छाती के ऊपरवाले भाग में जौंक लगवानी चाहिये। यदि रोगी बच्चा हो, तो उसे बिस्तर पर लेटाकर गरम पानी के वाष्पों को सुँघाना चाहिये, गले पर गरम पानी का स्पंज रखना चाहिये। डोवर्स पाउडर ५ ग्रेन, प्रत्येक ४ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। रोगी को औषधियों से विरेचन देना चाहिये। कमरे को शान्त रखना चाहिए, सीधी वायु से रोगी को बचाना उत्तम है। कमरे में गरम पानी उबालने के लिये रख देना चाहिये। इसमें टिंचर बैंज़ीयन कम्पाउन्ड की १०-१५ बूँदें डाल देनी चाहियें। भोजन दलिया या गरम दूध होना चाहिये।

उपाय—१—कस्तूरी, इलायची, लवँग, बाँसकपूर इनके बारीक चूर्ण को मधु में मिलाकर चाटना चाहिये। २—घी में मिर्च का चूर्ण मिलाकर चाटना चाहिये ३—घी और गुड़ खाकर गरम जल पीना चाहिये। ४—वनजवानी, हल्दी, आँवला, यवक्षार, चीतामूल समभाग लेकर घृत और मधु के साथ चाटना चाहिये। ५—सैन्धवनमक के साथ बेरी के पत्ते पीसकर, घी में भूनकर, उसी घी में मिलाकर चाट लेना चाहिये। ६—गरम-गरम दूध मधु और शर्करा के साथ पीना चाहिये। ७—कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग, वंश-

लोचन इनके चूर्ण को घी और मधु के साथ खाना चाहिये । ८—मिर्च ७ माशे, छोटी इलायची ५ माशे, कुलिंजन १॥ माशे, मुलहट्टी ३ माशे, सबके बराबर भूसी और दो अत्र मिश्री, इनका काढ़ा करके गरम-गरम पीना चाहिये ।

शास्त्रीय औषधि—कल्याणावलेह, कण्टकारी अवलेह ।

सोंठ की चटनी—१—३५० माशे सोंठ को ताज़े दूध में भिगो देना चाहिये । इस दूध को प्रतिदिन बदलते रहना चाहिये । यहाँ तक कि सोंठ नर्म हो जाय । फिर इसको कूटकर नर्म बना लेना चाहिये । इसमें पिप्पली और केशर मिलाकर बारीक पीस लेना चाहिये । इन तीनों के बराबर नशास्ता मिलाकर शहद या मिश्री में मिलाकर गाढ़ा बना लेना चाहिये । २—ईसबगोल, बिहीदाना, उन्नाब, खितमी, सूखी धनिया पानी में औटाकर, छानकर गरारे करना चाहिये । ३—मुलहठी १७॥ माशे, बिहीदाना २४॥ माशे, रात्रि में पानी के अन्दर भिगो देना चाहिये । प्रातःकाल औटाना चाहिये । जब आधा रह जाय, तब छानकर ७७० माशे सफेद बूरा मिलाकर गाढ़ा करना चाहिये । इसमें बिहीदाने की मींगी १०॥ माशे, सभाग अरबी १०॥ माशे, कतीरा १४ माशे, सफेद खसखस १७॥ माशे महीन पीसकर मिलाकर चटनी बनाना चाहिये ।

कफ-कास

इस रोग के अन्दर श्वास-मार्ग के अन्दर की आवरण-कला के अन्दर या फुप्फुसों में पहुँचनेवाली प्रणालिकाओं के अन्दर शोथ होजाता है । यह रोग प्रायः सर्दी से होता है । इसमें सर्दी के लक्षण मिले रहते हैं । प्रथम नाक से पानी बहता है, रोगी को सर्दी का अनुभव होता है, अङ्गों में चुभता हुआ दर्द होता है । थोड़ा-सा ताप-परिमाण बढ़ जाता है, रोगी को प्यास तथा कुछ ज्वर हो जाता है, शिर-दर्द, मैली जिह्वा, भूख का न लगना और बेचैनी होती है । छाती के सामने की अस्थि में कुछ खटाई मालूम होती है, छाती जकड़ी हुई मालूम होती है । पहले सूखी खाँसी होती है, श्वास कुछ दबा हुआ और कठिनता से आती है । बहुत खाँसने पर थोड़ा-सा बलगम बाहर आता है । ज्वर प्रायः साधारण होता है और नाड़ी का स्पन्दन १२० से अधिक हो जाता है । अच्छे होनेवाले रोगियों में तीन या चार दिन के पीछे

बल्गम ढीला पड़ जाता है और वह निकलने लगता है। प्रथम बल्गम झागदार आता है, फिर चिकना हो जाता है। कुछ समय पीछे बल्गम गाढ़ा हो जाता है। इसका रंग हरा-पीला-सा हो जाता है। छाती का संकोच और अम्लता नष्ट हो जाती है। सारे समय श्वास के साथ घरघराहट की आवाज़ सुनाई देती है और छाती या पीठ पर हाथ रखने से एक स्पन्दन का अनुभव होता है। बल्गम के निकल जाने से लक्षण कुछ घट जाते हैं; परन्तु बल्गम के फिर एकत्रित होने पर लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। श्वास में शब्द या स्पन्दन का कारण स्राव।से श्वास-प्रणालियों का अपूर्ण अवरोध होना है। थकावट और सर्दी ये दोनों बातें श्वास-काठिन्य तथा कास को बढ़ा देती हैं। अच्छे होनेवाले रोगियों में लक्षण आठवें दिन घटने लगते हैं। अर्थात् बल्गम सरलता से निकलने लगता है, श्वास की कठिनाई जाती रहती है, ज्वर घट जाता है और बुरे रोगियों में बल्गम अधिक चिकना हो जाता है। रोगी की श्वास में कठिनाई बढ़ जाती है; ओष्ठ रक्तहीन बन जाते हैं, कभी-कभी प्रलाप भी हो जाता है, रोगी बल्गम निकालने में असमर्थ होता है। श्वास के बन्द होने से या रक्त के अवरोध से मृत्यु होती है।

चिकित्सा—गरम पानी में स्नान करके, ८-१० ग्रेन डोवर्स पाउडर को रात्रि में सोते समय ३० बूँद स्प्रिट ईथर नाइट्रोसाई को २ औंस पानी में मिलाकर प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से लेना चाहिये। इससे रोगी को बहुत पसीना आता है। रोगी को जौ का पानी, अथवा गरम दूध में जायफल, केसर अथवा दूध का मसाला मिलाकर या शराब मिलाकर देना चाहिये। इससे पसीना खुलकर आता है। रोगी को सर्दी से बचाना चाहिये। कमरे में गरमी बराबर रखनी चाहिये। कमरे के अन्दर भीनी वायु रखनी चाहिये। इसके लिये एक पतीली में पानी गरम होने के लिये रख देना चाहिये। इस पानी में युक्लिप्टस ऑयल डाल देना चाहिये। यत्न ऐसा करना चाहिये कि पानी स्टोव पर गरम किया जाय, चूँकि कोयलों का या लकड़ी का जलाना हानिकारक है। रात्रि में डोवर्स पाउडर १० ग्रेन देना उत्तम है। दाल या रोटी और दूध रोगी को देना चाहिये। बुरे रोगियों में उत्तेजक औषधियाँ मद्य आदि भी देना चाहिये। बिना चिकित्सक की सम्मति के और कोई औषधि बुरे रोगियों में नहीं देना चाहिये।

कई बार वृद्ध व्यक्तियों में शीत ऋतु-जन्य 'कास' मिलता है। यह

रोग गर्मियों में शांत हो जाता है और सर्दियों में पुनः आ जाता है। इसके लिये टिंचर कैम्फर कम्पाउण्ड देना चाहिये। यदि रोगी को अजीर्ण हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

आर्य्य-औषधि—(१) छोटी कटेरी, पिस्ता, देवदारु, जूफिका, मिश्री, वासा, पुष्करमूल, कुलिञ्जन, कत्था, इनको काढ़ा करके पीना चाहिये। (२) मुलहठी, कुलिञ्जन, बड़ी कटेरी, देवदारु, मिश्री, वासक इनके काढ़े में मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। (३) छोटी इलायची, मिर्च, इनके काढ़े में मिश्री मिलाकर उपयोग करना चाहिये। (४) खसखस एक पल, इसको पानी में मिश्री के साथ पीसकर दूध में उबालना चाहिये। जब दूध नष्ट हो जाय, तो इसको वस्त्र में छानकर, इसमें दो-तीन श्वेत मिर्चें मिलाकर प्रातःकाल पीना चाहिये। इस प्रकार कई दिन पीने से शुष्क कास नष्ट हो जाता है। (५) जूफिका को ख़ूब बारीक पीसकर, वस्त्र में छानकर चाशनी में मिला लेना चाहिये। इसका नाम दयाकुञ्जी है। इससे कास अच्छा होता है। (६) हल्दी के चूर्ण को वासक के स्वरस में मिलाकर मलाई के साथ खाना चाहिये। (७) मिश्री पर दो-तीन बूँद आक का दूध डाल-कर रख देना चाहिये। सायंकाल इसको खाकर दूध की मलाई, मालपुवे खाने चाहिये। (८) वासक को पुटपाक-विधि से पाक करके उसका स्वरस मधु में मिलाकर खाना चाहिये। (९) मैनफल के अन्दर साम्भर नमक भरकर ऊपर से गेहूँ का आटा लेप करके, गोमय की अग्नि में पकाना चाहिये। फिर इस नमक और बीज को बल्कल से अलग करके पान के पत्ते के साथ खाना चाहिये। (१०) वासक के फूलों को मधु के साथ खाना चाहिये। (११) सोंठ, अतिविषा, नागरमोथा, काकड़ाश्रृङ्गी, सब समान भाग और सबसे आधा या चतुर्थांश क्षार मिलाकर मधु के साथ खाना चाहिये। (१२) धनिया, अनार की छाल, विभीतक, हरीतकी प्रत्येक ३ माशे, इनको मधु में मिलाकर ६ माशे की मात्रा में खाने से आराम होता है। (१३) हिंगुल, विष, नागरमोथा, पिप्पली, मिर्च और लौंग इनके चूर्ण को नीबू के रस में तीन दिन तक पीसकर मूँग के बराबर गोली बनानी चाहिये। इस गोली को प्रातः-सायं खानी चाहिये। (१४) सुहागा १ कर्ष, अफीम १ कर्ष और कत्था ८ कर्ष, इनको मिलाकर पान में खाने से कास अच्छा होता है। (१५) बच, मुलहठी, पिप्पली, कूठ मिलित ६ आने भर इसको

मधु के साथ मिलाकर दो-तीन बार खाना चाहिये। (१६) कच्चा पान, काला तुलसी का पत्ता, आर्द्रक, थोड़ा कपूर, लवँग इन सबको मिलाकर दो-तीन बार दिन में चबाना चाहिये। इससे श्लेष्मा बाहर हो जायगी। (१७) बंश-लोचन २ रत्ती, पिप्पली-चूर्ण २ रत्ती, गन्धक-चूर्ण १ रत्ती, सुहागे की खील १ रत्ती, आक के फूल का चूर्ण १ रत्ती, मिलाकर मधु के साथ चाटना चाहिये। (१८) मुलहठी १ छटाँक, कण्टकारी १ छटाँक, पिप्पली आधी छटाँक, तुलसी की मञ्जरी आधी छटाँक, इनको कूटकर १ सेर जल में पकाकर १ पाव शेष रहने पर छान लेना चाहिये। इसमें १ पाव मिश्री और १ तोला बच का चूर्ण मिलाकर गाढ़ा बनाना चाहिये। मात्रा ४ आने से ८ आने। अनुपान गरम जल। (१९) बृहत्पँचमूल के काढ़े में पिप्पली-चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। (२०) बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, किशमिश, बासक, शठी, नेत्रवाला, सोंठ, पिप्पली, इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीना चाहिये। (२१) द्राक्षा, आँवला खजूर, पिप्पली, मिर्च इनको घी और मधु के साथ खाना चाहिये। (२२) मधु के साथ आर्द्रक का रस पीना उत्तम है। (२३) पुष्करमूल, कायफल, भारंगी, सोंठ, इनको पिप्पली-काढ़े के साथ पान करना चाहिये। (२४) लवँग २ तोला, जायफल २ तोला, पिप्पली २ तोला, मिर्च ४ तोला, सोंठ ४ तोला, इन सबके बराबर शर्करा मिलाकर खाना चाहिये। (२५) वंगभस्म को मधु के साथ खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—सितोपलादि चूर्ण, द्राक्षासव, हरीतकी अवलेह, वासावलेह, अग्निरस, क्षुद्रादि-क्वाथ, कटफलादि चूर्ण, अग्निरस, चन्द्रामृत, तालीसादि चूर्ण, शृंगाराभ्र, लक्ष्मी-विलास, च्यवनप्राश, शृंग्यादि चूर्ण।

यूनानी औषधि—१—उन्नाब, लिसोढ़ा, गावजवाँ, बनफशा, खित्मी के बीज, अंजीर, इनको पानी में औटाकर, छानकर शर्बत तुरञ्जबीन मिलाकर पीना चाहिये।

शर्बत तुरंजबीन की विधि—बनफशा १ तोला, उन्नाब २० दाने, सनायमक्की ६ माशे, खितमी ९ माशे, पानी में उबालकर छान लें। इसमें आध पाव तुरंजबीन मिलाना चाहिये।

२—नशास्ता, कतीरा, मीठे बादाम की मींगी, बकला, खसखस के बीज, समनअर्बी, गिलेअरमानी; इनको पीसकर ईसबगोल के लुआब में गोलियाँ बनाकर मुँह में रखना चाहिये। ३—मुलहठी, खुश्क जूफा, बादाम

की मींगी, प्रत्येक १४ माशे, हींम, ऊदंमन के बीज प्रत्येक ३॥ माशे शहद में मिलाकर खाना चाहिये।

४—कफ निकालने के लिये—उन्नाब १० दाने, बनफ्सा ७ माशे, खितमी, खब्बाजी १०½ माशे, सनाय १३½ माशे, अंजीर ५ दाने, मुनक्का बेदाने की २ तोले, औटाकर छान ले, अमलतास ५—२॥ माशे, तुरञ्जबीन ५ तोले, बादाम का तेल ३॥ माशे मिलाकर पीना चाहिये। ५—छिला हुआ जौ सफेद, खसखस लेकर पानी में पीस लेना चाहिये। इसमें बूरा और बादाम का तेल मिलाकर हरीरा बनाना चाहिये। ६—बनफ्सा, कतीरा, ककड़ी की मीगी, घिया के बीज की मींगी, सफेद खसखस के बीज लेकर, महीन पीस-कर ईसबगोल और बिहीदाने के लुवाब में मिलाकर चाटना चाहिये।

श्वास

इस रोग में श्वास के अन्दर कठिनता होती हैं। श्वास-प्रणालियों की मांस-पेशियों में आकुञ्चन होता है। इसके साथ कुछ ज्वर भी हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है, १—शुष्क और २—तर। इस रोग में बहुत बलगम बाहर नहीं आता। श्वास-प्रणाली छाती के ऊपर के भाग में दो शाखाओं में विभक्त होजाती है और एक-एक शाखा दोनों फेफड़ों में जाती है। ये शाखायें और भी छोटी शाखाओं में विभक्त होकर फेफड़ों में पहुँच जाती हैं। प्रत्येक प्रणाली गोल मांस-पेशियों-द्वारा चारोंओर से घिरी है। इसे रोग में जो कठिनाई है, वह यह है कि इस रोग में प्रणाली के चारोंओर की पेशियाँ संकुचित हो जाती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि प्रणाली तङ्ग हो जाती है। यह संकोच सीधे (डायरेक्ट) या दूरवर्ती (इनडायरेक्ट) कारणों से होता है।

सीधे कारण—धूल, वानस्पतिक विक्षोभ, जैसे, पुष्पों का पराग, रासायनिक वाष्प, पशुओं के स्राव, वायुमण्डल के कारण, विशेषतः सीघ्रता से ताप-परिमाण का बदलना है।

दूरवर्ती कारण—उत्तेजना, जैसे, भय से, क्रोध से, मलबन्ध का होना, रात्रि को भारी भोजन करना, आध्मान, अजीर्ण के अभ्यस्त, वातिक (संधिवात की) प्रकृति, हृदय में वायु का संचय होना, फेफड़ों का अधिक विस्तृत होना और इस रोग की पैतृक अभिरुचि।

कुछ व्यक्ति इस रोग के लिये उपजाऊ भूमि होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का चेहरा पतला, गोल स्कन्ध, चेहरे के भाव में बहुत उत्सुकता रहती है। गाल अन्दर को बैठे हुये, स्वरभंग और जन्म ही से थोड़ी-बहुत खाँसी रहती है।

इस रोग का दौरा प्राय: करके रात्रि में होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि रक्त-संचार धीमा पड़ जाता है या कुछ रुक जाता है। यह रुकावट या धीमापन नींद के कारण होता है। जिस समय आदमी आराम से लेटा रहता है, उस समय यह रुकावट विक्षोभ उत्पन्न कर देती है। बन्द होने से पूर्व रोगी को आध्मान, शिर-दर्द, आँखों पर भारीपन, मूत्र का पीला होना, आराम का नष्ट हो जाना, बेचैनी, हृदय पर भारीपन का अनुभव होता है।

प्राय: करके इसका आक्रमण अचानक होता है। रोगी अपनी गहरी और आराम की नींद को भुलाकर सहसा खड़ा हो जाता है और श्वास के लिये मेहनत करता है। यदि 'दौरा' खराब हो, तो श्वास लेने में बेहद तकलीफ होती है।। रोगी बैठ जाता है, या कुर्सी अथवा मेज़ को पकड़कर श्वास लेने का यत्न करता है। चेहरा पीला तथा रक्तहीन हो जाता है। आँखें बाहर निकल आती हैं। शरीर पर ठण्डा पसीना आजाता है। श्वास बहुत घुटता है। रोगी खिड़की खोलने का यत्न करता है। इसके लिये चलने में उसकी टाँगें काँपती हैं। यह दौरा कुछ मिनटों से लेकर कई घण्टों तक बना रह सकता है। जब दौरा शान्त होता है, तो बलगम या स्राव निकलता है। अथवा पीले रंग का मूत्र बहुत अधिक मात्रा में आता है।

चिकित्सा—आक्रमण के समय रोगी को बैठा देना चाहिये। यदि आक्रमण जोर का हो, तो रोगी को आराम-कुर्सी पर बैठाकर उसके सामने मेज रख देनी चाहिये, और उसपर तकिया रख देना चाहिये। इस तकिये के ऊपर दोनों कोहनियों को रखकर आगे की ओर झुकने से रोगी को आराम मिल जाता है। मेरुदण्ड को शराब और सैलड ऑयल से या लिमिनैण्ट टरबैन्थी तथा लिमिनैन्ट ओपाई से मलना चाहिये। बड़ी धमनी पर, जो छाती से निकलकर भुजा में जाती है, अँगूठों से दबाव देने पर दौरा घट जाता है।

जिन व्यक्तियों में रक्त का दबाव बढ़ा हो, उनको २० बूँद वाइनम एपिकॉक को पानी में मिलाकर देना चाहिये। निर्बल व्यक्तियों के लिये टिंचर कैम्फर को लाइकर अमोनिया के साथ मिला-

कर देना उत्तम है। यदि आक्रमण भोजन के पीछे हो, तो वमन देना चाहिये। यदि मलबन्ध हो, तो सोडा सल्फेट देना चाहिये। रोगी को गरम पानी में सोडाबाई कार्ब पिलाना चाहिये अथवा गरम कॉफी देना चाहिये। १० ग्रेन फिटकिरी का चूर्ण रोगी के गले में छोड़ना चाहिये। स्प्रिट कैम्फर १० बूँद की मात्रा में प्रत्येक १० मिनट पीछे पीना चाहिये। शोरे में भिगोये हुये स्याही-चूस को धूप में सुखाकर, उनको जलाकर उसका धुँवा सूँघना चाहिये। चिलम में रखकर धतूरे के पत्तों का धुँवा पीना भी उत्तम है।

आक्रमण के समय एमाईल नाईट्रेट या क्लोरोफार्म की कुछ बूँदें रुमाल पर डालकर सुँघाना चाहिये। इससे आक्रमण शीघ्र शान्त हो जाता है। इसमें ईथर भी मिला लेना उत्तम है।

आक्रमण शान्त होने पर रोगी के भोजन पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

आर्य-वैद्यक में श्वास-रोग पाँच प्रकार का माना है। जैसे, क्षुद्रश्वास, तमकश्वास, छिन्नश्वास, ऊर्ध्वश्वास और महाश्वास। इनमें प्रथम दो प्रकार के श्वास आराम हो जाते हैं।

उपाय—१—गुड़ और कड़वा तेल मिलाकर खाना चाहिये। २—हिंगुल को घीकार के रस में पीसकर गोली बना लेनी चाहिये। इसको दो उपलों में रखकर भस्म कर लेना चाहिये। इस भस्म को खाने से श्वास में आराम होता है। ३—संखिया को आक के दूध में पीसकर, शंख के अन्दर भरकर गजपुट में पकाना चाहिये। यह भस्म श्वास-रोग में उत्तम औषधि है। ४—हल्दी को आधा जलाकर, उसके चूर्ण को मधु के साथ चाटना चाहिये। ५—यवक्षार या सज्जिका-क्षार गरम करके पानी में बुझाना चाहिये। इस पानी को पीने से अवश्य लाभ होता है। ६—जरदे के पत्ते को पुराने गुड़ के साथ मिलाकर खाना चाहिये। ७—तम्बाकू के पत्तों के स्वरस में गुड़ मिलाकर चाशनी बनानी चाहिये। इसकी १ तोले की मात्रा खानी चाहिये। ८—शोधित कुचले को लेकर ८ गुने जल में तीन बार पकाना चाहिये। इसकी मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती है। ९—मूल-सहित वासा को उखाड़कर उसका काढ़ा करना चाहिये। फिर इसमें इलायची, पिप्पली, अतिविषा, वंशलोचन प्रत्येक $\frac{1}{4}$ भाग तथा अहिफेन $\frac{1}{2}$ भाग मिलाकर गोलियाँ (चने के बराबर) बना लेनी चाहिये। १०—गुड़ और कपूर की गोली श्वास-रोग को नष्ट करती

है। ११—कड़वी तुम्बी का रस पीकर वमन करना चाहिये। खाने में घी और दही खाना चाहिये। १२—दिये के ऊपर चलनी, उसके ऊपर पान के पत्ते रखकर, गरम करके, छाती पर बाँधना चाहिये। १३—भारंगी और सोंठ का चूर्ण गरम पानी से पीना चाहिये। १४—शोधित गन्धक-चूर्ण और मिर्च-चूर्ण घी के साथ चाटना चाहिये। १५—सोते समय पिप्पली-चूर्ण १ माशा, सेंधव १ माशा, आर्द्रक-रस के साथ एक सप्ताह तक सेवन कर लेना चाहिये। १६—अकरकरा, कटेरी, बड़ी कटेरी, कबाबचीनी, गिलोय, दुरालभा, तुलसी-मञ्जरी प्रत्येक ४ आने भर, काले धतूरे की जड़ ६ आना, बहेड़ा ८ आना, जल ½ सेर, शेष ½ छटाँक; इसमें १ रत्ती हींग मिलाकर पान करना चाहिये। १७—रस-सिंदूर १, गन्धक १, मयूरपिच्छा-भस्म १, इनको पुराने घी के साथ ४ रत्ती की मात्रा में खाना चाहिये। १८—धतूरे के फल को खोखला करके इसमें अफीम भर देना चाहिये। इस फल के चारोंओर हींग लगाकर ऊपर से जयन्ती का पत्र बाँध देना चाहिये। इसके ऊपर गोबर लगाकर धूप में सुखाना चाहिये। पीछे पुटपाक-रीति से पकाकर अन्दर से भस्म निकाल लेनी चाहिये। मात्रा—१ रत्ती। अनुपान—उष्ण जल। १९—दो तोले गरम पानी में घी, मधु तथा शर्करा एवं थोड़ा-सा सेंधानमक मिलाकर पीना चाहिये। २०—छोटी कटेरी के रस में मधु मिलाकर पीना चाहिये। २१—धतूरे की राख मधु में चाटनी चाहिये, या अपामार्ग-क्षार मधु में खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—क्षुद्रादि काढ़ा, भारंगी गुड़, श्वास-चिन्तामणि, श्वासकुठार, कनकारिष्ठ, शृंग्यादि-चूर्ण।

यूनानी-औषधि—१—शर्बत जूफा—सौंफ, अजवायन के बीज प्रत्येक १७॥ माशे, सूखा जूफा २४॥ माशे, अंजीर २० दाने, मुनक्का ३० दाने, उन्नाब, लसोड़ा प्रत्येक २ माशे, मेथी १४ माशे, खितमी के बीज, नीले सौसन के बीज दोनों १०॥ माशे, हंसराज २४॥ माशे, पानी २ सेर; शेष १ सेर रहने पर छान लें। इसमें १ सेर बूरा और ½ सेर गुलकंद मिलाकर गाढ़ा-सा कर लेना चाहिये। २—चटनी, मुनक्का, अंजोर, मुलहठी, बाकला के बीज, खसखस के बीज, मीठे कद्दू के बीज की मींगी, हंसराज, सौंफ, सूखा जूफा, बादाम की मींगी, मेथी, खितमी के बीज, ईरसा शहद में मिलाकर चटनी बना लेनी चाहिये। ३—बनफसा, मुलहठी प्रत्येक ३॥ माशे, गारीकून ९ रत्ती, कतीरा ३ रत्ती कूट-छानकर गोलियाँ बनानी चाहिये। दमे के रोग

में गारीकून और अफतीमूल (आकाश बेल) विशेष उपयोगी हैं। ४—यदि रोगी को श्वास में बहुत कठिनाई हो, तो पापड़ी नोन १४ माशे, हालून के बीज ७ माशे दोनों को महीन पीसकर, शहद-मिले पानी में घोलकर दे देना चाहिये।

निमोनिया (फेफड़ों की सूजन)

इस रोग का कारण एक प्रकार का कृमि माना जाता है। परन्तु प्राय: सर्दी के कारण यह रोग होता है। जिस समय इस रोग का कारण कृमि होता है, उस समय यह रोग फैलता है। इस रोग में सर्दी लगती है। रोगी को कँपकँपी होकर जोर का बुखार चढ़ आता है, जो ४-५ दिनों तक नहीं उतरता। प्राय: शुष्क कास रहता है, बलगम थँदला और गाढ़ा होता है। प्रथम यह बलगम श्वेत और झागदार होता है, पीछे से भूरा-सा हो जाता है। साधारणत: इस रोग में कोई तीव्र दर्द नहीं होता। जबतक इसके साथ पार्श्व-शूल (प्ल्युरिसी) न मिली हो। परन्तु प्राय: प्ल्युरिसी इसके साथ मिली ही होती है। चाहे तीव्र दर्द हो या न हो, इस रोग में गहरा, मन्द और चुभनेवाला दर्द छाती में रहता है। रोगी का श्वास तेज हो जाता है, यहाँ तक कि साधारण श्वास से दुगुना (३० तक) या इससे भी अधिक हो जाता है। ताप-परिमाण १०४ या १०५ अंश हो जाता है। अच्छे होनेवाले रोगियों में ७ वें, ९ वें या ११ वें दिन ताप-परिमाण सहसा गिरकर साधारण हो जाता है। दिन में कई बार ताप-परिमाण लेने पर भी ताप-माप १०४ अंश से ऊपर न चढ़े और नाड़ी का स्पन्दन १२० से अधिक न बढ़े तथा श्वास की गति १ मिनट में ३५ से ऊपर न जाय, तो समझना चाहिये कि रोगी स्वस्थ हो जायगा। साधारणत: श्वास की गति और नाड़ी की गति में १ : ४ का अनुपात रहना चाहिये। यदि रोगी को अच्छा नहीं होना होता, तो चौथे या पाँचवें दिन श्वास कठिन हो जाता है, नाड़ी तेज हो जाती है, त्वचा गरम हो जाती है, रोगी को प्रलाप रहता है, रोगी तन्द्रावस्था में पड़ा रहता है और अंत में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

यह शोथ दो प्रकार की होती है—१—लोब्युलर निमोनिया—इस अवस्था में शोथ फेफड़े के छोटे टुकड़ों में होती है।

२—लोब्युर निमोनिया—इस रूप में शोथ फेफड़े के एक टुकड़े में होती है। प्रथम रूप को 'ब्रोंको निमोनिया' कहते हैं।

फेफड़ों के अन्दर सूजन चिरकालीन रोगों में भी हो जाती है। इस अवस्था में कोई विशेष लक्षण प्रारम्भ में दिखाई नहीं देते। यह रोग प्रायः करके मद्यपान करनेवाले, या बुड्ढों में अथवा बच्चों में पाया जाता है। यह किसी और रोग की उत्पत्ति में भी हो जाता है।

चिकित्सा—रोगी को बिस्तर पर लेटाकर रखना चाहिये। कमरे के वायुमण्डल को गरम वाष्प से तर रखना चाहिये। रोगी को सीधी वायु से बचाना चाहिये। रोगी को बोलने या हिलने से बचाना चाहिये। छाती पर अलसी की पुल्टिस या एण्टीफ्लोजैस्टीन का लेप करना चाहिये। इस लेप को लगाने के लिये डब्बे को गरम पानी में रखकर १५ मिनट तक उबालना चाहिये। पीछे से इसको चम्मच के साथ एक फलालैन के कपड़े पर ¼ इञ्च मोटा फैलाकर रुग्ण प्रदेश पर लगा देना चाहिये। गरम परिसेक करना भी उत्तम है। ब्राइनम एपिकॉक देना उत्तम है। रोगी का भोजन नर्म, पोषक होना चाहिये। इसके लिये दूध देना चाहिये। यदि रोगी निर्बल होता हुआ प्रतीत हो, तो उसकी शक्ति बनाये रखने के लिये मद्य देना चाहिये। इस रोग में हवा से बचाकर रोगी को स्पंज करना विशेष उत्तम है।

प्रायः यह देखा गया है कि बहुत-से रोगी उत्तम परिचर्या-द्वारा ही बिना औषधि के अच्छे हो जाते हैं। साथ ही कई बार अन्य लक्षणों की भाँति ज्वर की भी चिकित्सा करनी पड़ती है। फेफड़ों के रोगों में बुखार को कम करने के लिये 'फीनस्टीन', 'एण्टीफैब्रीन' आदि कोई भी ऐसी दवाई नहीं देनी चाहिये, जो हृदय को निर्बल करे। छोटे से लेकर बड़े तक प्रत्येक व्यक्ति को उत्तेजक औषधि देनी चाहिये। शराब, लाइकर स्ट्रिकनीन १० बूँद की मात्रा में देना विशेष उपयोगी है। उत्तेजक गरम औषधियों को देना तब विशेष आवश्यक है, जबकि रोगी तन्द्रा में पड़ा रहता हो।

आर्य-औषधि—१—इस रोग में श्लेष्मा को निकालने के लिये कटफलादि कषाय या चतुर्दशांग क्वाथ देना चाहिये। औषधियों में हिंगुलेश्वर का उपयोग कस्तूरी-भूषण के साथ करना चाहिये। २—क्षुद्रादि-क्वाथ, निर्दिग्धादि-क्वाथ का उपयोग करना भी उत्तम है। बलगम को निकालने के लिये 'अष्टांगावलेहिका' बहुत ही उत्तम चाटन है।

यूनानी औषधि—जुन्दबेदस्तर को शराब में मिलाकर छाती पर मलना चाहिये। अथवा बाबूना के तेल में खितमी, जौ का चून, अकलील-मुल्क मिलाकर इसको मलना चाहिये।

प्लुरिसी (पार्श्वशूल)

इस रोग के अन्दर फेफड़े को ढँकनेवाली कला से अन्दर सूजन हो जाती है। यह सूजन फेफड़े के अन्दर के ऊपरवाले आवरण में या निचले आवरण में होती है। जिससे दोनों अस्तरें पृथक-पृथक हो जाती हैं। स्वस्थ अवस्था में दोनों अस्तरें आपस में मिली रहती हैं। इनको गीला रखने के लिये एक स्राव रहता है, जिससे ये रगड़ से बचे रहते हैं। इस रोग के आक्रमण के कारण सर्दी लगकर ज्वर आता है। रोगी के पार्श्व में चुभता हुआ दर्द होता है। यह दर्द प्रायः करके चूचक के बराबर में और पार्श्व में होता है। इस दर्द का स्वभाव बहुत चीरनेवाला होता है। दर्द पीछे से छाती के सामने, अक्षकास्थि की ओर या कक्षा की ओर जाता है। रोगी को शुष्क कास रहता है, श्वास छोटा होता है, खाँसने से, या गहरी साँस लेने से, या रुग्ण पार्श्व में लेटने से दर्द बढ़ जाता है। नाड़ी तेज और कठोर होती है। इसका स्पर्श कठोर रस्सी की भाँति प्रतीत होता है। जिह्वा मैली और श्वेत होती है, मूत्र गँदला और गहरा पीला होता है, त्वचा गरम होती है, ताप-परिमाण १०० से १०२ फार्नहाइट तक रहता है।

इस रोग का कारण सर्दी या आघात है, और प्रायः बुखार बढ़ने के साथ यह रोग हो जाता है। पसलियों के टूटने से, निमोनिया से, या यक्ष्मा से भी यह शोथ हो जाती है। यदि इसकी चिकित्सा न की जाय, तो फेफड़े और छाती की दीवार में पानी एकत्रित हो जाता है, जिससे छाती में शोथ हो जाती है। अच्छे होनेवाले रोगियों में दर्द और पीड़ा चौथे या पाँचवें दिन घट जाती है। यदि छाती में पानी भर गया होगा, तो श्वास एवं खाँसी में दर्द बढ़ जाता है और रोग अनियमित समय के लिये रहता है।

प्लुरिसी का निमोनिया से निम्न प्रकार से भेद कर सकते हैं-१—प्लुरिसी में दर्द घुसता हुआ होता है, निमोनिया में दर्द मन्द और चुभता हुआ होता है। २—प्लुरिसी में कफ-खाँसी कठोर, शुष्क और छोटी होती है। इसमें बलगम

नहीं आता। निमोनिया में खाँसी लम्बी होती है, और बलगम झागदार एवं भूरे रंग का होता है। इसमें रक्त भी मिला रहता है। रोग की मन्द अवस्था में इसका भ्रम फुप्फुसावरण शूल (प्लुरोडीना) से हो जाता है। यह रोग प्रायः वाम पार्श्व में होता है। इसके साथ ज्वर नहीं होता।

चिकित्सा—रोगी को बिस्तर पर गरम रखना चाहिये। वायु से उसको बचाना चाहिये। रोगी को बोलने से, हिलने से बचाना चाहिये; क्योंकि इनसे दर्द बढ़ता है। रुग्ण पार्श्व पर जोंक लगवाना चाहिये। एक साल के बच्चे के लिये एक जोंक। इस प्रकार प्रत्येक साल के लिये एक-एक जोंक बढ़ाते जाना चाहिये। यदि यह न मिले, तो पोस्त के डोडों से सेंकना चाहिये, अथवा पोस्त के डोडों की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। छाला उठाने से भी रोगी को आराम मिलता है। दर्द के लिये डोवर्स पाउडर तीन-चार ग्रेन की मात्रा में प्रत्येक दो घण्टे के अन्तर से देना चाहिये। कफ के लिये कफ-मिश्रण देना चाहिये। कई बार ड्राई कपिंग या सींगियों के लगाने से विशेष लाभ होता है। राई का भी लेप करना उत्तम है।

यूनानी औषधि—१—सौसन और कूठ के तेल में जुन्दबेदस्तर मिलाकर मलना चाहिये। २—तुलसी, सातर, पोदीना, अफसन्तीन, हींग, जुन्दबेदस्तर इनको महीन पीसकर लेप करना चाहिये। ३—बनफसा, खितमी प्रत्येक १ भाग, सौसन की जड़ दो भाग, जौ का आटा, बाकला का आटा प्रत्येक १॥ भाग, बाबूना १ भाग इन सबको मोम और बनफसे के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये। ४—यदि सर्दी अधिक हो, तो अलसी के बीज, नीलोफर के बीज, सफेद फूल के पत्ते मिलाकर लेप करना चाहिये। ५—बनफसा, गावजबाँ, उन्नाब, सौसन की जड़, लिसोड़ा, मुनक्का, मुलहठी, खितमी, खब्बाजी, अञ्जीर, जूफा, अमलतास का गूदा, शीरीखिस्त, बादाम का तेल इनका खिसाँदा देना चाहिये।

क्षय

यह रोग चिरकाल से चला आता है। इस रोग में फेफड़ों के अन्दर सड़ना प्रारम्भ होता है। फेफड़ों के अन्दर छोटे-छोटे उभार बन जाते हैं। इस रोग का कारण एक कृमि माना जाता है, जिसका आकार रॉड (शलका) की भाँति होता है। यह कृमि रोगी के थूक में (बलगम में) मिलता है। इस-लिये यह बात सत्य है कि यह रोग स्थानिक है; परन्तु अवस्थाओं की अनुकूलता मिलने पर यह संक्रामक हो जाता है।

उदाहरण के लिये—यदि रोगी के फेफड़ों के बलगम को बाहर न फेंककर निगल जाय, तो उसके आँत आदि भी आक्रान्त हो जाते हैं। इसी-प्रकार यदि रोगी इस थूक को ज़मीन पर फेंकता है, तो उसके कृमि वायु-द्वारा उड़कर दूसरों को भी आक्रान्त कर सकते हैं।

इस रोग का प्रथम लक्षण शुष्क कास होता है, जो प्रातःकाल उठते समय अधिक कष्टदायक सिद्ध होता है। रोगी जल्दी से थक जाता है। थोड़े-से श्रम से हाँफने लगता है। ऊँचाई पर या सीढ़ी पर चढ़ते समय बहुत कठिनाई होती है। इसके पीछे बलगम निकलना आरम्भ होता है। इस बलगम का रंग चमकता हुआ श्वेत, झागदार तथा रक्त से मिला होता है। बलगम के साथ रक्त का आना ही कई बार सबसे प्रथम इस रोग की ओर ध्यान खींचता है। रोगी की नाड़ी साधारण अवस्था की अपेक्षा अधिक तेज़ होती है। उसका ताप-परिमाण सायंकाल में कुछ बढ़ जाता है। यह अवस्था कई सप्ताह, कई महीनों या कई वर्षों तक बनी रहती है। यदि रोगी प्रथम ही शुष्क वायुमण्डल में चला जाय, तो उसको शीघ्र आराम हो जाता है। इस रोग में यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र छाती की परीक्षा करवानी चाहिये।

इस रोग की द्वितीयावस्था में बलगम की अवस्था खराब हो जाती है। बलगम बहुत द्रव और अधिक आने लगता है। इसका रंग पीला होता है। इसमें गोल-गोल दाने होते हैं। यह बलगम गाढ़ा, गोल होता है, पानी में तैरता है, कई बार रक्त से मिला होता है। रोगी को सायंकाल ज्वर चढ़ जाता है। रात्रि में पसीना बहुत आता है। रोगी की भूख बनी रहती है, मांस और शक्ति घटती जाती है। चर्बीवाले या घी, तैल आदि भोजनों से रोगी की अनिच्छा रहती है। इस अवस्था में तेज, काटता हुआ दर्द पार्श्व में मालूम

पड़ता है। रोगी की वाक्-शक्ति घट जाती है। रोगी को अतिसार हो जाता है। रोग डाले की और या आंतों की ओर बढ़ने लगता है। अन्त में थकान से, अथवा किसी बड़ी रक्त-वाहिनी से रक्त निकलकर फेफड़ों-द्वारा मुख से गिरने के कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है। रोग की इस अवस्था में रोगी का बचना असम्भव है।

आर्य-वैद्यक में इस रोग का इतिहास देते हुये लिखा है कि यह रोग चन्द्रमा को अपनी स्त्री रोहिणी के साथ अति विषय करने से हुआ था। वास्तव में इस रोग का कारण भी यही है। आजकल जो यह रोग इतना बढ़ा हुआ है, उसका कारण अति विषय-भोग, तथा अन्य कारणों से शरीर का क्षय होना है। यह रोग प्रायः करके युवावस्था में अधिक होता है। इसके कारण स्वर-भेद, वायु के कारण पार्श्व में दर्द, अंश और पार्श्वों में संकोच प्रतीत होता है। ज्वर, दाह, अतिसार तथा रक्तस्राव होता है। रोगी के हाथ-पाँव से गरम चिनगारियाँ निकलती प्रतीत होती हैं। यदि रोगी को कास, श्वास और रक्तस्राव ये तीन लक्षण हों, तो रोगी को असाध्य समझना चाहिये।

उपाय—रोग अच्छा हो, इससे अधिक रोग न हो, इस बात पर ध्यान रखना चाहिये। यह रोग पैतृक होता है, अर्थात् जिन घरों में यह रोग होता है, उनकी संतति में इस रोग की विशेष उत्पत्ति होती है। नवजात शिशु में यह रोग नहीं मिलता; परन्तु उत्पत्ति के पीछे किसी भी समय उसमें हो सकता है। अर्थात् इस रोग के लिये भूमि तैयार होती है। किसी भी समय बीज-कृमि के पहुँचने से रोग उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के रोगियों को चाहिये कि वे अपना समय अधिकतर सूर्य के प्रकाश में या खुली वायु में बितावें। उनको चाहिये कि रात को जिस घर में सोयें, उसमें भी वायु भली प्रकार आने दें। शरीर को गरम रखना चाहिये। जब रोग होने लगे, उस समय कॉड लिवर ऑयल, लोह आदि शक्तिवर्धक औषधियाँ खानी चाहिये। खाँसी को कम करने के लिये औषधियों को देना चाहिये। इस काम के लिये अफीम, इसके समास बहुत अच्छे हैं। जैसे—सीरप कॉडिना फॉस्फेट या हीरोइन की गोलियाँ रोगी को चूसने के लिये देनी चाहियें।

क्षय-रोगी को चाहिये कि वह अपने बलगम को भी कभी भी निगरण

न करे, अर्थात् पीकदान या किसी चिथड़े में थूकना चाहिये। पीछे से इनको जला देना चाहिये। पीकदान के अन्दर कार्बोलिक लोशन रखना चाहिये। उसीमें थूकना चाहिये। रोगी को पर्याप्त ताज़ी वायु देनी चाहिये। यह रोग चुम्बन के द्वारा भी फैलता है। बच्चों को प्रारम्भ ही से स्वास्थ्य के नियमों की शिक्षा देनी चाहिये। इसीसे वे क्षय से बच सकते हैं।

रात्रि में पसीना यदि अधिक आता हो, तो जिंक ऑक्साईड और एक्सट्रैक्स बैलोडोना की मेली देनी चाहिये। यदि सम्भव हो, तो रोगी को धर्मपुर या भुवाली भेज देना चाहिये। वहाँ पर चीर, देवदारु के पहाड़ अधिक हैं। उसकी वायु से रोगी में प्राण आते हैं। परन्तु रोगी को प्रथम या द्वितीयावस्था तक वहाँ भेज देना चाहिये।

१—रोगी को सूर्य के प्रकाश में रखना चाहिये। इसके लिये उसे धूप में बिठाना चाहिये। रोगी निर्बल हो, तो उसको बिस्तर पर लेटाकर धूप में रख देना चाहिये। उसकी पीठ को नंगा कर देना चाहिये। यदि धूप बर्दास्त न हो, तो छाती और पीठ पर गीला या हरा कपड़ा डाल देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो नीला शीशा सामने रखना चाहिये, जिससे प्रकाश इस शीशे में से होकर जाय।

२—रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। विश्राम देने से रोगी का ताप-परिमाण अवश्य कम हो जाता है। खाँसने के श्रम से भी बचाना चाहिये। इसके लिये अफीम की गोली देना उत्तम है।

३—मल को निकालने के लिये त्वचा को उत्तेजित करना चाहिये। इसके लिये छाती पर कॉडलिवर ऑयल या चन्दनादि तैल मलना चाहिये। यदि रक्तस्राव होता हो, तो चन्दन, लाक्षाबलादि तैल अवश्य मलना चाहिये। इस तैल में लाक्षा होने से रक्त बन्द होगा, बला होने से शरीर को पुष्टि मिलेगी और चन्दन के होने से दाह की शान्ति होगी।

४—रोगी को यथासम्भव २४ घण्टे खुली वायु में रखा जाय। उत्तम है कि रात्रि को भी बाहर ही सुलाया जाय। ऊपर छत डालकर चारोंओर से खुला रखना चाहिये। साथ ही सीधी और ठंडी वायु से रोगी को बचाना चाहिये।

५—रोगी को प्राणायाम करना चाहिये। यह क्रिया लेटे-लेटे भी

उसको कराना चाहिये। साथ ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह थक न जाय।

६—भोजन में तीन बातें आवश्यक हैं—१—भोजन रोगी की रुचि के अनुसार होना चाहिये। २—रोगी जो खाय, वह पच जाय। ३—भोजन से रोगी की शक्ति बढ़े। साधारणतः दूध का उपयोग उत्तम है। बकरी का दूध सबसे उत्तम है।

आर्य-वैद्यक में इस रोग के लिये बकरी का दूध, उसका घी, उसका मांस सबसे उपयोगी माना है। कहा जाता है कि बकरी को क्षय-रोग नहीं होता। इसके अतिरिक्त खजूर और दूध को खाना भी उत्तम है। मटर की भाजी, दलिया देना भी उत्तम है। ज्यों-ज्यों रोगी की शक्ति बढ़ती जाय, उसी प्रकार भोजन भी बढ़ाते जाना चाहिये।

७—यदि रोगी को मलबन्ध हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इसके लिये कास्करा लिक्विड या हरीतकी-खण्ड, गुलकन्द देना चाहिये। यदि अतिसार हो, तो बिल्व, लोध्र, धातकी चूर्ण देना चाहिये।

अन्य उपाय—१—पका गूलर, कण्टकारी का फूल, वासकफूल और वंशलोचन मिलाकर मधु के साथ खाना चाहिये। २—वासक-छाल, मुलहठी, लाल चन्दन, लाक्षा, किशमिश, लोध्र, कटेरी और अर्जुनछाल प्रत्येक चार आना, आध सेर जल में काढ़ा करके जब दो छटाँक रह जाय, इसके साथ दो रत्ती अभ्रक मिलाकर पान करना चाहिये। ३—बहेड़ा-चूर्ण, गिलोय-चूर्ण, मुलहठी-चूर्ण, वंशलोचन, प्रवाल-भस्म, पिप्पली-चूर्ण प्रत्येक वस्तु सम-भाग लेकर मधु के साथ खाना चाहिये। ४—रस-सिन्दूर १, गेरू १, गन्धक २, भोजपत्र २, अनन्तमूल की छाल १, नागकेशर १, मोथा १, वासक-छाल १, पिप्पली १, वंशलोचन १, विडंग १, किशमिश ४, मिश्री ४, मोम २, पिण्ड-खर्जूर २, पुराना घी २, मधु आवश्यक मात्रा में मिलाना चाहिये। मात्रा—४ आना। इसको गरम दूध के साथ सेवन करना चाहिये। ५—मधु के साथ मिश्री और मक्खन मिलाकर खाने से या घी और मधु असमान भाग लेकर चाटना चाहिये, ऊपर से गरम दूध पीना चाहिये। ६—नागबला की जड़ को घी और मधु के साथ मिलाकर खाना चाहिये। ७—लाक्षा-रस २ तोला, मधु ६ माशा मिलाकर पीने से रक्तस्राव शान्त होता है। ८—चित्त-चन्द्रिरासव—मोथा, मिर्च, चविका, चित्रक, हल्दी, पिप्पली, विडंग, आँवला,

उशीर, छाड़छड़ीला, सुपारी, लोध्र, तमालपत्र, तेजपत्र, तगर, जटामांसी, देवदारु, दालचीनी, गुर्दा, नागकेसर, कुटकी, चन्दन प्रत्येक ८ माशा, धाय के फूल आध प्रस्थ, किशमिश ३ प्रस्थ, पुराना गुड़ १५ प्रस्थ, पानी २६ प्रस्थ। इनको मिलाकर घी से चिकने हुये मटके में १५ दिन तक रखना चाहिये। पीछे से मलकर छान लेना चाहिये। ९—उन्नाब को चार गुने जल में पकाकर जब आधा पानी रह जाय, तो इसमें छानकर शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। इससे कास, क्षय, रक्त-पित्त शान्त हो जाता है। १०—वासक-स्वरस को मधु के साथ अथवा स्वर्ण के वर्क को मधु के साथ तथा मक्खन में मिलाकर खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—शितोपलादि चूर्ण, स्वर्ण बसन्तमालती, वासावलेह, वासाखण्ड, सार्वभौम, सर्वाङ्गसुन्दर, च्यवनप्राश, अमृतप्राश घृत, छागलाद्य घृत, रत्नगर्भ पोटली, मुक्ता या प्रवाल-भस्म।

यूनानी उपाय—(१) कहरुवा २१ माशे, गिलेइरमानी, नशास्ता, गुलाब के फूल प्रत्येक १४ माशे, खुर्फा, सफेद चन्दन, घीया के बीज की मींगी, ककड़ी, खीरा के बीज की मींगी प्रत्येक ३५ माशे, गिले मख्तूम साढ़े दस माशे, मूँगा की जड़, कतीरा, वंशलोचन, शादनज मगसूल प्रत्येक साढ़े सत्तरह माशे, सभगअरबी, मुलहठी प्रत्येक साढ़े चौबीस माशे, कपूर ६ रत्ती, इनको बिहीदाने के लुआब में टिकिया बना लेनी चाहिये। (२) कहरुवे को गुलाबजल में बारीक करके ८ रत्ती की मात्रा मे मक्खन के साथ देने से रक्तस्राव रुक जाता है।

पथ्यापथ्य—मांस, मद्य, मूँग का जूस, जौ, जांगल मांस आदि खाने को देना चाहिये। चरक में इस रोग में मांस के लिये विशेष जोर दिया है। फलों का रस, पुराने चावल, पुराने मूँग की दाल का जूस, जौ देना चाहिये। बकरी या गाय का दूध, गधी का दूध देना चाहिये।

अपथ्य—स्त्री-सेवन, शोक, क्रोध, असूया, निन्दा करना, विरेचन, मलमूत्रादि का अवरोध, परिश्रम, स्वेद, रात्रि जागरण, विषम भोजन, कुलथी, हींग, कषाय द्रवों का सेवन, धूम्रपान, सवारी आदि अपथ्य हैं।

उरःक्षत

मुँह से रक्त कई कारणों से आ सकता है, जैसे—

१—यह रक्त गले या टौंसिल से आ सकता है। इस अवस्था में रक्त की मात्रा थोड़ी होती है। टौंसिल या गले में व्रण दिखाई देता है।

२—मसूड़ों से रक्त आ सकता है। इस रोग का कारण स्कर्वी है।

३—दाँत की जड़ में से रक्त आ सकता है।

४—नाक के पिछले भाग से आ सकता है।

५—फेफड़ों से रक्तस्राव का होना भयानक है। यह प्रायः क्षय-रोग का लक्षण है। झागदार, चमकता हुआ रक्त बलगम के साथ खाँसने से बाहर आता है। छाती में दर्द होता है। शरीर क्षीण हो जाता है। इसके कारण अतिश्रम, स्त्री-सेवन, बहुत बोलना, चिल्लाना, भागना, तैरना, खाँसना आदि हैं।

६—इसके अतिरिक्त आमाशय से भी रक्तस्राव होता है। यह प्रायः तब होता है, जबकि आमाशय में व्रण हो। इसलिये फेफड़ों से होनेवाले रक्त-पित्त में और आमाशय से होनेवाले रक्तस्राव में भेद करना चाहिये।

फेफड़ों से होनेवाला रक्तस्राव	आमाशय से होनेवाला रक्तस्राव
प्रायः श्वास में कठिनाई रहती है।	बेचैनी, जी मचलाना, कौड़ी-प्रदेश पर दर्द होता है, जो दबाने से बढ़ जाता है।
छाती में दर्द होता है।	
मुँह भर-भरकर रक्तस्राव होता है।	रक्त अधिक मात्रा में आता है।
रक्त झागदार होता है।	रक्त में झाग नहीं होती।
रक्त का रङ्ग चमकता हुआ लाल होता है।	रक्त का रङ्ग प्रायः काला-सा होता है।
रक्त लार से मिला होता है।	रक्त भोजन से मिला होता है।
मल के साथ रक्त बाहर नहीं आता।	रक्त प्रायः मल से मिला हुआ होता है।
खाँसी के लक्षण रोगी में होते हैं।	ये लक्षण नहीं होते।

उपाय—(१) बर्फ या नीबू का शर्बत, या चूने का पानी देना चाहिये। (२) वासक के स्वरस को मधु में मिलाकर देना चाहिये। (३) लाक्षारस मधु के साथ मिलाकर देना चाहिये। (४) मुलहठी, लालचन्दन दूध के साथ पीसकर पीना चाहिये। (५) कहरुवे का चूर्ण मक्खन में चाटना

उत्तम है। (६) धनिये के पानी में ईसबगोल का लुवाब मिश्री डालकर खाना चाहिये। (७) मोती-भस्म या प्रवाल-भस्म दोनों को मधु में मिलाकर या गुलकन्द के साथ खाना चाहिये। (८) कुष्माण्डावलेह, द्राक्षायवलेह खाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—स्वर्णबसन्तमालती, शितोपलादि-चूर्ण, कुष्मा-ण्डावलेह, अर्कहरायण, प्रवाल-पिष्ठि उपयोगी है।

पथ्यापथ्य—शीत भोजन, चावलों की खीर पकाकर खाना चाहिये। परवल का शाक इस रोग में उत्तम है।

प्रकरण चौथा

रक्ताशय-सम्बन्धी रोग

हृद्-रोग

हृद्-रोग—हृद्-रोग में हृदय के शब्द के अन्दर अन्तर आजाता है। इस अन्तर को एक योग्य चिकित्सक का कान ही पहचान सकता है। इसके अतिरिक्त और भी लक्षण उत्पन्न हो जाते है। जैसे—नाड़ी का अनियमित होना, हृदय में धड़कन होना, मूर्च्छा की ओर अभिरुचि होती है। छाती में भारीपन, श्वास में कठिनाई का होना, चेहरे का पीला होना, भुजाओं का ठंडा होना, बाम भुजा में दर्द का होना, टाँगों के ऊपर थोड़ी या बहुत सूजन हो जाती है। इनमें से कुछ लक्षण अजीर्ण के कारण भी हो जाते हैं, इसलिये विशेष योग्यता के बिना लक्षणों की पहचान, रोग का निर्णय भली प्रकार नहीं हो सकता। यदि बाम स्तन में दर्द या बेचैनी हो, (स्पष्टरूप में कोई कारण न प्रतीत हो, तो) बाम भुजा में दर्द हो, साथ ही ऊपर लिखे हुये लक्षण भी मिले हों, पाँव में थोड़ी-बहुत सूजन हो, तो भयानक रोग की आशङ्का करनी चाहिये, विशेषतः जबकि रुग्ण वृद्धा हो।

जिस समय यह लक्षण प्रतीत हो, उस समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये। १—हृदय के कार्य को कम करना चाहिये। रोगी को आराम से बिस्तर पर लेटना चाहिये, उत्तेजक औषधियों से बचना चाहिये, सहसा वायु-परिवर्त्तन से बचना चाहिये। २—हृदय के कार्य को नियमित करना चाहिये, मानसिक-श्रम से, शारीरिक-परिश्रम से बचना चाहिये। अधिक खान और अधिक पान से बचना चाहिये। अजीर्ण और मलबन्ध से बचना चाहिये।

हृदय की धड़कन—यह लक्षण बहुत साधारण है; परन्तु इसपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। इस रोग में हृदय का कार्य अनियमित हो जाता है, रोगी को बेचैनी और मूर्च्छा रहती है। साधारणतः यह रोग भया-

नक कारण से नहीं होता। इसका कारण प्रायः अजीर्ण, आध्मान या तम्बाकू है। यह रोग पाण्डु, हिस्टीरिया, नष्टार्त्तव और गर्भकाल में भी हो जाता है। हृदय की धड़कन हृदय के कारण से अथवा अन्य कारणों से भी हो सकता है।

हृदय के कारण होनेवाली हृदय की धड़कन	अन्य कारणों से होनेवाली धड़कन
प्रायः करके पुरुषों में होती है।	प्रायः करके स्त्रियों में होती है।
धीरे-धीरे होती है।	अचानक आक्रमण होता है।
लगातार रहती है, किसी समय अधिक हो जाती है और किसी समय कम।	रुक-रुककर आक्रमण होता है। कुछ समय के लिये बिलकुल अच्छी हो जाती है।
प्रायः इसके साथ बाम स्कन्ध में दर्द रहता है।	प्रायः करके पार्श्व में दर्द रहता है।
गाल और ओष्ठ पीले हो जाते हैं।	चेहरा पीला हो जाता है।
प्रायः ४५ वर्ष के पीछे होता है।	प्रायः करके युवाओं में होता है।
रोगी प्रायः शिकायत नहीं करता।	रोगी प्रायः शिकायत करता है।
हृदय का शब्द बदल जाता है।	हृदय का शब्द स्वस्थ रहता है।
परिश्रम से बढ़ जाता है।	बढ़ता नहीं; परन्तु व्यायाम से घट जाता है।

धड़कन को कम करने के लिये स्प्रिट अमोनिया एरोमैटिक को ६० बूँद पानी के साथ थोड़ी-सी शराब देनी चाहिये। मलबन्ध की चिकित्सा करनी चाहिये। मद्य, तम्बाकू, चाय आदि से बचना चाहिये।

एनजाईना पेक्टोरिस—इस रोग में दर्द दक्षिण स्कन्ध में रहता है। मूर्च्छा, श्वास में काठिन्य और बेचैनी रहती है। यह रोग प्रायः पुरुषों में ४० वर्ष की आयु से कमवाले व्यक्तियों में होता है। यह रोग स्वास्थ्य के नियमों का पालन न करने से, मस्तिष्क से अधिक काम लेने पर, गठिया या मधुमेह के कारण भी हो जाता है। इस रोग का तात्कालिक कारण वात-नाड़ियों की पीड़ा अथवा मुख्य रक्त-वाहिनियों का आकुञ्चन है। यह रोग किजी थकावट के कारण अथवा पहाड़ पर चढ़ने से

या भारी भोजन के कारण (विशेषतः रात्रि में) हो जाता है। इस रोग का आक्रमण रुक-रुककर होता है। यह रोग स्वयं कोई भयानक नहीं, परन्तु जब इस रोग का कारण किसी प्रकार का रचना-सम्बन्धी परिवर्त्तन होता है, तो यह रोग भयानक हो जाता है।

चिकित्सा—आक्रमण के समय रोगी को 'एमाईल नाइट्रेट' की कुछ बूँदें रुमाल पर डालकर सुँघाना चाहिये। साथ ही उत्तेजक, गरम औषधि (ब्रांडी आदि) तत्काल देना चाहिये। पीछे से अजीर्ण की चिकित्सा करनी चाहिये। आक्रमण अच्छा होने पर थकावट और चिंता से बचना चाहिये। भोजन हल्का सुपच करना चाहिये। आक्रमण के समय ब्रांडी या सैलवेाे लेटाइल पीना उत्तम है। यदि आक्रमण भोजन के पीछे हो, तो वमन देना चाहिये।

अन्य उपाय—(१) जटामांसी ४ आना, अर्जुनछाल ४ आना, अश्वगन्धा ४ आना, जीवन्ती ४ आना, शारिबा ४ आना, शालपर्णी ४ आना, सोंठ ४ आना, रेंड़ी की छाल ४ आना, दूध ½ सेर, जल ½ सेर, इनको पकाकर दूध बचाना चाहिये। इस दूध में ४-५ रत्ती पुराना घी मिलाकर पीना चाहिये। (२) इस पाचन के साथ १ रत्ती अभ्रक-भस्म, २ रत्ती बंशलोचन मिलाकर खाना चाहिये। (३) जटामांसी १ भरी, बला की जड़ ½ भरी, शालपर्णी की जड़ ½ भरी, गाय का दूध ½ सेर, पानी ½ सेर, पकाकर दूध बचा लेना चाहिये। (४) रेंड़ी की छाल ८ आना, गोखरू ४ आना, रास्ना ४ आना, अश्वगन्धा ८ आना, हरड़ ४ आना, जल ½ सेर काढ़ा करके २ छटाँक रखना चाहिये। (५) सोंठ का काढ़ा पीना चाहिये। (६) मृगशृंग को जलाकर गाय के घी के साथ खाना चाहिये। (७) तैल, घृत, गुड़ मिलाकर १ भाग, गेहूँ और अर्जुनछाल का चूर्ण मिलाकर ४ भाग मिलाकर गाढ़ा पाक करके खाना चाहिये। (८) पुष्कर-मूल-चूर्ण को मधु के साथ पान करना चाहिये। (९) चव्य, अम्ल, यवक्षार, हींग, चीतामूल समभाग चूर्ण करके तैल या कांजी के साथ पीना चाहिये। (१०) अर्ज्जुन छाल को घी के साथ चाटना चाहिये। (११) स्वल्प पंच-मूल को बला या मुलहठी के साथ मिलाकर काढ़ा के रूप में पीना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—नागार्जुनाभ, मकरध्वज, च्यवनप्राश, वृहत्-चिन्तामणि, हृदयार्णवरस, शृंग-भस्म, दशमूल-घृत, अर्ज्जुन-घृत, अश्व-गन्धारिष्ठ।

प्रकरण पाँचवाँ

पाचन-संस्थान-सम्बन्धी रोग

पाचन-संस्थान का प्रारम्भ मुँह से होता है और समाप्ति गुदा के अन्तिम भाग पर होती है। इसलिये मुँख के रोगों का समावेश भी इसी संस्थान में होना उचित है। परन्तु 'मुँह' इस शब्द के अन्दर ओष्ठ, जिह्वा, दाँत, तालु आदि अन्य अवयवों का भी समावेश होता है और इनके रोग भी पृथक्-पृथक् हैं। इस प्रकार से 'मुँह' के स्वयं इतने रोग बन जाते हैं कि उनका पृथक् प्रकरण बनाया जा सकता है। इसलिये मुँख-गुहा के रोगों को आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियों के रोगों में सभाविष्ट किया है।

मुखगुहा के पीछे अन्न-प्रणाली आती है। इसमें प्राय: बहुत कम रोग होते हैं। किसी वस्तु के अटकने से जो अवस्था उत्पन्न हो जाती है, उसकी चिकित्सा तात्कालिक चिकित्सा अध्याय में लिखी गई है।

अन्य प्रणाली के आगे आमाशय और आँत्र हैं। यकृत और प्लीहा भी पाचन-क्रिया में भाग लेने से वे पाचन-अवयव गिने जाते हैं। इसलिये उनके रोगों का भी इसी प्रकरण में समावेश किया जायगा।

आमाशय-रोग

१. **आमाशय-शोथ**—यह दो प्रकार की होती है, एक तीव्र और दूसरी पुरातन। इनमें तीव्र शोथ का कारण गरम, विदाही पदार्थों का सेवन करना है। जैसे—अधिक मसालों का खाना, मद्यपान, ताड़ी का सेवन, मछली, या विदग्ध सड़े हुये अथवा बासी पदार्थों को सेवन करने से आमाशय में तीव्र शोथ उत्पन्न हो जाता है। कई बार विष आदि के कारण भी आमाशय में दाह और शोथ हो जाती है।

लक्षण—छाती के दोनों किवाड़ जहाँ पर मिलते हैं, उस कौड़ी-प्रदेश पर दाह एवं दर्द प्रतीत होता है। जिह्वा का अग्र भाग लाल रहता है।

किनारे भी लाल हो जाते हैं। गालों पर ज़ख्म हो जाते हैं। नाड़ी छोटी और उतावली चलती है। पेट में कब्ज़ियत रहती है, चेहरा चिन्तातुर रहता है।

चिरकालीन शोथ—इस रोग के कारण वे ही हैं, जो तीव्र शोथ के हैं। यह रोग या तो तीव्र शोथ के पीछे बच जाता है, अथवा शनैः-शनैः उत्पन्न होता है। रोगी प्रथम इसके लक्षणों की उपेक्षा करता रहता है। पीछे से यही लक्षण स्थायी हो जाते हैं। रोगी को भोजन पचता नहीं। उसे बेचैनी रहती है, वमन होता है, कौड़ी के स्थान पर दर्द रहता है। रोगी की प्यास बढ़ जाती है। दबाने से दर्द बहुत होता है।

उपाय—आमाशय को आराम देना चाहिये। इसके लिये रोगी को लंघन कराना चाहिये। पीने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। यह द्रव भोजन शीतल होना चाहिये। जैसे, कासनी, नीलोफर का पानी, बिहीदाने का ईपवगोल का लुवाब देना चाहिये। इसके साथ ही शोथ को कम करने के लिये मृदु, विरेचक और पित्तशामक औषधियाँ देनी चाहिये।

मुष्टियोग—(१)पेट पर राई का लेप करना चाहिये। (२) कबूतर की विष्ठा या बकरी की मींग, शोरा, अलसी की पुल्टिस भी उत्तम है। (३) बर्फ की थैली रखनी चाहिये।

आर्य-चिकित्सा—यवक्षार या सर्जक्षार को गरम पानी के साथ देना चाहिये। एलादि चूर्ण या चन्दनादि चूर्ण देना चाहिये। शिवाक्षार पाचन का उपयोग और रात्रि में पेचसकार का उपयोग करना उत्तम है।

अनार्य-चिकित्सा—इस चिकित्सा में प्रायः 'एलकली' क्षार दिये जाते हैं। जैसे—सोडाबाई कार्ब, टार्टरिक एसिड, इनको पानी में घोलकर अधिक मात्रा में दिया जाता है। विरेचन के लिये सिटलिटिज़ पाउडर उत्तम औषधि है। साधारणतः साइट्रेट ऑफ़ मैगनेशिया (विशेषतः झागदार) या मिल्क ऑफ मैगनेशिया का व्यवहार किया जाता है। इनके कारण पित्त की तीक्ष्णता कम हो जाती है। सोडाबाई कार्ब, मैगनेशिया सल्फ इनको मिलाकर देने से अच्छा भी आराम होता है।

यूनानी चिकित्सा—१—कासनी की जड़, सौंफ की जड़, मुलहठी और सौंफ इनका काढ़ा करके उसमें गुलकन्द या अमलतास मिलाकर देना चाहिये। अमलतास पेट को नरम करता है। २—अजवायन के अर्क में ७ दिन तक बादाम का तेल मिलाकर देना चाहिये और पीछे से अकलीलुल-

भलिक का काढ़ा देना चाहिये। इस काढ़े में शर्बत जूफा या शर्बत नीलोफर को मिला लेना भी उत्तम है। पेट पर चन्दन का लेप करना चाहिये।

आमाशय-व्रण—इस रोग के वे ही कारण हैं, जो आमाशय-शोथ के हैं। इस रोग में रोगी का दर्द बढ़ जाता है। उसको वमन विशेष होता है। वमन भोजन खाने के आधा या १ घण्टे के पीछे होता है। इसमें थोड़ा-सा रक्त मिला रहता है। भोजन करने पर कुछ आराम होता है। रोगी को बेचैनी रहती है। दर्द के स्थान पर हाथ लगाने नहीं देता। यह रोग प्राय: स्त्रियों में मिलता है। वह भी ३० साल के पीछे।

उपाय—रोगी को द्रव भोजन देना चाहिये। बर्फ चूसने के लिये देनी चाहिये। पेट पर बर्फ की थैली रखनी चाहिये। रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये, अर्थात् लिटाये रखना चाहिये। अलसी की पुल्टिस का कौड़ी-प्रदेश पर बाँधना भी उत्तम है। दर्द बहुत होता हो, तो तारपीन के तेल का सेंक करना चाहिये।

आर्य-चिकित्सा—१—वासा-खण्ड, कुष्माण्डावलेह, अथवा वासा-रस मधु के साथ, अथवा दूर्वा-रस शहद के साथ थोड़ा-थोड़ा करके देना चाहिये। २—लाक्षा का चूर्ण ६ माशे मधु और घी के साथ खाना चाहिये। ३—खजूर, मुनक्का, मुलहठी, फालसा, इनके काढ़े में शर्करा मिलाकर पीना चाहिये। ४—खी वेरादि क्वाथ, धान्यकादि क्वाथ उत्तम है। सुधानिधि रस, समशर्कर लौह, खण्ड-खाद्य लौह भी प्रयोग करने चाहियें।

अनार्य-चिकित्सा—गैलिक एसिड १५ ग्रेन पानी में मिलाकर एक-एक घण्टे के अन्तर से देनी चाहिये। टिंचर ऑफ स्टील या हैजेलिन का उपयोग करना चाहिये। ये वस्तुयें रक्तस्तम्भक हैं।

यूनानी चिकित्सा—१—हीरादूखी गोंद, अनार के फूल, कहरवा, गिलेइरमानी, गुलाब के फूल, इनका चूर्ण देना चाहिये। २—बंशलोचन, गुलाब के फूल, चूका के बीज, इनको काली गाय के मट्ठे के साथ देना चाहिये।

विशेष द्रष्टव्य—आमाशय-शोथ या आमाशय-व्रण के लिये आर्य-चिकित्सा में सबसे उत्तम वस्तु लौह-भस्म है। लोगों का विचार है कि यह भारी है, कब्जियत करती है। परन्तु उत्तम बनी हुई लोह-भस्म इन दोषों से रहित होती है। उत्तम लोह-भस्म पानी पर तैरती है। यदि यह उचित विधि

से दी जाय, तो आमाशय के असाध्य रोगों को भी लाभ करती है। लोह-भस्म को त्रिफला या मधु या मक्खन के साथ देना चाहिये। लौह देने से रोगी की शक्ति बनी रहती है। दूध आदि द्रव पदार्थ देने से जो पोषण में न्यूनता रहती है, वह इसके द्वारा पूरी हो जाती है। दूध और जीवन (च्यवन-प्राश) रोगी को दिया जाय। इसके साथ दूध, त्रिफला या लौह दिया जाय, तो और भी उत्तम है।

पथ्य—जौ का पानी इन दोनों रोगों में उत्तम है। इस पानी से रोगी को अधिक मात्रा में पोषण मिल जाता है। प्यास को कम करने के लिये बर्फ का टुकड़ा या गीला कपड़ा चूसते रहना चाहिये। कांजी, दलिया आदि हल्की खुराक भी रोगी को दी जा सकती है। यदि भूख असह्य हो, तो भुने हुये चावल या कमलकाकड़ी की खीर देनी चाहिये। चूने का पानी सब अवस्थाओं में उत्तम है। मसाला, मद्य, गरिष्ट भोजन, मांस ये सब वस्तुयें इन रोगों में अपथ्य हैं।

मन्दाग्नि—भूख न लगने की शिकायत अमूमन सुनने में आती है। भूख न लगने के कई कारण हैं। परन्तु मुख्य कारण आमाशय-रस का उत्पन्न न होना है। आर्य-चिकित्सा में इस रोग के चार भेद किये हैं—१—कफ के कारण अग्नि-मन्द हो, तो इसको 'मन्दाग्नि' कहते हैं। २—पित्त के कारण जब अग्नि तीव्र होती है, इसको 'तीक्ष्णाग्नि' कहते हैं। ३—वायु के कारण जब अग्नि में विषमता आजाती है, तो 'विषमाग्नि' कहते हैं। ४—और जो अग्नि समान रहती है, उसको 'समाग्नि' कहते हैं।

वास्तव में यह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं, अपितु रोगों का लक्षण है। परन्तु चूँकि यह शिकायत अमूमन सुनने में आती है, इसलिये यहाँ पर इसको अलग लिखा गया है।

उपाय—(मुष्टि-योग)—१—हरीतकी को सोंठ और गुड़ अथवा सैन्धव के साथ खाने से अग्नि बढ़ती है। २—प्रातःकाल यवक्षार-चूर्ण, शुंठी चूर्ण अथवा केवल शुण्ठी-चूर्ण घृत के साथ सेवन करने पर और उष्ण जल पीने से क्षुधा बढ़ती है। ३—हींग, सौवर्चल लवण को गरम अन्नमण्ड के साथ पान करने से विषम अग्नि सम होती है और मन्दाग्नि प्रदीप्त होती है। ४—गरम पानी में नीबू का रस पीना उत्तम है। ५—नमक और आर्द्रक

का खाना भी उपयोगी है । ६—कैथ, चोगेरी मिर्च, अजवायन, जीरा, चित्रक इन सबका चूर्ण गरम पानी में लेने पर अग्नि दीप्त होती है ।

आर्यचिकित्सा—अग्निकुमार-रस, क्षुधावती-गुटिका, भास्कर-लवण, हिंग्वाष्टक ।

अनार्य-चिकित्सा—भूख न लगने पर अम्ल भोजन से पूर्व दिये जाते हैं । इसके लिये हाइड्रोक्लोरिक एसिड डाइल्यूट १० से १५ बूँद भोजन से आध घंटा पहले देना चाहिये । इसके अतिरिक्त टाका डायस्टेज अकेला या पैपीन अथवा पैप्पसीन के साथ बरता जाता है । भोजन के पीछे कटु, तिक्त, पाचन, जैसे, कोलम्बा, चिरायता, जैन्शन आदि दिये जाते हैं । साधारणत: ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे आमाशय अपना कार्य आरम्भ कर दे ।

यूनानी चिकित्सा—१ सेर बिही का पानी, आधा सेर पुराना सिरका, सोंठ ७० माशे और शहद यथायोग्य मिलाकर शिकञ्जबीन बना लेनी चाहिये । २—काली हरड़ गौ के घी में भुनी हुई ३५ माशे, भूना हुआ हालून १७½ माशे, अजवायन सातों प्रत्येक १०½ माशे, मण्डूर-भस्म ३५ माशे, इनको महीन पीसकर द्राक्षासव के साथ लेना चाहिये । इसको दवाउल जरश्क कहते हैं । मात्रा ७ माशे है । ३—अनार के फूल, मस्तगी प्रत्येक १३½ माशे, अफसन्तीन एलुवा ९ माशे, गुलाब के फूल २२½ माशे, लौंग, नागरमोथा, बालछड़ प्रत्येक ७ माशे, इनको शराब में मिलाकर लेप करे । ४—माजून फलामका—त्रिफला, गुग्गुलु, पिप्पली, तुर्बद, बादाम के तेल में चिकना करके १४ माशे, चीता ४२ माशे इनको मिलाकर बूरा डालकर माजून बना लेना चाहिये ।

पथ्य—इस रोग में शारीरिक व्यायाम विशेषत: कोष्ठ के व्यायाम अधिक लाभदायक हैं । गरम पानी का प्रात: पीना उत्तम है । भोजन हल्का, मूँग का पानी और मोटा आटा खाना चाहिये । छानकर उपयोग करना इस रोग में उत्तम है । गरिष्ठ भोजन हानिकारक है । हल्का मद्य, आसव, अरिष्ट इसमें लाभ देते हैं ।

भस्मक—यह एक विचित्र प्रकार का लक्षण है । इसमें रोगी की भूख या भोजन की रुचि आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है । वह जो खाता है, मिट्टी हो जाता है । उसका रस उसके शरीर में लाभ नहीं करता । यह

अवस्था प्रायः मधुमेह के रोगी में हो जाती है। उसकी भूख और प्यास बहुत बढ़ जाती है। इस रोग में रोगी खाते हुये भी निर्बल हो जाता है।

उपाय—गरिष्ठ भोजन, जैसे, भेड़ का घी, अपामार्ग के चावलों की खीर, भैंस के दूध में केला मिलाकर खाना उत्तम है। श्वेत कमल, चावल, कमलकाकड़ी इनको भेड़ के दूध में पकाकर खाना चाहिये।

यूनानी उपाय—१—गिलेइरमानी, खुर्फा के बीज, खिया के बीज, ककड़ी के बीज, यवक्षार, सभग अरबी, इनमें से किसीके आधे भाग पिस्ते की मींगी और सबके बराबर तिल मिलाकर भेड़ के घी में टिकिया बनावे। इससे सात दिन तक भूख नहीं लगती। २—बनफसे के तेल में मोम मिलाकर खिलाना भी लाभदायक है। ३—पिस्ता, बादाम इनको तिल्ली के तेल में मिलाकर, उसमें बूरा मिलाकर, हलुवा बनाकर खाना चाहिये।

अजीर्ण

अजीर्ण का रोग बहुत सामान्य है। साथ ही शरीर के बहुत-से रोगों का मूल कारण भी यही रोग है। इसलिये शरीर में किसी प्रकार के अजीर्ण की शिकायत होने पर तुरन्त इसका उपाय करना चाहिये। शरीर की स्थिति आहार के ऊपर है। यदि आहार का पाचन भली प्रकार नहीं होगा, तो शरीर निर्बल रह जाता है।

कारण—अजीर्ण के कारणों से शायद ही कोई आदमी अनभिज्ञ होगा। पाचन-शक्ति को अधिक भोजन लेने पर, बहुत या असमय पर मिष्ठान्न खाने से, पूर्व भोजन के पचे बिना अन्य भोजन करने से, भोजन का अव्यवस्थित समय रखने से, इस रोग की उत्पत्ति होनी प्रारम्भ होती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक सभ्यता की वस्तुओं के उपयोग से, जैसे, चाकलेट आदि मिठाई का खाना, बर्फ या सोडावाटर का उपयोग, चाय और बिस्कुट का बारबार खाना तथा अव्यवस्थित जीवन के बिताने से यथा रात्रि में १२—१ बजे सोना और प्रातः ८ या ९ बजे उठना, और उठते ही बिना मुँह साफ़ किये बिस्कुट, चाय का खाना तथा अन्य मानसिक कारणों से इस रोग की उत्पत्ति होती है। दारू, भाँग, गाँजा, तम्बाकू का सेवन, अति वीर्य-नाश आदि कारण भी इस रोग की उत्पत्ति में सहायक बनते हैं।

लक्षण—किसीको मलबन्ध रहता है, किसीको अतिसार हो जाता है। मल में अपच पदार्थ बाहर आता है। भूख कम हो जाती है, मुँह में फीकापन या चिकनापन आजाता है, खट्टे डकार आते हैं, छाती में दर्द और दाह होती है, पेट में मीठी-मीठी चिबुक प्रतीत होती है, अपानवायु बन्द रहती है या बहुत दुर्गन्धयुक्त होती है। रोगी को प्रतीत होता है कि उसको बुखार है। किसी काम में रुचि उत्पन्न नहीं होती। निद्रा गम्भीर और शान्त नहीं होती। रोगी बेचैनी अनुभव करता है। रोगी धीरे-धीरे निर्बल होता जाता है। जिह्वा मैली रहती है। शिर में भारीपन या दर्द की शिकायत रोगी किया करता है।

भेद—आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में अजीर्ण-रोग के भेद निम्न प्रकार से किये हैं—

१. **आमाजीर्ण**--यह रोग कफ से होता है। इसके कारण अग्नि मन्द रहती है। शरीर में भारीपन, उद्गार, डकारों का आना, आँखों की पलकों के ऊपर शोथ, खाये हुये अन्न की श्वास में गन्ध रहती है।

२. **विदग्धाजीर्ण**—भ्रम, प्यास, मूर्च्छा, संताप, दाह, खट्टे डकार आते हैं। रोगी को पसीना भी अधिक आता है। ये लक्षण पित्त के होते हैं।

३. **विष्टब्धाजीर्ण**—वायु से उत्पन्न होता है। इसमें शूल, अफारा, मल तथा अधोवायु का अवरोध रहता है। शरीर में दर्द होता रहता है।

४. **रस-शेषाजीर्ण**—इसका अभिप्राय यह है कि आमाशय में रस की उत्पत्ति विशेषरूप से अधिक होती है। भोजन के आमाशय से निकल जाने के पीछे भी यह रस आमाशय में बचा रहता है। इसका रंग श्वेत कफ के समान होता है। इसको साधारणतः 'काईल' कहा जाता है। इस अजीर्ण के कारण भोजन में अरुचि या अनिच्छा रहती है।

पीछे जो मन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, विषमाग्नि और समाग्नि—ये चार भेद अग्नि के दिखाये गये हैं, इनके भी कारण वात, पित्त और कफ हैं। वायु के कारण अग्नि के अन्दर विषमता आजाती है। अर्थात् किसी समय तक अग्नि भोजन को भली प्रकार जीर्ण करती है और किसी समय जीर्ण नहीं करती। पित्त के कारण अग्नि तीक्ष्ण हो जाती है, अर्थात मात्रा से अधिक खूराक को पचाती है। इसका परिणाम-स्वरूप 'भस्मक-रोग' उत्पन्न होता है।

कफ के कारण अग्नि मन्द हो जाती है, अर्थात् वह मात्रा से न्यून भोजन का पाक करती है। समाग्नि वह है, जो उचित मात्रा में भुक्त भोजन को उचितरूप में जीर्ण करती है। इसलिये समाग्नि पुरुष सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।

उपद्रव—अजीर्ण-रोग के तीन उपद्रव विशेष हैं—१. विसूचिका, २. अलसक और ३. विलम्बिका।

१—विसूचिका-रोग में दोष—मुख और आंत्र दोनों मार्गों से विशेष रूप में बाहर निकलते हैं। इससे रोगी को वमन और अतिसार हो जाता है।

२—अलसक—इस रोग में अपानवायु रुक जाती है। दोष न तो मुख के रास्ते से बाहर निकलते हैं और न आंत्र के रास्ते से। पेट में रुककर आध्मान उत्पन्न कर देते हैं। रोगी के श्वास में काठिन्य उत्पन्न हो जाता है। उदर की मांस-पेशियों के तनने से पेट में दर्द रहता है। पेट फूला हुआ नज़र आता है।

३—विलम्बिका—इसके अन्दर अपानवायु बाहर नहीं आती। पेट पर दबाने से दर्द मालूम होता है।

उपाय—(मुष्टि-योग)—इस रोग में धारक औषधि न देकर पाचक और ईषत-धारक औषधि दोनों गुणयुक्त औषधि देनी चाहिये।

१—आध छटाँक मोरी को १॥ पाव जल में १॥ घण्टे तक भिगोकर मलकर छान लेना चाहिये। इसमें आधा छटाँक चूने का जल और एक कागज़ी नीबू का रस मिलाकर दिन में तीन-चार बार पीना चाहिये।

२—मोथा, सैन्धव नमक, आमरूल शाक, इनको आग पर गरम करके ठण्डा होने पर इनका रस निकालकर खाने से लाभ होता है।

३—लवंग, विट्लवण, मोरी, अजवायन इनको समान भाग लेकर नीबू के रस में बेर की गुठली के बराबर गोली बनाना चाहिये। इसके सेवन से लाभ होता है।

४—कागज़ी नीबू का रस विट्लवण या सैन्धव लवण के साथ अथवा कौड़ी-भस्म का सेवन करने से यथेष्ट उपकार होता है। काली हरड़, सोंठ, सेंधानमक की फाँकी गरम पानी से लेनी चाहिये।

६—हरड़ को सोंठ और सैंधव के साथ, शीतल जल के साथ खाना चाहिये।

७—सोंठ या जीरे को या हरड़ को गुड़ के साथ खाना चाहिये।

८—पिप्पली, सैंधव, बच इनके चूर्ण को शीतल जल के साथ पान करने से आमाजीर्ण नष्ट होता है।

९—हींग, त्रिकटु और सैंधव इनको पेट पर लेप करने से आराम होता है।

१०—किशमिश, हरीतकी इनको शर्करा और मधु के साथ लेप करने से विदग्धाजीर्ण को आराम होता है।

११—अजवायन तथा संचल नमक की फाँकी अजीर्ण तथा अफारे को मिटाती है।

शास्त्रीय औषधि—बज्रक्षार, अग्निकुमार, लवंगादिवटी, भास्कर-लवण, अग्नितुण्डीवटी, अग्निमुख-चूर्ण, बड़वानल-चूर्ण, अजीर्णकण्टक-रस।

अनार्य-चिकित्सा—भोजन से पूर्व या पीछे (भूख न लगने पर पहले, रस-शेषाजीर्ण में पीछे) एसिड हाइड्रोक्लोरिक डाइल्यूट, सोडाबाई कार्ब या सल्फो कार्ब्बनास का उपयोग करना चाहिये। एसिड नाइट्रोम्युटेरिक, टिंचर जैन्शन या कौलम्बा भी उपयोगी है। कैप्सीसाई, नैक्सवोमिका, पैपीन, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक, चिरायता, ओयलम कैरोफलाई या मैन्था प्रिपेरेटा उत्तम है। प्रायः कटु तिक्त औषधि भोजन की क्षुधा को बढ़ाती है।

पथ्यापथ्य—सबसे प्रथम रोगी को लंघन कराना चाहिये। लंघन के पीछे गरम पानी या जौ का पानी अथवा सादा पानी विशेषरूप से देना चाहिये। पानी के देने से आमाशय, आंत्र आदि का प्रक्षालन हो जाता है। पीछे से नीबू का रस पानी में मिलाकर पीना चाहिये। रसशेषाजीर्ण में सोना उत्तम है, विष्टब्धाजीर्ण में पेट पर सेंक करना चाहिये। खाने के लिये हल्का, सुपच भोजन करना चाहिये, जैसे—मूँग का पानी, कांजी, परवल, वृंताक, करेला, आँवला, पोदीना, सोंठ आदि तिक्त पदार्थ, जिनसे अग्नि प्रदीप्त हो।

यह स्मरण रखना चाहिये कि यह रोग प्रथम सुगमता से आराम हो जाता है; परन्तु पीछे से स्थायी रूप धारण कर लेता है, तब असाध्य या कृच्छ्रसाध्य हो जाता है।

पुरातन अजीर्ण

यह रोग मुख्यत: शारीरिक निर्बलता के कारण होता है, अथवा लगातार बहुत दिनों तक अमीरी और ऐय्याशी जीवन व्यतीत करने से, या लगातार बैठकर काम करने से, जिससे आंतों पर दबाव होता रहता है, यह रोग हो जाता है। व्यायाम का न करना, अपूर्ण या अशुद्ध वातायनवाले या भीड़वाले घरों में सोना, अशुद्ध वायु या अन्य कारण, जिनसे पाचन में विकार आजाय, इस रोग को उत्पन्न करते हैं। मस्तिष्क के ऊपर किसी प्रकार का दबाव, कार्य का अधिक होना भी पुरातन अजीर्ण को उत्पन्न कर देता है। तम्बाकू का अधिक सेवन करना, इस रोग में कारण बनता है। इसी प्रकार दाँतों के रोग, दूषित दाँत, पीव-युक्त मसूड़े भी पाचन-क्रिया को बिगाड़ देते हैं। पेट पर कसकर वस्त्र पहनना, जिससे यकृत, आंत्र या आमाशय पर दबाव रहे, पाचन-क्रिया में बाधा उत्पन्न कर देता है। स्त्रियों में यह रोग अधिकतर गर्भाशय-विकार के परिणाम-स्वरूप होता है। कृमियों के कारण भी रोग का जन्म हो जाता है।

लक्षण—पुरातन अजीर्ण में आमाशय, यकृत और आंत्रों में विकार आजाता है। रोगी का आमाशयिक रस बढ़ जाता है, या घट जाता है, अथवा उसके गुणों में अन्तर आजाता है। रोगी को खट्टे डकार आते रहते हैं। उसको शुष्क कास आता है, जिसका कारण काकवा का बढ़ना होता है। प्रातःकाल मुँह से लार का स्राव होता है अथवा वमन हो जाता है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता रहता है कि उसका आमाशय फूल रहा है। लगातार आक्रमणों के कारण आमाशय की नाड़ियाँ भी विक्षुब्ध हो जाती हैं; जिसके कारण रोगी दर्द का अनुभव करता है। यह दर्द चुभता हुआ या दाह-युक्त होता है। भोजन के खाने से कुछ घट जाता है, रोगी को प्यास रहती है। यह इच्छा रोगी को अधिक खाने या पीने की ओर प्रवृत्त करती है। इसका परिणाम यह होता है कि रोगी का रोग बढ़ता जाता है। कौड़ी-प्रदेश पर दबाने से दर्द और चुभती हुई शूल रहती है। कन्धों में, पीठ में दर्द की लहर चलती प्रतीत होती है, विशेषत: जिन व्यक्तियों में यकृत की शिकायत रहती है। छाती में दर्द, हृदय की धड़कन आदि लक्षण हृदय-रोग का भ्रम करा देते हैं। मूत्र गरम, गाढ़ा, गँदला होता है। इसमें कुछ लाल निक्षेप भी

दिखाई देते हैं। ।मांस-पेशियों की क्रिया मंद पड़ जाती है। इससे आमाशय की पेशियों में भी संकोच घट।जाता है। इन सब कारणों से भोजन आमाशय में रुकने लगता है, जिससे इसमें विदाह उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता है। इस विदग्धता के कारण इसमें से अण्डों के सड़ने की गन्ध आने लगती है। इस अधपचे भोजन का वमन भी हो जाता है। यह विदाध या अनपचा भोजन जब आंतों में पहुँचता है, तो उनमें विदाह उत्पन्न करता है, आंतों को फैला देता है, आंतों में वायु के भर जाने से दर्द उत्पन्न होता है और कभी-कभी अतिसार भी हो जाता है। जिह्वा किनारों पर से लाल और मध्य में मैली होती है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा-औषधियों का मूल्य उतना नहीं है, जितना भोजन और स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का है। भोजन की राशि का निश्चय सबसे प्रथम करना चाहिये कि आमाशय कितने भोजन को ले सकता है। रोगी को चाहिये कि भोजन शनैः-शनैः चबाकर खाये और जबतक भोजन जीर्ण न हो जाय, दूसरी बार भोजन न करना चाहिये। दो भोजनों के बीच में कम से कम ६ घंटे का अन्तर होना आवश्यक है। आमाशय को अवश्य विश्राम मिलना चाहिये। भोजन से ठीक पूर्व या पीछे किसी भी प्रकार का शारीरिक या मानसिक श्रम नहीं करना चाहिये। आलू आदि वायुकारक वस्तुओं से तथा गरिष्ठ भोजनों से बचना चाहिये। शर्करा या निशास्ते का उपयोग यथासम्भव कम करना चाहिये। उत्तेजक या गरम वस्तुओं या बर्फ जैसी ठण्डी वस्तुओं से रोगी के आमाशय को बचाना चाहिये। चाय, कॉफी, या मद्य, मसाले ये सब वस्तुयें रोगी के लिये हानिकारक हैं। रोगी के आमाशय को पूर्ण विश्राम देना आवश्यक है, बिना भोजन के २४ घण्टे तक न तो कोई बच्चा ही मरता है, न कोई जवान व्यक्ति ही। रोग के नये आक्रमण में यदि प्रथम वमन दे दिया जाय, तो रोगी को बहुत कुछ आराम हो जाता है। यदि रोग आमाशय से आगे बढ़ गया है, तो विरेचन की आवश्यकता होती है। आमाशय का धोना इस रोग में अत्यन्त हितकर है। इसके लिये रोगी को पानी यथेष्ट मात्रा में पिलाना चाहिये।

स्वास्थ्य-सम्बन्धी चिकित्सा के लिये स्नान, व्यायाम, घूमना, खुला

वायु में जीवन व्यतीत करना उत्तम है । इन रोगियों के लिये चश्मों का पानी भी लाभदायक होता है, जैसे—विशीवाटर, एपैन्टा, स्पा, हैरोगेट आदि ।

यूनानी चिकित्सा—१—जवारिश जरिश्क—लौंग, मस्तगी, बालछड़, प्रत्येक १½ माशे, अगर, तेजपात, ब्राह्मी, जर्नब, नागरमोथा, दालचीनी प्रत्येक ३॥ माशे, छोटी इलायची के दाने, जरिश्क, गुलाब के फूल, गावजबाँ, प्रत्येक ७॥ माशे, श्वेत बूरा सबसे तिगुना ले चासनी बनाकर जवारिश बना लेना चाहिये । २—चार नीबू का रस, तेजपात, ब्राह्मी, तज, बालछड़, प्रत्येक ३॥ माशे, गुलाब के फूल, छोटी और बड़ी इलायची, प्रत्येक ७ माशे, सबसे तिगुनी शर्करा मिलाकर चटनी बना लेना चाहिये । ३—हरड़ का उपयोग नमक के साथ करना उत्तम है । ४—केसर, सोंठ, पिप्पली, जायफल, प्रत्येक ३॥ माशे; बालछड़, बड़ी इलायची, विषवास, जावित्री प्रत्येक ७ माशे; लौंग, मस्तगी प्रत्येक १०॥ माशे, इनको शहद में मिलाकर जवारिश बनाये । इसको जवारिश ऊद कहते हैं । निर्बल आमाशय को शक्ति देने के लिये एक उत्तम औषधि है । रोगियों के लिये कुछ निर्देश—

(१) गरम चाय या कॉफी अथवा सोडा, लैमन, विमटो आदि कोल्ड या हॉट ड्रिंक से सर्वथा बचना चाहिये ।

(२) बिस्कुट, चाकलेट, मिठाई या अन्य बारीक मैदेवाली वस्तुओं को छोड़ देना चाहिये ।

(३) भोजन के साथ पानी या द्रव भोजन सर्वथा नहीं लेना चाहिये ।

(४) भोजन का समय निश्चित रखना चाहिये । उत्तम है कि दो समय ही भोजन किया जाय ।

(५) भोजन सख्त होना चाहिये, जिसको चबाने की आवश्यकता प्रतीत हो ।

(६) तम्बाकू, मद्य आदि वस्तुओं को छोड़ देना चाहिये ।

(७) भोजन के पीछे घूमना चाहिये ।

(८) प्रातःकाल उठते ही एक गिलास पानी पीना चाहिये । रात्रि का भोजन सोने से ३ या ४ घंटे पहले कर लेना चाहिये ।

(९) पानी का उपयोग यथेष्ट करना चाहिये ।

मलबंध

आंतों में अवरोध या रुकावट होने की अभिरुचि कई व्यक्तियों में (विशेषत: युवतियों में) होती है। इस अवरोध के कई कारण हैं, जिनका सम्बन्ध यकृत या आंतों के विकार से होता है। साधारणत: २४ घंटे में एक बार मल-त्याग की अभिरुचि होनी आवश्यक है। यदि इस तरह से न हो, तो अस्वास्थ्य के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। मलबन्ध के लिये औषधि-चिकित्सा उपयोगी नहीं होती। इसके लिये व्यायाम, फलों का सेवन, पानी का उपयोग लाभदायक है।

यकृत की खराबी से जब मलबन्ध होता है, तब यकृत की शोथ के थोड़े या बहुत लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इसकी चिकित्सा भी उसी प्रकार की है।

सूक्ष्मांत्रों के विकार के कारण जब मलबन्ध हो, उस समय 'मल' की राशि साधारण होती है। मल शुष्क, रंग में फीका जबकि यकृत में शोथ हो। शिर के पिछले भाग में मन्द दर्द रहता है। जिह्वा किनारों पर और आगे से लाल दिखाई देती है। मुँह लिसलिसा रहता है, काम करने में अनिच्छा, भोजन में अरुचि, थोड़ा या बहुत आध्मान और प्राय: मीठा दर्द रहता है। यह रूप प्राय: वहाँ मिलती हैं, जहाँ मलेरिया विशेषत: होता है। इन रोगियों को विरेचन अधिक लाभ नहीं करता।

पानी का उपयोग अधिक मात्रा में करना चाहिये। प्रात:काल उठते ही गरम या ठण्डे पानी का एक गिलास पीना लाभदायक है। सेंधा नमक या सोडा सल्फ २ ड्राम पानी में प्रात: पीना भी अच्छा है। एपैन्टा वाटर का उपयोग करना सबसे उत्तम है। फलों का खाना भी उत्तम है। नियमित व्यायाम, घूमना इस रोग को शान्त करते हैं। वायुकारक सब्जियाँ इस रोग में हानिकारक हैं। एरण्ड तैल, सनाय, कास्करा सैगरेटा का उपयोग उत्तम है।

जिस समय वृहदांत्रों में दोष होता है, उस समय जिह्वा मैली, भूरी, श्वास दुर्गन्धि-युक्त, चेहरा कुछ शोथ-युक्त, और कभी-कभी कामला भी होता है। समय-समय पर मीठा दर्द होता है। इन रोगियों में अर्श का होना प्राय:

होता है। जिस समय मल प्रथम काला आता है, उस समय प्रथम भाग बहुत कड़ा होता है और पिछला भाग बहुत नर्म होता है। कई बार कड़े मल के कारण आँतों में विक्षोभ होकर अतिसार आरम्भ हो जाता है, और इस अतिसार का भ्रम हो जाने से स्तम्भक औषधि अधिक विकार उत्पन्न कर देती है।

अन्य कारण—१—मल-मूत्र या अपान वायु के रोकने से यह रोग उत्पन्न होता है।

२—आँतों के किसी भाग में संकोच हो जाने से दस्त साफ नहीं आता। यह सङ्कोच स्वयं हो या आँतों के बाहर के दबाव से हो, यथा गर्भाशय में गर्भ के बढ़ने से या प्लीहा के बढ़ने पर मलबन्ध हो जाता है।

३—वृद्धावस्था के कारण या अन्य कारणों से शरीर में निर्बलता आने से आँतों के स्नायु भी शिथिल हो जायँ, जिससे आँतों की जल-तरङ्ग-गति मन्द पड़ जाय। इस गति के मन्द होने से मल की गाँठें वहाँ रुक जाती हैं, अफारा चढ़ जाता है।

४—लगातार एक स्थान पर एक आसन से बैठे रहने से भी मलबन्ध हो जाता है।

५—दारू और तम्बाकू के खाने से मलबन्ध हो जाता है।

उपाय—साधारणतः कभी अचानक मिथ्या आहार-विहार से यदि मलबन्ध हो जाय, तो बादाम के तेल में अमलतास का गूदा मिलाकर, या निशोथ के चूर्ण को शर्करा के शरबत के साथ, या त्रिफला, सनाय, जैलप, विलायती नमक अथवा पञ्चसकार का चूर्ण लेना चाहिये। साधारणतः मलावरोध की चिकित्सा के लिये निम्न विधियाँ उत्तम हैं—

(१) सलमूनिया दो दिरम, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, सोंठ, दालचीनी, तज, लौंग, काली मिर्च नागमुश्क, प्रत्येक ५ दिरम, लालखाँड़, निशोथ प्रत्येक १० मिश्काल, शहद आवश्यकतानुसार मिलाना चाहिये।

(२) रेवतचीनी, स्वर्णमुखी, कालादाना, विडङ्ग समभाग लेकर दुगुना गुलकन्द मिलाकर बेर के समान गोली बनाकर खाना चाहिये।

(३) साधारणतः दूध का लगातार अभ्यास और पानी पीकर घूमना या व्यायाम करना; विशेषतः आँतों का व्यायाम करना उत्तम है। बड़ी हरड़, बिडलवण, मुसव्वर इनको रात्रि में सेवन करने से मल साफ होता है।

(४) मलावरोध की चिकित्सा में कभी भी तीव्र विरेचक औषधि नहीं देनी चाहिये। गुलाब के फूल, बनफसा, मकोय, नीलोफर, ककड़ी, खीरे के बीज, खतमी के बीज, बाबूना, भूसी, जौ प्रत्येक ७ दिरम; उन्नाब १० दाने लिसोड़ा २० दाने, इन सबको उबालकर छान ले। इसमें अमलतास का गूदा मिलाकर वस्ति देना चाहिये।

(५) रेशाखतमी, शीरेखिस्त, सौंफ, मुनक्का, अञ्जीर, सनाय का उपयोग करना चाहिये।

(६) आर्य-चिकित्सा में—कास्करा सैगरैटा, लिक्विड पैराफीन, (एगोल, पेट्रोगोल, कैलोल आदि पेटेन्ट वस्तुयें) एरण्डतैल का उपयोग सुगमता से किया जा सकता है।

शास्त्रीय औषधियों में—हरीतकी खंड, गुलकन्द त्रिवृतादि अवलेह, इत्रिफल उत्तम है। कालीद्राक्षा और सनाय को पीसकर गोली बना लेनी चाहिये।

एनिमा—लोगों की यह मान्यता है कि मलबन्ध के रोगी में वस्ति का उपयोग सदा ही उत्तम है; परन्तु इसकी आदत पड़ने पर आँतें निर्बल हो जाती हैं। यदि आवश्यक ही हो, तो शीत पानी की वस्ति लेना चाहिये। परन्तु उत्तम यही है कि पानी का उपयोग खुले रूप में करके आँतों को व्यायाम-द्वारा उत्तेजित किया जाय।

पित्त-प्रकृति के व्यक्तियों का कोष्ट बहुत मृदु होता है। उनमें दूध, मुनक्का, एरण्ड-तेल से भी विरेचन हो जाता है। कफ-प्रकृति के व्यक्तियों को निशोथ, अमलतास, सनाय देना चाहिये और वात-प्रकृतिवाले क्रूर-कोष्ठ व्यक्तियों में दन्ती जयफल शुद्ध करके दिया जा सकता है।

पथ्य—इस रोग की चिकित्सा पथ्य पर निर्भर है। छान, फलों का रस, दूध का उपयोग विशेष करना चाहिये। जिन वस्तुओं से आँतों में

विक्षोभ हो, वे वस्तुयें इस रोग में लाभदायक हैं। पानी में खूब भिगोई हुई रेत भी खाने से मलावरोध नष्ट हो जाता है। चाय या कॉफी का उपयोग नहीं करना चाहिये। नियमित रूप में मल-त्याग करने जाना चाहिये। भूसी की रोटी उत्तम है।

आध्मान (अफारा)

यह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं, परन्तु आँतों में वायु के रुकने से उत्पन्न हो जाता है। इसके कारण मल और मूत्र दोनों रुक जाते हैं। मल-मूत्र आदि के रुकने से और वायु के कारण पेट के फूल जाने से श्वास में कठिनता हो जाती है। पेट के ऊपर ठकोरने से ढोल-जैसी आवाज आती है। गड़गड़ाहट की आवाज बराबर सुनाई देती है। स्वाद में दुर्गंधि होती है, श्वास मैला, दुर्गन्धि-युक्त होता है। पेट में दर्द रहता है। वायु के निकलने पर रोगी को आराम मिलता है।

उपाय—(१) सोरा, आँवला, हल्दी के पत्ते, काले तिल इनको पीसकर नाभि के चारोंओर लेप करना चाहिये।

(२) हींग, सोरा, अम्लवेतस, अजवायन, सैंधव, मेरी इनको पीसकर ४ या ५ रत्ती की गोली बनाकर नीबू के रस के साथ खाना चाहिये।

(३) १ छटाँक जल में १० आना सोरा और १ तोला शुष्क आमलकी १ घण्टे तक भिगोकर पीछे से छानकर पान करने से पेट की वायु शान्ति हो जाती है।

(४) हींग या तारपीन का तेल मलना चाहिये। इनकी वस्ति देनी चाहिये।

(५) मैनफल, पिप्पली, कूट, बच, श्वेत सरसों इन सबकी गुड़ में या दूध में वस्ति बनाकर गुदा में रखनी चाहिये। ग्लिसरीन की पिचकारी भी लाभप्रद है। साबुन की बत्ती भी गुदा में रखने से लाभ होता है।

(६) निशोथ २ भाग, पिप्पली ४ भाग, हरीतकी ५ भाग, गुड़ सबके समान, इनको ५ माशे की मात्रा में सेवन करने से या बच, हरीतकी, चीता,

यवक्षार, पिप्पली, अतीस, कूठ इनके चूर्ण को गरम पानी में सेवन करने से लाभ होता है।

(७) निशोथ, इन्द्रायन, नमक, लाल शक्कर, सुहागा, राई इन सबको समान भाग लेकर, चार अंगुल बत्ती बनाकर गुदा में रखना चाहिये। अथवा सुहागा, गुग्गुल, जावशीर, सोंठ, नमक, तितली, इस्पंज के बीज, एलुवा इनकी बत्ती गुदा में रखनी चाहिये। सोये का तेल या राई का तेल नाभि पर लेप करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—वज्रक्षार, नाराच चूर्ण, शंखवटी, भास्कर-लवण, इच्छाभेदी, अभयादि मोदक।

अनार्य-चिकित्सा—एलोयन, कोलोसिन्थ, पिल एलोज, एटएसेफिटेडा, स्कैमैनी कालादाना, कन्फैक्शन सल्फर, कन्फैक्शन सनाय, कास्करा।

शूल

साधारणतः शूल तीन प्रकार का होता है—१—जिसका सम्बन्ध आँतों से होता है। २—जिसका सम्बन्ध यकृत से हो। ३—जिसका सम्बन्ध मूत्र-पिण्ड या वृक्कों से हो। यहाँ पर प्रथम प्रकार के शूल से अभिप्रेत है। इस शूल का कारण वात-नाड़ियों का विक्षोभ होना है, जिसके कारण मांस-पेशियों में इतने जोर के आकुञ्चन होने लगते हैं कि रोगी उनको सहन नहीं कर सकता।

कारण—(१) कठिन, पचने में दुस्तर या कच्ची खुराक, फल आदि खाने से, या बीज आदि रुकने से पेट में वायु कुपित होकर शूल उत्पन्न कर देती है। (२) चिरकालीन मलबन्ध। (३) ठण्डी हवा का या ठण्डे पानी का स्पर्श, जिससे वायु कुपित हो जाय। (४) सीसक में काम करनेवाले व्यक्तियों में तथा वात-प्रकृतिवाली स्त्रियों में मिलता है।

लक्षण—शूल का स्थान प्रायः नाभि के चारोंओर होता है। रोगी टाँगों को मोड़कर कोष्ठ पर लाता है, जिसके मांस-पेशियों के ढीला होने से दर्द कम हो जाय। दर्द के स्थान पर दबाने से रोगी को आराम प्रतीत होता है। दर्द रह-रहकर होता है। इससे स्पष्ट है कि जिस समय आँतों में जल-तरंग-गति चलती है, उस समय रोगी को दर्द होता है। यदि अन्य

कारण से यथा आंत्र का व्रण या विद्रधि से शूल होगा, तो दबाने से दर्द बढ़ जाता है। रोगी पेट को दबाकर लेटता है, या हाथों से पकड़े रहता है। इसके साथ हल्का ज्वर रहता है।

आयुर्वेद-शास्त्र में शूल-रोग को कई भागों में विभक्त किया है, जैसे—

१—**वात-शूल**—इसमें मुख्य दोष वायु का होता है। हृदय, पार्श्व, पीठ, पेडू में शूल का वेग होता है, और रुक जाता है; फिर होता है, और फिर रुक जाता है। मल और मूत्र रुक जाते हैं, दर्द का स्वभाव इस प्रकार का होता है, मानों कुछ चुभ रहा है। सेक, दबाना, उष्ण एवं स्निग्ध उपचार से शान्ति हो जाती है।

उपाय—सोंठ और एरण्ड-तेल का काढ़ा हींग और सोंचल नमक के साथ; छोटी हरड़, अतीस, हींग, संचल, बच, इन्द्रजौ इनका चूर्ण पानी में, अजवायन, हींग, सैन्धव लवण, यवक्षार, संचल, हरीतकी इनका चूर्ण सुरामण्ड के साथ पान करना चाहिये।

२—**पित्त-शूल**—इसका स्थान यकृत-प्रदेश और नाभि है। तृषा, मोह, दाह, पीड़ा, स्वेद, मूर्च्छा, भ्रम होता है। आधीरात में या मध्याह्न में अन्न का विदाह होता है। इसलिये अर्धरात्रि में दर्द बढ़ता है।

उपाय—प्रथम वमन कराके पीछे से विरेचन देना चाहिये। आँवले का चूर्ण शहद में चटाना; हरड़ (छोटी) का चूर्ण घी और गुड़ में; त्रिफला तथा अमलतास का काढ़ा शर्करा तथा मधु के साथ; कुटकी आधे से १ तोला लेकर, इसके काढ़े में मधु मिलाकर, प्रातःकाल मधु के साथ शतावरी रस, आँवला या विदारीकन्द अथवा द्राक्षा-रस में शर्करा मिलाकर पीने से मुलहठी के काढ़े में एरण्ड-तेल मिलाकर पान करने से पित्त-शूल शान्त होता है।

३—**कफ-शूल**—स्थान—आमाशय—कास, ग्लानि, अरुचि, मुँह में लार का भरना, गले में भारीपन, कोष्ठ में स्तब्धता आदि लक्षण होते हैं।

उपाय—लंघन अवश्य करना चाहिये, हरड़ छोटी, चित्रकमूल, कुटकी, बच इनका चूर्ण गोमूत्र में, सेंधानमक, विडलवण, काचलवण, हींग,

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चविका, चित्रक और सोंठ का चूर्ण गरम पानी के साथ पंचकोल-सिद्ध यवागू; मोथा, बच, कटुकी, हरीतकी और मुर्वा इनको पीसकर कांजी या गोमूत्र के साथ दशमूल काढ़े को यवक्षार-सहित देने से लाभ होता है।

४—सन्निपात-शूल—इसमें तीनों दोषों के लक्षण मिश्रित होते हैं।

उपाय—मण्डूर-भस्म, त्रिफला-चूर्ण समान भाग, इनको घी और शहद के साथ, शंख-भस्म, सेंधव, त्रिकटु, हींग इनको गरम पानी के साथ सेवन करने से सन्निपात-शूल में आराम होता है।

५—आम-शूल—गुड़गुड़ शब्द, उल्टी, शरीर में शिथिलता; कार्य करने में अरुचि का होना, पेट का फुलाव तथा कफ के अन्य लक्षण होते हैं।

उपाय—(१) अजवायन, सैंधव, हरड़ छोटी तथा सोंठ का चूर्ण; (२) हींग, सेंधानमक तथा विडलवण; (३) एरण्ड-मूल ६ भाग, लहसुन ८ भाग, हींग १ भाग, सेंधानमक ३ भाग मिलाकर दो-तीन तोला खाना; (४) कफ-दोष की चिकित्सा करनी चाहिये।

६, ७, ८—द्वन्द्वज-शूल—दो-दो दोष मिलकर जब शूल उत्पन्न करते हैं, तब उसको द्वन्द्वज-शूल कहते हैं। इसका स्थान, कफवात में पेड़ू, हृदय, कण्ठ और पार्श्व में शूल, कफ, पित्त में कुक्षि, हृदय, नाभि तथा पार्श्व में, वात-पित्त में, दाह तथा सख्त शूल होता है।

उपाय—लहसुन का कल्क प्रातःकाल खाने से वात-कफ-शूल, द्राक्षा और वासा का काढ़ा पीने से कफ-पित्त-शूल, परवल, त्रिफला, नीमछाल इनका काढ़ा; मधु के साथ पीने से पित्त श्लेष्म-जन्य-शूल नष्ट होता है।

९—परिणाम-शूल—भुक्त अन्न के पचने के पीछे जो शूल उत्पन्न होता है, उसको परिणाम-शूल कहते हैं। स्थान आंत्र होते हैं।

उपाय १—लंघन, फिर वमन और फिर विरेचन देना चाहिये। २—सोंठ, तिल तथा गुड़ को पीसकर गाय के दूध में ७ दिन तक पीना चाहिये। ३—शंख-भस्म पानी में पीना चाहिये। ४—मैनफल, कटुकी को पानी में

पीसकर नाभि पर लेप करना चाहिये। ५—छोटी पिप्पली की भस्म पानी में पीना चाहिये। ६—पिप्पली के काढ़े में बना हुआ घी खाकर दूध पीना चाहिये। ७—लोह-चूर्ण और त्रिफला-चूर्ण को घी और मधु के साथ। पानी-वाले नारियल में सेंधानमक भरकर, उसका मुँह बन्द करके, ऊपर से मिट्टी का लेप करके अग्नि में पकाना चाहिये। पीछे से नारियल को पिप्पली-चूर्ण में मिलाकर खाने से परिणाम-शूल का अवश्य आराम होता है। ८—पिप्पली, हरीतकी और लोह-चूर्ण या पिप्पली के स्थान पर सोंठ मिलाकर खाने से भी आराम होता है।

१०—**अन्नद्रव-शूल**—१—भुक्त द्रव्य के परिपाक होने पर, या परिपाक होने के समय अथवा अपक्वावस्था में जो दर्द उत्पन्न होता है, उसको अन्न-द्रव-शूल कहते हैं। इसकी शान्ति के लिये रोगी को वमन और विरेचन देना चाहिये। २—आमलकी चूर्ण लोह-भस्म के साथ या मुलहठी के चूर्ण के साथ शहद में चटाना चाहिये। ३—दशमूल-काढ़े के साथ हींग, सोंचल, हरीतकी, विडंग, सेंधव का चूर्ण देना चाहिये। ४—हींग, त्रिकटु, कुष्ठ, जौखार, सेंधव इनका चूर्ण बिजौरे नीबू के रस में मिलाकर पान करने से शूल नष्ट होता है।

सामान्य चिकित्सा—१—सेंक—साधारणतः सब प्रकार के शूल सेंक, उष्ण परिसेक करने से बैठ जाते हैं। इसके लिये गरम पानी का सेंक तारपीन के तेल के साथ करना उत्तम है। २—आँतों को साफ करने के लिये तथा अपक्व भोजन को बाहर करने के लिये विरेचन का देना उत्तम है। विरेचन इस प्रकार का होना चाहिये, जो आँतों में तीव्र मरोड़ा उत्पन्न न करे, अपितु वात का शमन करनेवाला हो। इसके लिये एरण्ड-तेल रास्नासप्तक काढ़े के साथ देना सबसे उत्तम है। ३—वातहर लेप नाभि पर तथा उदर के अन्य भागों पर करना चाहिये। अलसी के बीज १०॥ माशे, तरजूफा ७ माशे, इनको मिट्टी के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये। भाँग के बीज की राख, दालचीनी, सोंठ, इनको शहद में मिलाकर, मैनफल को कांजी में पीसकर लेप करने से, देवदारु, श्वेत बच, कुष्ठ, सोया, हींग, सेंधव, इनको कांजी में पीसकर गरम करके लेप करना चाहिये। बिल्वमूल, एरण्ड-मूल, चीतामूल, सोंठ और हींग तथा सेंधव इनका प्रलेप भी उपकारी है।

४—सोंठ और एरण्डमूल के काढ़े में हींग और सोंचल नमक मिलाकर पान करने से; सोंठ, एरण्डमूल और जौ इनके काढ़े में हींग और पुष्करमूल का चूर्ण मिलाकर पान करने से; हींग, अम्लवेतस, सोंठ, पिप्पली, मिर्च अजवायन, सैंधव, संचल और बिड़ूलवण इनको चूर्ण करके बिजौरे नीबू के रस में गोली बनाकर सेवन करने से; सोंठ-चूर्ण आधा तोला, हींग १ तोला, केशर आधा तोला, जौखार २ तोला, शङ्ख-भस्म ४ तोला, निशोथ-चूर्ण ३ तोला, इनको आधी छटाँक कुचले का हिमकषाय (कुचले को पानी में २४ घंटे भिगोकर रखने से बनता है) मिलाकर ४ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। यह गोली गरम पानी से सायं-प्रातः खानी चाहिये। अपामार्ग-क्षार १ तोला, हरिण-शृङ्ग-भस्म १ तोला, हींग-भस्म १ तोला, लोह-भस्म १ तोला, निशोथ-चूर्ण २ तोला, इमली-क्षार १ भाग, इनको ४ आने की मात्रा में कपूर-जल के साथ खाना चाहिये। ५—बस्ति का उपयोग करना उत्तम है। तारपीन के तेल की बस्ति भी उत्तम है।

मकोय का अर्क, गुलकन्द के साथ लेना उत्तम है। दर्द बहुत हो, तो गुलकन्द में मस्तगी और अगर आधा माशा मिला लेना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—शंखवटी, धात्री-लौह, नारिकेल-खण्ड, आमलकी खंड और हरीतकी-खंड।

पथ्य—वमन, स्वेद, सेंक, लंघन, निद्रा, रेचन, पाचन उत्तम है। क्षार तथा कटुरस के पदार्थ एवं हींग, नमक, लहसुन, एरंड आदि वस्तुयें पथ्य हैं। रोगी को इस प्रकार का भोजन देना चाहिये, जिससे शरीर में वायु का प्रकोप न हो।

गुल्म

यह कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है। इस रोग का कारण वायु का रक्त-कोष्ठ में रुक जाना है। वायु के कोष्ठ में रुक जाने से रोगी को पेट फूलने का आभास होता है। आर्य-चिकित्सा में इस रोग को पृथक् माना गया है। इसके पाँच भेद हैं—यथा वात-गुल्म, पित्त-गुल्म, कफ-गुल्म, त्रिदोषज-गुल्म और रक्त-गुल्म। इनमें पाँचवें प्रकार का रक्त-गुल्म स्त्रियों ही में मिलता

है। जब किसी कारण से आर्त्तव का रक्त रुक जाता है, तब वह गर्भाशय ही में एकत्रित होकर गुल्म-रोग उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त जो स्त्रियाँ संतान के लिये लालायित रहती हैं, उनमे रक्त रुक जाता है। उनको यह भाव होने लगता है कि उनको गर्भ है। परन्तु यदि इन स्त्रियों को क्लोरोफार्म या अन्य वात-नाशक औषधि सुँघाकर परीक्षा करें, तो सत्यता का स्पष्टीकरण हो जाता है। सब प्रकार के गुल्मों में वायु ही कारण है। और इसी कारण यह रोग वातिक प्रकृति की स्त्रियों में बहुत मिलता है।

कारण—प्रायः वे ही है, जो उदावर्त्त अथवा शूल के हैं। वायु करनेवाली वस्तुओं का खाना, मलबन्ध का रहना तथा आलस्यपन, भोजन का भलीप्रकार जीर्ण न होना इत्यादि इस रोग की उत्पत्ति में मुख्य कारण होते हैं।

लक्षण—खट्टे या खाली उद्गारों का आना, मलबन्ध, आँतों में आवाज का होना, पेट का फूलना, आँतों में दर्द, मन्दाग्नि होती है। जिस गुल्म में अरुचि, अशक्ति, हृदय में पीड़ा, कास, ज्वर, श्वास, वमन, तृषा, अतिसार, सरदी, नाभि, हाथ, पाँव के ऊपर शोथ आदि लक्षण हों, वह गुल्म असाध्य माना जाता है।

वात-गुल्म—रुक्ष और विषम अन्नपान, मल का अवरोध, शोक से हृदय पर चोट पहुँचना, विरेचन के कारण शरीर के बल का क्षय, उपवास ये सब कारण वात-गुल्म को उत्पन्न करते हैं।

लक्षण—भिन्न-भिन्न स्थानों पर दर्द, मल और वायु का अवरोध, गले में शोथ, शरीर पर कालापन, शीत-ज्वर, भोजन के पचने के पीछे दर्द का घट जाना, ये सब चिन्ह हैं।

उपाय—१—दूध और हरीतकी के चूर्ण के साथ एरंड-तैल; २—एरंड-तैल को वारुणी-मंड के साथ; ३—सोंठ, तिल, गुड़, इनको पीस-कर दूध के साथ; ४—सर्जक्षार २ माशे, कूठ २ माशे, केतकीक्षार ४ माशे। इनको एरण्ड-तेल के साथ; ५—लहसुनादि-चूर्ण का प्रयोग करना उत्तम है।

पित्त-गुल्म—तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, विदाही, रुक्ष भोजन, क्रोध, मद्यपान, धूप-सेवन आदि कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—प्यास, ज्वर, ग्लानि, शरीर पर लाल-लाल धब्बे, पाचन-क्रिया के समय दर्द का अधिक होना, स्वेद तथा दाह होता है।

उपाय—१—त्रिफला-काढ़े के साथ निशोथ-चूर्ण अथवा द्राक्षा के साथ। २—गुड़ के साथ हरीतकी चूर्ण। ३—आमलकी काढ़े में सिद्ध किया हुआ घी खाने से। ४—कपीला का चूर्ण मधु में खाना चाहिये। ५—पित्त-गुल्म में रेचन और घृतपान करना सर्वोत्तम है।

कफ-गुल्म—शीत, भारी, स्निग्ध अन्नपान, आलस्य, दिन में सोना आदि कफ को बढ़ानेवाले कारणों से कफ-गुल्म होता है। शरीर पर स्निग्धता या चिकनापन रहता है। शीत के साथ ज्वर आता है, ग्लानि, कास, अरुचि, शरीर में भारीपन, अग्नि की मन्दता तथा दर्द थोड़ा होता है।

उपाय—१—वमन, उपवास, स्वेद, सेंक; २—यवक्षार, त्रिकटु, कल्क के साथ घृत-पाक करके; ३—अजवायन, विड्लवण तक्र में पीना चाहिये। ४—तिल, एरण्ड, अलसी के बीज और सरसों को पीसकर उदर पर लेप करना चाहिये। वात-गुल्म के उपाय इस रोग में लाभदायक हैं।

रक्त-गुल्म—यह स्त्रियों ही का रोग है, इसलिये स्त्री-चिकित्सा-प्रकरण में देखना चाहिये।

गुल्म के सामान्य उपाय—१—३ माशे सर्जक्षार और ३ माशे गुड़ मिलाकर खाना चाहिये। २—पलाश, थोर, अपामार्ग, आक, इमली, जौ इन वस्तुओं का क्षार गुल्म-रोग को शान्त करता है। ३—३ माशे सुराक्षार और ३ माशे आर्द्रक मिलाकर खाना चाहिये। ४—घीक्वार के गूदे में सोंठ, मिर्च, पिप्पली, हरड़ और सेंधानमक मिलाकर खाना चाहिये। ५—सीप की भस्म गुड़ के साथ या शङ्ख की भस्म नीबू के रस में, अथवा हींग को घी में भूनकर खाना चाहिये। ६—अजवायन, हींग, सैन्धव, यवक्षार, संचल, हरीतकी इनके चूर्ण को गरम पानी से खाना चाहिये। ७—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चित्रक, काला जीरा और सैन्धव इनके चूर्ण को सुरा के साथ पान करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—हिंग्वादि चूर्ण अभयालवण, काँकायन गुटिका, गुल्म-कालानल।

पथ्य—स्नेह, स्वेद-विरेचन, वस्ति, लहसुन, कच्ची मूली, तक्र, खजूर अनार, आँवला, यवक्षार, त्रिकटु हींग एवं उष्ण-वीर्य, पुष्टिकारक, लघु तथा

अग्निदीपक पदार्थ पथ्य है। वायुकारक तथा विदाह उत्पन्न करनेवाले, गरिष्ठ भोजन सब अपथ्य हैं।

अतिसार

अतिसार को उत्पन्न करनेवाले बहुत-से कारण हैं। अजीर्ण और अतिसार के कारण प्रायः आपस में बहुत कुछ मिलते हैं। अतिशय और अयोग्य भोजन, कच्चे फल, विदाही पदार्थों का सेवन, दूषित जलवायु, क्रिमियों के कारण, मानसिक उद्विग्नता या विक्षोभ से, अतिशय शीत-क्रिया, ऋतुओं के फेरफार से, अतिसार-रोग की उत्पत्ति होती है।

लक्षण—बार-बार पतला दस्त होता है। मुँह से दुर्गन्धि आती है, भोजन में अरुचि, जीभ के ऊपर सफेद अथवा पीला मैल, पेट में वायु का गड़गड़ाहट होना, शूल, खट्टा या वायु-जन्य उद्गार होता है। अतिसार और प्रवाहिका या मरोड़े में बहुत भेद होता है। अतिसार में मल पतला, द्रव पानी की भाँति या अर्ध द्रवयुक्त आता है। मरोड़े में मल साफ नहीं आता और साथ मे पेट के अन्दर ऐंठन या दर्द का अनुभव होता है। मल के साथ वायु भी निकलती है।

अतिसार के भेद—अनार्य-चिकित्सा में अतिसार का वर्गीकरण चार प्रकार से किया है। जैसे—१—विक्षोभ-जन्य अतिसार। २—वायु या ऋतु-जन्य अतिसार। ३—पार्वतीय अतिसार, जो पहाड़ पर हो जाता है। ४—शिशुओं का अतिसार।

आर्य-चिकित्सा में अतिसार छः प्रकार का गिना गया है। जैसे—वात-जन्य, पित्त-जन्य, कफ-जन्य, रक्त-जन्य, आम-जन्य और शोक-जन्य अतिसार। वायु-जन्य अतिसार में मल का रङ्ग काला, पित्त-जन्य अतिसार में पीला, कफ-जन्य तथा आम-जन्य अतिसार में श्वेत तथा श्लेष्मा-मिश्रित चिकना होता है। रक्तातिसार में रक्त आता है।

अतिसार सामान्यतः दो प्रकार का होता है, १—जिसमें अपक्व मल बाहर आता है। इस प्रकार के अतिसार को प्रकृति स्वयं उत्पन्न करती है। इसका अभिप्राय यह है कि आँतों का मल या विक्षोभक वस्तु

(अनपचा भोजन) आंतों से बाहर हो जाय। इस मल को यदि पानी में डाला जाय, तो वह डूब जाता है। इस अवस्था में अफीम आदि स्तम्भक औषधि दी जाय, तो वह आध्मान या अफारा उत्पन्न कर देती है। स्तम्भक गुण के कारण वह प्रकृति के विरुद्ध कार्य करके वायु को कुपित कर देती है। २—दूसरी प्रकार का अतिसार वह है, जिसमें पका हुआ मल बाहर आता है। अर्थात यह मल पानी में डालने से तैरता है। इस प्रकार के अतिसार को स्तम्भक औषधि से रोकने में कुछ हानि नहीं।

उपाय—अतिसार की सबसे प्रथम चिकित्सा लंघन है। लङ्घन से पाचन-अवयवों का कार्य कम हो जाता है। वह आमाशय और आंत्र के पदार्थ को बाहर करने का यत्न करते हैं। इसके बाहर होने से अतिसार स्वयं शान्त हो जाता है। लङ्घन करने से रोगी को प्यास बहुत लगती है। इसको शान्त करने के लिये धनिया तथा नेत्रवाला का काढ़ा अथवा धान्यपंचक काढ़ा, षडङ्गपानीय काढ़ा पीना चाहिये। लङ्घन के पीछे प्रवाही, हल्का भोजन देना चाहिये, और आम को पकाने के लिये दीपन, पाचन तथा स्तम्भन औषधि देनी चाहिये।

वात-जन्य अतिसार में—१—करंज, पिप्पली, सोंठ, सौंफ, धनिया तथा हरीतकी का काढ़ा; २—बच, अतीस, इन्द्रजौ और मोथे का काढ़ा; ३—बृहत या स्वल्प पंचमूल काढ़ा अथवा बला, सोंठ, धनिया, बिल्व और कमल इनका काढ़ा; ४—हरड़, देवदारु, बच, सोंठ, अतिविषा तथा गिलोय का काढ़ा; ५—अफीम और केशर एक-एक चावल शहद में देना चाहिये। पथ्य दही और चावल।

पित्त-जन्य अतिसार—१—बिल्व का गर्भ, इन्द्रजौ, मोथा, उशीर, अतीस इनका काढ़ा। २—अतीस, कुडाछाल, इन्द्र जौ का चूर्ण चावलों के धोवन मे शहद के साथ। ३—चिरायता, मोथा, इन्द्रजौ और रसाञ्जन, इनका चूर्ण तण्डुलेदक के साथ। ४—मुलहट्टी, कायफल, लोध्र अथवा अनार के कच्चे फल और वल्कल का चूर्ण मधु के साथ पान करना चाहिये।

कफ-जन्य अतिसार—१—पाठा, बच, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, कूठ, कुटकी, इनका चूर्ण गरम पानी से। २—हरीतकी, पाठा, बच, कूठ, चित्रक, कुटकी, इनका काढ़ा गरम पानी में। ३—हरड़, दारुहल्दी,

बच, मोथा, सोंठ, अतीस, इनका काढ़ा । ४—वायविडंग, बच, बिल्व, पाठा, धनिया, कायफल का काढ़ा । ५—हींग, सौवर्चल नमक, सोंठ, पिप्पली, मिर्च, हरीतकी, अतीस और बच इनके चूर्ण को गरम पानी के साथ पीना चाहिये ।

आमातिसार—लंघन करना चाहिये । १—सोंठ, धनिया, मुस्ता, बालक और बिल्व इस धान्य-पंचक को पीना चाहिये । २—एरण्ड-तैल को गोंद के साथ या दूध के साथ । ३—मैगनेशियम सल्फेट को थोड़ी मात्रा में । ४—गरम पानी और घी । ५—सोंठ, सौंफ, खसखस तथा शर्करा का चूर्ण पीना चाहिये ।

रक्तातिसार—१—चावलों के धोवन में श्वेत चन्दन घिसकर इसमें मधु और शर्करा मिलाकर पीना चाहिये । २—आम की गुठली छाछ में या चावल के धोवन में घिसकर; ३—जामुन, आम, इमली के पत्तों को पीसकर इनके रस में मधु मिलाकर; ४—मजीठ, अतीस, मोथा, धाय के फूल, सोंठ, बालक और कुटज की छाल तथा फल एवं बिल्व इनका काढ़ा पीने से; ५—गुड़ के साथ बिल्व-फल खाने से, या अनार तथा कुटज की छाल को मधु के साथ खाने से; ६—जल-मिश्रित बकरी के दूध में बिल्व, मोचरस, शर्करा और इन्द्रयव का चूर्ण मिलाकर खाने से; ७—काले तिल के साथ चतुर्थांश चीनी मिलाकर बकरी के दूध के साथ पीने से अतिसार अच्छा होता है ।

अतिसार की साधारण चिकित्सा—१—आम की गुठली का गर्भ, बिल्व का गर्भ, इनका चूर्ण अथवा काढ़ा करके, उसमें मधु तथा शर्करा मिलाना चाहिये । २—जायफल, जीरा, हाँड़ी के नीचे लगी हुई काली मिट्टी, बेल, इनमें प्रत्येक का चूर्ण समभाग लेकर चूने के पानी में ६ रत्ती की गोली बनानी चाहिये । इसको तीन-तीन घण्टे के अन्तर से कपूर-जल के साथ सेवन करना चाहिये । ३—सुहागे को खील १, धनिया का चूर्ण १, मोचरस १, मोरी २ भाग, दीवार का पुरातन चूना १ भाग—इनमें से दो या चार आने की मात्रा में शीतल जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है । ४—बिल्व-पत्र, कमलगट्टा, भाँग, सोंठ, विड्लवण, जीरा, शंख-भस्म, मोथा, कैथा का पत्ता, इनको जल के साथ बेर के समान गोली बनाकर कपूर के जल या नीबू के रस के साथ देने से अतिसार शान्त होता है ।

विक्षोभ-जन्य अतिसार—एरण्ड के तैल की थोड़ी मात्रा बारबार

देनी चाहिये, जिससे आँतें साफ हो जायँ। यदि दर्द होता हो, तो एरण्ड के तैल के साथ २० बूँद क्लोरोडीन मिला लेना चाहिये। पल्व रिहाई कम्पाउण्ड या टिंचर रिहाई कम्पाउण्ड का उपयोग भी उत्तम है। ऋतु-जन्य अतिसार में साधारणत: किसी प्रकार की चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। पेट को गरम रखना चाहिये। पार्वतीय अतिसार के लिये डॉवर्स पाउडर प्रत्येक रात्रि में या क्लोरोडीन देना चाहिये। लाइकर हाइड्रोजराई परक्लोराइड ३० बूँद की मात्रा में दिन में तीन बार देना चाहिये। दालचीनी ४ औंस, जायफल ३ औंस, केसर ३ औंस, लौंग १॥ औंस, इलायची १ औंस, शर्करा २५ औंस, चौक ११ औंस इनके चूर्ण की मात्रा ३० से ६० ग्रेन है।

आँवले की जवारिश—आँवला १५ तोले, गुलाब आध सेर इनको बेदमुश्क के अर्क में रात को भिगोकर प्रात: इनको उबालकर छान लेना चाहिये। इसमें १५ तोले मिश्री और शहद मिलाकर गाढ़ा बना लें। इसमें अनविधे मोती २ तोले, रेशम कच्चा कतरा हुआ, चन्दन सफेद, गुलाब की कली, गावज़बाँ, छोटी इलायची के दाने, पिस्ता के छिलके, मस्तगी, दालचीनी प्रत्येक १ तोला कूटकर अम्बर अशहब, सोने के वर्क़, प्रत्येक २ माशे, चाँदी के वर्क़ ३ माशे मिलाकर चटनी बना लेना चाहिये।

नाभि का हिलना—लोगों की यह धारणा है कि अतिसार में पेट के अन्दर कुछ चला जाता है। इसका अर्थ यह है कि नाभि अपने स्थान से हिल जाती है। इसके लिये लोग रोगी को ज़मीन पर लेटाकर उसकी टाँगों को खींचते हैं, मलते हैं तथा पेट पर भी मालिश करते हैं। पेट में क्या चलता है, सो मालूम नहीं। सम्भवत: आंत्र में किसी प्रकार का बल पड़ जाता होगा। इसके लिये किसी ऊँची लकड़ी को पकड़कर झूलना उत्तम है। झुकने से आराम हो जाता है।

पथ्यापथ्य—अतिसार में भोजन की देख-रेख विशेष रूप से करनी चाहिये। लंघन करने के पीछे हल्की, शीत खूराक देनी चाहिये, जिससे आँतों में विक्षोभ उत्पन्न न हो। जैसे—चावल, साबूदाना, कांजी, मस्तु, छाछ, तण्डुलोदक हैं। बेल का मुरब्बा, अनार, बकरी या गाय का दूध, मूँग या मसूर की दाल उत्तम है।

अपथ्य—स्नान, अभ्यङ्ग, कठिन तथा श्लेष्मकारक भोजन, कसरत, नया अन्न, स्त्री-संग, चिन्ता, जागरण, बोड़ी पीना आदि इस रोग में हानि-कारक हैं।

शास्त्रीय औषधि—भुवनेश्वर, गङ्गाधर-चूर्ण, बिल्वादि-चूर्ण, रामबाण, नृपवल्लभ, सर्वाङ्ग-सुन्दर, प्राणेश्वर, आनन्द-भैरव, कपूर-रस, अभय-नृसिंह-रस, कपूर-सुन्दर वटिका, कपूर, जायफल, जावित्री, कनक-बीज, बिधारे के बीज, अकरकरा, त्रिकटु, चोपचीनी, कौंवचिया के बीज प्रत्येक ५ तोला, शुद्ध भाँग ५५ तोला, अफीम ५५ तोला, वछनाग २७॥ तोला इनके कूट-छानकर भाँगरे के रस की भावना देकर रत्ती जैसी गोली बनानी चाहिये। मात्रा २ से ४ गोली। इसके कुटज-छाल के चूर्ण और मधु में चाटना चाहिये। कनक-सुन्दर-रस; रस-पर्पटी।

आमातिसार (मरोड़ा)

कारण—अतिसार-रोग में आँतें के अन्दर विक्षोभ उत्पन्न होता है। यह विक्षोभ यदि लगातार चालू रहे, तो आँतों की अन्तः-श्लेष्मकला अथवा गुदा भाग की श्लेष्मकला निर्बल हो जाती है। इस निर्बलता के कारण आँतें से श्लेष्मा का स्राव होता है। अथवा कभी-कभी तीव्र विक्षोभ के कारण अन्तःभित्ति के फटने से रक्त भी आजाता है। यह रक्त या तो मल के साथ मिला आता है अथवा स्वतन्त्र रूप से आता है।

इन सब बातें के अतिरिक्त अनार्य-चिकित्सा में डिसैन्टरी का कारण एक कीटाणु माना जाता है। भारतवर्ष में गर्भवती स्त्रियें के अन्दर यह रोग प्रायः मिलता है। इसका कारण गर्भपात है।

लक्षण—इस रोग का सबसे प्रथम लक्षण पेट के अन्दर ऐंठन या मरोड़ा मारना है, जो नाभि के चारोंओर होता है। रोगी प्रायः बेचैनी की शिकायत करता है, बारबार मल-त्याग की इच्छा, अनियमित पतला मल आता है। उदर में गरमी, मरोड़ा मारकर दर्द होना और गुदा पर दबाव प्रतीत होता है। मल में छिछड़े से आते हैं, कोई कठिन गाँठ या सख्त मल नहीं आता। दिन के समय प्रवाहण की इच्छा बहुत जोर से रहती है। चेहरा लाल, त्वचा खुश्क, कठिन और तेज नाड़ी और जिह्वा मैली होती है। आँतें

पर दबाव देने से दर्द होता है। आँतों में दर्द नहीं, दबाने से किसी प्रकार की पीड़ा न हो, रक्त का मल से पृथक् आना, इस बात का साक्षी है कि आँतों का अन्तिम भाग (गुदा) रुग्ण है। मल का दुर्गन्धित होना, बेचैनी का बढ़ना, धीमी नाड़ी, हिक्का का आना, बेभान अवस्था में मल का निकल जाना इस बात का द्योतक है कि रोगी असाध्य है। डिसैन्टरी में इस बात का भय रहता है कि कहीं यकृत रुग्ण न हो जाय।

उपाय—मृदु विरेचन विशेषत: स्निग्ध विरेचन देना उत्तम है। इसके लिये एरण्ड के तेल को गोंद के साथ मिलाकर देना चाहिये। सोंठ, हरड़ का काढ़ा भी देना उत्तम है। अफीम इस रोग के लिये रामबाण मानी जाती है। १—कुटज, मेथी, दाड़िमफूल, गिरिमाटी (गेरू) इनको समान भाग जल के साथ पीसकर बेर के समान गोली बनाकर बकरी के दूध के साथ देना चाहिये। २—कुटज १ भरी, बकुल छाल और तिन्दुक छाल आधा तोला, इनको आध सेर पानी में पकाकर जब २ छटाँक रह जाय, तो तीन बार सेवन करना चाहिये। ३—बिल्व कच्चा, गुड़, तिल-तेल, पिप्पली, सोंठ इनको मिला-कर; ४—बिल्व, मिर्च, ईक्षु-गुड़ और लोध्र सब समान भाग लेकर तिल-तेल के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

डोवर्स पाउडर, क्लोरोडीन का उपयोग करना उत्तम है। कौड़ी-प्रदेश पर राई की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। प्यास के लिये बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये। एपिकॉक क्वाना इस रोग के लिये उत्तम समझी जाती है। परन्तु गर्भवता स्त्री को यह नहीं देना चाहिये। यदि डोवर्स पाउडर के साथ क्युनीन या सैलोल दिया जाय, तो उत्तम है। इसके देने से आँतों में विदाह घट जाता है।

यूनानी चिकित्सा में—१—ईसबगोल या ईसबगोल की भूसी उत्तम औषधि है। यह चिकनी और शीतल है। इसके लुवाब में मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। २—ईसबगोल २० दिरम, रैहान के बीज, फनोचे के बीज, बारतंग, अर्बीगोंद, गिले अरमानी, खसखस के बीज, प्रत्येक १५ दिरम, चूके के बीज, खूफी, निशास्ता प्रत्येक ७ दिरम; इनमें से बीजों को भूनकर सब दवाइयों को कूटकर मिलाना चाहिये। इसको ठण्डे पानी के साथ लेना चाहिये। ३—रेवतचीनी, ईसबगोल, रैहान के बीज प्रत्येक आधा दिरम,

अर्बीगोंद १ दिरम, इनको ठण्डे पानी के साथ देना चाहिये। ४—ईसबगोल गुलाब के जल में मलकर गुलरोगन या खट्टे-मिट्ठे अनार के रस में मिलाकर देना चाहिये। ५—बिहीदाने का लुवाब भी उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—कुटजाष्टक, कुटज-रस-क्रिया, अभयनृसिंह-रस, पीयूषबल्ली-रस, नृपवल्लभ, ग्रहणी-कपाट।

पथ्य—यवोदक को तैयार करते समय बिल्व और जामुन के पत्ते के साथ सिद्ध करके देना चाहिये। बकरी का दूध या बकरी के दूध में बना हुआ बार्ली, साबूदाना, अरारूट उत्तम है।

संग्रहणी

चरक में कहा है कि 'ग्रहणी' का कार्य अन्न का ग्रहण करना है। यह अपक्व अन्न को आमाशय से ग्रहण करती है, और पक्व अन्न को आँतों में छोड़ती है। ग्रहणी में अग्नि का स्थान है। यदि ग्रहणी निर्बल हो जाय, तो अपक्व अन्न आँतों में जाने लगता है, जिससे यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

चिकित्सकों की दृष्टि से 'डियोडीनम' को साधारणत: ग्रहणी समझा जाता है। इस स्थान पर पित्ताशय से पित्त-प्रणाली और अग्नाशय से रस-वाहक प्रणाली आकर मिलती है। इन दोनों रसों के तथा आँत्र-रस के मिलने से भोजन का परिपाक हो जाता है। जिस समय किसी कारण से यह स्थान निर्बल हो जाता है, उस समय ये दोनों रस सहसा वर्ली में से बह जाते हैं, जिससे रोगी को दस्त या अतिसार हो जाता है। और जब यह रुके रहते हैं, तो रोगी को मलबन्ध रहता है, या ठीक रहता है। इसका अर्थ यह है कि रस-प्रणालियाँ एकदम से खाली हो जाती हैं और फिर बन्द हो जाती हैं। अर्थात् उनमें से शनै:-शनै: रस का क्षरण नहीं होता है। बस, यही इस रोग का रूप है।

कारण—इस रोग का वास्तविक कारण क्या है, यह अभीतक स्पष्ट नहीं हुआ है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि आँतों की निर्बलता इस रोग का कारण है। आर्य-चिकित्सा के अनुसार लगातार अतिसार रहने पर अथवा अतिसार के अच्छा होने पर पथ्य न पालने से, मन्दाग्नि में गरिष्ठ भोजन

करने से ग्रहणी निर्बल हो जाती है, जिसके कारण इस रोग की उत्पत्ति होती है। इस रोग के दो रूप हैं, एक ग्रहणी और दूसरा संग्रहणी।

ग्रहणी-रोग में आम भोजन गुदा के रास्ते बाहर होता रहता है। रोगी को कई बार मल-त्याग करना होता है। संग्रहणी में १०, १२, १५ दिन कोष्ठ-बद्धता रहती है। उसके पीछे सहसा अतिसार आरम्भ हो जाता है। इसको संचित ग्रहणी या संग्रहणी कहते हैं। रोगी के मुँह में छाले पड़ जाते हैं। उसकी प्यास भी बढ़ जाती है, रोगी निर्बल होता जाता है। मल इतने जोर से आता है कि रोगी उसको रोक नहीं सकता। रक्त की न्यूनता से रोगी के शरीर में निर्बलता हो जाती है। इस निर्बलता के कारण हृदय में कमजोरी आजाती है। यही कमजोरी शोथ उत्पन्न कर देती है। बस, यही शोथ रोगी के लिये काल-रूप होती है।

उपाय—संग्रहणी की चिकित्सा विशेषत: खानपान पर निर्भर रहती है। इस चिकित्सा को प्रारम्भ करने से पूर्व यह समझ लेना चाहिये कि रोगी का आमाशय बच्चे के आमाशय के समान कोमल होता है। इसलिये इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को इस प्रकार की औषधि दे, जो धारक और पाचन हो। रोगी को हल्का, कोमल पोषण देना चाहिये।

१—दूध—सुश्रुत में लिखा है कि अतिसार में दूध अमृत के समान है। वास्तव में दूध की चिकित्सा से असाध्य रोगी भी अच्छे हो जाते हैं। दूध देने से पूर्व इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि रोगी का आमाशय कितना दूध ग्रहण कर सकता है। दूध को पचाने के लिये इसको चतुर्गुण पानी में पकाकर देना चाहिये। सबसे प्रथम बकरी या गाय का दूध दिया जाय, तो अच्छा। दूध के देने से रोगी को अतिसार होगा, परन्तु इसमें भी दूध को बन्द नहीं करना चाहिये। कोई-कोई चिकित्सक दूध के साथ आम, खजूर अथवा खरबूजा भी खिलाते हैं। पहले-पहल रोगी दूध की मात्रा को पीना पसन्द नहीं करता, परन्तु ज्यों-ज्यों उसके अन्दर शक्ति बढ़ेगी, दूध की राशि भी बढ़ती जायगी।

२—छाछ—जिस प्रकार दूध उत्तम माना जाता है, उसी प्रकार हींग, जीरा, सैन्धव के साथ छाछ उपयोग भी किया जाता है। छाछ बनाने के लिये दही की मलाई निकालकर चौथाई पानी मिलाकर छाछ बना लेना चाहिये। छाछ से जठराग्नि बढ़ती है। छाछ का उपयोग अकेला ही करना

चाहिये। दूध या छाछ में से किसी भी एक वस्तु का उपयोग निरन्तर एक या डेढ़ मास बिना किसी व्यवधान के और बिना परिवर्तन के करना चाहिये।

संग्रहणी में मल एकत्रित न हो सके, इसके लिये सप्ताह में एक दिन एरण्ड-तेल की छोटी मात्रा दे देनी चाहिये। इसके कारण दूध या छाछ के कारण किसी भी प्रकार का मल आंत्रों में एकत्रित नहीं होगा। इस प्रकार आंत्र विक्षोभ से बच सकेगी। आंत्रों का विक्षोभ से बचाना ही ग्रहणी की चिकित्सा है।

पानी का उपयोग इस रोग में मना किया है। साधारणतः कोई ऐसा रोग नहीं, जिसमें पानी का निषेध हो; परन्तु संग्रहणी में पानी और भोजन दोनों का स्थान छाछ और दूध ले लेते हैं। प्यास के समय भी छाछ या दूध देना चाहिये। दूध-चिकित्सा में छाछ की चिकित्सा को मिलाकर सङ्कर नहीं कर देना चाहिये।

३— **दुग्धवटी**—वत्सनाभ तथा अफीम चार-चार बाल, लोह-भस्म ५ रत्ती, अभ्रक-भस्म ६ रत्ती इनको दूध में पीसकर दो-दो रत्ती की गोली बनानी चाहिये। इसके साथ दूध का पथ्य पालना चाहिये। जिस समय शोथ हो जाती है, उस समय यह विशेष उपयोगी है। १—लाही चूर्ण—गंधक २ टंक, पारा २ टंक, सोंठ १० माशे, मिर्च १ टंक, पिप्पली १० माशे, पंचलवण १० माशे, सिकी हुई अजवायन ५ टंक, जीरा ५ टंक, हींग ५ टंक, सुहागा ५ टंक, भाँग ८ तोला इन सबका चूर्ण; मात्रा २ से ४ माशे। अनुपान—छाछ। २—वासक के अन्दर की छाल को ६ गुने छाछ में डालकर, इस छाछ को मिट्टी के बर्त्तन में डालकर, कोठे की छत पर सात दिन तक रख देना चाहिये। पीछे से छानकर ४ तोले की मात्रा में पीने से ग्रहणी रोग नष्ट होता है। ३—जायफल, जौ, मुस्ता, बिल्व इनके चूर्ण को तक्र में डालकर पीने से। ४—लौंग, सिद्धबीज-चूर्ण, सिन्दुवार के पत्तों का चूर्ण, बिल्वपत्र, इनके चूर्ण को ६ आने की मात्रा में जल के साथ सेवन करने से। ५—सोंठ १, धनिया १, अनार के फल का छिलका १, शङ्ख-भस्म १, विड्लवण, मोरी १, हींग $\frac{1}{2}$, भाँग २ भाग इनको आमरूल के रस में पीसकर ५-६ रत्ती की गोली बनानी चाहिये।

अनुपान—कर्पूर-जल।

शास्त्रीय औषधि—हिंग्वाष्टक, प्राणवल्लभ, लवँगादि, पीयूषवल्ली-रस, ह्रीवेरादि काढ़ा, पंचामृत पर्पटी, महागन्धक, जातीफलादि रस, बिल्व-चूर्ण।

पथ्यापथ्य—अतिसार-रोग में छाछ और दही विशेष उपयोगी हैं। संग्रहणी रोगी को चाहिये कि वह स्नान न करे। दिन में जागरण नहीं करना चाहिये, वायु-परिवर्त्तन करना चाहिये। समुद्र की वायु इन रोगियों के लिये अति उपयोगी है। पहाड़ पर जाना भी उपयोगी है।

अरोचक

भोजन में खाने की रुचि का न होना अरोचक कहा जाता है। इसको स्वतन्त्र रोग नहीं गिना जाता। आमाशय के रोगों में, अजीर्ण में, प्रायः करके यह लक्षण उत्पन्न हो जाता है। ज्वर में, अजीर्ण में तथा मानसिक उद्विग्नता के कारण अथवा रुचिकर रूप में सामने न आने पर भोजन में अरुचि हो जाती है। इस रोग में रोगी को भूख की प्रतीति भी विशेष नहीं होती।

उपाय—सबसे प्रथम कारण को हटाना चाहिये। कारण को हटाने के पीछे पित्त और वायुकारक कटु और तिक्त पदार्थ देने चाहिये। १—इमली को पानी में (मिट्टी के बर्त्तन में) भिगोकर, उसमें शर्करा डालकर अथवा आलूबुखारे को पानी में घोलकर देना चाहिये। २—बिजौरे या चकोतरे की फाँकों को नमक के साथ अथवा मुनक्का को गरम करके, उसपर नमक मलकर रोगी को देना चाहिये। ३—द्राक्षावटी—द्राक्षा, अनारदाना, सेंधा नमक पिप्पली, हींग, दालचीनी इनको नीबू के रस में पीसकर देना चाहिये। ४—छाछ—इसमें धुँवा लगाकर अर्थात् एक अँगारे पर हींग, लालमिर्च, जीरा, अजवायन, धनिया और थोड़ा-सा घी या तेल डालकर, इसके धुँयें को एक हाँड़ी में भर लेना चाहिये। इस हाँड़ी में छाछ को डालकर हिला देना चाहिये। अथवा दाल-शाक की भाँति छाछ को बघारकर पीना चाहिये। ५—पोदीना, कालाजीरा, लवण, द्राक्षा, नागकेसर, इलायची, त्रिकटु, अनारदाना, आर्द्रक, हींग, इनको नीबू के रस में पकाकर और कुछ शर्करा मिलाकर खाने से रुचिकर चटनी बनती है। ६—भोजन करने से पूर्व नमक और आर्द्रक को खाना चाहिये। ७—विड्लवण, मधु इनको अनार के रस

में मिलाकर सेवन करना चाहिये। ८—कालाजीरा, जीरा, मिर्च, द्राक्षा, इमली, अनार, सोंचल, गुड़ और मधु इनको मिलाकर खाने से विशेष रुचि होती है। ९—चमेली के फूलों को सूँघना चाहिये। निर्मल शराब, गुलाब सेब या बिही का पानी और खट्टे-मीठे अनार का पानी मिलाकर देना चाहिये। गुलाब, बालछड़, मस्तगी, अनार का लेप आमाशय पर करना चाहिये। अर्क-गावजबाँ या अर्क-वेदमुश्क मिलाना चाहिये।

वमन

वमन कई कारणों से होता है। वमन को बन्द करने के उपाय भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

कारण—अतिप्रवाही या अति चिकने पदार्थों के पीने से, अप्रिय खान-पान से, अति खाने से, आम से, अजीर्ण से, कृमि से, गर्भ से, विकृत वात-पित्त के कारण, विषैले पदार्थों के सूँघने से, आमाशय के विक्षोभ से वमन होता है। अजीर्ण और पित्त के प्रकोप से बार-बार वमन होता है। इसके अतिरिक्त आंत्र-वृद्धि, आंत्र-शोथ, आमाशय-व्रण, यकृत-रोग से, कॉलरा में वमन होता है।

उपाय—कारण के अनुसार वमन करना चाहिये। कई बार वमन को प्रकृति उत्पन्न करता है। इसके द्वारा वह आमाशय को साफ करती है। बहुत खाने से जो वमन होता है, उसके द्वारा अधिक भोजन बाहर हो जाता है। यदि इस प्रकार न हो, तो पेट के अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

उपाय—१—आँवले का उपयोग वमन को रोकता है। २—कहरवा १॥ माशे गुलाब में पीसकर देना चाहिये। ३—इमली का पानी, आलूबुखारा प्रत्येक ७० माशे, लाख ३॥ माशे, केशर १॥ माशे, यह एक मात्रा है। पित्त का वमन रोकने के लिये बंशलोचन, चूकर के बीज १७॥ माशे गुलाब के फूल १४ माशे, नेशापुरी फूल ३५ माशे, समंग अरबो १०॥ माशे, अकाकिया, सुक प्रत्येक ५॥ माशे, इसकी मात्रा ९ माशा है।

हब्बुलास-चूर्ण की विधि—हब्बुलास ३५ माशे, बंशलोचन ७ माशे, सिमाक, अनार के फूल, अनारदाना, पोदीना, कच्चा अगर, गुलाब के फूल, सफेद चन्दन, प्रत्येक ३॥ माशे, महीन पीसकर मीठे पानी के साथ खाना

चाहिये । ४—जहरमोहरा खतई, बंशलोचन, गोल तुतरुग का फल पिस्ता के छिलके, गुलाब के जीरा महीन पीसकर, पोदीना पड़े हुये शर्बत-अनार में मिलाकर थोड़ा-थोड़ा चाटे । ५—हरड़ के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटना चाहिये । ६—श्वेत चन्दन घिसकर, इसमें पानी में आँवले का चूर्ण तथा मधु मिलाकर पीना चाहिये । ७—नीबू के शरबत में अथवा सोडावाटर के साथ पीना चाहिये । ८—मुलहठी तथा श्वेत चंदन को दूध में पीसकर देने से वमन बन्द हो जाता है । ९—दूध तथा चूने का नितरा हुआ पानी पीने से वमन बन्द हो जाता है । १०—पित्तपापड़ा क्वाथ मधु के साथ पान करने से लाभ होता है । ११—मधु के साथ हरीतकी का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है ।

मोरफिया, बिस्मुथ, हाइड्रो-सैनिक एसिड का मिक्श्चर विशेष उपयोगी है । नारियल का पानी विशेष उपयोगी है । बर्फ चूसने के लिये देनी चाहिये ।

बाह्य उपाय—१—पेट के ऊपर राई का प्लास्टर लेप करना चाहिये । २—बर्फ की बोतल रखनी चाहिये । पंचवल्कल काढ़े में भिगोया हुआ वस्त्र कोष्ठ पर रखना चाहिये ।

अम्लपित्त

कारण—आमाशय में पित्त की अधिकता से यह रोग उत्पन्न होता है । यह एक प्रकार का अजीर्ण है, जिसमें भोजन के खाने से या अधिक मिष्ठ पदार्थों के खाने से, विदाह होने से पित्त कुपित हो जाता है । यदि छाती में पित्त बढ़ जाय, तो खट्टे उद्गार आते हैं । रोगी की भूख अनियमित हो जाती है । शिर दुखता है; हाथ, पाँव में दर्द होता है, अनिद्रा, कौड़ी-प्रदेश में दाह होता है—

साधारणत: अम्लपित्त के दो विभाग किये जाते हैं ।—

१—अधोगत अम्लपित्त, जिसमें मल का रंग हरा, पीला और दुर्गन्धि-युक्त होता है । इससे तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, वमन-वेग, अग्निमान्द्य, रोमाञ्च, पसीने का आना और अंगों में पीतवर्णता होती है ।

२—ऊर्ध्वगत अम्मलपित्त— हरित, पीला, नीला अथवा कृष्ण या रक्त-वर्ण, अम्ल, मांस-जल के समान, अति पिच्छिल या कफ से मिला वमन

होता है। खाया हुआ पदार्थ सड़ जाता है, अथवा अभुक्तावस्था में कड़वा या खट्टा वमन आता है। इससे कण्ठ, हृदय, कुक्षि-प्रदेश में दाह, शिरोवेदना, हाथ-पाँव में ज्वाला, शरीर में उष्णता, अतिशय अरुचि, पित्त-श्लेष्म-ज्वर के लक्षण, शरीर में कण्डू, बहुत-सी पिडिकायें, फुन्सियाँ एवं नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

उपाय—प्रथम वमन कराकर पीछे से विरेचन और वस्ति देनी चाहिये। १—अम्लपित्त-रोग में वमन के लिये पटोल और नीम की छाल के काढ़े में हींग, मधु और सेंधव मिलाकर देना चाहिये। २—यव, पिप्पली, पटोल इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीने से; ३—यव, वासक, आमलकी, इनके काढ़े में दालचीनी, इलायची, तेजपात और मधु मिलाकर; ४—त्रिफला, पटोल, कुटकी इनके काढ़े में मुलहठी का चूर्ण और मधु मिलाकर; ५—हरीतकी और भृङ्गराज-चूर्ण को पुराने गुड़ के साथ खाने से; ६—गिलोय, नीम-छाल, पटोल-पत्र, त्रिफला इनके काढ़े में मधु मिलाकर; ७—वासा, गिलोय, कटेरी, इनके काढ़े में मधु मिलाकर अथवा पिप्पली के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से; ८—हरीतकी, पिप्पली, द्राक्षा, शर्करा, धनिया, धमासा इनको मधु के साथ सेवन करने से; ९—पटोल, यव, धनिया, पिप्पली और आमलकी इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीने से अम्लपित्त-रोग में निश्चय आराम होता है। १०—कच्ची हल्दी, परवल, कच्चा आँवला, आर्द्रक इनका रस निकालकर पान करने से; ११—पोदीना, पुरानी इमली, किशमिश, गुड़, मिर्च, इनकी चटनी करके, चावलों के साथ; १२—मिश्री ४, चना ३, आमलकी लौंग १ भाग मिलाकर पानी में भिगो देना चाहिये। इसको प्रातः सायंकाल पीने से अम्लपित्त रोग में लाभ होता है। १३—चूने का पानी, पोटाशियम बाई कार्ब, सोडाबाई कार्ब साईट्रेट मैगनेशिया इस रोग में उपयोगी हैं।

शास्त्रीय औषधि—अम्लपित्तान्तक चूर्ण, वज्रक्षार, धात्री-लौह, शंख-वटी, अविपत्तिकर चूर्ण।

पथ्य—खटास उत्पन्न करनेवाली, निशास्तेवाली खूराक हानिकारक है। पानी, दूध, चूने का पानी उपयोगी है। दूध, बार्ली, सागु इस रोग में लाभकारी हैं। हलकी सुपच खूराक देनी चाहिये।

यकृत के रोग

साधारणतः यकृत मे निम्न-प्रकार के रोग होते हैं—

१. यकृत में रक्त का सञ्चय हो जाना।
२. यकृत की शोथ।
३. यकृत-विद्रधि।
४. यकृत में पित्त का सञ्चय होना।
५. यकृत का संकुचित हो जाना।
६. पित्त के कारण अश्मरी का होना।
७. कामला।

विवेचन—शरीर में यकृत एक आवश्यक अवयव है। यकृत के साथ ही पित्ताशय लगा हुआ है। पित्ताशय से पित्त बहकर ग्रहणी या आंत्र में पहुँचता है। यकृत का कार्य शरीर से विष को अपने अन्दर लेकर उसे कुछ शोधन करके या अशुद्ध रूप ही में हृदय में पहुँचाना है। इसके अतिरिक्त भोजन के घटकों को बदलने में बहुत काम करता है। शरीर में शर्करा के खर्च को और आय को यही नियमित रखता है। यदि यह क्रिया विकृत हो जाय, तो रोगी को मधु-मेह की शिकायत हो जाती है। खान-पान का प्रभाव आमाशय के ऊपर जिस प्रकार का होता है, उतना या अधिक यकृत के ऊपर होता है। दारू तथा मादक पदार्थों का यकृत के ऊपर विशेष प्रभाव होता है। इसलिये आवश्यक है कि यकृत का काम नियमितरूप से चलता रहे।

कारण—गरम, तिक्त, पित्तवर्द्धक वस्तुओं का खाना, दारू, मद्य या 'कोल्ड-ड्रिंक्' आदि का पीना, ऐश-आराम की जिन्दगी बसर करना, पारा, ताँबा, शीशा आदि धातुओं का सेवन करना यकृत-रोग की उत्पत्ति के सामान्य कारण हैं।

यकृत में रक्त का सञ्चय—जिस समय किसी कारण से यकृत की शिराओं में रक्त-सञ्चय हो जाता है, उस समय यकृत का रक्त धीरे-धीरे गति करता है। इससे यकृत के अन्दर रक्त का सञ्चय बढ़ जाता है। इस सञ्चय के कारण यकृति का आकार तो इतना अधिक नहीं बढ़ता; परन्तु पित्त-वाहिनियों पर दबाव पड़ता है। जिस प्रकार प्लीहा आदि में वृद्धि होती है, उसी प्रकार

यकृत में वृद्धि नहीं होती। यह अवरोध प्रायः शिराओं ही में होता है। इस अवरोध के बहुत-से कारण हैं। जैसे—

यकृत में किसी प्रकार की गाँठ या विद्रधि का पड़ जाना, यकृत के अन्दर रक्त-सञ्चार का बढ़ जाना, यकृत के बाहर किसी प्रकार के अबुद के होने से यकृत पर दबाव होना, पित्ताशय में पित्ताश्मरी के रुक जाने से मद्य या अन्य गरम वस्तुओं के खाने से रक्त के अन्दर उष्णिमा आने से, वसा के शरीर में बढ़ने से अथवा शिराओं के अवरोध से यकृत में रक्त-सञ्चय हो जाता है।

चिन्ह—यकृत का आकार साधारण रूप से कुछ बढ़ जाता है। यदि यकृत के ऊपर हाथ रखकर टकोर की जाय, तो उसकी ध्वनि में मन्दता सुनाई देती है। मुँह से दुर्गन्धि आती है, अजीर्ण या भूख न लगने की शिकायत रोगी करता है, भोजन के पीछे दक्षिण स्कन्ध पर दर्द होता है, पेट भरा हुआ और चढ़ा हुआ, अनियमित या काले रंग का मल, वमन और उद्गार होते हैं।

उपाय—रक्त की अधिकता को घटाने के लिये रोगी को विरेचन देना चाहिये। इस विरेचन में यह गुण होना चाहिये कि वह आँतों से पानी की मात्रा को अधिक निकाले। इस प्रकार पानी की मात्रा कम होने से यकृत का संचय भी कम हो जाता है। साधारणतः एप्सम सॉल्ट या सोडा सल्फेड इस कार्य के लिये व्यवहार किया जाता है। यकृत के ऊपर सेंक तथा उष्ण पुल्टिस का बाँधना अथवा मसाज करना भी उत्तम है। कलई चूना और शहद का लेप तथा कबूतर का विष्ठा, तिल, अलसी, जौखार को गरम पानी में लेप करना भी उत्तम है। टिंचर आयोडीन का उपयोग भी किया जाता है। यदि आवश्यकता हो, तो यकृत पर जोंक लगवानी चाहिये।

रोग के प्रारम्भ में कासनी, हरे धनिये का पानी, घिया, खुर्फे के पत्तों का रस, चन्दन, गुलाब, रोगनगुल, मिलाकर लेप करना चाहिये। केशर, कड़वी कूठ, सम्बुल, मुर, ऊदवलसान, अफ़ीम, सलीखा, तज प्रत्येक १ दिरम, उस्सारे गाफिस २ दिरम, मदक की जड़ ३ दिरम, ये सब दवाइयाँ कूट-छानकर तिगुना शहद मिलाना चाहिये। ऊँटनी का दूध पिलाना उत्तम है।

जिस समय रक्त-संचय अधिक होने लगता है, उस समय यकृत-शोथ के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस शोथ के साथ शरीर में ज्वर, स्थानिक उष्णिक तथा दबाने से दर्द आदि लक्षण भी हो जाते हैं। यह रोग पित्त-प्रकृतिवालों में, गरम देशों में, दारू पीनेवालों में, विशेषत: होता है। रोगी के दक्षिण पार्श्व में दर्द होता है, यह दर्द दबाने से, गहरी साँस लेने से, खाँसने से, वाम पार्श्व में लेटने से बढ़ जाता है। रोगी कन्धे में तथा कौड़ी-प्रदेश पर भी दर्द होता है । आँख का श्वेत भाग गँदला या पीला हो जाता है, मूत्र गाढ़ा हो जाता है वमन और जीभ चलाना, मलबन्ध या अतिसार हो जाता है। रोगी को थोड़ा-थोड़ा ज्वर रहता है।

जिस समय दर्द का स्वभाव तीव्र हो और साथ में ज्वर भी हो, उस समय यकृत का आवरण प्राय: करके रुग्ण होता है। जब मूत्राशय में विक्षोभ हो और दर्द कटि की तरफ जाती हो, तो यकृत के निचले भाग आक्रान्त होते हैं। जब वमन हो, साथ में हिचकी भी हो, रोगी कौड़ी-प्रदेश में दर्द की शिकायत करे, तब अवयव के समीपवर्ती यकृत का प्रदेश रुग्ण समझना चाहिये। जब श्वास में कठिनता हो, रोगी गहरा साँस भर न सकता हो,रोगी को खाँसी बहुतहो, तब दक्षिण फुफ्फुस के नीचे रहनेवाला यकृत का भाग रुग्ण समझना चाहिये।

चिकित्सा—प्रत्येक चार घण्टे के अन्तर से विरेचन देना चाहिये, और यदि उपद्रव न हो, तो विरेचन को चालू रखना चाहिये। यदि रोगी को डिसैन्टरी या प्रवाहिका हो, तो इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि शोथ अधिक हो, तो जलौका लगवानी चाहिये। सेंक, उपनाह, गरम लेप इस रोग में लाभदायक है। हल्दी, अजवायन, नमक सैन्धव, इनको घी में पकाकर खाना चाहिये। करञ्ज की मज्जा को नमक के साथ खाने से दर्द शान्त होता है।

चिरकालीन यकृत-शोथ—इसका कारण रक्त-संचय या यकृत की शोथ का बार-बार आक्रमण है। रोगी को सबसे प्रथम दक्षिण पार्श्व में भार का अनुभव होता है, भूख कम हो जाती है, चुभता हुआ दर्द, आध्मान होता है। प्रारम्भ में रोगी का यकृत बढ़कर पसलियों के नीचे उरर आता है। यकृत के दबाव के कारण श्वास में कठिनता आजाती है, और कभी-कभी दोनों

कन्धों में दर्द का अनुभव होता है। चिरकालीन शोथ का परिणाम यकृत का संकुचित हो जाना है। और यदि रोगी मद्य पीता है, तो यकृत क्षीण हो जाता है। दोनों अवस्थाओं में रोगी की त्वचा खुश्क एवं रोगी निर्बल तथा निराश हो जाता है। मल प्रायः चिकना, मिट्टी के रंग का पतला होता है, मूत्र गाढ़ा पीला ही होता है। कभी-कभी रोगी को कामला भी हो जाता है। आँतों से या नाक से रक्त-स्राव होने लगता है।

चिकित्सा के लिये रोगी को विरेचन देना चाहिये। नाइट्रोम्युरेटिक एसिड, ट्रैक्सीसाई, पोडोफिलाई, पोटाशियम, आयोडाइड, एलोइन या ईरीडीन इस रोग में उपयोगी है। नाइट्रोम्युरेटिक एसिड का स्नान भी उत्तम है। कटु, तिक्त पदार्थ देने चाहिये।

यकृत-विद्रधि—यकृत की शोथ ही बढ़कर विद्रधि का रूप धारणकर लेती है। विद्रधि बाह्य गाँठ की भाँति या तो स्वयं बैठ जाती है, अथवा पक जाती है और फूट जाती है। यह रोग मद्य पीनेवाले व्यक्तियों में, प्रवाहिका डिसैन्टरी के रोगियों में अथवा ज्वर से निर्बल हुये पुरुषों में होता है। प्रायः यह रोग स्त्रियों में मिलता है।

लक्षण—जिस समय विद्रधि बनती है, उस समय कारण के अनुसार लक्षण का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न होता है। जैसे—प्रवाहिका में यदि विद्रधि बनेगी, तो ज्वर पुरातन होगा, जो सायङ्काल बढ़ जाता है। जिह्वा बीच से मैली, आगे से लाल, बेचैनी, पार्श्व में भार, कँपकँपी के साथ मूर्च्छा होती है। विद्रधि जबकि बिना किसी पूर्ववर्त्ती कारण से होती है, उस समय मांस का क्षय, बेचैनी, मन्द दर्द, थोड़ी खाँसी, पार्श्व में भारीपन, कँपकँपी, ठण्डा पसीना, यकृत-प्रदेश पर शोथ होती है। पुरातन शोथ यदि कारण हो, तो रोगी की दशा प्रतिदिन गिरती जाती है, प्रायः उसे सर्दी का अनुभव होता है। सायङ्काल मन्द-मन्द ज्वर, बीच में मैली जीभ और किनारों तथा आगे से लाल; भारीपन, बेचैनी, हाथ और पाँव के तलुवे में रुक्षता। जिस समय शोथ तीव्र हो, उस समय कँपकँपी होती है। इसके पीछे ठण्डा पसीना, मैली जिह्वा, गँदला और गाढ़ा मूत्र, रात्रि के समय ज्वर का बढ़ना, अतिसार आदि लक्षण विद्रधि का सन्देह उत्पन्न कर देते हैं।

विद्रधि होने पर पार्श्व में या कौड़ी-प्रदेश पर शोथ हो जाती है। विद्रधि या तो बाहर की ओर मुख करके फटती है, अथवा अन्त:-आँतों में या आमाशय में विदीर्ण होती है। आमाशय में विदीर्ण होने पर पीव वमन के द्वारा और आँतों में फटने पर मल के मार्ग से बाहर हो जाती है। विद्रधि होने पर अजीर्ण के लक्षण, ज्वर, नाड़ी का तेज चलना, चेहरे का क्षीण होना है।

उपाय—जिस प्रकार बाह्य-विद्रधि की चिकित्सा की जाती है, उसी प्रकार अन्त:-विद्रधि की भी चिकित्सा की जाती है। तीव्र रोचक दवाई इसमें लाभ नहीं करती। जलौका का लगवाना या पीव बनने पर "एस्पारेटरी बीडल' से पीव निकलवाना उत्तम है। रोगी की शक्ति बनाये रखने का यत्न करना चाहिये। यदि विद्रधि के पकने की आशंका हो, तो गरम उपनाह, सेंक करना चाहिये। इस रोग में पारे की दवाई का उपयोग हानिकारक है। मलबन्ध के मृदु रेचक, जैसे, पल्वरिहाई कम्पाउन्ड या पिलरिहाई ५ से ६ ग्रेन देना चाहिये। प्रात:काल सिड्लिटिज़ पाउडर देना उत्तम है। एसिड नाईट्रोम्युरेटिक का लोशन बनाकर, इसमें कपड़ा भिगोकर यकृत-प्रदेश पर लगाना चाहिये। दोषघ्न लेप या नीम की पुल्टिस बाँधना भी उत्तम है।

पित्त की उबकाई—किसी दाह-कारक वस्तु के आमाशय में जाने से अथवा मिथ्या आहार-विहार से, यकृत के अव्यवस्थित होने से पित्त की उबकाई आने लगती है। खट्टा पित्त बाहर आता है, वमन होता है। वमन में प्रथम आमाशय के अन्दर का पदार्थ बाहर आता है, पीछे से खट्टा पित्त बाहर आता है। आंत्र में दर्द होता है।

उपाय—वमन के लिखे गये उपचार करने चाहिये। रोगी को लंघन कराके बर्फ चूसने के लिये देना चाहिये। नारियल का पानी पीना उत्तम है। राई या नमक का गरम पानी पिलाकर रोगी को वमन कराना चाहिये। पीछे से विरेचन देना चाहिये। सोडा-वाटर पीने को देना चाहिये। दर्द बहुत हो, तो राई का लेप कौड़ी-प्रदेश पर करना चाहिये। मलबन्ध हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

यकृत का संकोच—कई बार यकृत में वृद्धि होकर पीछे से यकृत संकुचित हो जाता है। इसके कारण यकृत का आकार साधारण आकार से

छोटा हो जाता है। इस रोग के साथ पेट में पानी भर जाता है। जलोदर, पाँव के ऊपर शोथ, कामला, अजीर्ण अथवा अतिसार हो जाता है। इस रोग की चिकित्सा प्रायः असाध्य होती है।

पित्ताश्मरी—पित्ताशय में पित्त एकत्रित होकर अश्मरी का रूप धारण कर लेता है। जिस समय यकृत में रक्त-संचय होने से अथवा यकृत के संकुचित होने से किसी भी कारण से पित्तवाहक-प्रणालियों पर दबाव पड़ता है, उस समय पित्त का स्राव घट जाता है। पित्त का स्राव घटने से वह वहाँ गाढ़ा हो जाता है। इस गाढ़े पित्त की जब अश्मरी बन जाती है, और यह पित्त-प्रणाली में बहने लगती है, तब रोगी को तीव्र दर्द शूल उत्पन्न होता है। इस शूल को पित्ताश्मरी-जन्य शूल कहते हैं। इस दर्द के कारण रोगी बेचैन हो जाता है। जबतक यह अश्मरी बहकर आंत्रों में नहीं आजाती, तबतक रुक-रुककर रोगी को दर्द होता है। यह रोगी मद्य पीनेवाले व्यक्तियों में प्रायः मिलता है। इस पथरी का आकार रत्ती से लेकर अण्डे तक होता है। पित्ताश्मरी के कारण वमन होता है, मलबन्ध रहता है, रोगी को कामला हो जाता है।

उपाय—गरम पानी का सेंक, अलसी की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। रोगी को विरेचन देना चाहिये। दर्द के समय अफीम और बैलोडोना का उपयोग करना चाहिये। जैतून के तेल से पित्ताश्मरी नष्ट होती है, ऐसी अनार्य-चिकित्सा की मान्यता है। आक्रमण के समय रोगी को गरम पानी में सोडाबाईकार्ब मिलाकर देना चाहिये। क्लोरल का उपयोग प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से ५ से १५ ग्रेन तक करना चाहिये। पथरी की परीक्षा करनी चाहिये। यदि पथरी चिकनी और गोल हो, तो समझना चाहिये कि पित्ताशय मे कोई पथरी नहीं बची। पित्ताश्मरी के रोगियों की आँतें सदा स्वच्छ रखनी चाहिये। इसके लिये कार्लसबैड या एपैन्टा वाटर पीने को देना चाहिये। सादा जीवन, मोटा खाना, वसा से बचना, शराब आदि से परहेज़ रखना पथरी से बचा सकता है।

कई बार वृक्क की अश्मरी में और पित्त की अश्मरी में धोखा हो जाता है। उसके लिये निम्न तालिका दी जाती है।

वृक्काश्मरी	पित्ताश्मरी
कटि-प्रदेश में शूल, प्रायः एक पार्श्व में।	नहीं।
दर्द कटि से चलकर वंक्षण और और जङ्घाओं में आती है।	दर्द कौड़ी-प्रदेश मे या दक्षिण पार्श्व में होकर पीछे की ओर जाता है।
प्रायः एक पार्श्व में, बहुत कम दोनों में।	प्रायः दक्षिण प्राश्व में होता है।
अण्ड-कोष ऊपर को खिंच आते हैं।	नहीं।
	नहीं।
बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा होती है।	नहीं।
	नहीं।
मूत्र-प्रवाहण में दर्द होता है।	मूत्र का रंग नहीं बदलता।
मूत्र गँदला, गाढ़ा या रक्त-मिश्रित होता है।	रोगी में पित्ताश्मरी की, कामला की, और पीले रंग के मल की इतिवृत्ति होती है।
रोगी में आमवात, गठिया या शर्करा की इतिवृत्त होती है।	प्रायः स्त्रियों में होती है।
प्रायः पुरुषों में होती है।	५० वर्ष के वायु के पहले बहुत कम होती है।
मध्य आयु में प्रारम्भ होती है।	

कामला—इस रोग में त्वचा पीली हो जाती है। कामला दो प्रकार का होता है, जिसमें पित्त का प्रवाह किसी बाधा के कारण रुक जाता है। यह बाधा रोग के कारण अथवा मिकैनीकल हो, जिससे पित्त यकृत से बहकर बाहर न आ सके। दूसरी अवस्था वह है, जिसमें पित्त की बढ़ी हुई राशि रक्त में लीन हो जाती है। आँख का श्वेत भाग पीला होजाता है। रोगी को आँख से पीला दिखाई देता है। मलबन्ध रहता है, मल का रंग श्वेत या मिट्टी के रंग का और मूत्र गाढ़ा-पीला होता है। त्वचा पर खुजली होती है, मुख का स्वाद कड़वा रहता है, जीभ मैली, बेचैनी, जी मचलाना विशेषतः प्रातःकाल होता है। इन सब लक्षणों का कारण पित्त का रक्त में मिलना है।

कामला-रोग की यह स्थिति या तो स्थायी होती है अथवा अस्थायी। अस्थायी कामला यकृत में रक्त संचित होने से होता है। अथवा पित्ताश्मरी

के कारण पित्त के रुक जाने से उत्पन्न हो जाता है। कई प्रकार के ज्वरों में भी देखा जाता है। परन्तु प्रायः करके अस्थायी कामला छोटी पित्त-वाहिनियों के अवरोध से उत्पन्न होता है। स्थायी कामला किसी भयानक अथवा यकृत के अवयव-सम्बन्धी विकार के कारण या अन्तः-अवयवों के रोग से उत्पन्न होता है।

उपाय—मल खुलकर आये, इस प्रकार का उपाय करना चाहिये। प्रथम दूध या घी मिलाकर विरेचन देना चाहिये। त्रिफले के काढ़े में या गो-मूत्र में घी अथवा सुराक्षार मिलाकर देना चाहिये। नीम की छाल का काढ़ा मधु मिलाकर अथवा त्रिफला, दारुहल्दी, नीम, गिलोय इनमें किसी वस्तु का स्वरस निकालकर मधु के साथ देना चाहिये। कूठ कड़वी इस रोग की उत्तम दवाई है। इसके काढ़े में नवसार तथा विलायती नमक मिलाकर पीना चाहिये। हल्दी के चूर्ण को दधि के साथ; गव्य दुग्ध को शुण्ठी के साथ; लोह-चूर्ण, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, त्रिफला, कटुकी-चूर्ण इनको घी और मधु के साथ, आमलकी, लोह-चूर्ण, त्रिकटु, हरिद्रा इनको घी, मधु और शर्करा के साथ चाटना चाहिये।

यकृत के सम्पूर्ण रोगों की सामान्य चिकित्सा—१—यकृत के सब रोगों में पित्त रेचक एवं शीत औषधि देनी चाहिये। २—निशोथ को पानी में पीसकर, इसमें एरण्ड-तैल अथवा दूध मिलाकर अथवा निशोथ को पानी में पीसकर, इसमें एरण्ड-तैल दूध में पीना चाहिये। ३—अमलतास के गूदे को दूध में मिलाकर उबालकर पीना चाहिये। ४—कुँवार का रस हल्दी में मिलाकर पीना चाहिये। ५—हल्दी का पत्ता १, श्वेत पुनर्नवा का मूल-चूर्ण १, कटुकी-चूर्ण ३ भाग, इनको मिलाकर ४ से ६ आने की मात्रा में गरम दूध या जल के साथ पीना चाहिये। ५—अजवायन, यवक्षार, विड्लवण, हरीतकी, रेणुका, गोल मिर्च, आमलकी, चिरायता इनको जल के साथ पीसकर दो-तीन आना वज़न की गोली बनाकर, यकृत-दोष में बरतनी चाहिये। ७—एक कागज़ी नीबू के रस में ६ रत्ती क्षार लवण (रेह जिससे धोबी कपड़ा धोते हैं) मिलाकर पीने से लाभ होता है।

शास्त्रीय औषधि—रोहितक-लौह, योगराज, अग्निकुमार, लोक-नाथ-रस, त्रिफला-घृत।

पथ्यापथ्य—खट्टी, चिकनी, भारी खूराक, दारू इस रोग में अपथ्य है। घी का उपयोग इस रोग में उत्तम है। घी शीतल होने से पित्त को शमन करता है और विष को नष्ट करता है। छाछ या दही का उपयोग अधिक लाभदायक है। नारङ्गी उत्तम है।

प्लीहा

प्लीहा सामने आमाशय और पीछे पसलियों से ढँकी रहती है। स्वस्थ अवस्था में इसका अनुभव नहीं होता। प्लीहा के बहुत-से रोग मलेरिया के सबब से होते हैं, और मलेरिया का कारण ज्वर है। मलेरिया-ज्वर या आंत्र-ज्वर के कारण प्लीहा में दो प्रकार की शोथ या वृद्धि होती है—१—तीव्र प्लीहा-वृद्धि और २—पुरातन प्लीहा-वृद्धि।

तीव्र प्लीहा-वृद्धि प्रायः करके सहसा ज्वर के कारण हो जाती है। ज्वर की शीत अवस्था में रक्त त्वचा से खिंचकर प्लीहा में एकत्रित हो जाता है। इससे प्लीहा रक्त से भर जाती है, और इसके तन्तु तन जाते हैं। वाम पार्श्व पर दबाने से दर्द और पीड़ा होती है। यह दर्द कभी-कभी वाम स्कन्ध तक या वाम कटि तक पहुँच जाता है। रोगी वाम पार्श्व पर आराम से लेट नहीं सकता। रोगी को बेचैनी और वमन रहता है। वमन से, नाक से या आंत्र से रक्त-स्राव होता है। रोगी की नाड़ी तीव्र रहती है और त्वचा गरम।

पुरातन प्लीहा-वृद्धि का कारण तीव्र प्लीहा-वृद्धि के आक्रमणों का लगातार होना है। परन्तु कई बार यह वृद्धि इतने धीरे-धीरे होती है कि जबतक की यह विशेषतः बढ़ नहीं जाती, भर नहीं जाती, या भारी नहीं हो जाती अथवा इसमें मन्द-मन्द दर्द नहीं होने लगता, तबतक इसका अनुभव नहीं होता। रोगी का ताप-परिमाण १०० अंश फार्नहाइट तक या इससे अधिक रहता है।

प्लीहा के अन्दर रक्त का निर्माण होता है। रोग के कारण जब प्लीहा आक्रान्त हो जाती है, तो इसमें रक्त का बनना कम हो जाता है। रक्त के न बनने से रोगी का चेहरा पीला हो जाता है। जिह्वा पर एक विशेष प्रकार का पीलापन छा जाता है। आँखों का श्वेत भाग मोती के समान या नीबू के रंग का हो जाता है। रोगी को कभी-कभी अतिसार हो जाता है और पांडु स्पष्ट होता है। बढ़ी हुई प्लीहा किसो विशेष अंश तक अच्छी हो सकती है, परन्तु

उस अंश के पार हो जाने पर औषधियाँ निरर्थक हो जाती हैं। प्लीहा के बढ़ने पर रोगी निर्बल हो जाता है। उसका पेट सूज आता है, अतिसार या प्रवाहिका कोई एक रोग स्थिर हो जाता है।

उपाय—जब प्लीहा के स्थान पर सहसा दर्द मालूम पड़े, तब सेंक करना चाहिये। जिन रोगियों में अतिसार न हो, उनको क्युनीन और लोह के साथ मैगनेशियम या अन्य विरेचक औषधि देनी चाहिये। प्लीहा के स्थान में आयोडीन लिनिमैन्ट या आयोडाइड आफ मर्करी का प्रलेप लगाना चाहिये।

सामान्य उपाय—१—बड़ी हरड़ की फाँकी ३ माशे से ६ माशे, इसके बराबर पुराना गुड़ मिलाकर गरम पानी के साथ। २—पिप्पली को गुड़ के साथ। ३—लहसुन, पिप्पली-मूल, हरड़ खाकर ऊपर से गोमूत्र पीना चाहिये। ४—शंख-भस्म या सीप की भस्म नींबू के रस में देना चाहिये। ५—मुसब्बर १, हींग २, यवक्षार ३, बड़ी हरड़ ४ भाग इनका चूर्ण ४ से ८ आने भर गरम पानी से। ६—सैन्धव-लवण, विड्लवण, हीराकसीस, प्रत्येक एक भाग लेकर; आक के पत्तों पर फैलाकर, हाँड़ी में रखकर भस्म बना लेनी चाहिये। इस भस्म की ३ या ४ रत्ती मात्रा पुराने गुड़ और पिप्पली के चूर्ण के साथ प्रातः खाने से अवश्य लाभ होता है। ७—रसौंत, गिलेअरमानी, पीली अञ्जीर, अमलतास का गूदा, गेहूँ की भूसी, मकोय का अर्क, इन सब दवाइयों को सिरके में पीसकर लेप करना चाहिये। ८—गुलाब की जड़, किंबु की जड़, जरावन्द, बालछड़, जरिश्क इन सबको महीन पीसकर झाऊ के पानी में गोली बनाना चाहिये। यह गोली पेट को नरम करने के लिये उत्तम है। ९—अजवायन के बीज, अनीसुन कुसुम के बीज, तितली के बीज, तुलसी, शलगम के बीज, अजवायन की जड़, सौंफ की जड़, सौसन की जड़, प्रत्येक सात दिरम लेकर इनको १०० दिरम सिरके में तथा इतने ही पानी में भिगोकर एक रात रखना चाहिये। पीछे गर्म करें। जब आधा शेष रह जाय, तब छानकर एक सेर मिश्री मिलाकर चाशनी तैयार कर लेनी चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—मंडूर-भस्म, लोह-भस्म, मंडूरवटी, अभयारिष्ट, दशमूलारिष्ट, कनकासव, लोहासव, चित्रक, हरीतकी, गुड़ पिप्पली, लोकनाथ।

पथ्यापथ्य—उदर-रोग के समान।

मनुष्य के शरीर में दो प्रकार के कृमि मिलते हैं, एक वे जो त्वचा के ऊपर रहते हैं, जैसे जूँ, लीक आदि। २—वे जो शरीर के अन्दर रहते

हैं। बाह्य-कृमियों का विवेचन त्वचा के रोगों में तथा बालों के रोगों में किया जायगा।

अन्तः-कृमि मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं। जैसे--टेपवर्म्स-फीते की तरह लम्बे। २—रॉउण्ड वर्म्स-गोल कद्दूदाने की भाँति। ३—थ्रेड-वर्म्स-सीने के धागे के समान श्वेत।

टेपवर्म्स—यह प्रायः युवाओं में मिलते हैं। यह छोटी या बड़ी आंत्रों में रहते हैं। इनकी लम्बाई ६ फीट से २० फीट तक होती है। यह चपटे फीते की भाँति का कीड़ा होता है। इसका रंग श्वेत तथा चौड़ाई अधिक से अधिक एक तिहाई से आधी इञ्च तक होती है। इससे सैगमेन्ट निकलते हैं, जो १ इञ्च लम्बे होते हैं।

इस कृमि का कारण संक्रान्त मांस (सुअर या गाय का) का खाना है। यह रोग मछली के खाने से भी हो जाता है।

साधारणतः जबतक कुछ भाग मल के साथ बाहर नहीं निकलता, तबतक रोगी को कृमि होने का सन्देह नहीं होता। कई बार आँतों में बेचैनी या दर्द होता है। आँतों का कार्य अनियमित रहता है। श्वास में दुर्गन्धि, मल में थोड़ा-सा रक्त, मैली जिह्वा, जी मचलाना, भूख की अनियमता, मूत्राशय में विक्षोभ, नाक में खाज होती है। रोगी सोते समय दाँतों को बजाता है। बालक भय से जागकर चिल्लाने लगते हैं। प्रायः शिर-दर्द, भ्रम, शुष्क कास, धड़कन, मूर्च्छा या निराशा रहती है। कृमियों के टुकड़े प्रायः मल में निकलते रहते हैं।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा दवाई के देने की विधि पर निर्भर है। यदि औषधि ठीक प्रकार से पहुँच गई, तो उससे कृमि मर जायँगे, अथवा कम से कम बाहर तो अवश्य हो जायँगे। टेपवर्म के अन्दर दवाई उसके सिर पर पहुँचनी चाहिये। यदि इसका सिर वहाँ रह गया, तो फिर नये सिरे से उत्पन्न हो जायगा। रोगी को दवाई देने से ३ दिन पूर्व हल्की खूराक देनी चाहिये। तीसरे दिन केवल पतली चाय देना चाहिये। तीसरे दिन की रात को कोई मृदु, विरेचक, जैसे एरंड-तैल या मैगनेशियम सल्फेट देना चाहिये। अगले दिन प्रातःकाल जब आंत्र साफ हो जाय, तब दवाई देनी चाहिये।

टेप वर्म के लिये उत्तम औषधि अनार की जड़ की छाल है। इसको ३ औन्स लेकर ८० औन्स पानी में काढ़ा करके डेढ़ औन्स की मात्रा में प्रत्येक आधे घण्टे के अन्तर से पीना चाहिये। इस प्रकार से ६ खूराकें देनी चाहिये। यदि रोगी को वमन होता हो, तो पेट पर राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। यदि ४ घण्टे तक मल-प्रवाहण न हो, तो एरंड-तैल देना चाहिये। प्रत्येक बार के मल में कृमि का शिर देखना चाहिये। यदि शिर न मिले, तो पुनः इस चिकित्सा को दोहराना चाहिये।

रॉउण्ड वर्म्स (कद्दूदाना)—यह आँतों में और आमाशय में मिलते हैं। कभी-कभी वमन के रास्ते से भी बाहर आजाते हैं। इनके कारण कामला भी हो जाता है। ये कृमि ३ से १० वर्ष के बच्चों में प्रायः मिलते हैं। आकार में ये गिण्डोवे से मिलते हैं। इनका रंग पीला गुलाबी या श्वेत होता है। सिर के पीछे गोल दबाव होता है। इनके कारण जो लक्षण उत्पन्न होते हैं, वे प्रायः टेप वर्म्स से मिलते हैं।

चिकित्सा—सबसे उत्तम औषधि "सैन्टोनीन" मानी जाती है। इसको देने से पूर्व एरण्ड-तैल देकर उस दिन दूध या द्रव भोजन देन चाहिये। रात्रि को फिर एरण्ड-तैल देना चाहिये। अगले दिन प्रातःकाल सैन्टोनीन २ ग्रेन (दो साल के बच्चे के लिये) दिन में तीन बार देना चाहिये। सैन्टोनीन के साथ द्रव भोजन ही देना चाहिये।

सैन्टोनीन के अतिरिक्त थाइमोल, ऑयल ऑफ टरपैन्टाइन, आयल ऑफ मेलफर्न भी उत्तम औषधि हैं।

थ्रेड वर्म्स—ये कृमि १ इञ्च लम्बे, कुछ मुड़े हुये, श्वेत रङ्ग के होते हैं। ये प्रायः आंत्र के निचले भाग पर रहते हैं, जहाँ ये खाज, कण्डु, विक्षोभ उत्पन्न करते हैं। परन्तु इनका मुख्य निवास-स्थान वृहदांत्र का मुख होता है। ये मल के साथ बाहर आजाते हैं। स्त्रियों में ये कृमि उनके गुह्य-भागों में आकर कण्डू और विक्षोभ उत्पन्न कर देते हैं। शिश्न के अग्र-वर्ती त्वचा के नीचे भी आजाते हैं और कण्डू उत्पन्न करते हैं। बच्चों में इनकी उपस्थिति कई बार मूत्र के दुधियाला आने से पहचानी जा सकती है। कमजोर, मैले बच्चों में प्रायः मिलते हैं।

चिकित्सा—इनके लिये कड़वी औषधि मुख से तथा वस्ति-मार्ग से देनी चाहिये। क्युनीन का मुख से देना और २० ग्रेन क्युनीन को ८ औंस गरम पानी में घोलकर उसकी वस्ति देना उत्तम है। चिरायता या काशिया की वस्ति देनी भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त रोगी की स्वच्छता का ध्यान विशेष-रूप से रखना चाहिये। बाहर लगाने के लिये २० बूँद कार्बोलिक एसिड को १ औंस वैजलीन में मिलाकर गुदा पर लगानी चाहिये, जिससे गुदा के बालों में लगे हुये अण्डे नष्ट हो जायँ।

आर्य-चिकित्सा में कृमियों की उत्पत्ति कफ, रक्त और विष्ठा से मानी है। कृमियों की संख्या २० मानी है। इनकी चिकित्सा के लिये अजवायन खुरासानी, ढाक की फली, वायविडंग, कीडामारी, इन्द्रजौ, अनार आदि वस्तुएँ मुख्यतः गिनी गई हैं।

१—कटुकी ४ आना, अनार के मूल की छाल आठ आना, विडङ्ग आठ आना, दालचीनी ४ आना, अपामार्ग आधा तोला, इनको आध सेर जल में पाक करके जब १ छटाँक रह जाय, तब छानकर इसमें ४-५ बूँद तारपीन का तेल मिलाकर पीना चाहिये। २—ढाक के बीज, सोमराजी, खुरासानी अजवायन, विड्लवण, विडङ्ग, गन्धक, इन्द्रजौ प्रत्येक समान भाग लेकर, सबके बराबर बड़ी हरड़ मिलाकर इनको ६ से ८ आने की मात्रा में चूने के जल के साथ लेना चाहिये। ३--वायविडङ्ग ८ दिरम, निशोथ बादाम के तेल में चिकना किया हुआ २ दिरम, अखरोट की मींगियाँ, बिना गुठली का छुवारा १० दिरम, इन सब दवाइयों को महीन पीसकर रात के समय खाने को देना चाहिये। ४—दिरमान तुर्की, वायविडंग छिली हुई प्रत्येक १ मिश्काल, नमक हिन्दी डेढ़ दांग, निशोथ १ दिरम, इन्द्रायन का छिलका १ दांग इन सबको महीन पीसकर दूध में मिलाकर देना चाहिये। ५—वाय-विडंग ७ दिरम, निशोथ २ दिरम, मुनक्का ५ दिरम, काला दाना १ दिरम, इन सबको मिलाकर खाने को देना चाहिये।

पथ्यापथ्य—तिल का तेल, तीखे या कड़ुवे पदार्थ, नमक, गोमूत्र, मधु, हींग, अजवायन, नीबू, लहसुन, कफनाशक तथा रक्तशोधक पदार्थ हितकर हैं।

अपथ्य—दूध, मांस, घी, दही, पत्तों के शाक, खट्टे तथा मीठे रस, आटे के पदार्थ, ये सब वस्तुयें कृमि को उत्तेजित करती हैं। कृमि-रोगी के लिये तेल बहुत उपयोगी है।

अर्श (बवासीर)

अर्श या बवासीर को समझने के लिये यह स्मरण कर लेना चाहिये कि धमनियाँ हृदय से रक्त को लेकर शरीर का पोषण करती हैं और शिरा के भाग से यह रक्त पुन: हृदय में वापस आता है। गुदा या आंत्र का अन्तिम भाग ढीले तन्तुओं से बना होता है। इसमें शिरा और धमनियाँ मिलती हैं। यह इस प्रकार का भाग है, जहाँ कि दबाव या भार से रक्त का दबाव बढ़ जाता है। इसलिये यह खास स्थान है, जहाँ रक्तस्राव हो सकता है। यदि किसी कारण से ऊपर के रक्त-संचार में बाधा उत्पन्न हो जाय, जैसा कि यकृत-विकार में या अवरोध-जन्य मल-बन्ध में होता है, तो रक्त-स्राव की अधिक आशङ्का बनी रहती है।

बवासीर या अर्श दो प्रकार के होते हैं। एक बाह्य और दूसरे अन्त:, अथवा कुछ बाह्य और कुछ अन्त:। बाह्यार्श में प्रथम शिराओं के अन्दर दबाव बढ़ता है। इससे वे लम्बी हो जाती हैं, जिससे गुदा के मुख तक पहुँच जाती हैं। वहाँ पर कठोर काले रङ्ग की सूजन के रूप में अनुभव की जा सकती है। कुछ समय पश्चात् इस शोथ का पानी विलीन हो जाता है, जिससे शोथ भी कम हो जाती है। जहाँ पर त्वचा और गुदा-नलिका मिलती है, वहाँ पर मोटा निशान बन जाता है। बाह्यार्श कठोर, दर्द-युक्त तथा गरम होते हैं। मल-त्याग के समय इनसे रक्त बहुत कम स्रवित होता है। अन्त:-अर्श में बढ़ी हुई शिरायें गुदा की श्लेष्म-कला के नीचे रहती हैं। इससे श्लेष्म-कला गुदा की नलिका के ऊपर नासपाती की तरह लटक जाती है। अन्त:-अर्श बड़े नाजुक होते हैं और कभी इनमें से रक्त-स्राव हो जाता है। यही रक्त-स्राव सबसे प्रथम रोगी का ध्यान इस ओर खींचता है। जिस समय अर्श आकार में बढ़ते हैं, उस समय रोगी के गुदा में भार, जलन, मल-त्याग में कींचना, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा, कमर में दर्द, जो जंघाओं की ओर चलती है, तथा स्त्रियों में श्वेत स्राव होता है। अन्त:-अर्श में जब व्रण हो जाते हैं, तब इनमें प्रवाहिका के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। अन्त:-अर्शों से प्राय: करके थोड़ा या बहुत रक्त-स्राव होता रहता है। साधारणत: अर्श का रक्त मल-त्याग के पीछे आता है, और मल को ढँक लेता है। तीव्र रोग की अवस्था में यह स्वतन्त्र रूप में रोगी के खड़ा होने के समय स्रवित होता है। यदि रक्त-स्राव बहुत न हो और व्यक्ति अच्छा मोटा-ताजा

हो, तो इसका कारण यह होता है कि प्रकृति इसके कारण शरीर के अन्य अवयवों को विशेषतः यकृत को आराम देती है, जो रक्त के संचित होने से भारी बना होता है। यदि इसी प्रकार से प्रतिदिन रक्त-स्राव होता रहे, तो रोगी निर्बल हो जाता है और उसमें पांडुपन आजाता है। इसके साथ ही बवासीर का रक्त-स्राव सहसा बन्द हो जाता है। यकृत में शोथ तथा मस्तिष्क-जन्य मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है।

वाह्यार्श और अन्तार्श दोनों एक साथ प्रगट हो सकते हैं। पहले ये थोड़े समय के लिये प्रगट होते हैं, फिर छोटे हो जाते हैं और कई महीनों के लिये बन्द हो जाते हैं। यदि इस बीच में इनकी चिकित्सा न की जाय, तो ये स्थायी हो जाते हैं। यदि इनसे सदा रक्त-स्राव नहीं होता, तो भी इनसे लगातार दर्द और दुःख होता रहता है। दोनों प्रकार के अर्श सूज सकते हैं, व्रण हो सकता है। जब अर्श सूज आते हैं, तब उनमें उष्णिमा, दर्द, शोथ आदि उपद्रव होते हैं।

बवासीर के कारण बहुत-से हैं। मल-बन्ध, मल-त्याग के समय ज़ोर से कींचना, नरम गद्दों पर देर तक बैठे रहना, घोड़े या साइकिल पर देर तक बैठना, तीव्र विरेचन, विशेषतः उत्तेजक विरेचन, जैसे, मुसब्बर आदि का उपयोग अर्शोत्पत्ति में कारण है। यकृत में रक्त का संचय होना अर्श को उत्पन्न करने के लिये पर्य्याप्त साधन है। बवासीर का सम्बन्ध प्रायः करके गुद-चीर के साथ होता है।

चिकित्सा—वाह्यार्श के लिये सेंक, उपनाह और पुल्टिस बाँधनी चाहिये तथा एरंड-तैल या सोडा सल्फेट पीने के लिये देना चाहिये। रोगी को बिस्तर पर आराम देना चाहिये। यदि ज्वर हो, तो साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया देना चाहिये। जब सूजन कम हो जाय, उस समय स्थान को ठंडे पानी से या फिटकिरी के पानी से धोना चाहिये और आँतों को खुला रखने का प्रयत्न करना चाहिये। उचित व्यायाम, मृदु विरेचक (हरीतकी खंड या गुलकन्द) अथवा छान की रोटी देनी चाहिये। स्थान की स्वच्छता की ओर विशेषतः ध्यान रखना चाहिये। वाह्यार्श में कार्बोलिक एसिड की एक या दो बूँद प्रविष्ट करनी चाहिये।

अन्तःअर्श के लिये सबसे प्रथम एरण्ड-तैल देना चाहिये, फिर गरम पानी की वस्ति देना उत्तम है। यदि अर्श बाहर निकल आये, तो ठण्डे

पानी से धोकर इनको पुनः प्रविष्ट कर देना चाहिये। १—जङ्गी हरीतकी, नागकेशर, दूर्वामूल, पिप्पली-मूल समभाग एकत्र करके आमले के हिम कषाय के साथ पीसकर, बेर के बराबर गोली बनाकर, छाछ के साथ खाना चाहिये। २— उशीरमूल-चूर्ण आधा तोला, काला जीरा चौथाई तोला, गन्धक डेढ़ माशे, इनको मक्खन और मिश्री के साथ। ३—१ रत्ती अफीम, ४ रत्ती कपूर और ८ रत्ती सज्जी मिट्टी, इनको घी में मिलाकर लेप देने से अर्श की व्यथा दूर होती है। ४—अँगुली पर रेत लगाकर उससे वाह्यार्श को रगड़ना चाहिये। ५—कुचले को पीसकर इसका लेप अथवा इन्द्रवारुणी फल को पानी में भिगोकर उसके जल से गुदा को धोने पर या अपने मूत्र से अर्श को धोने से, या नौसादिर और प्याज के कल्क का लेप करने से आराम हो जाता है। ६—तुत्थ को दही की मलाई में मिलाकर लगाने से नवीन अर्शों को आराम हो जाता है। ७—मुर्दाशंख, पपड़िया कत्था, जस्ता, कज्जल, इलायची तथा चौथाई कपूर, सबसे चौगुना घी मिलाकर पानी में हजार बार धोकर लगाने से अर्श चले जाते हैं। ८—बानर का विष्ठा का धूप देने से अर्श अवश्य चले जाते हैं। ९—नीम, बकायन, गेंदहजारा का चूर्ण पीने से अर्श को आराम होता है। १०—अनार के छिलके, कुन्दरन, जायफल, बबूल की छाल, इन चारों को कूटकर अंगूर के पानी में उबालकर, खरल में पीसकर बवासीर पर लेप करे। ११—करमकल्ले के पत्तों को लेकर इतना उबाले कि गल जायँ और रोगन गुल, अण्डे की सफेदी, थोड़ी अफीम मिलाकर लेप करे। १२—ऊँट के कूबे की चर्बी बवासीर में बहुत उपयोगी है। १३—हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आमला छिला हुआ, प्रत्येक १० दिरम, गुग्गुल को गंदना के पानी में खरल करे और दवाइयों को कूट-छानकर, तिगुने शहद में मिलाकर चाशनी बनानी चाहिये। मात्रा ३ माशे है। १४—छाछ अर्श-रोग के लिये उत्तम गिना जाता है। इसमें नमक सैन्धव मिलाकर पीना चाहिये। १५—सूरन इस रोग के लिये उत्तम औषधि है। १६—भिलावाँ इस रोग के लिये खास दवाई गिनी जाती है। इसका घी या चूर्ण गरम पानी से देना चाहिये। १७—नागकेशर को दही की मलाई के साथ और मिश्री के साथ खाना चाहिये। १८—काले तिलों का उपयोग बवासीर के लिये विशेष उपयोगी है। १९—सल्फर सब लाईम और क्रीम ऑफ टार्टार मिलाकर खाने से अर्श का रक्त बन्द होता है।

शास्त्रीय औषधि—अर्शकुठार, शोणितार्गल, प्राणदा गुटिका, चंद्रप्रभा, सूरण-मादक, कुटज-रस-क्रिया।

पथ्यापथ्य—सारक द्रव्य, कच्चे पपीते की तरकारी, गूलर, तिल, सूरन, मूँग उत्तम हैं। गरम, दाहकारक भोजन या मल-बद्ध करनेवाली वस्तुयें इस रोग में हानिकारक हैं। मस्से काढ़ने की रीति का उपयोग किसी जानकार वैद्य से करवाना चाहिये। इस काम के लिये प्रायः हरताल, फलदफीयून, दीक-बरदीक का उपयोग किया जाता है। मस्सा काटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सब मस्सों को काट दे, परन्तु एक मस्सा रोक ले। जिससे यदि रोग बढ़े, तो इस मस्से के कारण उसके ख़राब बुख़ारात बाहर हो जायँ।

प्रकरण छठा

मूत्र-संस्थान-सम्बन्धी रोग

मूत्र-संस्थान में दो वृक्क या मूत्र-पिण्ड, दो मूत्र-नलिका, वस्ति और शिश्न, इन चार अवयवों का समावेश होता है। प्राय: करके मूत्राशय के रोग शारीरिक हैं; परन्तु कभी-कभी बाहर से भी संक्रमण आकर रोग को उत्पन्न कर देते हैं। शिश्न-सम्बन्धी रोगों का तथा रति-शक्ति-हीनता, या पुरुषों के गुप्त रोगों का भी इसी प्रकरण में समावेश किया गया है।

वृक्क-शोथ

वृक्क या गुरदे की शोथ के शीर्षक के कई अवस्थाओं का समावेश किया जाता है। जैसे—गठिया रोग की अवस्था, सीसक विष, अधिक मद्य-पान या क्षय अथवा निर्बल करनेवाले रोगों में वृक्क के अन्दर शोथ हो जाती है। चाहे कारण कुछ भी हो, वृक्क की रचना केअन्दर परिवर्तन आ जाता है, जिससे कि भिन्न-भिन्न लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। सबसे प्रथम जो लक्षण इस रोग का ध्यान खींचता है, वह मूत्र में एल्ब्युमन का जाना है। साधारणत: आँखों से देखने पर एल्ब्युमन का पता नहीं चलता। परन्तु गरम करके तेज नाइट्रिक एसिड डालने से यह मूत्र से अलग होकर श्वेत निक्षेप के रूप में नीचे बैठ जाता है। एल्ब्युमन को देखने ही से इस रोग का निश्चय नहीं कर लेना चाहिये। क्योंकि एल्ब्युमन कई कारणों से (यथा—अजीर्ण के कारण, अण्डे, पनीर आदि खाने से, शीत स्नान के पश्चात् भी) मूत्र में आजाता है। एल्ब्युमन यकृत-विकार के कारण भी हो जाता है।

यदि एल्ब्युमन के साथ वृक्क-नलिकाओं के छिलके भी मूत्र में मिलें, तो इस रोग का चूर्ण निश्चय कर लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त मूत्र की शक्ति का कम हो जाना,रात्रि में मूत्र-प्रवाहण के लिये बार-बार उठना,पीठ के निचले भाग में मन्द बेचैनी, अजीर्ण और बिना किसी स्पष्ट कारण के शरीर में निर्बलता का आजाना। परन्तु कई बार यह रोग इतने शनै:-शनै: आता है कि मूत्र-

परीक्षा ही से पता लगता है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है, रोगी का चेहरा पीला होता जाता है। उसकी आँखों के नीचे सूजन आजाती है। तन्द्रा का अनुभव होता है। निर्बलता के साथ सिर-दर्द, श्वास का छोटा हो जाना, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा (विशेषत: रात्रि में); कभी-कभी बेचैनी और कभी-कभी वमन होता है। अन्तिम अवस्था में हृदय भी आक्रान्त हो जाता है। शोफ प्राय: करके रहता है। वृक्व-शोथ के रोगियों में श्वास-प्रणाली के रोग बहुत शीघ्र अपना स्थान कर लेते हैं।

उपाय—१—इस रोग में वृक्कों को आराम देना चाहिये। उनके कार्य को कम करने के लिये शरीर की त्वचा को उत्तेजित किया जाता है। साथ ही रेचक दवाइयों से रक्त के दबाव को कम करना उत्तम है। पसीने और मल-द्वार से पानी का बहुत-सा हिस्सा बाहर निकलता है, इससे वृक्कों का कार्य घट जाता है।

२—वृक्व के ऊपर जलौका या शुष्क कपिंग करवाना चाहिये। अशक्त रोगी के लिये अलसी की पुलटिस या राई का प्लास्टर लगाना चाहिये। पोरत के डोडों का गरम पानी की बोतल का सेंक करना चाहिये। कम्पाउण्ड जैलप, स्केमनी या कालादाना, स्वर्णमुखा, अमलतास का गूदा आदि विरेचक औषधि बरतनी चाहिये। यदि ज्वर हो, तो स्वेदक औषधियाँ देनी चाहिये। जौ का आटा, चन्दन, मामीसा, मकोय का पानी, कासनी का पानी, बनफसे का तेल, सबको मिलाकर गुर्दे पर लेप करना चाहिये। अमलतास का गूदा, बादाम का तेल, अथवा खट्टे-मीठे अनार के पानी में शिरीखिस्त या हरड़ के क्वाथ में उन्नाब, लिसोड़ा, आलू, बनफसा, कासनी, मकोय, इनको मिलाकर देना चाहिये। इससे कोष्ठ नरम हो जायगा। सूजन को नम करने के लिये उन्नाब ५० दाने, सफेद खसखस ३० दिरम, सूखा धनिया १० दिरम, मसूर छिली हुई १०० दिरम लेकर उबाले। पीछे से २०० दिरम शर्करा मिलाकर चाशनी पकानी चाहिये। इसकी मात्रा १० दिरम है। इसको खुर्फे या ककड़ी-खीरे के पानी के साथ पिलाना चाहिये। कूठ का तेल, सोये और गर्म पानी से सेंक करना चाहिये। अफतीमून का क्वाथ और अमलतास का गूदा भी देना लाभदायक है।

चन्द्र-प्रभा का उपयोग इस रोग में विशेष उपयोगी है। अलसी की चाय इस रोग में शोथ को कम कर देती है।

भोजन में केवल दूध तथा साबूदाने की कांजी देनी चाहिये। रोगी को बिस्तर पर पूर्ण विश्राम देना चाहिये।

मूत्राश्मरी

यह रोग प्राय: करके वहाँ मिलता है, जहाँ पर पानी में चूने की मात्रा अधिक होती है। अश्मरी का निर्माण शर्करा से होता है। ये मूत्र के नीचे निक्षिप्त हो जाते हैं। साधारणत: दो प्रकार की शर्करा मिलती है— १—लाल और २—श्वेत। लाल शर्करा यूरिक एसिड या यूरो के मिलने से बनती है।

जिस व्यक्ति के मूत्र में लाल शर्करा आती है, उसका मूत्र साफ़, अम्ल, गहरा पीला होता है। जब यह ठण्डा हो जाता है, तो निक्षेप नीचे बैठ जाता है। श्वेत शर्करा प्राय: ऑक्सीलेट, फॉस्फेट आफ लाइम आदि से बनते हैं। मूत्र में प्रवाहण होने से पूर्व ये बन जाते हैं, इसलिये रोगी को मूत्र हल्दी के समान पीले रंग का होता है। लाल शर्करा के कारण रोगी की प्रकृति निर्बल हो जाती है। उसको सर्दी शीघ्र हो जाती है। हल्लास, हृदय की जलन, आमाशय में अम्लता, अजीर्ण, यकृत के रोग होते हैं। लाल शर्करा के साथ आमवात या गठिया का रोग भी मिला रहता है। कई बार लाल शर्करा के बहने के साथ कटि में दर्द होता है, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा होती है।

जिस समय बड़े-बड़े टुकड़े मूत्र में प्रवाहित होते हैं, उस समय कटि में दर्द होता है, जो वंक्षण, अण्ड-कोष, जंघा की ओर जाता है। रानों में निर्बलता, मूत्र-प्रवाहण की इच्छा तथा मूत्र-प्रवाहण में दर्द होता है। पुरुषों में अण्ड-कोष साधारणत: ऊपर की ओर खिँच आते हैं। इन लक्षणों के साथ रोगी को मूर्च्छा या ज्वर भी हो जाता है। कई रोगियों में बिना किसी प्रकार की चेतावनी के पीठ और कटि में तीव्र दर्द उत्पन्न हो जाता है,जिसके साथ रोगी को वमन भी हो जाता है। मूत्र-प्रवाहण की इच्छा रोगी को बार-बार होती है। मूत्र का रंग गहरापीला या रक्त-मिश्रित और रंग गँदला होता है। वृक्क से अश्मरी बनकर मूत्र-नलिका में आती है और वहाँ से वस्ति में आजाती है। वस्ति में शर्करा पड़ी रहती है। यहाँ पर आकार में बढ़ती है और अश्मरी बन जाती है और यदि छोटी है, तो मूत्र के साथ बह

जाती है। यदि शर्करा इतनी बड़ी हो जाय कि वृक्क की नलिकाओं से बाहर न आ सके, तो वहाँ शोथ और विद्रधि उत्पन्न कर देती है।

अश्मरी के कारण तीव्र दर्द, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा, शिश्न के अग्र भाग पर खुजली होती है। इस खुजली को मिटाने के लिये बच्चा त्वचा को बार-बार आगे की ओर खींचता है, जिससे त्वचा लाल होजाती है। कई बार ऐसा होता है कि बहती हुई मूत्र की धारा, पथरी के वस्ति-मुख पर आकर रुक जाती है, जिससे धारा का प्रवाह सहसा बन्द हो जाता है। कई बार मूत्र के साथ रक्त भी मिला रहता है। मल-त्याग के समय बच्चों को बहुत कींचना पड़ता है।

उपाय—आक्रमण के समय रोगी को गरम स्नान देना चाहिये और पीने के लिये २५ ग्रेन क्लोरल देना चाहिये। प्रत्येक ६ या ८ घण्टे के अन्तर से इस औषधि को पुनः देना चाहिये। कटि-प्रदेश पर उष्ण परिसेक करना चाहिये। यदि मलबन्ध हो, तो विरेचन देना चाहिये। रोगी को यवोदक, अलसी की चाय या मृदु चाय देना चाहिये। रोगी को क्षारीय औषधि देना चाहिये। भोजन के तीन घण्टे पीछे क्षारीय औषधि देना उत्तम है। रोगी को पानी विशेषरूप से पीने के लिये देना चाहिये।

उपाय—१—खुश्क पुदीना, अफसन्तीन, अजमोदा, हिलीयून की जड़, सौंफ, तितली की जड़, ककड़ी के बीज, सरसों का तेल, परसियावसाँ लाभकारक है। इनकी चटनी बनाकर देनी चाहिये। २—सोंठ, उशीर, गोखरू, पाषाण-भेद और ब्राह्मी इनके काढ़े में जौखार पीना चाहिये। ३—गोखरू का चूर्ण मधु में मिलाकर सात दिन तक बकरी के दूध में पीना चाहिये। ४—शोभाञ्जन का काढ़ा गरम-गरम पीना चाहिये। ५—आर्द्रक, जौखार, हरड़, दारुहल्दी का चूर्ण दही में खाना चाहिये। ६—वरणे की छाल की राख ३२ तोला, जौखार १६ तोला, गुड़ आठ तोला मिलाकर १ तोले की मात्रा खाकर ऊपर से वरणे का काढ़ा पीना चाहिये। ७—वरुण की छाल सोंठ, गोखरू इनके काढ़े में यवक्षार २ माशे और पुरातन गुड़ २ माशे मिलाकर देना चाहिये। ८—वरुण-छाल, पाषाण-भेद, सोंठ और गोखरू इनके काढ़े में जौखार देना चाहिये। ९—वरुण-छाल या तृण-पंचमूल के काढ़े में यवक्षार मिलाकर देना चाहिये। १०—एरण्ड, तालमखाना, गोखरू, वृहती और कण्टकारी इनका मल-मिश्रित ४ माशे दूध में पीसकर मीठी दही में

सात दिन तक लेने से अश्मरी-रोग को आराम हो जाता है। १२—गोक्षुर-बीज-चूर्ण को मधु के साथ पीकर ऊपर से भेड़ का दूध पान करने से अश्मरी नष्ट हो जाती है। १२—नारियल का फूल या नारियल का रस यवक्षार के साथ पीने से निश्चय आराम होता है।

शुक्राश्मरी—इस रोग का कारण उत्पन्न हुये शुक्र को शुक्राशय में रोक लेना है। वहाँ पर शुष्क होकर यह अश्मरी का रूप तो धारण नहीं करता; परन्तु सब लक्षण अश्मरी के समान हो जाते हैं। जैसे—मूत्र में दाह, जलन, मूत्र-प्रवाहण की बार-बार इच्छा। इस अवस्था में शीत-मूत्रल उपचार करना चाहिये, और प्रयत्न करना चाहिये कि मूत्र के साथ शुक्र बाहर आजाय।

उत्पन्न होने से पूर्व ही शुक्र का निरोध करना उत्तम है, और उत्पन्न हो जाने पर उसका मूत्र-मार्ग से बाहर हो जाना ही बेहतर है।

शास्त्रीय औषधि—त्रिकण्टक का काढ़ा (गोक्षुर-क्वाथ), त्रिविक्रम-रस।

शुक्रावरोध के कारण जो जलन हो जाती है, उसके लिये ईसबगोल का लुवाब, बिहीदाने का लुवाब, बेदाने का लुवाब, खुरफे का शीरा, काहू का शीरा, शर्बत खसखस, बनफशा, जौ का काढ़ा, कद्दू का तेल देना चाहिये।

मूत्रकृच्छ्र

इस रोग में मूत्र-वस्ति और मूत्र-प्रणाली के कई रोगों का समावेश होता है। मूत्रकृच्छ्र-रोग में मूत्र कठिनता से दर्द के साथ आता है। कई बार मूत्र बूँद-बूँद आता है।

कारण—मूत्रकृच्छ्र का मुख्य कारण औपसर्गिक-प्रमेह है। इस प्रमेह के कारण स्थायी मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न हो जाता है। प्रमेह के कारण मूत्र-प्रणाली में व्रण हो जाते हैं। इन व्रणों के रोहण से श्लेष्म-कला का पृष्ठवर्त्ती आवरण संकुचित होता है। इस संकोच के कारण मूत्र-नलिका-छिद्र भी तंग हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसी प्रमेह के कारण ग्रन्थि भी बढ़ जाती है। इस ग्रन्थि के बढ़ने से भी मूत्र-मार्ग तंग हो जाता है। यह

ग्रन्थि वृद्धावस्था में भी बढ़ जाती है; उस समय भी मूत्रकृच्छ्र-रोग की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त पथरी, चोट लगना, वस्ति या मूत्र-प्रणाली के भाग पर विशेष शीत पहुँचना इस रोग का कारण बन सकता है।

लक्षण—रोगी को बार-बार मूत्र प्रवाहण की इच्छा होती है; विशेषत: रात्रि में। मूत्र-प्रवाहण के पीछे थोड़ा-सा मूत्र बूँद-बूँद करके गिरता रहता है, जिससे कपड़े गीले होजाते हैं, मूत्र-प्रवाहण में कष्ट बढ़ता जाता है। धारा का प्रवाह मन्द, छोटा, बँटी हुई रस्सी की भाँति होता है। शिश्न के अग्र भाग पर प्राय: खुजली रहती है और चिकना स्राव होता है।

उपाय—मूत्रकृच्छ्र-रोग का वास्तविक कारण का पता लगाकर चिकित्सा करनी चाहिये। यदि इस रोग का कारण औपसर्गिक-प्रमेह हो, तो मूत्र-नलिका को विस्तृत करना चाहिये। इसके लिये रबड़ की 'बुग्गी' (Rubber Catheter) बनी हुई बाज़ार में मिलती है। इसके प्रवेश की विधि चिकित्सक से सीख लेनी चाहिये। इसको क्रमश: नम्बरवार प्रवेश करके देखना चाहिये। जो बुग्गी सबसे अन्त में जाय, उसको कुछ देर के लिये वहाँ छोड़ देना चाहिये। इससे मार्ग चौड़ा हो जायगा। इस प्रकार कुछ समय पश्चात् उससे अगला नम्बर प्रविष्ट करना चाहिये। इस प्रकार करने से मूत्र-मार्ग विस्तृत हो जाता है और फिर समय-समय पर मूत्र-मार्ग में शलाका प्रविष्ट करते रहना चाहिये।

इसके अतिरिक्त रोगी को गरम पानी में बिठाना चाहिये। सीवन पर उष्ण सेंक करना चाहिये। रोगी को मृदु, विरेचक, क्षारीय औषधि देनी चाहिये।

औषधि-चिकित्सा—१—इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, गोखरू, ककड़ी के बीज, सेंधानमक तथा केसर, इनका चूर्ण चावलों के धोवन के साथ। २—ककड़ी के बीज, मुलहठी, दारुहल्दी का चूर्ण तण्डुलोदक के साथ। ३—केले के रस के साथ इलायची का चूर्ण। ४—जौखार ५ माशे शर्करा के साथ। ६—जौखार गोखरू के साथ। ७—कुलथी के क्वाथ में सैंधानमक। ८—हरड़, गोखरू, पाषाणभेद ६ माशा और अमलतास का गुद्दा—इनका क्वाथ मधु के साथ। ९—तृण पंचमूल का काढ़ा। १०—कण्ट-कारी के रस में शहद मिलाकर ११—सोडा और पोटाशियम बाई

कार्ब का उपयोग करना चाहिये। १२—मूली के रस के साथ यवक्षार और शोरे की मात्रा को पीने से, १३—गन्धक, नौसादर १ कुडव, सोरा १ प्रसृति, यवक्षार १ पल, मूली का क्षार १ पल, कर्पूर २-३ माशा—इन सबको मिलाकर डमरू-यंत्र में उठाना चाहिये। ऊपर के बर्त्तन में लगे हुये क्षार को उतारकर शीशी में भर लेना चाहिये। प्रयोग के समय इसमें से कुछ लेकर गुलाब के अर्क में मिलाकर वस्ति पर रखना चाहिये। १४—शोरे को पिघलाकर इसमें गन्धक मिला देना चाहिये। इस शीतल पर्पटी को जीरा के साथ देना चाहिये। १५—खुरफे के बीज, कद्दू के बीज, खरबूजे के बीज, कास के बीज, काहू के बीज, ककड़ी-खीरे के बीज, तरबूज के बीज, शरबत, खसखस का पानी लाभदायक है।

पथ्यापथ्य--प्रवाही और वस्ति-शोधक पदार्थ विशेषरूप से खाने को देना चाहिये। गरम भोजन नहीं करना चाहिये। चावल, जौ, दूध, छाछ, चाय, कॉफी, सोडा-वाटर, लीथिया-वाटर का उपयोग करना चाहिये।

मूत्राघात

मूत्रकृच्छ्र के कारण अथवा पथरी के अवरोध के कारण पेशाब बन्द हो जाता है। मूत्र का अवरोध दो प्रकार से होता है। एक तो मूत्र की उत्पत्ति वृक्वों ही में न हो। इस अवस्था को 'सप्रेशन ऑफ यूरिन' कहते हैं। यह अवस्था विसूचिका में होती है, जब रक्त से पानी का भाग बहुत अधिक मात्रा में निकल जाता है, और रक्त गाढ़ा हो जाता है। दूसरे प्रकार की अवस्था वह है, जब वृक्वों से मूत्र बनकर वस्ति में आजाय, परन्तु वस्ति से मूत्र का प्रवाहण न हो। जैसे, मूत्राशय की अश्मरी में अथवा मूत्राशय के विक्षोभ के कारण या शोथ के कारण जबकि मूत्राशय संकुचित नहीं हो सकता।

मूत्राघात के कारण रोगी को बेचैनी रहती है, पेडू पर दर्द, प्यास, तथा मूत्राशय पर दबाव देने से दर्द होता है। बहुत कींचने पर थोड़ा-सा मूत्र आता है, जो कि बहुत दर्द और जलन से आता है। मूत्राघात की अवस्था कई बार प्रसव के लम्बे होने से भी हो जाती है; विशेषतः जबकि प्रसव से पूर्व मूत्राशय साफ़ न किया जाय।

उपाय—१—गरम पानी में बैठना, गरम पानी में पोस्त के डोडे उबालकर उनका नाभि पर सेंक करना चाहिये। २—सोडा बाई कार्ब, पोटाशियम बाई कार्ब, सुराखार, जौ का पानी इनमें से कोई भी मूत्रल पदार्थ पानी के साथ देना चाहिये। ३—त्रिफला, सेंधा नमक, ककड़ी के बीज, इनको गरम पानी में पीसकर लेप करना चाहिये। ४—१० से १५ ग्रेन डोवर्स पाउडर का देना भी उत्तम है। ५—गोखरू, कबाबचीनी, नेत्रबाला, मुलहट्ठी, हरीतकी, धमासा, कुशमूल, पलाश-बीज प्रत्येक १० आना, इनको आध सेर जल में भिगोकर चातुर्थांशिक काढ़ा शेष रखना चाहिये। ६—कुलथी, बरुणछाल, गोखरू, पुनर्नवा, प्रत्येक आधा तोला इनको आध सेर जल में भिगोकर जब चौथाई शेष रहे, तब इस पाचन के साथ यवक्षार मिलाकर देना चाहिये। ७—अश्वगन्धा का काढ़ा पिलाने से लाभ होता है। ८—बकरी के मूत्र और विष्ठा में तर मिट्टी को शोरे के साथ मिलाकर नाभि के नीचे लगाने से मूत्राघात बन्द हो जाता है। ९—तमाखू और पलाश के फूल का स्वेद मूत्राघात में उत्तम है। १०—कूठ के तेल में या सौसन के तेल में जुन्दबेदस्तर या फरफयून मिलाकर लेप करना चाहिये। ११—सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, दालचीनी, आँवला, जिराबन्द गोल, चिलगोजे की मींग, बाबूने की जड़, ताजा नारियल प्रत्येक १० दिरम, बाबूना ५ दिरम, मवीज मुनक्का ३० दिरम, शहद दुगुना-तिगुना मिलाकर माजून बनाना चाहिये। अलसी के बीज, मेथी, करमकल्ले के पत्ते, खत्मी उबालकर, उसके पानी में रोगी को बिठाना चाहिये। १२—चमेली के तेल में कस्तूरी या जुन्दबेदस्तर मिलाकर मूत्र-मार्ग में टपकाना चाहिये।

पथ्यापथ्य—दारू, श्रम, मैथुन, घोड़े की सवारी, विरुद्ध अन्न-पान, उड़द, मूत्र के वेग को रोकना, अम्लता, उष्णिमा, तीखा, दाहकारक पदार्थों को छोड़ना चाहिये।

पथ्य—पुरातन धान्य, मीठा छाछ, गाय का दूध, मूँग की दाल का पानी, शर्करा, पुराना पेठा, परवल, गोखरू, , नारियल का पानी, इलायची तथा ठण्डे पदार्थों का सेवन उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—कुशावलेह, तृणपंचमूल-क्वाथ।

शय्या-मूत्र

यह रोग बच्चों में होता है। इसका कारण यह है कि मूत्र को नियमित करनेवाला केन्द्र बच्चों में अपना कार्य नहीं करता। जबतक यह केन्द्र अपना कार्य नहीं करता, तबतक बच्चा बेखबरी से मूत्र-प्रवाहण करता रहता है।

इसके अतिरिक्त जब किसी और कारण से भी इस केन्द्र का कार्य बन्द हो जाता है, उस समय मनुष्य इच्छा से बाहर हो जाते हैं। इसके लिये सरल विधि यह है कि बच्चे को सोते समय तथा उसको उठाकर आधी रात में पेशाब करवा देना चाहिये। भोजन सोने से ३-४ घण्टे पहले करा देना चाहिये। पीने के लिये रात्रि में पानी नहीं देना चाहिये। १—सौसन के तेल में फरफयून मिलाकर लेप करना चाहिये। शहद और गुलकन्द खिलाना चाहिये। जीरा, कुन्दरन, हब्बुल्लाम प्रत्येक ५ तोला, ४० तोला शहद में मिलाकर देना चाहिये। २—गुलनार, वंशलोचन, गिले अरमानी, खुरफे के बीज, काहू के बीज इनकी गोली देनी चाहिये। ३—शिशु के चारपाई के नीचे की मिट्टी उठाकर इसको भूनकर घी और शहद के साथ चटाना चाहिये।

प्रमेह

आयुर्वेद मे बीस प्रकार के प्रमेह गिने गये हैं। इनमें १० प्रमेह कफ-जन्य, ६ पित्त-जन्य और ४ वात-जन्य हैं। वात-जन्य प्रमेह असाध्य हैं। प्रमेह का सम्बन्ध पाचन-क्रिया के साथ है। इनके कारण वे ही हैं, जो अजीर्ण के कारण हैं, जैसे—बैठे रहना, आलसीपन, दही-मीठा आदि कफ-कारक गरिष्ठ भोजनों का सेवन करना, प्राणियों का मांस, नया अन्न, पानी, गुड़ इत्यादि पदार्थों का सेवन करना है।

प्रमेह के कारण रोगी को प्यास बहुत लगती है। दाँतों के अन्दर मैल भर जाती है, मुँह से दुर्गन्धि आती है, बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा बनी रहती है, शरीर पर चिकनाहट रहती है। इस रोग में श्वेत निर्मल मूत्र का बहुत आना मुख्य लक्षण है।

मिथ्या आहार-विहार से दोष, वात, पित्त, कफ कुपित होकर सम-

धातुओं को भी कुपित कर देते हैं। उनके विकार से शरीर के अन्दर नाना प्रकार के प्रमेह उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे—

१—उदकमेह—इसमें मूत्र निर्मल, बहुत, ठण्डे पानी के समान, बिना गन्ध के तथा बिना स्नेह भाग के होता है।

२—ईक्षुमेह—गन्ने के रस के समान मीठा और अधिक मात्रा में मूत्र आता है।

३—सान्द्रमेह—यदि रात के समय मूत्र को एक बर्त्तन में रख दिया जाय, तो प्रातः सान्द्र (गाढ़ा) हो जाता है।

४—सुरामेह—मूत्र का रंग और वर्ण सुरा के समान होता है। ऊपर से निर्मल, नीचे से गाढ़ा होता है।

५—पिष्ठमेह—मूत्र का रंग पीठी (उड़द को या चावलों को पीसकर जो पीठी बनती है) के समान श्वेत, पीला तथा मूत्र-प्रवाहण के समय रोगी का शरीर रोमाञ्चित हो जाता है।

६—शुक्रमेह—वीर्य का या वीर्य-जैसा स्राव, जो कूपरस ग्लैण्ड या प्रोस्टेट ग्लैण्ड से होता है, मूत्र के साथ स्रवित होता है। इसको 'स्पर्मैटोरिया' समझा जा सकता है।

७—सिकतामेह—रेत के समान छोटे-छोटे कण मूत्र में आयें।

८—शीतमेह—बार-बार ठण्डा पेशाब आये।

९—शनैःमेह—धीरे-धीरे मन्द वेग से पेशाब आये।

१०—लालामेह—लाला (लार) के समान तारवाला और चिकना मूत्र आता है।

११—क्षारमेह—खार के समान गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्शवाला मूत्र आये।

१२—नीलमेह—नीले रंग के समान मूत्र आये। यह मूत्र 'मैथेलीन ब्ल्यू' के देने से भी आ सकता है, जो गनोरिया में बरती जाती है।

१३—कालमेह—काजल के समान काला मूत्र आये।

१४—हारिद्रमेह—इस मेह में मूत्र का रंग हल्दी के समान पीला होता है। यह मूत्र 'ट्राइफो फ्लैवरीन' के इंजेक्शन देने से भी हो जाता है।

१५—मांजिष्ठमेह—कच्चे पदार्थ की गन्धवाला और मजीठ के रंग का मूत्र आता है।

१६—रक्तमेह—कच्चे पदार्थ की गन्धवाला गरम, लवण-स्वाद-युक्त और रक्त वर्ण होता है।

१७—वसामेह—चरबी के समान रंगवाला और चरबी से मिला हुआ मूत्र आये। इसको अनार्य-चिकित्सा का एल्ब्युमन माना जाय, तो ठीक है।

१८—मज्जामेह—मज्जा-युक्त मूत्र प्रवाहित हो।

१९—हस्तिमेह—हाथी के मद के समान गन्धवाला, वेग-रहित मूत्र आता है।

२०—क्षौद्रमेह—मीठा और रूक्ष मूत्र आता है। चरक में इसीको मधुमेह के नाम से कहा है। अनार्य-चिकित्सा में इसीको 'डायबिटीज़' कहा जाता है।

इनमें प्रथम दस मेह कफ-जन्य, अगले छः पित्त-जन्य और पिछले चार वात-जन्य हैं।

उपद्रव—कफ-जन्य प्रमेह के कारण भोजन का परिपाक नहीं होता। भोजन में अरुचि, निद्राधिक्य, खाँसी कफ-मिश्रित और पीनस होता है। पित्त-जन्य प्रमेहों में लिंग और वस्ति में सुई के चुभने के समान दर्द, अण्ड-कोषों में शूल, ज्वर, दाह, अम्लपित्त, खट्टे डकार, मूर्च्छा होती है। वात-जन्य प्रमेह में उदावर्त्त, कम्प, हृदय-वेदना, सब प्रकार के आहारों के खाने की इच्छा, शूल, अनिद्रा, शोथ, कास और श्वास-रोग होते हैं।

इसके अतिरिक्त पीडिका उपद्रव इस रोग में प्रायः होता है।

उपाय—प्रमेह रोगी साधारणतः दो प्रकार के होते हैं, एक स्थूल और बलवान्, और दूसरे कृश तथा निर्बल। इनमें प्रथम प्रकार के रोगी का संशोधन करना चाहिये, और दूसरे प्रकार के रोगी का संशमन और संतर्पण करना उचित है। चिकित्सा को प्रारम्भ करने से पूर्व रोगी के संशोधन करना आवश्यक है। उसके पीछे चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये।

कफ-प्रमेह—हरीतकी, कायफल, लोध्र, मुस्ता, पाठा, बिडंग, अर्जुन, धमासा; हल्दी, दारुहल्दी, तगर, बिडङ्ग; कदम्ब, शाल, अर्जुन, अजवायन,

दारुहल्दी, बिडङ्ग और खदिर; देवदारु, कूठ, अर्जुन, चन्दन; दारुहरिद्रा, अग्निमन्थ, त्रिफला, पाठा; अजवायन, उशीर, हरीतकी, गुडुची; जामुन, हरीतकी, चित्रक, सप्तपर्ण; पाठा, मुर्व्वा, गोखरू, इन दस कषायों के देने से कफ-जन्य दशों प्रमेह अच्छे होते हैं। इन कषायें में मधु मिलाकर देना चाहिये। उदक-मेही रोगी को पारिजात कषाय; इक्षुमेही को जयन्ती क्वाथ; सुरामेही को नीम का कषाय; सिकतामेही को चीते का क्वाथ; शनैःमेही को खदिर का क्वाथ; लवणमेही को पाठा और अगर का क्वाथ; पिष्ठमेही को हरिद्रा और दारुहरिद्रा का क्वाथ; साधुमेही को सप्तपर्ण क्वाथ; शनैःमेही को त्रिफला-गुडूची कषाय; सान्द्रमेही को त्रिफला-आरग्वध कषाय; शुक्रमेही को दूर्वा, शैवाल, करञ्ज, कशेरन, प्लवक, इनका अथवा अर्जुन और चन्दन का कषाय; शीतमेही को पाठा और गोक्षुर का क्वाथ; इक्षुमेही को नीम का कषाय और सुरामेही को सिम्बल का कषाय पिलाना चाहिये।

पित्त-प्रमेह—उशीर, लोध्र, अर्जुन, लाल चन्दन, मोथा, आँवला, हरड़, पटोल, आँवला और गिलोय; मुस्ता, हरड़, पद्माख, कुडा; लोध्र, मुस्ता, दारुहरिद्रा, धाय के फूल, नीम, अर्जुन, आम की छाल, हरिद्रा और नील कमल, इनके कषाय मे क्रमशः मजीठ, हरिद्रा,नील, कृष्णा, क्षार तथा रक्त-मेह अच्छे हो जाते हैं। पीपल, अमलतास, न्यग्रोधादि गण, त्रिफला, एवं मजीठ और लाल चन्दन-काढ़ा इन पाँच प्रकार के काढ़े में मधु मिलाकर पान करने से नील-मेह हरिद्रा-मेह, शुक्र-मेह और क्षार-मेह तथा मजीठ-मेह आराम होते हैं। खजूर, गम्भारी, गिलोय इनका काढ़ा शीतल करके मधु के साथ पान करने से आराम होता है। पाठा, कुटज, हींग, कुटकी और कूठ इनके चूर्ण को गिलोय और चित्रक के काढ़े में मिलाकर पान करने से सर्पि-मेह शान्त होता है। पाठा, शिरीष, धमासा, मुर्व्वा, केसु, तिन्दुक और कैथ का काढ़ा हस्ति-मेह में; सुपाड़ी का काढ़ा मधु के साथ क्षौद्र-मेह में; अग्निमन्थ या शीशम के कषाय को मधु के साथ वसामेही रोगी को देना चाहिये।

कमीला, सप्तपर्ण, शाल, बहेड़ा, रोहितक, कुडा, कैथ इनके कषाय को मधु के साथ, कफ-पित्त रोगी को; हरड़, मोथा, लोध्र, चन्दन लाल, उशीर इनके काढ़े में मधु मिलाकर पीने से; वात-श्लेष्म रोगी को; विडंग, अर्जुन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, उशीर, सुपारी इनके काढ़ा को पीने से वात-पित्त रोगी को आराम होता है।

सब प्रकार के प्रमेहों में उपयोगी चिकित्सा—१—मधु और हरिद्रा चूर्ण के साथ आँवले का रस अथवा त्रिफला, देवदारु और मोथा इनका काढ़ा पोना चाहिये। २—गिलोय के स्वरस में मधु मिलाकर पीने से; ३—त्रिफला, दारुहरिद्रा, लांगली और मोथा इनके काढ़े में हल्दी और शहद मिलाकर; ४—त्रिफला, लोह, शिलाजीत; अथवा हरीतकी-चूर्ण मधु के साथ सेवन करने से; ५—नारियल के पानी में फिटकिरी का चूर्ण मिलाकर नारियल के पानी में दबा देना चाहिये। २४ घण्टे के पीछे निकालकर इस पानी को पीने से सब प्रकार के प्रमेह आराम होते हैं। ६—दूध के साथ शतावरी का रस; ७—कच्चे दूध के साथ पानी मिलाकर प्रातः काल पीने से; ८—हेशु १ तोला, शर्करा आधा तोला मिलाकर शीतल जल के साथ पान करने से आराम होता है। ९—कच्ची हल्दी, गिलोय, आँवला और कच्चे गूलर इनको कूटकर रस निकालकर, पानी मिलाकर दूध के साथ पान करने से मूत्र-नाली की ज्वाला और स्राव नष्ट होता है। १०—कच्ची हल्दी का रस, श्वेत चन्दन, अरबी गोंद, इनको घिसकर १ रत्ती मात्रा वंगभस्म मिलाकर पान करने से शीघ्र आरोग्य होता है। ११—शिलाजीत, इलायची, वंगभस्म इनको मधु के साथ मिलाकर देने से; १२—बला, कपिकच्छु, उठींगण और इनके बराबर शर्करा मिलाकर दूध के साथ पान करने से; १३—पलाश का गोंद, पाषाण-भेद, समुद्र-शोष, दालचोनी, इनका चूर्ण दूध के साथ लेने से शुक्र-दोष आराम होता है। १४—बबूल की गोंद उसके फूल को खाँड के साथ मिलाकर शुक्र-मेह में देना चाहिये। १५—१ तोला फिटकिरी, २ भाग इलायची और ४ भाग शर्करा इनको मिलाकर तीन पुड़िया बनानी चाहिये। इसको मूत्र जलन में देना चाहिये। १६—बहुमूत्र रोग में काले तिल बड़े उपयोगी हैं।

शास्त्रीय औषधि—प्रमेह-चिन्तामणि, बंगेश्वर, तारकेश्वर, स्वर्ण-वंग, वसन्तकुसुमाकर।

पथ्यापथ्य—लंघन, वमन, विरेचन, पुराने चावल, जौ, त्रिफला, कुलथी, चना, मूँग, स्नान, व्यायाम, मधु, परवल, ककड़ी, पक्का केला, जामुन, खजूर उपयोगी हैं। मूत्र का रोकना, मद्य या तमाखू पीना, दिन में सोना, नया अन्न, दही, बरसात का पानी, मिष्ठान्न, मैथुन, मद्य, गुड़, घी आदि पदार्थ अपथ्य हैं।

आर्य-चिकित्सा में लिखा है कि स्त्रियों को प्रमेह-रोग नहीं होता;

क्योंकि रज के द्वारा उनका शोधन प्रतिमास होता रहता है। परन्तु अनार्य-चिकित्सा के अनुसार तथा प्रत्यक्ष दृष्टि से स्त्रियों में भी प्रमेह-रोग मिलते हैं।

प्रमेह से स्वस्थ होने का लक्षण—प्रमेह-रोगी का मूत्र जिस समय गँदला न रहे, स्वच्छ हो जाय; चिकना न रहे, स्वाद में तिक्त और कटु हो, उस समय समझना चाहिये कि रोगी स्वस्थ होगया।

प्रमेह-पीडिका के लिये—गूलर के दूध का अथवा बावची का लेप करना चाहिये और अनन्तमूल, काली शारिवा, द्राक्षा, त्रिवृत्त, स्वर्णमुखा, कटुकी, हरीतकी, वासक-छाल, नीम-छाल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा और गोखरू-बीज इनका काढ़ा पान करने से रोगी की पीड़िका को आराम होता है।

मधु-मेह

विवेचन—इस रोग में पेशाब बहुत आता है, और उसमें शर्करा होती है। इस शर्करा के कारण पेशाब पर चींटियाँ आती हैं। रोगी को प्यास बहुत लगती है। रोगी का शरीर कुछ मोटा हो जाता है। शरीर के रक्त के अन्दर जिस प्रकार नमक रहते हैं, उसी प्रकार शर्करा का भी कुछ भाग रक्त में रहता है। परन्तु जिस समय यह राशि रक्त में बढ़ जाती है, उस समय यह शर्करा वृक्कों-द्वारा नमक की भाँति मूत्र के रास्ते से बाहर आती है। रक्त में शर्करा बढ़ने के कई कारण हैं—

१—शर्करा का नियन्त्रण यकृत के अधीन है। जिस समय यकृत विकृत हो जाता है, अथवा यकृत के ऊपर कार्य-भार अधिक पड़ जाता है, उस समय यकृत शर्करा को नियन्त्रित नहीं कर सकता। इस नियन्त्रण के रहने से शर्करा रक्त में पहुँच जाती है।

२—क्लोम (पैंक्रियास) को निकाल देने से मनुष्य में मधु-मेह के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार का विचार आधुनिक वैज्ञानिकों का है। इस नियम से जिस समय मनुष्य का क्लोम भली प्रकार कार्य नहीं करता, उस समय भी शर्करा मूत्र में आने लगती है।

३—शर्करा या घी आदि को अधिक मात्रा में सेवन करने से रक्त के अन्दर और मांस-पेशियों में शर्करा का संचय होने लगता है। इस प्रकार के

व्यक्ति शरीर में मोटे होते हैं। प्रथम वसा पेट में, नितम्ब में, बाजुओं में एकत्रित होती है, पीछे से रक्त में आजाती है।

आर्य-चिकित्सा में लिखा है कि सब प्रकार के प्रमेह मधुमेह में परिवर्तित हो जाते हैं। यदि इनकी चिकित्सा भली प्रकार न की जाय, तो इसके अतिरिक्त मधुमेह-रोग वंश-क्रमागत भी होता है।

लक्षण—इस रोग का प्रारम्भ साधारणत: पता नहीं चलता। कई में यह रोग शनै:-शनै: प्रारम्भ होता है, और कइयों में सहसा प्रारम्भ होता है। सबसे प्रथम जो शिकायत रोगी को होती है, वह मूत्र का बारबार और अधिक मात्रा में आना है। यह मूत्र रात्रि में विशेषत: आता है। इसकी राशि २४ घण्टे में १० से ३० पौंड होती है। दूसरा लक्षण यह है कि रोगी को प्यास बहुत लगती है। उसके ओष्ठ शुष्क रहते हैं; परन्तु त्वचा तथा गालों पर स्निग्धता झलकती रहती है। मूत्र का रंग फीका, श्वेत, पानी-जैसा होता है, पेशाब में झाग होती है। मूत्र-त्याग के स्थान पर चींटियाँ आती हैं। मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व बढ़ जाता है, यहाँ तक कि कभी २१०४५ तक पहुँच जाता है। रोगी की भूख बढ़ जाती है। उसे सब प्रकार के रसों को खाने की अभिरुचि होती है। दाँत मैले रहते हैं। प्रात: उठने के समय इनसे दुर्गन्धि आती है। इसके अतिरिक्त रक्त के अन्दर शक्ति कम हो जाती है, इस कारण से थोड़ा-सा क्षत शीघ्र नहीं भरता। कई बार इस रोग की ओर चिकित्सक ध्यान खींचता है। रोगी यद्यपि शरीर में मोटा दिखाई देता है, परन्तु उसकी शारीरिक शक्ति निर्बल हो जाती है। पीछे से उसे अजीर्ण, अनिद्रा, कास, क्षय आदि उपद्रव घेर लेते हैं।

उपाय—अनार्य-चिकित्सा में इस रोग के लिये कोई उत्तम चिकित्सा नहीं मिली। इसके अतिरिक्त ट्रिप्सोजोनी या इसी प्रकार की अन्य औषधि क्रीम से बनाई गई है। इसके खाने से मूत्र की शर्करा स्थायीरूप से घट जाती है। अफीम या कोडिना की गोलियाँ इस रोग में लाभ करती हैं। परन्तु वे भी कोई उत्तम सन्तोषकारक नहीं हैं।

आर्य-चिकित्सा में इस रोग के लिये शिलाजीत, लोह-भस्म तथा न्यग्रोधादि-गण की औषधियाँ उत्तम समझी गई हैं। यह कहा जाता है कि ५० तोले शिलाजीत का उपयोग करने से असाध्य प्रमेह भी अच्छा हो जाता है।

न्यग्रोधादिगण—इसमें बड़, पीपल, गूलर, पिलखन और जामुन हैं। इनमें जामुन की गुठलियों का चूर्ण या इनका छिलका कषाय के रूप में बरता जाता है। इसके उपयोग से लाभ होता है। गूलर की घन रस-क्रिया बनाकर अथवा गूलर के फल का चूर्ण इस रोग में चमत्कारिक असर करता है। रोगी को गूलर के पत्तों या फल की भाजी खानी चाहिये। चम्पारन के एक वैद्य गूलर के द्वारा असाध्य रोगियों की चिकित्सा करते हैं—ऐसा समाचार-पत्रों ने तथा कई रोगियों ने प्रकाशित किया है। पाठा, वायविडङ्ग, अरणी का काढ़ा, लोध्र, इन्द्रजौ और त्रिफला का कषाय मधुमेही के लिये उत्तम है। रोगी की प्यास को कम करने के लिये चूने का पानी दूध में मिलाकर देना चाहिये। रोगी को बर्फ चूमने के लिये देना चाहिये। गरम कपड़ा पहनाना चाहिये।

पथ्यापथ्य—इस रोग का सर्वोत्तम उपाय लंघन है। रोगी को शनैः-शनैः भोजन में से कार्बोहाइड, शर्करा आदि वस्तुओं को हटाते जाना चाहिये। मूत्र में से शर्करा जब बिलकुल कम हो जाय, तब भोजन को शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिये। साथ ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि मूत्र में शर्करा न आये। यदि मूत्र में शर्करा फिर आजाय, तो फिर से लघन करवा देना चाहिये। रोगी को आटे की भूसी, जौ, पत्तों के शाक, कमल-काकड़ी आदि पदार्थ खाने चाहियें।

अपथ्य—शर्करा, गुड़, गेहूँ, नये चावल, आलू, गोभी, बरुणा, फलिया तथा स्टार्चवाले पदार्थ खाने के लिये नहीं देना चाहिये। शर्करा के स्थान पर 'सैकेरीन' का उपयोग कर सकते हैं। इसका उपयोग स्वाद में मधुरता दे देता है।

निश्चित चिकित्सा—रोगी को चाहिये कि वह अकेला बिना छाते और बिना जूते के दिनभर कम से कम ३०-३५ मील (प्रारम्भ में जितना अधिक से अधिक चल सके, उतना चले। फिर दिन प्रति दिन बढ़ाता जाय।) चले, और माँगकर रोटी खाय। एक स्थान पर एक रात से अधिक विश्राम नहीं करना चाहिये। सोने के लिये भूमि या काष्ठ-शय्या उत्तम है। इस प्रकार परिश्रम करने से, और रूखा-सूखा खाने से मनुष्य का प्रमेह (मधु-मेह) अवश्य अच्छा हो जाता है।

औपसर्गिक प्रमेह

यह एक संक्रमण-जन्य रोग है, जो रुग्ण व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति में संक्रमित हो जाता है। संक्रमण रुग्ण व्यक्ति के वस्त्रों से, उसके पात्रों से तथा उसके संसर्ग से होता है। आर्य-शास्त्र के बीस प्रमेह इस संक्रमण-जन्य रोग से सर्वथा भिन्न हैं।

इस रोग का कारण दुष्ट स्त्री के साथ संसर्ग करना है, या रुग्ण व्यक्ति के वस्त्रों का, पात्रों का स्पर्श करना है। इसके अतिरिक्त यह रोग पैतृक वंश-क्रमागत भी होता है।

लक्षण—संसर्ग के ३ या ४ दिन बाद इसके लक्षण प्रारम्भ होते हैं। सबसे पहले पेशाब करने के समय तीव्र दाह और जलन होती है। रोगी को बार-बार पेशाब जाना होता है। पेशाब करते समय पीव आती है। शिश्न को दबाने से पीव बाहर निकल आती है। रोगी अपने को अस्वस्थ अनुभव करता है। उसकी शक्ति प्रति दिन घटती जाती है। उसको हल्का-सा ज्वर अनुभव होता है। प्रथम कुछ दिनों तक पतला पीव-युक्त स्राव रहता है, जो कि मूत्र के प्रारम्भ में आता है। पीछे से यह स्राव गाढ़ा हो जाता है। इसका रंग भी सफेदी से पीलेपन पर आजाता है। मूत्र-मार्ग में दर्द भी होता है। मूत्र-नलिका में शोथ आजाती है। इसके कुछ दिनों पश्चात् शोथ और दाह नर्म पड़ता है। रोगी अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगता है, केवल मूत्र में पीव या दूषित स्राव आता रहता है। पीछे से इसी तरह पुराना हो जाता है। सब लक्षण शान्त हो जाते हैं, केवल मूत्र में धागे के रेशों की भाँति तार आते हैं, और उपद्रव आरम्भ हो जाते हैं।

गनोरिया के कृमि होते हैं। ये प्रायः युगल रहते हैं। ये मूत्र-मार्ग की श्लेष्म-कला को आक्रान्त करके रोग उत्पन्न करते हैं। श्लेष्म-कला के अन्दर व्रण हो जाते हैं। ये कृमि पृष्ठ पर न रहकर अन्दर चले जाते हैं। जिस प्रकार कृमि दूरी पर होंगे, वैसे ही पीव अधिक मात्रा में आयेगी। प्रारम्भ में अग्रभाग पर खाज होती है। मूत्र-नलिका का मुख आगे से लाल और शोथ-युक्त रहता है, और आगे से खुला रहता है। इस भाग को दबाने से पीव निकलती है। मूत्र की धारा पतली होती है, और पेशाब करते समय रोगी को तीव्र वेदना होती है। इस वेदना से रोगी कँहरता है। यदि इस समय शिश्न

में उत्तेजना आजाय, तो बहुत दर्द होता है। यदि रोगी इस रोग की चिकित्सा न करे, तो रोग पुरातन होकर मूत्रकृच्छ्र, अष्ठीला-वृद्धि आदि उपद्रव होते हैं।

उपाय—सबसे पहले को रोगी सोडा वाटर और दूध मिलाकर देना चाहिये। सल्फेट ऑफ सोडा या साईट्रेट ऑफ मैगनेशिया का देना उत्तम है। जितना सम्भव हो, उतना अधिक क्षार देना चाहिये। रोगी को गरम पानी में बैठाकर 'हिप बाथ' देना चाहिये, क्लोरल और क्लोरोडीन को देना चाहिये। यदि शिश्न के अन्दर कड़ापन हो, तो शिश्न को ठण्डे पानी में रखना चाहिये। पानी में स्प्रिट ऑफ कैम्फर की ३० बूँद मिला देनी चाहिये। सब अवस्थाओं में रोगी को बिस्तर पर पूर्ण विश्राम देना चाहिये। पीने के लिये जौ का पानी या सोडा का पानी देना चाहिये। मद्य, मसाले, कॉफी आदि से बचना चाहिये।

यदि रोग का प्रारम्भ ही में पता लग जाय, जबकि कण्डू या पानी-जैसा स्राव हो, तभी सिल्वर नाईट्रेट को २ ग्रेन ८ औंस पानी में घोलकर प्रत्येक घण्टे के अन्तर से दिन में ६ या ८ बार शिश्न में पिचकारी करनी चाहिये। पिचकारी करने से पूर्व मूत्र-त्याग कर लेना चाहिये। रोगी को विरेचन देकर टिंचर नैक्स वौमिका की १ बूँद प्रत्येक १ घण्टे के अन्तर से लेना चाहिये। रोगी को यथासम्भव बिस्तर पर लेटे रहना चाहिये। कुछ चिकित्सक दिन में १० या १२ बार पोटाशियम परमैगनेट के घोल से (२ ग्रेन १ पाइन्ट में) धोते हैं। जब ज्वर के लक्षण हट जायँ, तब रोगी को कोपाइया या चन्दन का तेल लेना चाहिये और बार-बार मूत्र-प्रवाहण करना चाहिये।

स्त्रियों में गनोरिया—इस रोग के लक्षण स्त्रियों में उसी प्रकार के होते हैं, जिस प्रकार के लक्षण पुरुषों में मिलते हैं। परन्तु अन्तर इतना ही है कि इनमें मूत्र-मार्ग आक्रान्त नहीं होता। उस स्थान पर उष्णिमा, दर्द और शोथ होती है, मूत्र-प्रवाहण और चलने में कठिनता का अनुभव होता है। प्रथम कुछ दिनों तक पोस्त के डोडों की गरम उत्तर बस्ति योनि-द्वार में पिचकारी से देनी चाहिये। इसके पीछे पोटाशियम परमैगनेट से योनि-मार्ग को धोना चाहिये।

सरल उपाय—गोखरू, ईसबगोल, तुख्मरिहा, बहुफली, मुगलई बेदाना

आदि दवाइयों का लुवाब मिश्री डालकर पीना चाहिये। फलत्रिकादि-क्वाथ में हल्दी का चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। पाषाण-भेद, धनिया, धमासा, गोखरू, अमलतास प्रत्येक ६ माशे लेकर, आध सेर पानी में रात्रि में भिगोकर, प्रातः इस पानी को दो-तीन बार करके पीना चाहिये। काहू का शीरा, खसखस का शर्बत जलन और दर्द को कम करता है। सियाफे अवियज औरतों के दूध में घोलकर, बादाम का तेल या गुलरोगन मिलाकर मूत्र-मार्ग के छिद्र में टपकाना चाहिये। यदि दर्द की अधिकता हो, तो थोड़ी-सी अफीम, भाँग के बीज आदि दे सकते हैं। गुलाब के अर्क में कहरुवे की बनी पिष्ठि विशेष उपयोगी है। ककड़ी-खीरे की मींग १० दिरम, काकनज के बीज ३ दिरम, अजवायन के बीज, सहदाना, गिले अरमानी, दम्मुल अखवैन, अर्वी गोंद, भाँग के बीज, प्रत्येक २ दिरम, अफीम १ दिरम। इनको कूट-छानकर टिकिया बनाकर शर्बत खसखस के साथ देना चाहिये। मात्रा—१ दिरम से १ मिश्काल।

भिंडी के बीजों का लुवाब पीना अथवा जासुदी के पत्तों का शर्बत पीना इस रोग में विशेष लाभकारी है। १२ भाग कौड़िया लोहबान और ४ भाग राल, इनको चन्दन के तेल में मिलाकर १५ गोली बनानी चाहिये। इसको अनार के शर्बत में खाना चाहिये। माजूफल, छोटी, इलायची, कत्था, वंशलोचन, चन्दन के तेल में गोली बनाकर शर्बत के साथ पीना चाहिये। दो पैसे का तालमखाना, एक पैसे की मेदा लकड़ी, एक पैसे की दालचीनी और चार पैसे की शीतल-चीनी, इन सबका चूर्ण प्रातः-सायं दूध के साथ १४ दिन तक खाने से सूजाक अच्छा हो जाता है। शोरा और श्वेत फिटकिरी को समान भाग लेकर वराहपुट के अन्दर पकाना चाहिये। प्रातः इसको निकालकर इसमें छोटी इलायची का चूर्ण मिलाना चाहिये। इसको प्रातः खाना चाहिये। नमक के पानी से हंस के अण्डे के छिलके को ढीला करना चाहिये। अण्डे को प्रथम नीबू के रस में रखना चाहिये। इसकी पुटपाक करके मक्खन के साथ खाने से उपदंश-रोग शान्त होता है। सफेद सुरमे को दुगुने कन्या-रस से मर्दन करके दस उपलों की आँच से पुटपाक करके, मस्तु के साथ पीसकर एक रत्ती की मात्रा में मक्खन के साथ चाटने से सूजाक अच्छा हो जाता है। खाने में घी के साथ दूध खाना चाहिये। आग पर भूनी हुई फिटकिरी, इसके समान खाँड़ मिलाकर दूध की कच्ची लस्सी से

पीना चाहिये। हंसराज-तृण, केशर, जातिपत्री, (जावित्री) इनको पानी के साथ पीसकर बटी बना लेना चाहिये।

धोने के लिये—नियम यह है कि अनार्य-चिकित्सक रोग के प्रारम्भ ही से मूत्र-नलिका का प्रक्षालन करते हैं। इस प्रक्षालन के लिये साधारणत: निम्न वस्तुयें बरती जाती हैं। जैसे—

त्रिफला या पंचत्वक्-क्वाथ, जिंक सल्फेट १ से २ ग्रेन, पलमबाई एसीटेट १ से ४ ग्रेन, जस्त का फूल १ से ४ ग्रेन, फिटकिरी १ से ४ ग्रेन, नीला तुत्थ १ से ३ ग्रेन, सिल्वर नाइट्रेट ½ से १ ग्रेन; इनमें से किसी एक दवाई को १ औंस पानी में घोलकर बनाना चाहिये। परमैंगनेट ऑफ पोटाश १ भाग, पानी ४००० भाग, जिंक परमैंगनेट १ भाग, पानी ४००० भाग; अथवा जिंक सल्फेट ३ ग्रेन, शुगरलेड २ ग्रेन, ऐक्सट्रैक्ट ओपियाई लिक्विड १ ड्राम, पानी २ औंस का उपयोग करना चाहिये। आजकल एक्रीफ्लैवरीन का उपयोग प्रक्षालन के लिये किया जाता है।

अनुभव—उत्तम यह है कि पहले प्रक्षालन नहीं करना चाहिये। आनन्द-भैरव-रस और जौखार देना चाहिये। जिस समय ज्वर के लक्षण और दाह तथा जलन शान्त हो जाय, उस समय शिश्न पर रस्सी बाँधकर शुगरलड से धोना चाहिये। इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि थोड़ी-सी गलती से रोग पश्चिमीय मूत्र-मार्ग में पहुँच जाता है।

शास्त्रीय औषधि—वंग-भस्म, प्रवाल-पिष्ठि, मुक्ता-भस्म, चन्द्रप्रभा, बृहत् वंगेश्वर, कुशावलेह, प्रमेह-चिन्तामणि, स्वर्ण-वंग, पूर्णचन्द्र, बसन्त-कुसुमाकर।

अनुपान—हल्दी का रस एवं शुक्रमेह-रोग का काढ़ा पीना चाहिये।

पथ्यापथ्य—इस रोग के रोगी को आहार-विहार की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रमेह (गनोरिया) एक शिक्षा है। इसके पश्चात् मनुष्य को चाहिये कि वह कुमार्ग से बचे। गनोरिया के कारण अपनी स्त्री की, अपनी भावी संतति की तथा अपनी जिन्दगी खराब हो जाती है। पुरुष को सम्भोग से दूर रहना चाहिये। पीछे से स्वच्छता, पथ्य और सदाचार के नियमों का पालन करने से रोग दब सकता है।

उपद्रव—मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय-शोथ, रक्तस्राव, वृषण-वृद्धि, आँख का दुखना, संधिवात, बद आदि उपद्रव हैं।

उपदंश (गरमी)

इस रोग का मूत्र-मार्ग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; परन्तु यह रोग प्राय: करके सम्भोग के कारण होता है। इसका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर के ऊपर होता है। यह रोग संक्रमण-जन्य है। एक बार शरीर में इसका विष प्रविष्ट होने पर कठिनता से बाहर निकलता है। इसके अतिरिक्त भावी संतति में अपने चिन्ह छोड़ देता है।

कारण—इस रोग का कारण संक्रान्त व्यक्ति से सम्भोग, चुम्बन आदि करना है। स्त्री की गरमी पुरुष को और पुरुष की गरमी स्त्री को लग जाती है। इसके अतिरिक्त रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग करने से भी यह रोग लागू हो जाता है। यह रोग माता-पिता से उनकी संतति में भी उतरता है।

लक्षण—संक्रमण के दस दिन पीछे एक प्रकार का छोटा-सा मूँग का दाना शिश्न के अग्रभाग पर त्वचा के नीचे दिखाई देता है। परन्तु यह दाना कभी-कभी महीनों पीछे भी निकल सकता है। दाने निकलने के चौथे दिन पीछे इसमें पानी भर जाता है, और इसकी जड़ सूज जाती है। फिर यह पानी पीव बन जाता है, और बह जाता है। इसके स्थान पर दर्द-शून्य सूजन या व्रण बन जाता है, जिसके किनारे उठे हुये कठोर होते हैं; परन्तु बीच से दबा होता है। दूसरी प्रकार का दाना संक्रमण के ४ या ५ दिन पीछे शिश्न के अनुमान पर उत्पन्न होता है। इसमें प्रथम दिन ही से पीव होती है। यह कठोर नहीं होता, परन्तु पहले से अधिक दर्द-युक्त होता है। इसमें उपदंश के लक्षण उत्पन्न नहीं होते।

अगले १५ या ३० दिनों के पीछे जबकि सूजन शान्त हो जाती है, या व्रण भर जाता है, तब वंक्षण की ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं, कठोर हो जाती है, और इनमें दर्द होता है। यह ग्रन्थि या तो स्वयं शान्त हो जाती है, अथवा विद्रधि की भाँति मुख करके फूटती है, अथवा चिकित्सक का चाकू विदीर्ण कर देता है। शिश्न-भाग पर शोथ और वंक्षण में सूजन होने से प्रथम अवस्था के लक्षण समाप्त हो जाते हैं।

परन्तु इससे रोगी रोग से मुक्त नहीं होता। सप्ताह, महीनों या वर्षों के पीछे द्वितीय लक्षण उत्पन्न होते हैं। परन्तु साधारणत: ६ सप्ताह के पीछे

लक्षण उत्पन्न होते हैं। रोगी निराश हो जाता है। उसे आमवात का दर्द होता है, विशेषत: जंघास्थियों में, एड़ियों में। रोगी भूख न लगने की शिकायत करता है। उसे नींद नहीं आती। इसके पीछे त्वचा के रोग, गल-शोथ, जिह्वा या मुख में व्रण हो जाते हैं। रोग की अवस्था भद्र हो, तो मुँह के अन्दर की त्वचा लाल, शोथ-युक्त तथा व्रण-युक्त हो जाती है। रोगी की आवाज़ भारी रहती है, तथा रोगी कान में दर्द की शिकायत करता है। जिस समय मुँह में शोथ होती है, उसी समय त्वचा पर छाले उत्पन्न हो जाते हैं। त्वचा पर जो छाले उत्पन्न होते हैं, वे प्राय: छिलकों के समान होते हैं। ये प्राय: हथेली पर से उतरते हैं। रोगी के नाखून भी आक्रान्त हो जाते हैं। वे जड़ों से ढीले पड़ जाते हैं। इनपर तिरछी धारियाँ पड़ जाती हैं, अथवा इनमें अण्डाकृति चिन्ह हो जाते हैं। इस रोग के कारण नाक की अस्थि अथवा जंघास्थि भी आक्रान्त होती हैं। श्वास-प्रणाली भी आक्रान्त हो जाती है। इससे वाक्-शक्ति में न्यूनता आजाती है। अन्त:-अवयव—मस्तिष्क, मेरुदण्ड और यकृत भी आक्रान्त हो जाते हैं। इस रोग के कारण स्त्रियों में गर्भपात प्राय: करके होता है। रुग्ण व्यक्तियों के बच्चे भी रुग्ण होते हैं। इन बच्चों के गुह्य-भागों पर ताम्बे के रंग के धब्बे होते हैं।

उपाय—रोगी के गुह्य-भागों को पूर्णत: साफ़ रखना चाहिये। कार्बोलिक लोशन का घोल व्रण पर लगाना चाहिये। रोगी को विरेचन देना चाहिये। इस रोग के लिये साधारणत: निम्न उपाय करना चाहिये।

धोने के लिये—१—पंचत्वक् का काढ़ा बनाकर उसके पानी से व्रणों को धोना चाहिये। २—त्रिफले का काढ़ा करके उससे अथवा भाँगरे के रस से धोना चाहिये। ३—रस-कपूर १ भाग, पानी २००० भाग। ४—ब्लैक-वाश में कपड़ा भिगोकर फुंसी पर रखना चाहिये। ५—मर्करी साइनाइड का घोल १ ग्रेन और गुलाब का अर्क १६ औंस अथवा इसी अनुपात में हाइड्रो-जराई एटजिंकोसाइनाइड के घोल से व्रणों को धोना चाहिये।

प्रलेप—१—मर्करी एटजिंकोसाइनाइड ५ ग्रेन, लैनोलीन का प्रलेप १ औंस मिलाकर लेप करना चाहिये। २—गोपीचन्दन तथा नीला तुत्थ पानी में पीसकर, कपड़े पर लगाकर पट्टी बाँधनी चाहिये। ३—रस-कपूर, श्वेत कत्था, मुर्दाशंख, शंखजीरा, माजूफल, सुपारी की राख अथवा त्रिफला की राख; इन सब वस्तुओं को घी में खरल करके प्रलेप बनाना चाहिये।

४—बावची १ भाग, गन्दा बिरोजा १ भाग, गुग्गुल १ भाग, राल १ भाग, नीला तुत्थ १ भाग, हिंगुल १ भाग, पारा १ भाग, घी ९ भाग, तिल का तेल ९ भाग; इन सब चीज़ों को खरल में रखकर नीम की लकड़ी से २४ घण्टे तक रगड़ना चाहिये। ५—फिटकिरी, सोनागेरू, मोर तुत्थ, हीराकसीस, सेंधानमक, लोध्र, रसौत, हरताल, मैनसिल और इलायची इनका बारीक चूर्ण शहद में मिलाकर प्रलेप बनाना चाहिये। ६—त्रिफले की राख बनाकर इसको नमक के साथ शहद में लगाना चाहिये। ७—दशांग-लेप पानी या घी में मिलाकर लगाना चाहिये। ८—हिंगुल, नीला तुत्थ, गुग्गुल एक-एक तोला, बावची तथा मस्तकी दो-दो तोला, राल ४ तोला, तेल ʃ तोला; इनका मरहम बनाना चाहिये। ९—मोरतुत्थ चूर्ण करके कत्थे के साथ इसकी बुकनी देनी चाहिये। १०—कॉस्टिक सिल्वर नाइट्रेट या नाइट्रिक एसिड से सावधानी-पूर्वक स्थान को जला देना चाहिये।

अन्य औषधियाँ—१—पारा इस रोग की सर्वोत्तम औषधि है। इसको कई प्रकार से दिया जाता है। जैसे, रस-सिन्दूर, चन्द्रोदय अथवा अमीर-रस के रूप में। अमीर-रस को बनाने के लिये हिंगुल, दालचिकना, रस-कपूर और चाँदी के तार बारीक कटे हुये; प्रत्येक एक-एक कर्ष लेकर इनको तवे पर बिछा देना चाहिये। बिछाने से पहले तवे पर नमक के साथ आलबाल बना लेना चाहिये। ऊपर से चीनी का पात्र ढँक देना चाहिये। इसके नीचे आग जला देनी चाहिये, पीछे से ऊपर के बर्त्तन में लगी हुई औषधि को उतार लेना चाहिये। इस दवा को १ या २ रत्ती की मात्रा में मुनक्के के अन्दर रखकर इस प्रकार से खिलाना चाहिये कि दाँतों को न लगे। खाने के लिये गाय का दूध, गेहूँ की रोटी देनी चाहिये। नमक सर्वथा नहीं देना चाहिये। इस दवा को सात या नौ दिन तक खिलाना चाहिये। २—जायफल, जावित्री, कत्था, तुत्थ, केशर, लौंग प्रत्येक १ शाण, हिंगुल १ तोला, कस्तूरी ४ रत्ती, दो सुपारियों की राख, इनको नीबू के रस से लोहे के खरल में रगड़ना चाहिये। इनकी गोली बनाकर एक-एक गोली प्रातः-सायं पानी के साथ खाना चाहिये। ३—कस्तूरी १ रत्ती, इलायची १ माशा, वंशलोचन ६ माशे, इनको चन्दन के तेल के साथ पीसकर तीन गोलियाँ बनानी चाहिये। इन गोलियों को एक ही दिन में तीनों सन्ध्याओं में (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल) निगलकर ऊपर से ठण्डा पानी पीना चाहिये। दूध, मधु, तैल, लवण आदि को छोड़

देना चाहिये। ४—२४ माशे चन्दन का चूर्ण, मायाफल और कत्था, प्रत्येक ६ माशे, इनके चूर्ण को एक तोला चन्दन के तेल में मिलाकर शर्करा के शर्बत के साथ ९ दिन तक सेवन करने से विशेष लाभ होता है। ५—कुटज की छाल और मिश्री प्रत्येक १ कर्ष इनको पानी के साथ सात दिन तक पीना चाहिये। ६—बेरी की जड़ की छाल १ प्रस्थ, इसको दो आढ़क पानी में धीरे-धीरे पकाना चाहिये। जब आधा काढ़ा रह जाय, तब इससे व्रणों को धोना चाहिये। ७—कासगरी सफेदा १ कर्ष, हिंगुल ५ माशे, कपूर १ शाण, इनको पानी में धोये हुये घी में मिलाकर लगाने से व्रण और दाह शान्त होते हैं। ८—मुर्दाशंख, राल, तुत्थ इनको तैल और पानी में मिलाकर लगाना चाहिये।

वृहत्‌मंजीष्ठादि-क्वाथ के साथ गुग्गुल के बनावटवाली कोई औषधि, चोपचीनी-क्वाथ अथवा इसका चूर्ण बरतना चाहिये। केशरादि-वटी, गुग्गुल, गिलोय आदि वस्तुयें रक्त-शोधक हैं।

आजकल अनार्य-चिकित्सा में इस रोग के लिये ७०७—साल्वरशन, न्यूसार-वलशन अथवा सल्फआरसनोल आदि इंजेक्शन बरते जाते हैं, और इनसे उत्तम लाभ भी होता है। इनको किसी योग्य चिकित्सक की सलाह से उपयोग करना चाहिये।

पारे के समास प्रथम दो अवस्थाओं में अधिक उपयोगी हैं, और पोटाशियम आयोडाइड रोग की तीसरी स्थिति में उपयोगी है।

पथ्यापथ्य—उपदंश या गनोरिया रोग की चिकित्सा में आहार-विहार का नियन्त्रण विशेष उपयोगी है। इस रोग में तेल, नमक आदि का उपयोग सर्वथा नहीं करना चाहिये। दूध, दूध-रोटी, शर्करा, मीठी वस्तुयें उत्तम हैं। इस रोग की दवाइयों को लम्बे समय तक चालू रखना चाहिये।

वद का उपाय—१—नीम के पत्ते थोड़े-से पानी में पीसकर, इनमें हल्दी और घी मिलाकर; २—अथवा भिलावाँ और शिग्रु की छाल को पानी में पीसकर लगाने से; ३—पारे का प्रलेप ब्ल्यु ऑयन्टमेन्ट लगाने से, या जलौका लगाने से अथवा सेंक तथा गरम-गरम पुल्टिस लगाने से यह रोग शान्त होता है।

पुरुषों के रोग

काम-शक्ति का निर्बल हो जाना--इस रोग के कई कारण हैं और रूप दो हैं, यथा—पहला काम-शक्ति का निर्बल हो जाना और दूसरा शिश्न का निर्बल हो जाना। काम-शक्ति के निर्बल होने के कई कारण हैं, जैसे—भोजन की कमी; इसके कारण देह में निर्बलता आजाती है, शक्ति में निर्बलता, रंग का पीलापन और भोजन की कमी है। दूसरा कारण वीर्य की कमी है। जिस समय वीर्य कम हो जाता है, उस समय संभोगेच्छा कम हो जाती है। वीर्य की कमी वीर्य के गाढ़ा होने से, बँधा होने से, भूखे रहने से, बीच में रोकने से काम-शक्ति घट जाती है। कई बार ऐसा होता है कि किसी-किसी मनुष्य को एक ही स्त्री के साथ सहवास करने का स्वभाव होता है। जब दूसरी औरत से काम पड़ता है, तो इच्छा नहीं होती। अधिक परिश्रम करने के कारण या बहुत समय तक बीमार रहने से, हृदय के निर्बल होने से कामोत्पादक शक्ति उत्पन्न न होगी। आमाशय या यकृत के निर्बल होने से, मस्तिष्क के निर्बल होने से, वीर्याशय के निर्बल होने से काम-शक्ति निर्बल पड़ जाती है।

उपाय—१--सोंठ, सकाकुल, कुलींजन, ईंजर के बीज, जरजीर के बीज, गाजर के बीज, हिलीयून के बीज, सब औषधियों को बराबर-बराबर लेकर कूट ले। प्याज के पानी और शहद में मिलाकर औटाये। जब पानी सूख जाय, तब औषधियों को शहद में मिला देना चाहिये। २—मीठे बादाम की मींगी, सनोबर की मींगी, जलन की मींगी, फन्दक की मींगी, पिस्ते की मींगी, ताजे नारियल का गूदा, खसखस सफेद, तोदरी सुर्ख, सफेद तिल, वहमन सुर्ख और सफेद, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, खुर्फा, दाल-चीनी, हिलयून के बीज, कुलींजन, ये सब औषधियाँ तिगुने शहद में मिलाकर माजून बनावे। ३—दालचीनी, कबाबा, कूठ, अकरकरा, सफेद कनेर की जड़, प्रत्येक १ दाम, इन सबको अधकुट करके २४ घण्टे तक पानी में भिगोकर औटाना चाहिये। जब पानी ३ भाग जल जाय, १ भाग रह जाय, तब इसमें आध पाव मीठा तेल मिलाकर औटाये। जब पानी जल जाय, तेल शेष रहे, तब ठण्डा होने पर इसकी मालिश करनी चाहिये। ४—फरफयून, मुश्क, अकरकरा, प्रत्येक १ माशा, जम्बक का तेल या चमेली

का तेल मिलाकर लेप करना चाहिये। इससे इन्द्रिय दृढ़ होती है। ५—नर्गिस की जड़ एक रात-दिन तक दूध में भिगोकर, अकरकरा, मर्वाजज प्रत्येक ३ दिरम मिलाकर शराब में सानकर लेप करना चाहिये। ६—मस्तगी ३ दिरम, बैंगन के बीज १ दिरम, महीन करके अगर के चोये में मिलाकर काली मिर्च के बराबर गोली बनाकर, सम्भोग के पीछे दो से चार गोली खानी चाहिये। ७—अकरकरा १ दिरम, रेहान के बीज ८ दिरम, कन्द सफेद ९ दिरम, महीन पीसकर गोली बनानी चाहिये। यह वीर्य-स्तम्भक है। ८—सौ चींटे कूटकर, ५ दाम रोगन बलसान, रोगन सौसान ८ दाम मिलाकर, एक शीशी में भरकर गर्मी की ऋतु में ८ दिन तक धूप में रखना चाहिये। आवश्यकता के समय पाँव के तलुओं पर और अँगुली पर लेप करना चाहिये।

मूत्रवाही नली को बढ़ाना—यह काम युवावस्था तक ही हो सकता है। इसके लिये जैतून का तेल, बकरी का घी, जोंक या सूखे केचुये को सौसन के तेल में पीसकर अथवा किरफे के पानी में कई बार धोना या मलना चाहिये। सात चींटे लेकर, नरगिस के तेल में डालकर शीशी में रखना चाहिये। इस शीशी को बकरी की मींगनी में २४ घण्टे तक दबा रखना चाहिये। इसके मलने से लम्बाई बढ़ती है।

सम्भोग के लिये बसन्त-ऋतु सबसे उत्तम है। सोमवार, बृहस्पति की रात, शुक्रवार की रात सबसे उत्तम है। जब आमाशय खाली हो, उस समय सम्भोग करना चाहिये। सम्भोग के पीछे ठंडा पानी या शर्बत नहीं पीना चाहिये। इससे मूत्रेन्द्रिय में शिथिलता आजाती है। सम्भोग के पीछे मीठी और चिकनी वस्तु अथवा सोंठ डालकर औटाया हुआ अथवा ताज़ा धारोष्ण दूध पीना चाहिये।

माजुने मुकरात—देशी अजवायन १ सेर, गाजर के बीज १ दिरम, लौंग १ दिरम, फिटकिरी आधा दिरम, कआऊद १ दिरम, विषखासा, सहदाना, प्रत्येक २ दिरम, सबको पीसकर ३ गुने शहद में मिलाकर माजून बनाना चाहिये। कबाबा, दालचीनी, अकरकरा, लाल मुनक्का, इनको शहद में पीसकर संगम से एक घण्टा पहले लेप करना चाहिये और संगम के समय वस्त्र से साफ कर देना चाहिये।

वीर्य के जल्दी निकल जाने का वर्णन—इसके कई कारण हैं। जैसे, निःस्सारक-शक्ति निर्बल हो। इस अवस्था में वीर्य श्वेत और पतला होता

है। पित्त के लक्षण नहीं होते। इसके लिये कच्चे अंगूर का पानी ६ रतल, गुलनार, गुलाब के फूल, कुन्दरू, सूखा धनिया, सातर-साद प्रत्येक १० दिरम, मुई फिटकिरी १ दिरम, शोधित लोहे का मैल ३० मिस्काल, इनको कूट-छानकर, अङ्गूर के पानी में उबालकर, जब पानी तिहाई रह जाय, तब छानकर रख ले। इससे शरीर में रक्त और वीर्य की अधिकता होती है। इसके लिये खट्टे-मीठे अनार का पानी, अंगूर का शर्बत, नारङ्गी का शर्बत पिलाना चाहिये। शर्बत खसखस, चूके के बीजों का शीरा उत्तम है। वीर्य को पुष्ट करने के लिये इमली के चीआँ को उपलों की आँच में भूनकर छील लेना चाहिये। महीन पीसकर, इसमें बराबर मिश्री मिलाकर सात दिन तक प्रतिदिन फाँकना चाहिये। नया कायफल भैंस के दूध में घोलकर लेप करे और सुबह-शाम गर्म पानी से धोवे। काकुल २ तोले, अरबी ऊँट का दूध फटा हुआ, बहमन सफेद २॥ तोला, इन औषधियों को महीन पीसकर शहद में २१ गोली बनानी चाहिये। इससे वीर्य गाढ़ा होता है।

सहवास की अधिकता का वर्णन—शरीर का मोटा होना और देह में रुधिर और वीर्य की अधिकता का होना इसका कारण है। इसके लिये अंगूर का पानी, उन्नाब का पानी, सिरका, काहू के बीज, नीलोफर, खुरफे के बीज आदि देने चाहियें। अकाकिया, गिले अरमानी, तारम्सीस, गुलनार, इनको पानी में मिलाकर कटि-प्रदेश पर लेप करना चाहिये। शिश्न को ठंडे पानी में रखना चाहिये।

वीर्य, मजी और वदी के निकलने का वर्णन—मजी उस मल का नाम है, जो कामेच्छा के समय मूत्रवाही नली के मुख पर वीर्य से पूर्व निकल आता है। यह चिकना और पतला होता है। यह मल इन्द्रिय में दृढ़ता आने से पूर्व ही आ जाता है। वदी भी मल है, जो मूत्र के साथ पहले अथवा पीछे निकलता है। १—इसके लिये शर्बत नीलोफर, शर्बत बनफशा, ईसबगोल, कासनी के बीज देने चाहिये। काहू के बीज, कासनी के बीज, भाँग के बीज, सूखा धनिया, नीलोफर के फूल, कूट-पीसकर ईसबगोल में मिलाकर काम में लाना चाहियें। २—तितली के बीज, अनीसून, प्रत्येक १ दिरम, गोखरू, जुन्दबेदस्तर, भाँग के बीज, दम्बुल अखवैन, वंशलोचन, प्रत्येक दो दिरम, गुलनार, गुलाब के फूल ३ दिरम, महीन पीसकर ठण्डे पानी के साथ काम में लाना चाहिये। ३—सहदाना भुना हुआ शहद में मिलाकर

देना चाहिये। ४—तितली के बीज ३ दिरम, फजविस्त के बीज, सौसवन की जड़, प्रत्येक दो दिरम, गुलनार (गुलाब) के पत्ते, प्रत्येक १॥ दिरम, कूट-छान-कर दो दिरम खट्टे दही में, अंगूर के खट्टे पानी में मिलाकर पीना चाहिये।

स्वप्न में वीर्य निकल जाने का वर्णन—१—रोगी की पीठ पर सीसे का टुकड़ा बाँधना चाहिये। अलसी, वेद, सम्हालू के बिछाने पर दक्षिण करवट सोना चाहिये। चित्त कभी भी नहीं सोना चाहिये। दूर्वा, बकुल, आमलकी और कर्पूर समान भाग लेकर पुराने गुड़ के सहित पीसकर छोटी बेर के समान गोली बनानी चाहिये। इसको नारियल के पानी के साथ रात्रि में सोते समय सेवन कर लेना चाहिये। २—मूसली का चूर्ण, वंगभस्म, कवाबचीनी, गिलोय इनको ६ आने की मात्रा में प्रातः-काल और रात्रि में आँवले के हिम कषाय के साथ पान करना चाहिये। ३—बकरी के दूध के साथ शोरा और माजूफल पीसकर नाभि के चारोंओर लेप देने से स्वप्न-दोष मिटता है।

फ़ेसमूस—इसका अर्थ यह है कि शिश्न के अन्दर हमेशा कामेच्छा बनी रहती है। प्रतिदिन मूत्र-नली का विस्तार बढ़ता जाता है। इसके लिये रक्त-स्राव, जोंक लगाना, भोजन में न्यूनता तथा वात-नाशक तेल पीठ पर मलना चाहिये।

अजीता का वर्णन—संभोग के पीछे वीर्य के निकलने के समय विष्ठा का भी निकलना होता है। यह रोग उन पुरुषों को होता है, जो संगम में बहुत मजा उठाते हैं। इन पुरुषों की संतान मन्द और मूर्ख होती है। इसके लिये संगम से बचना चाहिये। सम्भोग से पूर्व मल-त्याग करना चाहिये। सम्भोग के समय नाशपाती, नारदीन का तेल गुदा पर मलना चाहिये। जिस स्त्री का गर्भ-स्थान ठण्डा हो, उससे संगम करना चाहिये। अमल, अखरोट, वेद के पत्ते, अकरकरा, मरजे जोश, इकलील, करूमना, इजखर, सलीरवा, सब समान भाग लेकर पानी में उबाल लेना चाहिये। जब पानी आधा रह जाय, तब छानकर तितली का तेल चौथाई मिलाकर तेल में पकाना चाहिये। पीछे से इसमें जुन्दवेदस्तर मिलाकर मरहम बना लेना चाहिये।

उबना का वर्णन—यह रोग वृद्धों में होता है। इस रोग के कारण पुरुष गुदा में सम्भोग करने की इच्छा करता है। इसके कई कारण हैं—नपुंसक के पास रहना, पुरुष में स्त्री की प्रकृति का होना है। स्त्री-प्रकृति-

वाले पुरुष का मूत्र-वाही नल अन्दर को झुका होता है, और इसके मूत्र-वाही नल तथा अणु-कोष छोटे होते हैं। जो पुरुष अपनी स्त्री से गुद-मैथुन करते हैं, उनकी संतान भी ऐसो हो उत्पन्न होती है। इसके लिये बनफसे का तेल और लुवाबदार वस्तु की वस्ति देनी चाहिये।

अण्ड-कोषों की शोथ—इसके कई कारण हैं। जैसे, चोट का लगना, गनोरिया का विष तथा मम्पस के कारण अण्डों में शोथ उत्पन्न हो जाती है। अण्ड-कोष लाल, सूजे हुये, गरम, दबाने या छूने से बहुत दर्द-वाले होते हैं। कभी-कभी दोनों अण्ड-कोष सूज जाते हैं; परन्तु प्राय: दक्षिण अण्ड-कोष सूजता है।

चिकित्सा—यदि गनोरिया में उत्तर-वस्ति दी जाती है, तो उसको बन्द कर देना चाहिये। रोगी को बिस्तर पर पूर्ण विश्राम करना चाहिये। अंड-कोषों के नीचे तकिया रख देना चाहिये। पोस्त के डोडों से सेंक करना चाहिये। यदि दर्द बहुत होता हो, तो अंड-कोषों को बचाकर वीर्यवाही-नलिका पर लगाना चाहिये। ज्वर कम करने के लिये मैगनेशिया देना चाहिये। शोथ कम होने के दस दिन बाद तक भी रोगी को बिस्तर पर रखना चाहिये। रोगी को लँगोट बाँधकर रहना चाहिये। १—बाबूना, इकलील, ज़ीरा, गुलरोगन और अण्डे की जर्दी का लेप करना चाहिये। २—अलसी के बीजों का लुवाब, करमकल्ले के पत्ते, मेथी, शहद में मिलाकर लेप करना चाहिये। ४—चोट के कारण यदि शोथ हो, तो शीत परिसेंक करना चाहिये। ५—ढाक के फूलों के काढ़े से सेंक करना भी उत्तम है, और फोक को गरम करके गोलियों पर बाँधना चाहिये। ६—धनिये का पानी, कद्दू का पानी, कासनी और मकोय का पानी मिलाकर इनसे परिसेंक करना चाहिये। यदि दर्द बहुत हो, तो इसमें अफीम मिला लेना चाहिये।

गोलियों का ऊपर चढ़ जाना—इस रोग का कारण सर्दी है। इसकी चिकित्सा कठिन है। बाबूने और अलसी के बीज के काढ़े में रोगी को बिठाना चाहिये। फरफयून का तेल, हींग, कलील, बाबूना शहद में मिलाकर लेप करना चाहिये।

अण्ड-कोषों की खाल का ढीला पड़ जाना—इसके लिये माजू-आस, गुलाब के फूल, गुलनार, बलूत की छाल और कजमाजू का लेप करना चाहिये।

अण्ड-कोष की खुजली का वर्णन—हरड़ और शाहतरा का काढ़ा पीने को देना चाहिये। गुलरोगन, मामीसा, अजावयन का ताजा पानी, सिरका मिलाकर लेप करना चाहिये। गरम पानी से धोना चाहिये।

मूत्रवाही-नल का टेढ़ा हो जाना—यह दोष प्रायः हस्त-दोष से होता है। इसके लिये सौसन का तेल, नर्गिस का तेल मलना चाहिये।

अण्ड-वृद्धि—इसके कई कारण हैं। जैसे—आँतों का उतर आना, पेट की भीतरी झिल्ली के उतर आने से, हवा भर जाने से, पानी भर जाने से, रक्त भर जाने से अण्ड-कोष आकार में बढ़ जाते हैं।

आंत्र के उतरने से—कई पुरुषों में आंत्र उसी छिद्र से अंड-कोषों में उतर आती है, जिस छिद्र से अण्ड आठवें मास में उदर में से उतरकर अण्ड-कोषों में आता है। यह छिद्र उदर में वंक्षण-प्रदेश में होता है। साधारणतः यह छिद्र बन्द हो जाता है; परन्तु यदि बन्द न हो, तो रोगी के खाँसने या झटके लगने के कारण आंत्र नीचे उतर आती है, और अण्ड-कोष में पहुँच जाती है। इसके लिये रोगी को लेटाकर धीरे से आंत्र को दबाकर पीछे पहुँचा देना चाहिये। यदि इस प्रकार से सहायता न मिले, तो गर्म पानी का सेंक करना चाहिये। गर्म पानी में बैठाना चाहिये। बाबूने का तैल गर्म करके मलना चाहिये। जब आंत्र अपनी जगह पर आ जाय, तब मस्तगी, अंजरूत, कुन्दुरू, सर्व का फल, सर्व का पत्ता, अकाकिया, अनार के फल, हीराबोल, बूल, फिटकिरी, देवदारु, रसौंत प्रत्येक बराबर लेकर मकोय के पानी में लेप बनाकर लगाना चाहिये। खाने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। वायुकारक वस्तुओं को छोड़ देना चाहिये। २—कुन्दुरू, एलुवा, बूल, देवदारु प्रत्येक ३॥ माशे, कूटकर २४ घण्टे सिरके में भिगोकर लेप करना चाहिये। यह लेप पेट की झिल्ली के उतरने में भी लाभदायक है।

जीरे की जवारिश—जीरा किरमानी सुधा हुआ १७५ माशे, सफेद मिर्च, कालीमिर्च, प्रत्येक २४॥ माशे, तुतली ५२॥ माशे, दालचीनी, पापड़ी नमक, प्रत्येक १७॥ माशे, सोंठ का मुरब्बा १४० माशे, मुरब्बों की हरड़ २१० माशे, गुलकन्द, ३५० माशे मिला देना चाहिये। इससे वायु नहीं बढ़ती। इसको जवारिश कम्मूनी अकबर भी कहते हैं।

अण्ड-कोषों में पानी भरना—सबसे प्रथम पानी अण्ड-कोषों की तलैटी में भरना प्रारम्भ होता है। फिर धीरे-धीरे नारंगी के आकार में बढ़

जाती है। इसकी पीठ चिकनी होती है, स्पर्श करने में मुलायम दर्द-रहित होती है। परन्तु भार के कारण बेचैनी उत्पन्न करती है। यह आघात के कारण, बिना किसी कारण अथवा उत्पत्ति के समय ही से होती है। इसके लिये अनार्य-चिकित्सा में विधान है।

१—कनेर की लकड़ी की राख, बलूत की राख, जैतून के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये। २—नागरमोथा, जौ का चून, गौ का गोबर; मिर्च, हब्बुलगार, पापड़ी नोन; जीरा इनको जैतून के तेल में अथवा शराब में; जौ का चून, नागरमोथा, गिले इरमानी, जीरा, सरू के पत्ते, मौलसिरी के पत्ते, बकरी की पुरानी मींगनी, सब बराबर लेकर, गोबर में मिलाकर लेप करना चाहिये। ये सब दवाइयाँ वहीं उपयोगी हैं, जहाँ पानी अधिक एकत्रित न हुआ हो।

हवा के कारण जो वृद्धि होती है—१—१६ तोले गोमूत्र में एरण्ड-तैल में पिसा हुआ गोमूत्र ८ माशे मिलाकर अथवा २ तोला एरण्ड-तैल मिलाकर पान करने से वात-वृद्धि नष्ट होती है। २—आर्द्रक-रस के साथ, मधु के साथ पीने से और चन्दन, मुलहठी, पद्माख, उशीर, नीलकमल, इन सब वस्तुओं को दूध में पीसकर लगाने से पित्तज-वृद्धि शान्त होती है। ३—हरीतकी गोमूत्र में पकाकर एरण्ड-तैल, नमक और गोमूत्र के साथ प्रतिदिन खाना चाहिये। ४—एरण्ड-तैल दूध के साथ पान करने से। ५—दक्षिण वृषण-वृद्धि में वामकर्ण और वाम वृषण-वृद्धि में दक्षिण कर्ण-बन्ध करने से वृद्धि-रोग शान्त हो जाता है। ६—हरीतकी कल्क को एरण्ड-तैल में भूनकर पिप्पली और सैन्धव-चूर्ण के साथ खाने से बद गाँठ को आराम होता है।

आंत्र-वृद्धि के पट्टे का उपयोग करना चाहिये।

प्रकरण सातवाँ
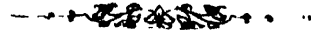
आँख, कान, नाक, मुख और दाँत के रोग

आँख, कान, नाक, मुख ये अवयव बहुत बारीक रचनावाले हैं। इनमें बहुत प्रकार के रोग होते हैं। इसलिये योग्य चिकित्सक से इस काम में सलाह लेनी चाहिये। यहाँ पर मुख्य-मुख्य रोगों का वर्णन किया जाता है।

आँख के रोग

आँख का दुखना (अभिष्यन्द)--आँख के अन्दर की श्लैष्मिक कला में किसी प्रकार का विक्षोभ होने से आँख लाल हो जाती है। इसमें दाह, वेदना और स्राव होता है। आँख का श्वेत भाग भी लाल हो जाता है। यह विक्षोभ धुआँ लगने से, वायु लगने से, शीत-क्रिया से, आँख में कुछ गिर जाने से, गरम वस्तुओं के खाने से, दुःखित आँखों के स्राव के लगने से होता है। यदि आक्रमण ज़ोर का हो, तो अन्दर से पीव निकलती है। यदि तुरन्त उपाय नहीं किया जायगा, तो इसमें फूली पड़ जाती है। इससे आँख की कनीनिका को भी नुकसान पहुँच जाता है।

उपाय—१—आँख के ऊपर गुलाबजल का, दूध का, हल्दी के पानी का कपड़ा रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त आँख के अन्दर निम्न वस्तुओं की बूँदें डालनी चाहिये। इससे शोथ और लाली कटती है। २—त्रिफले के क्वाथ की या स्त्री के दूध की बूँदें डालना चाहिये। ३—जिंक सल्फर ४ ग्रेन, पानी १ औंस; नीलातुत्थ २ ग्रेन, गुलाबजल १ औंस; टॅनिक एसिड २० ग्रेन, ग्लैसरीन २ ड्राम, पानी ६ ड्राम; फिटकिरी ३ ग्रेन, पानी १ औंस; क्रासिक १ ग्रेन, गुलाबजल १ औंस; दो-चार बार आँख में डालना चाहिये। मधु या ग्लैसरीन की बूँद आँख में डालनी चाहिये।

सेंक—यदि आँख में दर्द बहुत हो, तो मृदु सेंक करना चाहिये। दर्द को कम करने के लिये पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। पीछे से सिल्वर नाइट्रेट का घोल (१ से ३ ग्रेन, पानी १ औंस) डालना चाहिये।

आँखों को बोरिक लोशन या नीम के पानी से दिन में चार-पाँच बार धोना चाहिये।

कुकरे—आँख की पलकों के अन्दर साबूदाने के समान छोटे-छोटे लाल दाने हो जाते हैं। इनको देखने के लिये पलक को उलटा करना पड़ता है। ये लाल दाने सच्चे कुकरे नहीं हैं। सच्चे कुकरे सफ़ेद होते हैं, जो इन लाल दानों के बीच में दिखाई देते हैं।

लक्षण—आँख लाल हो जाती है। आँख में खुजली मालूम पड़ती है। आँख में शोथ हो जाती है; पानी बहता है; उजाला सहन नहीं हो सकता। आँख में कुछ रड़कता-सा प्रतीत होता है। ये कुकरे यदि पुराने हो जाते हैं, तो स्थायी बन जाते हैं और बार-बार आँख दुखने लगती है। आँख का डेला कुछ मैला हो जाता है। दृष्टि मन्द पड़ जाती है; पलकें अन्दर की तरफ़ झुक जाती हैं। उजियाले में आँख टिक नहीं सकती।

उपाय—आँख दुखने के सब उपाय इस रोग में बरते जा सकते हैं। पलकें उलटा करके कास्टिक लोशन (२० ग्रेन, १ औंस पानी में) लगाकर नमक के पानी से धोना चाहिये। टॉनिक एसिड ग्लीसरीन का लगाना भी उत्तम है। प्रोटार गोल २० ग्रेन, ग्लैसरीन ३० बूँद, पानी १ औंस आँख में डालना चाहिये। रोगी को अँधेरे कमरे में रखना चाहिये, और अच्छा होने पर चश्मे का उपयोग करना चाहिये।

आँख का व्रण—आँख के काले डेले में शोथ होने से श्वेत या पीला चिन्ह पड़ जाता है। काले डेले का व्रण होने पर दाग़ रह जाता है। इस व्रण को फूली कहते हैं। इसका कारण अक्षि-शोथ या चेचक अथवा चोट होती है।

उपाय—१—व्रण पड़ने पर गरम पानी का सेंक करना चाहिये। आँख पर पट्टी बाँधकर रखनी चाहिये। एट्रोपीन १ से ४ ग्रेन १ औंस पानी में मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। २—कैलोमल, आयडोफार्म, बोरिक एसिड, इनका चूर्ण आँख में डालना चाहिये अथवा इनके प्रत्येक ३० ग्रेन चूर्ण को १ औंस वैजलीन में मिलाकर प्रलेप बनाना चाहिये।

शुक्र—यदि यह ताजा हो, तो मिट जाता है। इसके लिये निम्न उपाय बरतना चाहिये—

१—कैलोमल ३० ग्रेन अथवा ५ ग्रेन यलो ऑक्साइड ऑफ मर्करी को एक औंस श्वेत वैजलीन में मिलाकर अञ्जन करना चाहिये। मोरतुत्थ २ ग्रेन, पानी एक औंस का उपयोग करना चाहिये।

मोतिया—यह रोग वृद्धावस्था में प्रायः होता है। इस रोग के कारण आँख के अन्दर का स्वच्छ लैन्स अपार-दर्शक बन जाता है। जिस समय इस रोग का प्रारम्भ होता है, उस समय आँख के सामने धुँधलापन नजर आता है। सम्पूर्ण मोतिया उतरने में कई वर्ष या मास लग जाते हैं। पक जाने पर इसको चाकू से निकलवा देना चाहिये। निर्बलता भी इस रोग का कारण है।

कामरवा—यह बहुत कष्टदायक रोग है। इस रोग के कारण सिर में पीड़ा होती है, इसलिये कई बार इसको शिरोरोग समझा जाता है। यह रोग प्रायः बड़ी आयु में होता है। इस रोग का आक्रमण दो प्रकार से होता है—एक तो आँख में सख्त शोथ होती है, और दूसरे रूप में रोग का आक्रमण शनैः-शनैः होता है। इसमें कोई भी स्पष्ट लक्षण दिखाई नहीं देता। इस दूसरे प्रकार में आँख की दृष्टि धीरे-धीरे कम हो जाती है। इस रोग में अनार्य-चिकित्सा की 'एसेरीन सल्फेट' उत्तम औषधि है। इसके कारण आँख की पुतली संकुचित हो जाती है। यदि शोथ तीव्र हो, तो रक्त का दबाव कम रखना चाहिये। इसके लिये आँखों के बराबर छाला उठाना चाहिये, जलौका लगाना चाहिये, विरेचन देना चाहिये। खाने के लिये एक्सालजोन ५ ग्रेन की मात्रा में या फीनेजोन १० ग्रेन की मात्रा में देना चाहिये। रोगी को नींद लानेवाली औषधि देनी चाहिये।

परवाल—पलकों के अन्दर मुड़ जाने से बाल आँखों में चुभते हैं। अथवा पलकों के किनारों पर नये बाल उत्पन्न होकर आँख के अन्दर के भाग की तरफ मुड़कर आँख को नुकसान पहुँचाते हैं, और कई बार काले डेले पर घिसने से फूली की भाँति झाईं दिखाई देती है। परवाल होने से आँख में खुजली होती है, बालों की जड़ें सूजी हुई, आँख लाल तथा किनारे मोटी होती है।

उपाय—१—अन्दर की तरफ़ मुड़े हुये बालों को संदंश से निकाल-कर कॉस्टिक से जला देना चाहिये; परन्तु फिर भी आना सम्भव है। २—यलो ऑक्साइड ऑफ मर्करी का प्रलेप लगाना उत्तम है।

अञ्जन-नामिका—पलकों की जड़ में छोटी फुंसी हो जाती है, इसको अञ्जली कहते हैं। जब यह पकती है, तो इसमें से पीब निकलती है। यह रोग अस्वच्छता से होता है। यह रोग प्राय: बालकों में होता है, और कई बार एक के पीछे दूसरी, इस प्रकार से लगातार कई निकलती हैं।

उपाय—१—गरम पानी से बारबार सेंक करना चाहिये। फिटकिरी मिलाकर गरम पानी से धोना चाहिये। कास्टिक से जला देना चाहिये। लौंग घिसकर लगाना उत्तम है। पीने के लिये टिंचर बैलोडोना १ बूँद १ औंस पानी में, प्रत्येक एक घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

आँख के रोगों के लिये सामान्य उपाय—१—आँवले का रस अथवा शोभाञ्जन के पत्तों के रस में १ माशा मधु और २ रत्ती सैंधव मिलाकर आँख में डालना चाहिये। २—दारुहरिद्रा के काढ़े में रसौंत और स्तन्य-दुग्ध मिलाकर आँख में डालने से अभिष्यन्द-रोग को आराम होता है। ३—सैन्धव, रसौंत, दारुहरिद्रा, स्वर्ण-गैरिक, हरीतकी इनका लेप आँखों के बाहर करना चाहिये। ४—हरीतकी का बीज १ भाग, बहेड़े का बीज २ भाग, आमलकी-बीज ३ भाग जल में पीसकर; बत्ती बनाकर अञ्जन करना चाहिये। ५—शतावरी का रस पीना अथवा रसौंत, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मालती-पत्र, नीम-पत्र इन सबको गोमय-रस में घिसकर अञ्जन करना चाहिये। इससे रतौंधी दूर होती है। ६—निर्मली-फल को मधु के साथ घिसकर इसमें थोड़ा-सा कपूर मिलाकर अञ्जन करने से आँख निर्मल होती है। ७—सौवीराञ्जन सात बार त्रिफला के काढ़े में, सात बार स्तन्य-दूध में बुझाकर अञ्जन करना चाहिये। इससे सब प्रकार के अक्षि-रोग दूर होते हैं। ८—निर्मली-फल, शंखनाभि, तिन्दुक और चाँदी इनको स्तन्य-दुग्ध के साथ काँसी के बर्त्तन में घिसकर अञ्जन करने से व्रण-शुक्र-रोग अच्छा होता है। ९—समुद्रफेन, मुर्गे के अण्डे का छिलका, सैन्धव नमक, मधु (किसीके मत में स्वर्णमाक्षिक) और सहजन के बीज इन सब वस्तुओं को सहजन के रस में पीसकर बत्ती बनानी चाहिये। यह बत्ती शुक्र-रोग में लाभकारी है। १०—मुर्गे के अण्डे का छिलका, मनःशिला, शंखनाभि, काचलवण, चन्दन,

गेरू इनको समान भाग लेकर अंजन करने से अर्म्य-रोग अच्छा होता है। ११—करञ्ज-बीज के चूर्ण को एक सप्ताह तक ढाक के फूल के स्वरस में भिगोकर बत्ती बनाकर अथवा सैन्धव-चूर्ण को मधु के साथ लगाने से कुसुम और अर्म्य-रोग नष्ट होते हैं। १२—सूक्ष्म कपूर के चूर्ण को बट के दूध में मिलाकर अञ्जन करने से उन्नत शुक्र-रोग शान्त होता है। १३—त्रिफले की मज्जा, गोरोचन, जेठी मधु और लाल चन्दन, इनको मधु के साथ पीसकर अञ्जन करने से क्षत, व्रण, शुक्र और अश्रु-स्राव नष्ट होता है। १४—दुर्वा, यव, गेरू, अनन्तमूल, इन सब वस्तुओं को घी के साथ पीसकर प्रलेप देने से चक्षुः-शूल, आँख की लालिमा शान्त होती है। १५—मधु के साथ शङ्खनाभि, सैंधव के साथ निर्मली-फल, अथवा चीनी के साथ समुद्रफेन पीसकर अर्जुन रोग में अञ्जन करना चाहिये। १६—जस्ते का सफेदा, सभगे अरबी, कतीरा इनको ईषबगोल के लुआब में या अण्डे की सफेदी में बत्ती बनाकर आँख में अञ्जन करने से आँख का दर्द शान्त होता है। १७—एलुवा, रसौंत, बूल, अकाकिया, केसर गुलाब में पीसकर माथे और पलकों पर लेप करना चाहिये। यह पित्त-जन्य शोथ में उत्तम है। १८—सफेदा, चाँदी का मैल प्रत्येक ३५ माशे, अफीम आधा माशा, कतीरा ५ माशे, नशास्ता ३॥ माशे, कूट-छानकर बत्ती बनानी चाहिये, यह वात-जन्य शोथ में उपयोगी है।

खाने के उपाय—आँख के रोगों के लिये आर्य-चिकित्सा-शास्त्र में खाने की औषधि लिखी हैं। वे कई बार बहुत उपयोगी हैं।

१—नेत्रबाला ४ तोले, पानी २० तोले काढ़ा करके इसमें पिप्पली २ माशे, सैंधव २ माशे, मधु १० माशे, घी १ तोला वर्षा तथा ठण्डी ऋतु में खाना चाहिये। २—त्रिफला ४ तोले, पानी ४० तोले, अष्ठमांश शेष रखकर इसमें इतना ही घी मिलाकर पाक करना चाहिये। मात्रा ४ तोले। ३—भाँगरे का रस ६४ तोले, तेल १६ तोले, मुलहट्टी १६ तोले, दूध ६४ तोले, इनको तैल-पाक-विधि से पाक करना चाहिये। इसकी मात्रा ६ माशे है। ४—त्रिफला क्वाथ, भाँगरे का रस, वासा के स्वरस, शतावरी का स्वरस, बकरी का दूध, गिलोय का काढ़ा, घी, प्रत्येक ६ तोले; पिप्पली, शर्करा, द्राक्षा, त्रिफला, नील कमल, मुलहट्टी, लक्ष्मणा, कटेरी, प्रत्येक १० तोले लेकर चटनी करके घृत-पाक-विधि से पकाना चाहिये। मात्रा २ तोला। ५—मुलहट्टी, त्रिफला, इनका चूर्ण ३ माशे, लोह-भस्म १ रत्ती मधु और घी में चाटकर दूध पीना चाहिये।

मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने के उपाय—इससे आँखों को पोषण मिलता है। १—बादाम की मींगी १ तोला, इलायची ३ माशे, शर्करा १ तोला, गाय का ताजा घी २ तोला, इन सबको कलई के पात्र में रखकर प्रातः-सायं खाना चाहिये। २—प्रवाल या मुक्ता-पिष्ठि मक्खन के साथ खाना चाहिये। ३—अश्वगन्धा, शतावरी, विदारी, तालमखाने का चूर्ण, मुलहट्ठी, गाय का दूध सब प्रकार की शीतल वीर्य-वर्धक औषधियाँ इस रोग में उपयोगी हैं।

एक आवश्यक बात—आँखों का सम्बन्ध वीर्य के साथ है। शरीर के अन्दर आँख ही सूर्य या तेज का प्रतिनिधि है। वीर्य को उपनिषदों में तेज कहा है। इसलिये तेज की वृद्धि की कामना करनेवाले के लिये शुक्र की रक्षा करनी चाहिये। जिन पुरुषों में शुक्र के अन्दर दोष आ जाता है, अथवा शुक्र की न्यूनता हो जाती है, उनके आंखों में भी निर्बलता आ जाती है।

एक दूसरी बात यह है कि जो जातियाँ निकट में विवाह करती हैं, उनके अन्दर आँख के रोग विशेष रूप से पाये जाते हैं, जैसे मुसलमानों में। इसलिये निकट सम्बन्ध से अवश्य बचना चाहिये।

कान के रोग

कान की रचना बड़ी टेढ़ी है, और इसमें रोग भी नाना प्रकार के होते हैं। क्योंकि कान का सम्बन्ध नाक और गले से है। इसलिये नाक या गले के रोगों के कारण भी कान आक्रान्त हो जाते हैं। यही कारण है कि सर्दी लगने से यदि प्रतिश्याय हो जाय, तो कान में भी भारीपन आ जाता है।

कान की शोथ—कई बार कर्ण की नलिका में अथवा परदे पर सूजन आजाती है। इस पीड़ा के कारण शोथ, ज्वर-रक्तिमा, बेचैनी आदि लक्षण होते हैं। इस शोथ के कारण शिर में दर्द हो जाता है, कान में चस्का, ज्वर, अतिसार, मलबन्ध, तेज नाड़ी आदि उपद्रव होते हैं। सूजन के पकने से कान से पीव आती है।

कारण—ठण्डी वायु के लगने से, गरम दवा के डालने से, कान को कुरेदने से, मैल के इकट्ठा हो जाने से, अथवा कान पर थप्पड़ आदि लगने से शोथ उत्पन्न हो जाती है।

उपाय—१—बिना कारण के समझे कभी भी पिचकारी का उपयोग नहीं करना चाहिये। कान में दर्द मालूम पड़ने पर गरम पानी अथवा पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। २—हल्का जुलाब देना चाहिये। ३—जलौका लगाकर अथवा कान के पीछे छाला उठाना चाहिये। ४—टिंचर-बैलोडोना, टिंचर ओपयाई के ग्लैसरीन में मिलाकर कान में डालना चाहिये। रोगी के शान्त पड़े रहने देना चाहिये। खाने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। अशक्ति हो, तो शक्ति की दवा देनी चाहिये।

कान में मैल—कई बार कान के अन्दर मैल सूख जाती है, अथवा वहाँ बहुत मैल इकट्ठी हो जाती है, उस समय कान के अन्दर बहुत दर्द होता है। कान का रास्ता भर जाने से भली प्रकार सुनाई नहीं देता। कान के अन्दर कुछ आवाज़-सी स्वयं होती रहती है। कान के देखने से अन्दर मैल दिखाई देती है। कइयों के कान में निरन्तर मैल जमा ही रहती है।

उपाय—मैल निकालने के लिये प्रथम रात्रि के सोते समय ग्लैसरीन, सरसों या बादाम के तेल की २-३ बूँद कान में डाल देनी चाहिये। अगले दिन प्रातःकाल गरम पानी से पिचकारी मारनी चाहिये। पिचकारी मारते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पानी की धार कर्ण-गुट्टा की पश्चिम भित्ति के साथ छूकर जाय और धारा एक समान जानी चाहिये। पानी साधारण गर्म होना चाहिये। इस पानी में यदि सोडाबाईकार्ब मिला लिया जाय, तो अच्छा है। कान के अन्दर कोई जीव या जन्तु पड़ जाय, तो उस समय गरम तेल का उपयोग सबसे उत्तम है। लौडेनम की ४-५ बूँद डालने से जन्तु मर जाता है।

कान का पाक--कान का अगला अथवा अन्दर का भाग जब पक जाता है, तब इसमें से रस, पानी अथवा कठिन पीब निकलती है। कान के अन्दर की अस्थि सड़ने लगे, तो पीब के साथ रक्त भी आ जाता है। प्रारम्भ में कान के अन्दर विद्रधि के सब लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी को ज्वर हो जाता है, पीछे रोग नर्म पड़ जाता है।

कारण—यह रोग कर्ण-शोथ के कारणों ही से उत्पन्न होता है। निर्बल और गलगंड-रोग से ग्रस्त बालकों में यह रोग बार-बार होता है। तन्दुरुस्ती अच्छी होने से रोग मिट जाता है। कान की नाड़ी पक जाय, तो नाड़ी-व्रण हो जाता है।

उपाय—फलालैन या पोस्त के डोडों का गरम परिसेंक करना चाहिये। प्रारम्भ में पीव बन्द करने का उपाय नहीं करना चाहिये। बिना वास्तविक स्थिति को समझे कान में पिचकारी कभी भी नहीं मारनी चाहिये। कान को धोने के लिये हाइड्रोजन पर ऑक्साइड का उपयोग करना चाहिये। इससे कान को दो-तीन बार धोकर इसीको कान में छोड़ देना चाहिये। यह दवा जन्तुघ्न है। आयडोफर्म और बोरिक एसिड को मिलाकर उसकी बुरकी फूँक से कान के अन्दर डालनी चाहिये। अथवा इनको ग्लैसरीन मे मिलाकर डालना चाहिये। १—नदी या समुद्र में जो शङ्ख या सीप मिलते हैं, उनके अन्दर शम्बूक नाम का कीड़ा होता है। उसको तेल में पकाकर कान में डालना चाहिये। २—आम, जामुन, महुआ, बड़ इनके कोमल पत्तों को तेल में पकाकर, इनका तेल कान में डालना चाहिये। जात्यादि-तैल इस रोग के लिये उत्तम है।

बहरापन—कान में शोथ होने से, कान के पकने से, कान में मैल इकट्ठा होने से, गले में टौंसिल के बढ़ने से कान के अन्दर बहरापन आ जाता है। कान के खुरेदने से या थप्पड़ आदि के आघात से, जब कान का परदा फट जाता है, तब सुनाई देना बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त कई बार बहरापन कान की नाड़ी के कारण भी होता है।

उपाय—१—कारण ढूँढ़कर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। कान के पीछे टिंचर आयोडीन अथवा जौंक या छाला उठाना चाहिये। निर्बलता के कारण यदि बहरापन हो, तो शक्तिवर्धक औषधियाँ देनी चाहिये। २—बोरिक एसिड को रैक्टीफाईड स्प्रिट में मिलाकर एक या दो बूँद कान के अन्दर डालनी चाहिये। ३—अपामार्ग की राख का नितरा पानी २० तोला, तेल ५ तोला, अपामार्ग-क्षार डेढ़ तोला, इनको तैल-विधि से पकाकर कान में डालना चाहिये।

कर्ण-शूल—यह रोग कान के वातिक विकार से, कान में किसी वस्तु के पड़ जाने से अथवा कर्ण-शोथ से उत्पन्न होता है। वातिक कारणों में ठंडी वायु का लगना या ठंडे पानी में स्नान करना है। परन्तु कई बार दाँत उखाड़ने से अथवा बच्चों के दाँत निकलते समय भी यह रोग हो जाता है। रोगी को तीव्र दर्द होता है, जो शिर और मुख की तरफ जाता है।

उपाय—१—बिना कारण को समझे कभी भी पिचकारी का उपयोग नहीं करना चाहिये। कान में दर्द मालूम पड़ने पर गरम पानी अथवा पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। २—हल्का जुलाब देना चाहिये। ३—जलौका लगाकर अथवा कान के पीछे छाला उठाना चाहिये। ४—टिंचर-बैलोडोना, टिंचर ओपयाई को ग्लैसरीन में मिलाकर कान में डालना चाहिये। रोगी को शान्त पड़े रहने देना चाहिये। खाने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। अशक्ति हो, तो शक्ति की दवा देनी चाहिये।

कान में मैल—कई बार कान के अन्दर मैल सूख जाती है, अथवा वहाँ बहुत मैल इकट्ठी हो जाती है, उस समय कान के अन्दर बहुत दर्द होता है। कान का रास्ता भर जाने से भली प्रकार सुनाई नहीं देता। कान के अन्दर कुछ आवाज़-सी स्वयं होती रहती है। कान को देखने से अन्दर मैल दिखाई देती है। कइयों के कान में निरन्तर मैल जमा ही रहती है।

उपाय—मैल निकालने के लिये प्रथम रात्रि को सोते समय ग्लैसरीन, सरसों या बादाम के तेल की २-३ बूँद कान में डाल देनी चाहिये। अगले दिन प्रातःकाल गरम पानी से पिचकारी मारनी चाहिये। पिचकारी मारते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पानी की धार कर्ण-गुहा की पश्चिम भित्ति के साथ छूकर जाय और धारा एक समान जानी चाहिये। पानी साधारण गर्म होना चाहिये। इस पानी में यदि सोडाबाईकार्ब मिला लिया जाय, तो अच्छा है। कान के अन्दर कोई जीव या जन्तु पड़ जाय, तो उस समय गरम तेल का उपयोग सबसे उत्तम है। लौडेनम की ४-५ बूँद डालने से जन्तु मर जाता है।

कान का पाक—कान का अगला अथवा अन्दर का भाग जब पक जाता है, तब इसमें से रस, पानी अथवा कठिन पीव निकलती है। कान के अन्दर की अस्थि सड़ने लगे, तो पीव के साथ रक्त भी आ जाता है। प्रारम्भ में कान के अन्दर विद्रधि के सब लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी को ज्वर हो जाता है, पीछे रोग नर्म पड़ जाता है।

कारण—यह रोग कर्ण-शोथ के कारणों ही से उत्पन्न होता है। निर्बल और गलगंड-रोग से ग्रस्त बालकों में यह रोग बार-बार होता है। तन्दुरुस्ती अच्छी होने से रोग मिट जाता है। कान की नाड़ी पक जाय, तो नाड़ी-व्रण हो जाता है।

उपाय—फलालैन या पोस्त के डोडों का गरम परिसेंक करना चाहिये। प्रारम्भ में पीव बन्द करने का उपाय नहीं करना चाहिये। बिना वास्तविक स्थिति को समझे कान में पिचकारी कभी भी नहीं मारनी चाहिये। कान को धोने के लिये हाइड्रोजन पर ऑक्साइड का उपयोग करना चाहिये। इससे कान को दो-तीन बार धोकर इसीको कान में छोड़ देना चाहिये। यह दवा जन्तुघ्न है। आयडोफर्म और बोरिक एसिड को मिलाकर उसकी बुरकी फूँक से कान के अन्दर डालनी चाहिये। अथवा इनको ग्लैसरीन में मिलाकर डालना चाहिये। १—नदी या समुद्र में जो शङ्ख या सीप मिलते हैं, उनके अन्दर शम्बूक नाम का कीड़ा होता है। उसको तेल में पकाकर कान में डालना चाहिये। २—आम, जामुन, महुआ, बड़ इनके कोमल पत्तों को तेल में पकाकर, इनका तेल कान में डालना चाहिये। जात्यादि-तैल इस रोग के लिये उत्तम है।

बहरापन—कान में शोथ होने से, कान के पकने से, कान में मैल इकट्ठा होने से, गले में टौंसिल के बढ़ने से कान के अन्दर बहरापन आ जाता है। कान के खुरंदने से या थप्पड़ आदि के आघात से, जब कान का परदा फट जाता है, तब सुनाई देना बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त कई बार बहरापन कान की नाड़ी के कारण भी होता है।

उपाय—१—कारण ढूँढ़कर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। कान के पीछे टिंचर आयोडीन अथवा जौंक या छाला उठाना चाहिये। निर्बलता के कारण यदि बहरापन हो, तो शक्तिवर्धक औषधियाँ देनी चाहिये। २—बोरिक एसिड को रैक्टीफाई स्प्रिट में मिलाकर एक या दो बूँद कान के अन्दर डालनी चाहिये। ३—अपामार्ग की राख का नितरा पानी २० तोला, तेल ५ तोला, अपामार्ग-क्षार डेढ़ तोला, इनको तैल-विधि से पकाकर कान में डालना चाहिये।

कर्ण-शूल—यह रोग कान के वातिक विकार से, कान में किसी वस्तु के पड़ जाने से अथवा कर्ण-शोथ से उत्पन्न होता है। वातिक कारणों में ठंडी वायु का लगना या ठंडे पानी में स्नान करना है। परन्तु कई बार दाँत उखाड़ने से अथवा बच्चों के दाँत निकलते समय भी यह रोग हो जाता है। रोगी को तीव्र दर्द होता है, जो शिर और मुख की तरफ जाता है।

रोगी को मुँह खोलने में, चबाने में तकलीफ होती है। इस रोग में ज्वर और स्राव नहीं होता।

उपाय—१—रोगी को विरेचन देकर थोड़ी-सी क्युनीन देनी चाहिये। कान के रोगों में क्युनीन का देना खतरनाक है। इसलिये बहुत ही थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। कान के ऊपर अलसी की पुल्टिस बाँधना चाहिये। कान के पीछे राई की पुल्टिस भी बाँधना उत्तम है। कान पर नमक या चोकर की थैली से सेंक करना चाहिये, पोस्त के डोडों का सेंक भी उत्तम है। प्याज के मध्य भाग को घी में तलकर, इसको कपड़े में बन्द करके कान पर गरम-गरम रखना चाहिये (जितना गरम कि रोगी सह सके)। शीत परिसेंक से बचना चाहिये। टिंचर ओपयाई १५ बूँद, टिंचर बैलाडोना १० बूँद, टिंचर कैनबिस इंडिका १० बूँद, इनको १ औंस ग्लैसरीन में मिलाकर अथवा कार्बोलिक एसिड १ बूँद, ग्लैसरीन ४० बूँद, इसको कान में डालने से तुरन्त आराम हो जाता है।

सामान्य उपाय—१—आर्द्रक-रस ४ माशे, मधु २ माशे, सैन्धव १ रत्ती, तिल-तैल २ माशे, इन सबको मिलाकर, थोड़ा गरम करके कान में डालने से कर्ण-शूल, बहरापन नष्ट हो जाता है। २—तैल से कान को चिकना करके, समुद्रफेन का चूर्ण कान में डालना चाहिये। ३—सहजन का रस तिल-तैल में पकाकर थोड़ा गरम करके कान में डालने से कर्ण-शूल नष्ट होता है। ४—आक के पीले पत्तों पर घी लगाकर अग्नि पर गरम करके इनका रस निकाल लेना चाहिये और उसको कान में डालना चाहिये। ५—कडुआ तैल को कान में डालने से आराम होता है। ६—निगुण्डी-पत्र-रस, तैल, सैन्धव, पुराना गुड़, गृह-धूम, इनको मधु के साथ मिलाकर कान में डालने से कान की पीब नष्ट होती है। ७—पानी के साथ बच को घिसकर नीबू के पानी से गीला करके, इसको थोड़ा गरम करके, कान में डालने से शूल अच्छा होता है। ८—मुर्गे के अण्डे के छिलके के चूर्ण को नीबू के स्वरस में मिलाकर डालने से कान की पीब अच्छी हो जाती है।

नाक के रोग

नाक में बहुत प्रकार के रोग होते हैं। जैसे—गन्ध परखने की शक्ति का नाश, खराब वास, नाक का पकना, नाक से पीव-मिश्रित रक्त-स्राव, छींक आना, जलन, नाक का सूखना, श्वास का अवरोध, प्रतिश्याय, पीनस, नकसीर आदि हैं। नाक के बहुत-से रोगों का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ है।

नाक के अन्दर कीड़े—यह प्रायः गन्दे रहनेवाले घरों में मिलता है। मक्खी नाक में जाकर वहाँ अण्डे दे देती है, जिससे यह रोग उत्पन्न होता है। विशेषतः जब किसी प्रकार का स्राव होता रहता है, उस समय मक्खियाँ इसकी ओर खिंचकर आती हैं, और नाक के अन्दर पहुँच जाती हैं। कई बार सोते समय या निर्बलता के कारण मक्खियाँ नाक के अन्दर घुसकर अण्डे दे देती हैं। यह मक्खियाँ नाक के अन्दर के भाग ही को नहीं खातीं, बल्कि नाक की त्वचा से मुख में भी रास्ता बना लेती हैं।

उपाय—इसके लिये चूने के पानी या कांडेज फ्लूड की पिचकारी नाक में मारना चाहिये। यदि अण्डे दिखाई देते हों, तो उनको संदश से पकड़कर निकाल लेना चाहिये।

प्रतिश्याय—सर्दी लगने से अथवा कोष्ठ के रोग के कारण नाक की श्लैष्मिक कला उत्तेजित हो जाती है। इससे रोगी को छींकें आती हैं, और नाक से पतला स्राव आता है। यह स्राव एक या दो दिन तक रहता है, फिर गाढ़ा हो जाता है। इसका रंग भी पीला हो जाता है। पीछे से नाक बन्द हो जाती है। श्वास में कठिनता होने लगती है।

उपाय—१—अजवायन या काले जीरे को पोटली में बाँधकर, थोड़ा गरम करके सुँघाना चाहिये। २—जायफल, जावित्री, सोंठ, कस्तूरी, इनकी पोटली बनाकर सूँघने से प्रतिश्याय के कारण होनेवाला शिर-दर्द अच्छा होता है। ३—नकछींकनी और कायफल इनका चूर्ण छींक को उत्पन्न करता है। ४—शुष्क वनोपत्र को जलाकर आक के दूध में भिगोना चाहिये। फिर इसको सूँघने से छींक आती है। ५—मिर्च, दही और गुड़ खाने से नाक के रोगों में लाभदायक है। ६—कायफल, पुष्करमूल, काकड़ाशृङ्गी, त्रिकटु, धमासा और अजवायन, इनके चूर्ण में अथवा इनके क्वाथ में आर्द्रक-रस मिलाकर पीने से पीनस, कफ, श्वास को आराम होता है।

७—भाँग या जयन्ती-पत्र को पुटपाक करके सैंधवनमक या तेल के साथ मिलाकर सेवन करने से प्रतिश्याय रोग शान्त होता है। ८—नये प्रतिश्याय में, इमली के पत्तों के काढ़े में हींग और मिर्च-चूर्ण मिलाकर पान करने से लाभ होता है। ९—पिप्पली, सहजन-बीज, बिडंग और मिर्च का चूर्ण नस्य लेने से प्रतिश्याय रोग शान्त होता है।

पीनस—जिस समय प्रतिश्याय पुराना हो जाता है, उस समय यह पीनस रोग में बदल जाता है। नाक से बहुत दुर्गन्धि आती है। नाक के अन्दर से पीव की भाँति का स्राव होता है। इसके अतिरिक्त नाक के अन्दर मस्सा होने से, नासास्थि के सड़ने से, उपदंश रोग के कारण नाक के सड़ जाने से पीनस रोग हो जाता है। १—मस्सा हो, तो उसको काट डालना चाहिये। २—पिचकारी से प्रतिदिन नाक साफ़ रखनी चाहिये। ३—कार्बोलिक लोशन से धोना उत्तम है। ४—जात्यादि-तेल का नस्य लेना चाहिये। ५—बालछड़, नागरमोथा या शराब रिहानी को सुँघावे।

शराब रिहानी की विधि—लौंग, जायफल, जावित्री, दालचीनी, अगर, बारतंग, बाँदरजवोया, इन सबको थैली में भरकर अंगूर के शीरे के मटके में डाल देना चाहिये, जिसमें सुगन्धित हो जाय।

नाक से गन्ध का न आना—यदि यह रोग नया हो, तो सुगमता से अच्छा हो जाता है। इसके लिये कोई तीक्ष्ण वस्तु, जैसे, कस्तूरी, केशर, यूक्लिप्टस, मैन्थोल आदि तीव्र वस्तुयें सूँघनी चाहिये, जिसकी तीव्र गन्ध से नाक की नाड़ियाँ उत्तेजित हो जायँ। जंगार, उशना, कसारैन और मुर्र तीनों को बराबर लेकर मरहम बना लेना चाहिये। इसकी बत्ती नाक में रखनी चाहिये। इस प्रलेप से नाक के अन्दर का पोलीपस, मांस का लोथड़ा अच्छा हो जाता है।

नाक से रक्त-स्राव १—नाक और माथे पर ठण्डा पानी गेरना चाहिये। शीत परिसेक करना चाहिये। २—टिंचर ऑफ स्टील में रुई भिगोकर नाक में रखना चाहिये। ३—सिम्बल के फूल को; दूर्वा को बकरी के दूध में पीसकर सूँघना चाहिये। ४—लाक्षाजल में फिटकिरी का चूर्ण मिलाकर नास लेने से रक्त बन्द हो जाता है। ५—अनार के फूल का नास नकसीर को बन्द कर देता है। ६—बकरी के दूध के साथ शुष्क आँवला और शर्करा पीसकर मस्तिष्क पर लेप करने से नकसीर बन्द हो जाती है।

शास्त्रीय औषधि—चित्रक, हरीतिकी, दूर्वाद्य-तैल, महादशमूल-तैल, षड्बिन्दु-तैल।

मुख-रोग

नवीन सभ्यता के कारण जहाँ और वस्तुओं ने उन्नति की है, वहाँ पर दाँत के रोगों ने भी उन्नति की है। इसके लिये दन्त-चिकित्सा का अलग विषय बन गया है।

दाँत के सब प्रकार के रोगों का कारण मुख की अस्वच्छता तथा आमाशय का विकार है।

सामान्य उपाय १—दाँत के दर्द की चिबुक मालूम पड़ने पर पेट साफ करने का उपाय करना चाहिये। २—यदि दर्द बहुत हो और मसूड़ा सूज जाय, तो गरम वस्त्र तथा पोस्त के डोडे के काढ़े का सेवन करना चाहिये। हल्की और शीघ्र पचनेवाली खूराक खानी चाहिये। ३—दाँत का मसूड़ा सूज जाय और ज्वर आ जाय, तो ज्वर उतरने पर जलौका लगानी चाहिये, अथवा नश्तर लगाकर पीव निकाल देना चाहिये।

दाँत का सड़ना—दाँत दो प्रकार से सड़ता है—१—दाँत के आसपास की जड़ में कीड़ा लगना प्रारम्भ होता है, अथवा जहाँ दाँत आपस में मिलते हैं, वहाँ से या दाँत के ऊपर के भाग में से सड़ना प्रारम्भ होता है। इससे दाँत में पीड़ा बहुत होता है। दाँत चलाने या खाते समय अथवा ठण्डा पानी पीने के समय दर्द होता है। सम्पूर्ण जबड़े मे दर्द होता है, नींद जाती रहती है। यह पीड़ा इतनी अधिक होती है कि रोगी मृत्यु के समान दुःख का अनुभव करता है।

दाँत को साफ न रखने से, मुँह में अन्न के कण रह जाने से अथवा दूध पीने के बाद मुँह को न धोने से कीड़ा लगना प्रारम्भ होता है। पेट की विदग्धता भी दाँत के सड़ने का कारण है। अधिक खटास खाने से दाँत बिगड़ जाते हैं। अधिक गरम या अधिक शीत वस्तु के खाने या पीने से दाँत निर्बल हो जाता है।

दाँतों के ऊपर एक प्रकार का श्वेत कोटिंग या प्लास्टर है, जो गरम या ठण्डे पानी से दन्त-नाड़ी की रक्षा करता है। खुरचने से या गरम अथवा

शीत वस्तु के उपयोग से यह निर्बल हो जाता है। इसमें कृमि लग जाता है। यह कृमि दन्त-नाड़ी तक पहुँच जाता है। साथ ही जो व्यक्ति नर्म खूराक खाते हैं, उनके दाँत निर्बल हो जाते हैं। इसलिये आवश्यक है कि कठोर भोजन खाना चाहिये।

उपाय—१—लौंग पीसकर इसका पानी अथवा लौंग का तैल दाँत के ऊपर लगाना चाहिये। २—अफीम तथा कपूर की गोली बनाकर सड़े हुये दाँत में भरना चाहिये। ३—क्रियोजोट एक या दो बूँद दाँत में रखना चाहिये। ४—क्लोरोफार्म अथवा सल्फ्युरिक ईथर में रुई भिगोकर दाँत में रखना चाहिये।

दाँत की गुहा भरने का उपाय—१—रूमी मस्तगी को सल्फ्युरिक ईथर में अथवा अलकोहल में मिलाकर नर्म करके लुगदी करनी चाहिये। इस लुगदी को दाँत की गुहा में रख देना चाहिये गटापरचे को स्प्रिट लैम्प पर अथवा दूसरी गरमी से नरम करके दाँत की गुहा भर देना चाहिये।

कुछ उपाय—१—पोदीना, सातर और अकरकरा सिरके में औटाकर कुल्ला करना चाहिये। २—अकरकरा, अफीम, कुन्दरू गोंद बारीक पीसकर स्त्रियों के दूध या गौ के दूध में मिलाकर रखना चाहिये। ३—जली हुई मसूर, वंशलोचन, कीकर और माजू इन दवाइयों को महीन पीसकर मसूड़ों पर मले। ४—फिटकिरी भूनकर सिरके में बुझाई हुई १ भाग, नमक २ भाग, लाल फिटकिरी १॥ भाग; इनको महीन पीसकर मसूड़ों पर छिड़के। इससे रक्त बन्द हो जाता है।

जिह्वा भारी होने का वर्णन—इस रोग में बोलचाल में अन्तर आजाता है। अच्छी तरह से शब्दों का उच्चारण नहीं हो सकता। सोये का तैल और बाबूने के तैल से कुल्ला करे। काली मिर्च, नौसादर, राई, अकरकरा, सातरकरमे, इरमानी और नमक जीभ पर मलना चाहिये।

अदलाउललिसान (जीभ का बड़ा होना)—खट्टा नीबू या खट्टा दही अथवा खट्टा अनार मलना चाहिये। नमक, सिरका, सोंठ अथवा नौसादर मलना चाहिये। जीभ के ढीला होने पर राई तथा शहद से कुल्ला करना चाहिये।

जीभ के फट जाने का वर्णन—ईसबगोल को थोड़े-से बूरे के साथ मिलाकर मुख में रक्खे, जौ का पानी पीए। ककड़ी की झाग मुख पर

मलना चाहिये। खीरे को काटकर उन दोनों टुकड़ों के रगड़ने से जो झाग उत्पन्न होती है, उसको मलना चाहिये।

जीभ के शुष्क हो जाने का वर्णन—बिहीदाने का लुआब, नीलोफर का पानी बूरे में मिलाकर मलना चाहिये। इसमें लौकी के बीज की मींगी का शीरा या खुरफे का शीरा मिला लेना चाहिये। तरबूज के पानी से कुल्ला करना चाहिये।

जीभ में जलन—खुरफे का शीरा, हरी धनिया, ईसबगोल, बिहीदाने का लुआब मुख में रखकर उनको रौंदते रहना चाहिये। ककड़ी, खीरे, लौकी, बादाम, खरबूजे की मींगी को जीभ पर मलना चाहिये।

जीभ में खुजली—गरम पानी से कुल्ला करना चाहिये। पीछे से दूध में बूरा मिलाकर कुल्ला करना चाहिये। सिरका और गुलरोगन से कुल्ला करना भी उत्तम है। हरड़ को चबाना और जीभ पर मलना चाहिये।

जीभ से खाल उतरना—इसके लिये हरड़ का काढ़ा पिलाना चाहिये। अनार के फूल और गुलाब के पत्ते सिरके में औटाकर उस पानी से कुल्ला करना चाहिये।

मुँह आने का वर्णन—हरड़ और पित्तपापड़ के काढ़े से कोष्ठ को नर्म करना चाहिये। गुलाब के फूल, धनिया, सिमाक, वंशलोचन, अनार के फूल, मसूर और कपूर इनको बुरक देना चाहिये। सिरके से कुल्ला करना चाहिये। स्प्रिट क्लोरोफार्म का लगा देना उत्तम है। आकाश-बेल का काढ़ा पिलाना चाहिये। खट्टे अनार का छिलका, मीठे अनार का छिलका, प्रत्येक १०५ माशे, माजू, अनार के फूल, फिटकिरी, जला हुआ काग़ज़, अकरकरा, मिश्री, प्रत्येक ३५ माशे, सिमाक ५२॥ माशे, नमक हिन्दी, नौसादर, प्रत्येक १७॥ माशे, इनको कूट-छानकर हब्बुलास के सिरके में गूँदकर टिकिया बना लेनी चाहिये। इसको घिसकर लगाना चाहिये। यह दवाई मुँह के दुर्गन्धित गहरे घाव को आराम करती है।

मुँह से अधिक लार आना—यह रोग अजीर्ण या गर्भावस्था में बहुत होता है। इसके लिये थोड़ी-सी ताजी हरी कासनी अधकुचली हुई नमक के साथ खाने को देना चाहिये। जवारीस कम्मूनी खाने को देना चाहिये।

मुँह से दुर्गन्धि आने का वर्णन—पीले आलू का काढ़ा

प्रतिदिन प्रातः देना चाहिये। जौ का सत्तू बर्फ डालकर खाना चाहिये। एलुवा की गोली देनी चाहिये। इतरीफल, सहातरा, शहद का बना हुआ गुलकन्द, शहद की बनी शिकंजबीन, सोंठ का मुरब्बा खाना चाहिये।

होंठों की खुश्की, खाल उतरना—चिकनी लुवाबदार वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। बिहीदाना, खितमी और अलसी का लुवाब होंठों पर मलना चाहिये। होंठों को हवा से बचाना चाहिये। बनफसे का तेल नाभि और गुदा पर लगाना चाहिये।

होंठों की सूजन का वर्णन—होंठों को गरम पानी से बहुत धोना चाहिये। रसौंत, बाबूना, जौ का आटा, गुलाब, उसारे गाफिथ, मकोय और बादाम का तेल मोम से मरहम बनाकर लगाना चाहिये। मोया, बाबूना और अकलील उलमलिक का लेप करना चाहिये।

होंठों के घावों का वर्णन—माजू और मुर्दाशंख पीसकर मोम और आलू का तेल मिलाकर लगाना चाहिये, अथवा सफेदे का मरहम लगाना चाहिये।

दाँतों के सुस्त और सुन्न होने का वर्णन—मवाद का रुकना अथवा कषैली और अधिक खट्टी वस्तु का खाना इस रोग का कारण समझना चाहिये।

उपाय—खुर्फे की पत्ती और तुलसी चबाना चाहिये। छुवारे का शीरा और कच्चे जैतून के तेल से कुल्ला करना चाहिये। अखरोट की मींगी, कड़वे बदाम की मींगी, गर्म करके दाँतों पर मलना चाहिये। शहद और नमक को दाँतों पर मलना चाहिये।

दाँतों की चमक का नष्ट हो जाना—हबुलगार, फिटकिरी और जरावन्द तवील इनको महीन पीसकर दाँतों की जड़ में मलना चाहिये। गुलरोगन में कपूर और चन्दन मिलाकर दाँतों पर मलना चाहिये।

दाँत के पीले हो जाने का वर्णन—रसौंत, नारदेन, नागरमोथा, माजू और अकरकरा दाँतों पर मलना चाहिये। दाँतों की जो जगह गली हुई और घुनी हुई हो, उसमें सुकमस्तगी और थोड़ा-सा कपूर महीन पीसकर देना चाहिये। अण्डे की सफेदी, ईषबगोल का लुवाब, गधी का दूध और बनफसे का तेल दाँतों पर मलना चाहिये।

दाँतों की मैल को चाकू से छीलकर, उनपर नमक, समुद्र की झाग, सीपी की राख, घिसा हुआ या जला हुआ सीसक और पहाड़ी गौ की जली हुई सींग, इनसे मञ्जन करना चाहिये ।

दाँतों का हिलना—इस रोग में दाँत निर्बल हो जाते हैं । इनके मसूड़े ढोले पड़ जाते हैं । अकरकरा किवु की जड़ की छाल, मेंहदी, नागरमोथा, भुनी हुई फिटकिरी, गुलाब के फूल, बालछड़, इन दवाइयों को पीसकर मसूड़ों और दाँतों पर बुरकना चाहिये । वंशलोचन, पीली हरड़ का छिलका, अनार के फूल समान भाग, इनको मसूड़ों पर मलना चाहिये । हरी बारतंग और हरे खुर्फे के पानी से कुल्ला करना चाहिये ।

बच्चों के दाँतों का उपाय—मसूड़ों पर तेल, मक्खन और चर्बी मलने से बच्चों के दाँत सुगमता से निकल आते हैं । कुतिया का दूध इस समय पिलाना उत्तम है । जब दाँत निकलने के बीच में दर्द हो, उस समय हरी मकोइया का पानी और गुलरोगन मिलाकर इसको गुनगुना करके मसूड़ों पर मलना चाहिये । कान में तेल डालना चाहिये ।

दाँतों की खुजली का वर्णन—आकाश-बेल का काढ़ा पिलाना चाहिये । खट्टी वस्तुओं को खाना चाहिये, प्याज की शिकंजबीन से अथवा चूका की जड़ को सिरके में औटाकर उससे कुल्ला करना चाहिये ।

नींद में दाँत कटकटाना—कूठ का तेल या केशर का तेल गर्दन पर मलना चाहिये । वास्तविक कारण की चिकित्सा करनी चाहिये ।

काग की सूजन का वर्णन—इसका कारण रक्त की अधिकता है । कौआ लाल हो जाता है, और फूल जाता है, जलन तथा थोड़ा-सा दर्द प्रतीत होता है । इसमें दर्द कम होता है । सिंके गुलाब से कुल्ला करना चाहिये । गुलाब के फूल, चन्दन और अनार के फूल तथा कपूर मिलाकर कौवे पर लगाना चाहिये । रोगी को शिकंजबीन या अमलतास के काढ़े में तुरञ्जबीन मिलाकर दस्त देना चाहिये । माजू, नौसादर, नमक, फिटकिरी को पीसकर कौवे पर लगाना भी उत्तम है ।

कौवे के गिर जाने का वर्णन—इस रोग में कौआ नीचे की ओर लटक जाता है । रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि कोई वस्तु गले में पड़ी हुई है । बच्चों में कौआ प्रायः नीचे लटक जाता है । इसके लिये माजू को सिरके

में पीसकर तालू पर लगाना चाहिये। जली हुई मुलतानी मिट्टी सिरके में मिलाकर लगाना भी उत्तम है। मकोय और धनिये के पानी से या माजू से गलाले करना चाहिये।

गल-शोथ—दूषित वायु या मुँह से श्वास लेने के कारण गले में शोथ हो जाती है। गले के पार्श्व में दो ग्रन्थियाँ हैं, जो साधारणतः अन्तः और बाह्य पिलर के बीच में रहती हैं। परन्तु बढ़ने पर बाहर आजाती हैं। इनके लिये संकोचक लेप यथा टॉनिक एसिड ग्लैसरीन, आयर्न ग्लैसरीन अथवा मैन्डल सोल्युशन या शुद्ध लौंग का तेल लगाना चाहिये। यदि बहुत बढ़ गये हों, तो सेंक करना चाहिये। विरेचन देना उत्तम है। खुर्फे के बीज, नशास्ता, वंशलोचन, समाक, कतीरा प्रत्येक साढ़े तीन माशे, कपूर ६ रत्ती, इन सबको महीन पीसकर ईषबगोल के लुबाब में मिलाकर गोली बनानी चाहिये। इन गोलियों को मुख में रखना भी उत्तम है। बाजार में पोटाशियम क्लोरेट, बोरैक्स तथा कोकीन की बनी गोलियाँ मिलती हैं, उनको चूसना भी उत्तम है। फोमेमेन्ट की टिकरी का चूसना उत्तम है।

गले का बैठ जाना—१—यह रोग नजले के कारण या अधिक बोलने से होता है। इसके लिये जौ का पानी, उन्नाब, खितमी, लिसोढ़ा इनको कूटकर क्वाथ करके मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। मुलहठी १७॥ माशे, बिहीदाना २४॥ माशे रात्रि में भिगोकर प्रातः काल औटाना चाहिये। जब आधा रह जाय, तब छानकर ७७० माशे सफेद बूरा मिलाकर गाढ़ा कर लेना चाहिये। पीछे से बिहीदाने की मींगी १०॥ माशे, समनअरबी १० माशे, कतीरा १४ माशे, सफेद खसखस, काला खसखस १७॥ माशे मिलाकर चटनी बना लेना चाहिये। २—ककड़ी के बीज, बादाम की मींगी, खितमी के बीज, कतीरा, बिहीदाने की मींगी बारीक पीसकर ईषबगोल के लुबाब में गोली बनानी चाहिये।

मुख के रोगों की सामान्य चिकित्सा—१—दाँत या मसूड़ों से खून निकलता हो, तो कूठ, दारुहरिद्रा, लोध्र, मुस्ता, मजीठ, पाठा, चव्य और हरिद्रा, इनका चूर्ण दाँतों में घर्षण करना चाहिये। २—पंच लवण, जौखार मधु में मिलाकर लगाने से मसूड़ों का रक्त-स्राव हटता है। ३—बकुल, मौलसिरी की छाल का काढ़ा करने से दन्त-शूल नष्ट होता है। ४—पाठा, सर्जक्षार, यवक्षार, इनके चूर्ण को मधु के साथ प्रयोग करने से अधिमांस रोग

अच्छा हो जाता है। ५—दाँत में कृमि लगने पर तेल का फाहा रखना चाहिये। ६—हींग गरम करके कृमि-दन्त में रखना चाहिये। ७—नील, काक-जङ्घा, रतुट्टी, वट, इनके मूल को चर्वण करके कृमि-दन्त में रखना चाहिये। ८—जावित्री, पुनर्नवा, तिल, पिप्पली, कुरन्ट, मुस्ता, बच, सोंठ, अजवायन, हरीतकी ये समभाग लेकर, घृत में मिलाकर, मुख में धारण करने से कृमि, कण्डु, शूल, दुर्गन्धि नष्ट होती है। ९—सोंठ, हरीतकी, मोथा, खदिर, कपूर, सुपारी-भस्म, मिर्च, लौंग, दालचीनी प्रत्येक समभाग लेकर, चौक सबके बराबर मिलाकर दाँतों पर मंजन करना चाहिये। १०—वट, गूलर, पीपल, पिलखन और अम्लवेतस, इनकी छाल के काढ़े में या त्रिफला-क्वाथ में मधु मिलाकर मुख-धावन करने से मुख-पाक अच्छा होता है। १२—दारु-हरिद्रा का स्वरस अथवा काढ़ा घना करके मधु के साथ चाटने से अवलेहन या लेपन करना चाहिये। १३—नीबू का चूसना और आयोडीन ग्लैसरीन के लेप अथवा हाइड्रोजन पर ऑक्साइड के गलाले करने से मसूड़ों का रक्त रुक जाता है।

दाँत के रोगों से बचने के उपाय—१—दाँत को ब्रश से या दातून से रोज़ धीरे-धीरे घिसना चाहिये। कोयले का चूर्ण, नमक, चौक और कपूर आदि चीज़ों को मंजन करके बरतना चाहिये। २—दाँत के अन्दर यदि कोई चीज़, अनाज का कण फँस जाय, तो इसको गलाले से निकाल देना चाहिये। अन्दर रहने से बहुत नुक़सान होता है। यदि दाँत में किसी प्रकार का छिद्र हो, तो उसको भरवा देना चाहिये। रात्रि के समय दाँतों को साफ़ करके सोना चाहिये। लोगों में यह वहम है कि दूध पीने के पीछे दाँतों को साफ़ नहीं करना चाहिए। इसके न करने से प्रायः दाँत ख़राब हो जाते हैं। ३—बहुत नरम या खट्टे पदार्थों को नहीं खाना चाहिये। पान, सुपारी दाँत को बिगाड़ती है। सुपारी की राख दाँतों पर घिसना चाहिये। तमाखू दाँत पर मलने से दाँत साफ़ हो जाते हैं। तमाखू को जलाकर उसका उपयोग करना चाहिये। तमाखू का पीना नुक़सान-कारक है। मलबन्ध की चिकित्सा करनी चाहिये।

प्रकरण आठवाँ

त्वचा के रोग

साधारणतः त्वचा के रोगों को ५ भागों में बाँट लिया गया है। जैसे—

१—**कोढ़**—त्वचा के पृष्ठ की अवस्था तथा रङ्ग बदल जाता है। ये प्रायः लाल होते हैं। इनमें किसी प्रकार का द्रव या पानी नहीं आता।

२—**छाला**—यह एक छोटी-सी फुंसी होती है। इसमें थोड़ा-सा पानी भरा हुआ होता है।

३—**पीव-युक्त फुंसी**—इसका भी प्रारम्भ छोटी-सी फुंसी से होता है, परन्तु इसमें पीव आ जाती है।

४—**छिलके उतारना**—त्वचा पर से छिलके उतरते हैं।

ट्युबरक्लस—त्वचा के अन्दर या त्वचा के नीचे छोटी-छोटी गाँठें पड़ जाती हैं, जो प्रायः व्रण का रूप धारण कर लेती हैं।

कोढ़—निम्नलिखित कोढ़ मुख्य हैं—

फ्रैकल्स—ये हल्के रंग के धब्बे होते हैं, जो प्रायः मुख पर होते हैं; विशेषतः उनके चेहरे पर, जिनका रंग अधिक साफ होता है। इनमें न किसी प्रकार का दर्द होता है और न किसी प्रकार की हानि ही इससे होती है। धूप, वायु और धूल से बचाये रहने पर अपने आप अच्छे हो जाते हैं। शीत ऋतु में ये फुंसियाँ अपने आप अच्छी हो जाती हैं।

उपाय—२० मीठे बादामों को लेकर खरल में पीस लेना चाहिये। इनमें २० औंस पानी मिलाकर धोना चाहिये, अथवा चूने का पानी और दूध समान भाग मिलाकर उनसे धोना चाहिये। २ औंस नीबू का रस, ३० ग्रेन सुहागा और १ ड्राम श्वेत शर्करा, इनको मिलाकर लगाना चाहिये।

चकावा—हल्के लाल रंग के धब्बे, भिन्न-भिन्न आकार के शरीर के भिन्न-भिन्न भागों पर हो जाते हैं, जो ३ या ७ दिन में स्वयं अच्छे हो जाते

हैं। इनमें पर्याप्त कण्डू या गुदगुदी होती है। ये प्राय: लड़कियों की टाँगों में मासिक धर्म के पूर्व हो जाते हैं। यदि शरीर गरम हो, उस समय ठण्डा पानी पी लिया जाय, तो भी उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों में दाँत निकलने के समय उनकी जङ्घाओं और शिश्न पर हो जाते हैं। ये कोई भयानक नहीं होते। इनके साथ ज्वर नहीं होता। इसके लिये रोगी को मृदु विरेचन दे देना चाहिये। रोगी के भोजन का ध्यान रखना चाहिये। शीत उपचार करना चाहिये। कैरन-ऑयल, गुलाबजल और ग्लैसरीन मिलाकर लगाना चाहिये। दशाङ्ग-लेप, जस्ते का प्रलेप लगाना चाहिये। मंजीष्ठादि-क्वाथ पीने को देना चाहिये।

अरटी केरिया—एक प्रकार के उभार, जो मीठा दर्द उत्पन्न करते हैं, त्वचा के ऊपर उठ आते हैं। कई बार सफेद छाले दिखाई देते हैं, और इनके किनारे पर एक लाल रेखा होती है, मानो किसीने बेंत से मारा है। ये धब्बे अचानक उत्पन्न होते हैं और कुछ समय ही में शान्त हो जाते हैं। ये दिन में शान्त हो जाते हैं और रात में निकल आते हैं। इनमें खाज और गुदगुदी बहुत होती है। इसके लिये सैलवैलोटाईल १ भाग और पानी २ भाग मिलाकर लगाना चाहिये। कई बार यह अचानक उत्पन्न होती है। इसके आने से पेश्तर वमन और ज्वर भी होता है। यह रोग भयानक नहीं है, प्राय: मिथ्या आहार से उत्पन्न होता है। कई पुरुषों में मछली, स्टोबरी, कुकुम्बर खाने से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार के लक्षण कोपाइवा, एण्टीपाइरीन आदि के खाने से भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसके लिये रोगी को विरेचन देना चाहिये और पोटाशियम ब्रोमाइड, कैल्शियम क्लोराइड के साथ देना चाहिये।

ल्युको डरमा—शरीर के किसी भाग पर श्वेत धब्बे या छाले-से उत्पन्न होते हैं। इनमें असली रंग की कमी आजाती है। इस रोग का साधारणत: कोई उपाय नहीं है। आर्य-चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार यह एक प्रकार का कोढ़ है; परन्तु अनार्य-चिकित्सा के अनुसार यह साधारण रोग है। यह कोई संक्रामक रोग नहीं है। साधारणत: इस रोग पर बावची का लेप लगाना चाहिये। बहेड़े की छाल और काकोडुम्बरिका-क्वाथ के साथ गुड़ मिलाकर बावची का चूर्ण पीना चाहिये। स्थान पर छन्ने लगाने चाहियें।

सींगी या जलौका लगाना चाहिये। रत्तियों का लेप भी उत्तम है। प्रयत्न ऐसा करना चाहिये कि स्थान पर रक्त आ जाय।

वैसीकल्स—मुख्य-मुख्य छाले निम्न प्रकार के हैं—

दाद—यह एक संक्रामक रोग है, जो प्राय: बच्चों के सिर पर आक्रान्त होता है; परन्तु साधारणत: मुख, शरीर, अंगों पर, ठोड़ी पर तथा नखों की जड़ में होता है। इस रोग के कारण एक तरह के कृमि हैं। ये कृमि कई प्रकार के होते हैं, जिनमें से कई कीटाणु बालों की जड़ों में आक्रमण करते हैं। इसलिये सिर, भ्रू, दाढ़ी तथा गुह्य-भागों के बालों की जड़ों में पाये जाते हैं। दूसरे प्रकार के कीटाणु त्वचा और नखों पर आक्रमण करते हैं। श्लेष्म-कला में भी कृमि उत्पन्न हो जाते हैं।

शिर की दाद—यह रोग प्राय: बच्चों के शिर में होता है। युवाओं के शिर में बहुत कम होता है। यह रोग उन लोगों के नखों के अग्रभाग में हो जाता है, जो इस दाद की चिकित्सा करते हैं।

इसका एक और भेद है, जिसको 'धोबीइच' कहते हैं। यह रोग त्वचा पर, विशेषत: कोष्ठ और टाँगों की त्वचा पर आक्रमण करता है, जहाँ पर तहें होती हैं; जैसे, जंघा और अण्ड-कोष जहाँ मिलते हैं, वहाँ पर प्राय: होता है।

शिर की दाद का सबसे प्रथम लक्षण त्वचा पर थोड़ी-सी रक्तिमा का होना, कुछ खाज होती है। इसके एक या दो दिन पीछे त्वचा पर लाल छाले-से बन जाते हैं। ये फट जाते हैं और इनके स्राव से पतला छिलका बन जाता है। ताजे छाले बाहर की तरफ बढ़कर बहुत-से छाले उत्पन्न कर लेते हैं। ये छाले सदा बाहर की ओर से फैलते हैं। रोग स्राव से फैलता है, इससे छोटी-छोटी फुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इनमें बहुत खाज और कण्डू होती है, इससे बड़े और मोटे छिलके बनते हैं। यदि इसकी उपेक्षा की जाय, तो यह सारे शिर पर फैल जाती है। इसके अतिरिक्त बालों की अवस्था भी बदल जाती है। रुग्ण स्थान के बाल टूटने-वाले और मसले हुये होते हैं। देखने में रूखे, चमक-रहित, मुड़े हुये या बटे हुये होते हैं। ये बाल मर जाते हैं। जिस समय इनको खींचने का यत्न किया जाय, उस समय टूट जाते हैं।

उपाय—रोगी के सिर को दिन में दो बार कार्बोलिक लोशन और

कार्बोलिक साबुन से धोना चाहिये। यदि इस प्रकार से रुग्ण भाग को आराम न पहुँचे, तो उस स्थान के बालों को साफ कर देना चाहिये। इस पर रेड ऑक्साइड ऑफ मर्करी का प्रलेप मलना चाहिये। तेज़ सिरका या फिटकिरी के तीक्ष्ण घोल से सिर को धोना चाहिये। रोगी को विरेचन देना चाहिये।

दाद बहुत फैलनेवाला और संक्रामक रोग है। दूसरे बच्चों को रुग्ण बच्चों से दूर रखना चाहिये। उसके कंघी, ब्रश, अँगौछा, साबुन, वस्त्र आदि सब वस्तुयें पृथक् रखनी चाहिये।

गोआ पाउडर को सिरके में अथवा नींबू के रस में मिलाकर लगाना चाहिये। क्राइसोरोबीन का प्रलेप या सोल्युशन के रूप में लगाना चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इस दवाई की अँगुली आँख पर नहीं लगाना चाहिये। आयोडीनलिनिमेन्ट का लगाना उत्तम है। गुरुकुल की दाद भी उत्तम है।

शरीर की दाद—इसके कारण शरीर पर धब्बे पड़ जाते हैं। यह धब्बे प्राय: कटि-प्रदेश पर और जंघाओं के समीप होते हैं। परन्तु कई बार मुख पर भी हो जाते हैं। यह दाद रात्रि में विशेष कण्डू उत्पन्न करती है। इससे रोगी की नींद उचट जाती है। उसका स्वास्थ्य गिर जाता है। इस रोग की चिकित्सा के लिये बोटा नैपथोल, पल्मबाई एसिटेड, अथवा लाइकर कार्ब डिटर्जिन या ऑयलकेड, इनका प्रलेप लगाना चाहिये। स्थान को जमीडाईल साबुन या कार्बोलिक साबुन से धोना चाहिये। स्थान को बाई कार्बनेट सोडा २ ड्राम और ८ औन्स पानी में मिलाकर उससे धोना चाहिये। इसके पीछे लेड आयोडाईड १ ड्राम और लैनोलीन १ औंस मिलाकर लगाना चाहिये। दद्रुगज केसरी भी उत्तम दवा है।

कण्डू—ये बहुत ही छोटे छाले होते हैं। इनका आकार पिन के शरीर से भी छोटा होता है। ये प्राय: अँगुलियों के बीच में होते हैं, और फिर फैलते जाते हैं। इनके कारण एक प्रकार के कृमि हैं, जो त्वचा के नीचे रहते हैं। इनके कारण जो कण्डू उत्पन्न होती है, वह प्राय: असह्य होती है। यह प्राय: रात्रि में होती है। स्थान को गरम पानी और साबुन से धोना चाहिये। इसके पीछे सल्फर ऑयन्टमेन्ट लगाना चाहिये। रोगी की अंगुलियाँ पुराने कपड़े मे लपेट देना चाहिये। इसके तीन दिन पीछे गरम पानी और कार्बोलिक साबुन

से स्नान करना चाहिये। गन्धक इस रोग की उत्तम दवाई है, इसको छिद्रों में गाड़कर प्रविष्ट कर देना चाहिये।

प्रिक्ली हीट—यह रोग भारतवासियों में बहुत कम मिलता है, परन्तु विदेश से आनेवालों में बहुत मिलता है। इस रोग के लक्षण खाज, गुदगुदी, चींटी के चलने की प्रतीति और स्वेद होता है। कभी-कभी छाले भी हो जाते हैं, जिनमें पानी भर जाता है। व्यायाम या शराब पीने से कोढ़ भी निकल आती है। इसके लिये सिरके को पानी में मिलाकर या स्कुर्स एमोनिया को पानी में मिलाकर उससे स्नान करना चाहिये। शरीर को खुरदरे अँगौछे से रगड़ने पर खुजली शान्त हो जाती है। हल्के कपड़े पहनने चाहिये। हलका भोजन करना चाहिये। बराबर विरेचन लेना उत्तम है। फलालैन को पहनना उत्तम नहीं। यदि प्यास और ज्वर हो, तो साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया देना चाहिये। २० ग्रेन तुत्थ को १ औंस पानी में मिलाकर उसके अन्दर वस्त्र भिगोकर बदन पर रखना चाहिये। दो ड्राम पोटास बाईकार्ब को पानी में भिगोकर इसी प्रकार बरतना चाहिये।

फूराइगो—यह खाज रात को विशेष रूप में होती है। यह प्रायः पीठ पर, गुह्य-प्रदेश में, कक्षा में होती है। प्रथम स्थान पर छोटी-छोटी फुंसियाँ या छाले उत्पन्न होते हैं, जो लाल एवं त्वचा से उठे हुये होते हैं। यह प्रायः करके पुरुषों में, विशेषतः मधु-मेह रोगी में होती है। गर्भवती स्त्रियों में भी यह रोग हो जाता है। खुजलाने से शोथ उत्पन्न हो जाती है।

लगाने के लिये मर्करी ऑयन्टमेन्ट अथवा नैपथोल वीटा, रीसॉरवीन या सैलसिलिक एसिड का प्रलेप लगाना चाहिये। इससे खुजली बहुत जल्दी शान्त हो जाती है। गुदा के पास कण्डू "थ्रेड वर्म्स" के कारण भी हो जाती है। स्थान की स्वच्छता विशेष-रूप से रखनी चाहिये।

हर्पिज़—यह रोग प्रायः होंठों पर ज्वर के समय उत्पन्न हो जाता है। कई बार साधारण प्रतिश्याय के कारण ५-६ फुंसियाँ निकल आती हैं। इनका आधार सूजा हुआ रहता है, और इनमें छिलके उत्पन्न हो जाते हैं। कई बार यह रोग शिश्न के अग्रभाग पर या कन्याओं के भगोष्ठों में भी हो जाता है। वहाँ पर १०-१२ फुंसियाँ निकल आती हैं। इनमें बहुत खाज होती है। छाले फट जाते हैं। इनके ऊपर छिलके जम जाते हैं। इस रोग का कारण प्रायः करके अजीर्ण है। रोगी को विरेचन देना चाहिये। भोजन निय-

मित करना चाहिये और फिटकिरी के घोल से धोना उत्तम है। यदि दर्द बहुत हो, तो पोस्त के डोडों के काढ़े में कपड़ा भिगोकर रखना चाहिये। यदि ज्वर हो, तो एन्टीपाइरीन देना चाहिये। गेरू का लेप, दशांग-लेप, शुगरलेड का प्रलेप, लेड लोशन, जस्त का प्रलेप, टॉनिक एसिड ग्लैसरीन लगाना चाहिये।

एक्ज़िमा (विसर्प)—यह एक बहुत व्यापक रोग है। इस रोग में छोटे-से छाले होते हैं, जो समूह के रूप में अनियमित होते हैं। इनकी त्वचा चमकती हुई लाल होती है। इनमें बहुत खाज, गुदगुदी और चुभता हुआ दर्द होता है। यह रोग प्रायः वहाँ होता है, जहाँ पसीना बहुत आता है, या स्थान मैला रहता है। छालों के अन्दर का पानी दूध के समान श्वेत और पीला होता है। चार-पाँच दिन में छाले फट जाते हैं, पानी बह जाता है, और इनपर पतला, पीला हरा-सा छिलका जम जाता है। इस रोग का समय कुछ सप्ताहों से लेकर महीनों तक है। लम्बे रोगियों में छिलके जुड़ जाते हैं, एक खुरदरी पीठ बची रहती है। अथवा ये छिलके फूट जाते हैं। इनमें से द्रव निकल आता है। जब यह स्राव पीव-युक्त हो जाता है, तब इसको विस्फोट कहते हैं। बच्चों में यह रोग दाँत निकलने के समय होता है, उस समय कान के पीछे निकलता है। स्त्रियों में कष्टार्त्तव या अनियमित सुख के कारण होता है। अथवा कभी-कभी दूध पिलानेवाली औरतों में उनके स्तनों पर हो जाता है।

उपाय—सबसे पहले पुल्टिस (आटे की या बोरिक एसिड की) बाँधकर अथवा लोशनों से शोथ, दर्द आदि लक्षण कम करने चाहिये। पुल्टिस से छिलकों को उतारकर चिकित्सा करनी चाहिये। यदि रोग भयानक न हो, तो शुष्क पट्टी बाँधकर वायु के विक्षोभ से बचाना चाहिये। साधारणतः चिकनी औषधियाँ इस रूप में उपयोगी नहीं हैं। ५ ग्रेन बोरिक एसिड, ५ ग्रेन जिंक ऑक्साइड, ५ ग्रेन एरिस्टोल, इनको १ औंस वैजलीन में मिलाकर लगाने से शुष्क और फटनेवाले एक्ज़िमा में लाभ होता है। पानीवाले स्राव के लिये ज़िंग ऑक्साइड या एरिस्टोल को मोटा-मोटा व्रण पर छिड़कना चाहिये। इसके ऊपर रुई या लिन्ट रखकर पट्टी बाँध देना चाहिये। यदि पट्टी लगाने से पूर्व स्थान को साफ कर दिया गया है, तो इस पट्टी को कई दिनों तक (सात दिन तक) सुरक्षित रखना चाहिये। यदि पानी निकलता हो, तो इस पट्टी को फिर बदल देना चाहिये। जब ड्रेसिंग सूखने लगे, तब समझना

चाहिये कि रोग अच्छा होने लगा। सब अवस्थाओं में पेट को साफ रखना चाहिये। भोजन द्रव देना चाहिये।

पैम्फिगस—यह रोग प्रायः बच्चों में उनके पेट, पीठ, नितम्ब और भुजाओं पर होता है। इसमें लाल गोल छाले होते हैं, जिनमें खुजली और जलन होती है। कुछ ही घण्टों में छाले के मध्य भाग में पारदर्शक द्रव भर जाता है, जो शीघ्र ही बढ़कर सारे लाल धब्बे में भर जाता है, केवल थोड़ा-सा किनारा बच जाता है। ये धब्बे समूह के रूप में उत्पन्न होते हैं। इनका आकार गोल या अण्डाकृति हो जाता है। द्रव प्रथम पारदर्शक होता है, फिर पीला और फिर दो-चार दिन पीछे ये फट जाते हैं। इनमें छिलके उत्पन्न हो जाते हैं। इसके नीचे त्वचा रोहण करने लगती है।

यह रोग प्रायः अजीर्ण के कारण होता है। इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इस रोग में आरसैनिक पीने के लिये देना चाहिये। लगाने के लिये शुष्क ड्रेसिंग करना चाहिये।

पैस्चुलस—मुख्य-मुख्य पैस्चुलस निम्न हैं:—

विस्फोट—यह एक संक्रामक रोग है, जो पीव के कीटाणुओं के कारण फैलता है। पहले इसमें थोड़ी-सी खुजली होती है, और लाल रङ्ग के धब्बे उठ आते हैं, जिनको हाथ से स्पर्श किया जा सकता है। ये धब्बे गोल नहीं होते। १२ घण्टे के पीछे इन धब्बों के बीच में पीला, पानी जैसा द्रव भर जाता है। यह धीरे-धीरे गाढ़ा होने लगता है, और फिर शहद की भाँति का हो जाता है। कइयों में केन्द्र बीच से दब जाता है, और कइयों में केन्द्र ऊपर से उठ जाता है। इनके ऊपर फिर छिलका जमता है, जो बालों से मिला रहता है। यह छिलका अधिक कठोर होता है।

उपाय—यदि छिलका कड़ा न हुआ हो, तो दाद की चिकित्सा करनी चाहिये। यदि छिलका कड़ा होगया हो, तो इसपर पुल्टिस बाँधनी चाहिये, अथवा गरम पानी से उष्ण परिसेक करना चाहिये, जिससे पीव दूर हो जाय और पृष्ठ साफ हो जाय। बालों को बारीक काटना चाहिये। जैतून का तेल या ग्लैसरीन लगाना चाहिये। सिर पर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिये।

पीड़िका—यह एक अकेली फुंसी नाक के अग्रभाग पर, पीठ पर,

गालों पर, माथे या छाती पर निकलती है। इसका आधार कठोर और लाल होता है। इसके अन्दर त्वचा के नीचे की ग्रन्थि आक्रान्त होती है। कई बार इसका सिर बहुत लम्बा होता है। इस रोग का कारण अजीर्ण, अधिक खाना, अधिक पीना, मद्यपान और स्त्रियों में गर्भाशय-विकार के कारण अथवा ऋतु-स्राव प्रारम्भ होने पर या बन्द होने पर होता है। इस रोग की चिकित्सा में कारण को मुख्यतः हटाना चाहिये। व्यायाम, शीत स्नान, खुरदरे अँगौछे से बदन का मलना, पूर्ण स्वच्छता बरतना चाहिये।

छिलके उतरना—प्रथम छोटा-सा गोल, चमकता हुआ, कण्डू-युक्त धब्बा होता है, जो शीघ्र ही पतले श्वेत छिलके से छिप जाता है। इसके गिरने पर त्वचा थोड़ी कठोर और लाल हो जाती है। धब्बे आकार में बढ़ने लगते हैं; परन्तु अपनी गोलाई को नहीं छोड़ते, यहाँ तक कि कई इञ्चों तक बढ़ जाते हैं। अब ये फटकर अनियमित छिलकेवाले धब्बे बन जाते हैं। कभी-कभी इस रोग में अनियमित छिलकों के धब्बे बनते हैं। यह रोग प्रायः अङ्गों के अन्त-पृष्ठ में, जंघाओं में, कक्षाओं में और हथेली में, नाखूनों में होता है। रोग की चिकित्सा के लिये आँतों को स्वच्छ रखना चाहिये। खाने को पचनेवाला भोजन देना चाहिये। सिरका या स्प्रिट आफ वाइन को पानामें मिलाकर लगाना चाहिये।

ट्युबरकल—साधारणतः यह रोग गलित कुष्ठ, फाबुर्ईब्रोमा या ल्युपस रोग के प्रारम्भ में होता है। इस रोग में त्वचा के नीचे अर्बुद बन जाते हैं। इनमें किसी प्रकार का दर्द नहीं होता, इनके कारण कृमि होते हैं। इनको जला देना ही उत्तम है। आजकल विद्युत-धारा, सूर्य की धूप आदि उत्तम उपाय है।

कौन्डी लोमा—पुरुषों में या स्त्रियों में उपदंश रोग के कारण गुह्य-स्थान पर छोटी-छोटी फुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इनमें पस भी होती है। इसके लिये खाने के वास्ते कैलशियम सल्फाइड ५ ग्रेन और सोडाबाई कार्ब २० ग्रेन मिलाकर ५ पुड़िया बनानी चाहिये। इनको पानी के साथ पीने को देना चाहिये। लगाने के लिये ब्ल्यू ऑयन्टमेन्ट रगड़ना चाहिये, अथवा कास्टिक-द्वारा जला देना चाहिये।

साधारण उपाय—बाहर लगाने के—१—चक्रमर्द के बीज, जीरा, इनको जल में पीसकर लेप करने से दद्रु-रोग शान्त होता है। २—चक्रमर्द-

बीज, कूठ, सैन्धव, सौ बीराञ्जन, श्वेत सरसों, विडंग, इनको कांजी या गोमूत्र में पीसकर लेप करने से दाद नष्ट होती है। ३—कसौंदी को कांजी या लस्सी में पीसकर लगाने से दाद शान्त होती है। ४—मूली के बीज, अपामार्ग-रस में या केले के रस में अथवा केले के क्षार को हल्दी के चूर्ण के साथ मिलाकर लगाने से यह रोग शान्त होता है। ५—अमचुर को सेन्धा नमक के साथ ताम्र-पत्र में घिसकर लगाने से छिलके उतरने का रोग शान्त होता है। ६—शुष्क आमलकी-चूर्ण को जल में मिलाकर लेप करने से छिलके उतरना रुकता है। ७—मजीठ, त्रिफला, लाक्षा, हरिद्रा और गन्धक के लगाने से, या ८—सैन्धव, चक्रमर्द, श्वेत सरसों, पिप्पली, इनको कांजी में पीसकर लगाने से पामा और कण्डू रोग नष्ट होते हैं। ९—४ तोला गन्धक-चूर्ण लेकर, इसको सरसों के तेल में मिलाकर, धूप में गरम करके रखना चाहिये। तीन दिन पीछे त्वचा पर लगाने और खाने से कण्डू, पामा-रोग शान्त होता है। १०—सिन्दूर और मिर्च-चूर्ण को भैंस के मक्खन में मिलाकर लगाने से पामा, विसर्प नष्ट होता है। ११—कोमल वासक-पत्र को हल्दी के साथ गोमूत्र में मिलाकर लगाने से कच्छू रोग नष्ट होता है। १२—दण्डा-थोर के टुकड़े में गृह-धूम और सेंधानमक भरकर, इसको हाँड़ी में बन्द करके जला लेना चाहिये। इस राख को तेल में मिलाकर लगाने से बिचर्चिका-रोग नष्ट होता है। १३—शालमुँगरे का तेल लगाने से कुष्ठ, श्वित्र नष्ट हो जाता है। १४—मकोय, चक्रमर्द, कूठ, पिप्पली, इनको बकरी के मूत्र में पीसकर लगाने से श्वित्र रोग; १५—नाटा करञ्ज, थोर, आक और अमलतास, इन वृक्षों के पत्तों को और जावित्री, इन सबको गोमूत्र में पीसकर लगाने से श्वित्र, दद्रु और कण्डु नष्ट होते हैं। १६—बाकुची-बीज ४ पल, हरताल १ पल गोमूत्र में मिलाकर लगाने से श्वित्र रोग को निश्चय आराम होता है। १७—हाथी, चीता (लेपर्ड), शेर, इनकी खाल की राख को तेल में मिलाकर लगाने से श्वित्र को आराम होता है। १८—रत्ती और चीतामूल-चूर्ण, इन दोनों को मिलाकर लगाने से, अथवा मनःशिला और अपामार्ग-क्षार को लगाने से धवल श्वित्र रोग नष्ट होता है। १९—दूर्वा और हरिद्रा इनको मिलाकर लेप करने से कण्डु, पामा, शीत पित्त-रोग शान्त होते हैं। २०—यवक्षार, सैन्धवनमक, इनको कड़वे तैल में मिलाकर मलने से शीत पित्त-रोग शान्त होता है। २१—मसूर, मूँग, मटर अथवा चावलों के

घी में पीसकर लेप करने से विसर्प-रोग शान्त होता है। २२—पंचवल्कल-क्वाथ से, अथवा पद्माख, उशीर, जेठीमधु, मुलहठी और लाल चन्दन, इनका लेप करने से विसर्प रोग शान्त होता है। २३—गेरू को घी के साथ लगाने से पित्त-जन्य सब त्वक्-रोग शान्त हो जाते हैं। २४—अमलतास के पत्ते, लसोड़े की छाल, शिरीष के फूल और मकोय, इनको घी में मिलाने से लाभ होता है। २५—दशांग-लेप सब प्रकार के विसर्प में उपयोगी है। २६—लाल चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, नाटा करञ्ज, शिरीष-छाल और जाती-फल, इनका लेप, अथवा २७—शिरीष-छाल, गूलर, जामुन की छाल, इनका लेप विस्फोट-रोग में उपयोगी है। २८—किबु की जड़, अकरकरा, चीता, प्रत्येक ७ माशे, इनको कूट-छानकर सिरके और शहद में मिलाकर लगाने से श्वित्र-रोग शान्त होता है। २९—गिले अरमानी, चन्दन, इनको गुलाब में पीसकर लगाने से पित्त-जन्य त्वक्-रोग, विसर्प, विस्फोट, पामा आदि शान्त होते हैं। ३०—मुर्दाशङ्ख, काशगरी सफेदा, गुलरोगन, हल्दी, सफेद मोम, अण्डे की सफेदी, इनका प्रलेप दर्द को रोकता है। शीतल है और छिली या फटी जगह को जोड़ता है। ३१—गुलरोगन लगाकर, जूते के पुराने तलुवे की राख ऊपर छिड़क देने से स्राव रुक जाता है। ३२—मनःशिला, हरताल, मिर्च, इनको सरसों के तेल और आक के दूध में लगाना उत्तम है। श्वित्र रोग में उपयोगी है।

खाने की दवाइयाँ—१—सनाय १४ माशे, पित्तपापड़ा १० माशे, इमली २० माशे, हरड़ का छिलका, किबु की जड़, प्रत्येक ३॥ माशे, उन्नाब और लसोड़ा प्रत्येक १५ दाने, मकोय और कासनी के बीज; अधकुचले गुलाब के फूल, खितमी के बीज, प्रत्येक ५॥ माशे, इन सबका क्वाथ-विधि से क्वाथ करके, इसमें शीरीखिस्त मिलाकर गरम दूध के साथ पीना चाहिये। त्वचा के सब रोगों में विशेष उपयोगी है। कई बार वृद्ध गुरुजनों ने अनुभव कर रक्खा है। २—मोथा, नीम-छाल और पटोल, या ३—गोमूत्र में हरड़ पकाकर खाने से रक्त-दोष, विसर्प नष्ट होता है। ४—हरीतकी, नीम-पत्र, आमलकी, इनके कषाय या गिलोय का रस घी के साथ पीने से लाभ होता है। ५—एक साल तक खदिर का कषाय या पञ्चगव्य अथवा सोमराजी बावची को काले तिल के साथ खाने से त्वक्-रोग शान्त हो जाते हैं।

शास्त्रीय औषधि—पञ्चतिक्त-घृत, गुडूच्यादि-तैल, हरिद्रादि-तैल, अमृतगुग्गुल।

प्रकरण नवाँ

मिश्रित क्षुद्र-रोग

आर्य-चिकित्सा में क्षुद्र-रोग का एक प्रकरण पृथक् है। उसीके आधार पर तथा अन्य छोटे-छोटे रोगों को मिलाकर यह प्रकरण तैयार किया गया है।

बालों का गिरना—इस रोग में सिर के, दाढ़ी और मूछों के बाल गिरने लगते हैं। इसका कारण यह है कि जब शरीरस्थ पित्त कुपित होकर वायु को मूर्च्छित कर देता है, तब रोम-कूपों से बाल गिरने लगते हैं। यदि श्लेष्मा बालों की जड़ों को भर ले, तो अन्य बालों का उगना असम्भव हो जाता है। दूसरा कारण ज्वर आदि रोग, भोजन की न्यूनता है। फेफड़े के घाववाले यक्ष्मा-रोगियों में, ज्वर-रोगियों में जब यह रोग मिलता है, तब उनका शरीर खुश्क और दुबला होता है। दूसरा कारण है सिर की खाल का नर्म होना, जिससे बाल गिर जाते हैं।

उपाय—१—हीराकसीस, प्याज, भृङ्गराज और जवाफूल की कली पीसकर प्रलेप लगाने से बाल निकल आते हैं। २—मनःशिला, हीराकसीस और तुत्थ इनका लेप करना चाहिये। ३—लेखन (स्कैरीफिकेशन) द्वारा रक्त निकालकर रत्तियों का चूर्ण मलना चाहिये। ४—हाथी-दाँत की राख और रसौंत मिलाकर लेप करना चाहिये। ५—बड़ी कटेरी के फल के रस में रत्तियों का चूर्ण मलना चाहिये। चूर्ण मलने से पहले धतूरे के फल से इस स्थान को घिसना चाहिये। ६—खुरदरे पत्तों के साथ घर्षण करने के पश्चात् मिर्च का चूर्ण मलना चाहिये। ७—सिर को बारबार मुड़ाना चाहिये। आँवले का तेल, बाबूना का तेल मलना चाहिये। ८—शीह इरमानी, कड़वे बादाम और गन्दना जलाकर, जैतून के तेल में मिलाकर लेप करना चाहिये। ९—पछने लगाकर तुलसी का गोंद, राई, फरफयून, अकरकरा, बेल के-पत्ते और लहसुन कूटकर लेप करना चाहिये। १०—कैन्थरी डस का उपयोग भी उत्तम है।

यह रोग मस्तिष्क के काम करनेवालों में भी हो जाता है। इसके लिये शीर्षासन उत्तम है। उत्तम और पौष्टिक भोजन खाना चाहिये।

दारुणक—इस रोग में बालों की त्वचा कठिन, रुक्ष हो जाती है, बाल भी खुरदरे हो जाते हैं। इस रोग का कारण कृमि है। इसको कार्बोलिक लोशन से धोना चाहिये। १—आम की गुठली, हरड़ इनको दूध के साथ पीसकर लेप करना चाहिये। २—पियाल-बीज, मुलहठी, कूठ, सेंधा-नमक और उड़द इनको मधु के साथ मिलाकर लेप करना चाहिये। ३—चीतामूल, दन्तीमूल, कड़वी तुम्बी, इनको पीसकर, इनके साथ तेल पकाकर लगाने से, अथवा ४—तिल का तैल ४ सेर, भाँग का रस १६ सेर और रत्तियों का कल्क १ सेर, इनका तेल लगाने से लाभ होता है।

सिर के ऊपर छोटी-छोटी फुन्सियों का बालों की जड़ में निकलना (अरूँषिका)—१—मुर्गी की बीट गो-मूत्र में पीसकर लेप करने से, २—नीले कमल का केशर, आमलकी और मुलहठी, इनका प्रलेप करने से अरूँषिका-रोग में लाभ होता है।

पलित (बालों का सफेद हो जाना)—यह रोग वीर्य की निर्बलता, गरम पानी से स्नान करने से, बनावटी बाजारू तेल लगाने से प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसके लिये १—त्रिफला, नील के पत्ते, लोह और भाँगरे का चूर्ण समान भाग लेकर मेढ़े के मूत्र की भावना देकर केश पर मलने से केश काले हो जाते हैं। २—लोहमल, आँवला और जवापुष्प इनको पीसकर लगाने से, ३—नीम के बीजों को भाँगरा और असन वृक्ष के रस की सात-सात भावनायें देकर तेल निकालना चाहिये। इस तेल का नास लेने से और दुग्ध पीने से बाल काले होते हैं। ४—काली हर्र ३५ माशे, बहेड़ा, कुन्दरू, गोंद, प्रत्येक १७॥ माशे, मिर्च ८॥ माशे, सोंठ, गुलाब के फूल, बच, प्रत्येक सवा पाँच माशे, सफेद चन्दन, कासनी के बीज, प्रत्येक १० माशे, इन सबको कूट-छानकर काबुली हरड़ के मुरब्बे में मिलाकर १०॥ माशे की मात्रा में खाना चाहिये। ५—अखरोट के पेड़ की कली कूटकर, उसमें बूल मिलाकर लगाना चाहिये।

लोमशातन (बालों को उड़ाने की विधि)—(१) हरताल और चूने को बराबर मिलाकर, गरम जल में घोलकर लगाने से, (२) शंख-भस्म और हरताल के केले के रस में मिलाकर लगाने से, (३) पलाशछाल-भस्म और

हरताल को केले की जड़ के रस में मिलाकर, ४—हरताल १ भाग, शंख-भस्म ५ भाग, ढाक की छाल ५ भाग, इनको ७ दिन तक केले के रस में भिगोकर लगाने से, ५—कपूर, शङ्ख-चूर्ण, यवक्षार मनःशिला, हरताल, भिलावे का चूर्ण इनके साथ तैल सिद्ध करके लगाने से बाल उड़ जाते हैं।

बालों के न निकलने का वर्णन—कई बार स्त्रियों के मुँह पर बाल निकल आते हैं। उस समय इसकी चिकित्सा की आवश्यकता होती है। बालों को उखाड़कर भाँग, अफीम खाने को देना चाहिये, और उस स्थान को विद्युत्-धारा से जला देना चाहिये।

बालों को जमानेवाली दवाई—१—पुराने जैतून, गन्दना की राख और समुद्र-फाग मिलाकर लगाना उत्तम है। २—जरारीह लेकर उनके हाथ-पाँव तोड़कर १०॥ माशे, बकायन का तेल ३३। माशे मिलाकर आग पर रखना चाहिये, जिससे तेल गाढ़ा हो जाय। पीछे से कस्तूरी और अम्बर थोड़ा-थोड़ा मिलाना चाहिये। ३—कालादाना कूटकर जैतून के तेल में मिलाकर लगाना चाहिये।

बालों के रंग बदलने का वर्णन (लाल बनाने के लिये)—मेंहदी, गुलाब की शराब या फिटकिरी और हरताल या केवल केशर लगाना चाहिये। सफ़ेद करने के लिये चमगादड़ की बीट, खसखस की छाल, सेब, कपूर, मूली के बीज, गूगर्द, इनको बेल के पत्तों में मिलाकर लगाना चाहिये।

बालों को घुँघरीला करने के लिये बेर, माजूफल, झाऊ, आमला, सर्व का पत्ता, इनका लेप किया जाता है, और बालों को पतला करने के लिये खरबूजे के बीज या सरसों को मलना चाहिये।

नाखूनों के रोगों का वर्णन

नखों पर सफ़ेदी हो जाना—इसका कारण निकम्मी गाढ़ी तरी है। १—हरताल, तुतली का गोंद, जरारीह, किशमिश की दलिया सिरके में मिलाकर, २—मेथी के बीज, अलसी के बीज कूटकर, शहद में मिलाकर नखों पर रखना चाहिये।

कुनख—इस रोग में नख मोटे हो जाते हैं और जल्दी-जल्दी

टूटने लगते हैं। इसके लिये आकाश-बेल का काढ़ा देना चाहिये। मोम का तेल या गूजे की माद लगानी चाहिये।

नखों के फटने का वर्णन—नाखून के सदा सिरके और नमक के गरम पानी से धोना चाहिये।

चिप्य—इस रोग में नख पक जाता है। १—गरम पानी से धोकर सुहागा और हरपाखेड़ी की जड़ के पीसकर लेप करना चाहिये।

नख के उखाड़ना हो, तो—प्रथम हरताल, जावशीर और कड़ुवे बादाम का लेप करना चाहिये, या राल, गन्धक और हरताल का लेप करना चाहिये।

पसीने का आना—साधारणतः पसीना सब व्यक्तियों के आता है; परन्तु कई व्यक्तियों में बहुत पसीना आता है। उनके पसीने में बदबू होती है। यदि पसीना सोने के पीछे आता है, तो यह बात निश्चय है कि रोगी आवश्यकता से अधिक भोजन खाता है। निर्बलता के कारण ही पसीना अधिक आता है।

माजू तथा थोड़ा-सा कासगरी सफ़ेदा गुलरोगन में मिलाकर लेप करना चाहिये। ईषबगोल का लुवाब मलना भी लाभदायक है। गिलेहरमानी, मुर्दासिन गुलाब में शुद्ध करके, गुलाब में पीसकर लगाना चाहिये। मोद, अनार के फूल, अकाकिया, रसौत, कुन्दरू गोंद इनके गुलाबजल में घोलकर लगाना चाहिये। रोगी के चाहिये कि हवा में बैठे और पसीना न पोंछे। पोंछने से पसीना अधिक आता है।

मोद के पत्ते का पानी, बिही का पानी, गुलरोगन में मिलाकर औटाना चाहिये। यदि गीली मोद न मिले, तो सूखी मोद के पत्ते, अनार के फूल, गुलाब के फूल, कुसुम, बिही पानी में औटाकर छान लेना चाहिये। इसमें चौथाई भाग गुलरोगन मिलाकर तेल पकाना चाहिये। इसमें माजूफल मिला दिया जाय, तो बहुत लाभ होता है। मोद के पत्ते, कहवा और अनार के फूल पीसकर छिड़कना चाहिये।

पसीना लाने की दवाई—अजमोदे का पानी, गुलाब, सिरका, गुलरोगन मिलाकर शरीर पर मलना चाहिये। सौसन का तेल, मूले का पानी मिलाकर लगाना चाहिये। शिकंजबीन बिजूरी कासनी के पानी के साथ पीने के देना चाहिये।

जुवाँ और लीक मारने की विधि—यह रोग मैले व्यक्तियों में होता है। १—खारे पानी से नहाना अच्छा है। २—कनेर के पत्ते, पहाड़ी मुनक्का, चाँदी का मैल और कड़वे बादाम का लेप करना चाहिये। ३—छरीला, कनेर, शिलारस, सफेद मिर्च और अनार की छाल पानी में औटाकर अङ्ग को धोना चाहिये। ४—तुलसी का पानी सिर में डालना भी उत्तम है।

मुँह की फुंसियाँ—यह रोग प्रायः १६ वर्ष की आयु में पुरुषों में, और कभी १२ वर्ष की आयु में स्त्रियों में भी होता है। साधारणतः इसको कील कहते हैं। इसके कारण आदमी का चेहरा खराब हो जाता है।

इसके लिये १—मुँह को ठण्डे पानी से भली प्रकार स्पंज के साथ रगड़कर धोना चाहिये। २—सिम्बल के काँटों को दूध में घिसकर लगाना चाहिये, अथवा ३—लोध्र, बच, धनिया अथवा गोरोचन और मिर्च पीसकर लगाना चाहिये।

यदि फुन्सियाँ बहुत हों, और खाज भी होती हो, तो नीम-छाल और अमलतास का पत्ता पीसकर लेप करना चाहिये। अथवा नीम के पत्तों और अमलतास के पत्तों-द्वारा तेल पकाना चाहिये।

मुँह की झाईं—इसके लिये मनसिला, सरसों और बकुल की छाल पीसकर लगाना चाहिये। रोगी को आकाश-बेल का काढ़ा देना चाहिये। १—अर्जुन की छाल, मजीठ को मधु के साथ या श्वेत घोड़े के खुर की भस्म को मक्खन के साथ लगाना चाहिये। २—लाल चन्दन, मजीठ, कूठ, लोध्र, प्रियंगु, वट के कोमल पत्र, मसूर, इनको पीसकर लेप करना चाहिये। ३—वट के अङ्कुर और मसूर को मधु के साथ प्रलेप देने से मुँह की झाईं नष्ट होती है। ४—जायफल घिसकर या सायंकाल सरसों का तेल मलने से लाभ होता है। ५—तुष-रहित यव का चूर्ण, मुलहठी या लोध्र, इनका लेप या सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, गेरू और घी, इनको बकरी के दूध में मलकर लेप करना उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—द्विहरिद्रादि-तैल, कुंकुमाद्य-तैल, मञ्जीष्ठादि-तैल।

मस्से—ये त्वचा में उत्पन्न होते हैं। बिना किसी लक्षण के और बिना किसी तकलीफ से निकलते हैं। यदि इनको अकेला रहने दिया जाय,

तो स्वयं अच्छे हो जाते हैं। परन्तु जब मस्से की गर्दन मजबूत हो, तो उसको मोम के धागे से या घोड़े के बाल से बाँध देना चाहिये। दो-चार दिन बाद मस्सा गिर जायगा, पीछे से इस स्थान पर फिटकिरी लगाना चाहिये। २—गरम पानी से धोने से और रात्रि में सिरके के पानी में भिगोया हुआ कपड़ा रखने से आराम हो जाता है। मस्सों को जलाने के लिये एसिटिक एसिड या नाइट्रिक एसिड को भली प्रकार सँभालकर लगाना चाहिये। एसिड तबतक लगाते रहना चाहिये, जबतक दर्द का होना बन्द न हो जाय। ३—अपामार्ग-क्षार या अर्क-तैल अथवा चूना या प्याज लगाना भी उत्तम है।

कदर—तंग जूता पहनने से या एक पार्श्व पर बैठने से अँगुली या गिट्टों पर आँख बन जाती है। इसमें चमड़ी मोटी हो जाती है। इसमें दर्द प्रायः नहीं होता।

उपाय—इसको काटना नहीं चाहिये। काटने से बहुत बढ़ता है। प्रथम गरम पानी से धोकर पीछे पुल्टिस आदि से नर्म करके जला देना चाहिये। इसके ऊपर बाइकर आरसैनिक कैलिस को लगातार लगाना भी उत्तम है।

पाददारि—पाँव में प्रायः बिवाई फट जाती है। इसके लिये स्थान को गरम पानी से धोकर, पीछे से पुल्टिस बाँध देना चाहिये। जब किनारे नर्म हो जायँ, तब तेज उस्तरे से इनको काट देना चाहिये, या पिण्ड-तैल या मोम और तैल को मिलाकर लगाना चाहिये। २—मोम, शिलाजीत, घृत, गुड़ गुग्गुल, राल और गेरू, इन सबका प्रलेप लगाने से बिवाई अच्छी हो जाती है।

अलसक—यह रोग बरसात में लगातार जूते और मोजे पहनने से होता है। इसमें पाँव की अँगुलियों के बीच का स्थान और नीचे का भाग गल-सा जाता है। इसमें बहुत खाज होती है। १—प्रथम स्थान को शराब या कांजी से धोकर, उसपर परवल, कसीस, नीम-पत्र और त्रिफला; इनको पीसकर लगाना चाहिये। २—जायफल पीसकर लेप करना चाहिये। ३—कण्टकारी के रस में सरसों का तेल पकाकर ऊपर से मनःशिला, कसीस और गोरोचन का लेप करना चाहिये। ४—करञ्ज का तेल लगाना चाहिये।

वृषण-कच्छु—वृषण (अण्ड-कोष) को स्वच्छ न रखने से, पसीना

बहुत आने से अण्ड-कोषों में खाज उत्पन्न हो जाती है। इससे कभी-कभी पानी भी निकलता है, जिसमें एक विशेष प्रकार की बदबू होती है।

उपाय—१—राल, कूठ, सेंधानमक और श्वेत सरसों का लेप करना चाहिये। २—त्रिफला के काढ़े में कत्था मिलाकर उससे धोना चाहिये। ३—इकथ्योल और जिंक ऑक्साइड का प्रलेप उत्तम है। खाज और कण्डु की चिकित्सा करनी चाहिये।

शय्या-व्रण—ये व्रण रोगियों में हो जाते हैं। जो रोगी एक पार्श्व में लेटे रहते हैं, उनके नितम्ब और कटि-प्रदेश पर व्रण हो जाते हैं। इसके लिये आवश्यक है कि रोगी को करवट बदलते रहना चाहिये। यदि ये व्रण हो जायँ, तो स्थान पर बोरिक एसिड या जिंक ऑक्साइड लगाना चाहिये। शीत परिसेक या शीतल जल की गद्दी बाँध देना चाहिये। इनसे बचाने का उपाय यह है कि इन स्थानों को कांजी या शराब में पानी मिलाकर उससे धो देना चाहिये। कार्बोलिक लोशन का लगाना भी उत्तम है।

गुद-भ्रंश—निर्बल बच्चों में या निर्बल मनुष्यों में जोर से मल-प्रवाहण करने पर अथवा अतिसार-रोग के बार-बार होने से गुदा बाहर निकल आती है।

उपाय—१—रोगी को चाहिये कि वह दबाकर अन्दर प्रविष्ट कर दे और ऊपर से लँगोटी बाँध ले। २—कमल के पत्ते को शर्करा के साथ खाना चाहिये। ३—गौ की चर्बी या चूहे के मांस से सेंक करने पर गुद-भ्रंश रोग निश्चय आराम हो जाता है। ४—मूषिका-मांस और दशमूल इनसे तैल पकाकर लगाना चाहिये। ५—चौपतिया का रस लगाना भी उत्तम है। चौपतिया का घी खाना भी उत्तम है।

शास्त्रीय औषधि—मूषिकाद्य-तैल, चाङ्गेरी-घृत।

निरुद्ध-प्रकर्ष—इस रोग में शिश्न के अग्रभाग के ऊपर रहनेवाली त्वचा शिश्न के साथ चिपक जाती है। साधारणतः यह त्वचा पीछे हटाई जा सकती है। इसके हटाने से शिश्न-मुण्ड नग्न हो जाता है। परन्तु जिस समय शिश्न-मुण्ड और इसके ऊपर की त्वचा के मध्य में मल भर जाता है, उस समय यह त्वचा शिश्न-मुण्ड के साथ चिपक जाती है। इसके चिपकने से मूत्र-छिद्र भी बन्द हो जाता है। यह रोग बालकों में प्रायः होता है; क्योंकि उनमें

मैल प्राय: निकलती है । यह मैल श्वेत बदबूदार होती है । मुसलमान लोग इस त्वचा को काट डालते हैं । छिद्र के तंग होने से पेशाब आने में भी दर्द होता है, रोगी चिल्लाता है ।

उपाय—यदि यह रोग बचपन से हो, तो इसकी चिकित्सा उसी समय करनी चाहिये । १—एक पतली शलाखा को शिश्न-मुण्ड और त्वचा के बीच में डालना चाहिये । इसपर तेल या घृत लगाते रहना चाहिये । धीरे-धीरे इस शलाखा को बढ़ाते जाना चाहिये । यदि इससे सफलता न मिले, तो त्वचा को काट डालना चाहिये । यदि इसका कारण शोथ आदि हो, तो शीत या उष्ण परिसेंक करना चाहिये ।

परिवर्तिका—इस रोग में त्वचा पीछे उलट जाती है, और फिर अपने स्थान पर वापस नहीं आती, इससे शिश्न-मुण्ड नंगा ही रहता है । इस अवस्था के कारण शोथ, रक्तिमा, दर्द और कभी-कभी मूत्र-प्रवाहण में कष्ट होता है । इस रोग का कारण बल-पूर्वक मैथुन या हस्त-दोष है ।

उपाय—१—प्रथम बरफ या शीत पानी का परिसेंक करना चाहिये । फिर शिश्न-मुण्ड को अँगुलियों और अँगूठे से दबाना चाहिये, मानों रक्त निचोड़ रहे हों । फिर ठीक इसी समय शिश्न-मुण्ड को पीछे दबाते हुये त्वचा को आगे की ओर खींचना चाहिये । यदि इस प्रकार बार-बार यत्न करने से भी सफलता न मिले, तो चाकू से थोड़ा छेदन करना चाहिये । २—सेंक करना चाहिये, घी लगाना चाहिये, उड़द की पुल्टिस बाँधनी चाहिये । जब चमड़ा अपने स्थान पर आजाय, तब गरम मांस का सेंक करना चाहिये ।

अवपान्टिका—यदि स्त्री का योनिद्वार तंग हो, और पुरुष का शिश्न मजबूत और दृढ़ हो, तो बल-पूर्वक मैथुन करने से अथवा हस्त-दोष से अग्रचर्म उलट जाता है । इस रोग की चिकित्सा परिवर्तिका के समान है ।

शूक-दोष—यह रोग उन लोगों में होता है, जो अनुचित उपाय से शिश्न की वृद्धि चाहते हैं । आजकल यह रोग प्राय: कम मिलता है । यदि यह रोग हो जाय, तो जोंक लगानी चाहिये, रेचन लेना उत्तम है । २—त्रिफला के काढ़े में गुग्गुल मिलाकर पीना चाहिये । ३—ठण्डे दूध का शिश्न के ऊपर सिंचन करना चाहिये । ४—दारुहल्दी, मुलहट्टी, गृह-धूम, हल्दी, तुलसी के पत्ते, इनके कल्क का लेप करना चाहिये । ५—रसौत का लेप करना चाहिये ।

शिश्न-वर्धक उपाय—अश्वगन्धा के। घी में मिलाकर, या सुहागे को घी और शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। मिलावा, बड़ी कटेरी का फल, अनार की छाल, इनके कल्क के। चतुर्गुण जल में कटु तैल पकाकर लिंग पर मर्दन करना चाहिये।

साधारणतः त्वचा का काटना उत्तम नहीं, क्योंकि शिश्न-मुण्ड के नंगा रहने से और कपड़ों के स्पर्श होने से इसमें उत्तेजना आती है। और फिर लगातार स्पर्श से शिश्न-मुण्ड की नाड़ियों में ज्ञान भी घट जाता है।

शोथ—चोट लगने से अथवा अन्य किसी कारण से स्थान सूज जाता है। शोथ का अर्थ यह है कि उस स्थान पर रक्त-संचार बढ़ गया, अथवा वहाँ पर स्राव या लसीका रुक गई, जो वापस नहीं जाती, या धीरे-धीरे जाती है। इसमें अन्तः-अवयवों की शोथ बहुत भयानक होती है। जिस स्थान पर शोथ होती है, वह स्थान गरम, सूजा हुआ, लाल तथा दर्द-युक्त होता है। दर्द का कारण दबाव का बढ़ना है। यदि शोथ अधिक हो, तो यह शरीर के अन्दर व्यापी लक्षण उत्पन्न कर देती है। अर्थात् रोगी को ज्वर हो जाता है, नाड़ी की गति बढ़ जाती है, प्रायः मलबन्ध रहता है और मूत्र गाढ़ा हो जाता है। यदि यह शोथ शान्त न हो, तो इसमें स्राव उत्पन्न हो जाता है। यह स्राव धीरे-धीरे गाढ़ा होकर पीव का रूप धारण कर लेता है।

क—इसके लिये सबसे प्रथम यह उपाय करना चाहिये कि पीव उत्पन्न न हो। इसके लिये १—शीत पानी की गद्दी रखनी चाहिये। २—सिरके में पानी मिलाकर उसकी गद्दी रखनी चाहिये। ३—शीतल लोशन रखना चाहिये। ४—रोगी के अङ्ग को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। इसके लिये अंग को ऊँचा करके रखना चाहिये। ५—दूर्वा, नलमूल, मुलहठी, लालचन्दन, इन शीतल द्रव्यों का लेप करना चाहिये। ५—पंचवल्कल-क्वाथ को शिला पर पृष्ठ करके, घी में मिलाकर लेप करना चाहिये। ७—पुनर्नवा, सहजन, देवदारु, दशमूल, सोंठ, इन सब द्रव्यों के। पीसकर थोड़ा गरम करके लगाना चाहिये।

ख—परन्तु यदि रोगी के। कँपकपी हो, या रोगी चुभते हुए दर्द की शिकायत करे, तब यह यत्न करना चाहिये कि शोथ पक जाय और उसमें मुख हो जाय। इसके लिये—

१—पुल्टिस बाँधनी चाहिये। २—गरम उपनाह, सेंक करना चाहिये। आटे की पुल्टिस, हल्दी, नमक और अलसी का लेप करना चाहिये। पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। ३—जोंक लगानी चाहिये। ४—सन-बीज, मूली के बीज, सहजन-बीज, तिल, सर्षप, अलसी, इनके चूर्ण को तथा किएव-बीज को, अथवा गेहूँ, जौ का आटा लगाना चाहिये। ५—ईसबगोल मुर्गी के अण्डे की सफेदी में मिलाकर लेप करना चाहिये। ६—अलक गोंद और अंजीर कूटकर लेप करना चाहिये, या कनूचा के बीज दूध और शहद में मिलाकर, अथवा ७—ज्वार का चून ४ भाग, एलुवा १ भाग, मेथी के बीज १ भाग, इनको दही में औटाकर गुनगुना बाँध देना चाहिये। इस प्रकार दिन में दो बार लगाना चाहिये।

ग—जब पक जाय, तब उसको फोड़नेवाली दवाइयों से फोड़ना चाहिये। ये औषधियाँ निम्न हैं—

१—गेहूँ का खमीरा आटा, कनूचा के बीज, कबूतर की बीट, बिना बुझा चूना, मुर्गे के अंडे की जर्दी शहद मिलाकर लेप करना चाहिये। २—करञ्ज, भिलावा, चित्रक, जमालगोटा, करवीर, कबूतर की बीट, इनका लेप व्रण को विदीर्ण करता है। ३—अपामार्ग या जौखार लगाने से व्रण विदीर्ण हो जाता है। ४—यदि इस प्रकार से भी व्रण न फटे, तो चिकित्सक-द्वारा विदीर्ण करवा लेना चाहिये।

घ—जिस समय व्रण में मुँह हो जाय और पीव निकल जाय, उस समय उसको धोना चाहिये। इसके लिये निम्न क्वाथ उत्तम हैं—

१—वट, गूलर, नीम, पीपल, जामुन, त्रिफला, इनमें से किसी भी क्वाथ से व्रण को धोना उत्तम है। २—तिल, सैन्धव लवण, मुलहठी, निशोथ, नीम के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, इन सब वस्तुओं को पीसकर, घी के साथ लेप करने से व्रण का शोधन होता है। ३—त्रिफला, खैर, दारु-हरिद्रा, न्यग्रोधादि-गण, बला, कुश, नीम के पत्ते, बेर के पत्ते, इनका कषाय व्रणों के धोने के लिये उत्तम है। ४—करंज, नीम, सम्भालु या लहसुन अथवा नीम-पत्र, हींग, बच, नमक, घी, सरसों, इनका लेप व्रण को शोधन करता है; कृमियों को मारता है।

ङ—जब व्रण साफ हो जाय, उस समय उसका रोहण करना चाहिए; जिससे वह भर जाय। इसके लिये—

१—मुर्दा-शङ्ख के घी में लगाना चाहिये। २—तिल, मुलहठी के मधु में मिलाकर लगाना चाहिये। ३—शहद के साथ शरफोंका का कल्क लगाना चाहिये। ४—नीम का पत्ता, घी, मधु, हल्दी, मुलहठी, इनके कल्क से बत्ती बनाकर व्रण में रखने से वह शीघ्र भर जाता है। ५—अश्वगन्धा, कटुकी, लोध्र, कायफल, मुलहठी, धाय के फूल, मजीठ, इनका प्रलेप करना चाहिये। ६—पंचवल्कल-छाल और बेर के वृक्ष की छाल का चूर्ण लेप करना चाहिये। ७—मनुष्य के सिर की अस्थि का चूर्ण गोमूत्र में मिलाकर लगाने से असाध्य व्रण भी अच्छे हो जाते हैं।

बुरकेन की दवा—एलुवा, कुन्दरू गोंद, हीरा दुःखी गोंद।

शास्त्रीय औषधि—रोगी की शक्ति के बनाये रखने के लिये उसके अन्तः-औषधि देना भी उत्तम है। इसके लिये—त्रिफला-गुग्गुल, गौराद्य-घृत उत्तम है। बाहरे लगाने के लिये—दोषघ्न-लेप, दशांग-लेप, जात्यादि घृत या तैल, दूर्वाद्य-घृत, करञ्ज तैल उत्तम हैं।

नाड़ी-व्रण—जिस समय मनुष्य विद्रधि की उपेक्षा कर देता है, उस समय इसका मुख अन्दर की ओर खुल जाता है। वहाँ जाकर शिरा, स्नायु, मांस, सन्धि-कोष्ठ सब अवयवों को विदीर्ण करने लगता है। चूँकि पीव बहुत गमन करती है, इसलिये इसके गति-व्रण कहते हैं। इस रोग में एक पतली नली-सी होती है। पीठ पर व्रण का मुख तंग रहता हैं, परन्तु व्रण अन्दर बहुत गहरा होता है। इसका मुख कई बार दूसरी ओर निकल आता है। तब भगन्दर-रोग हो जाता है। इस व्रण के गम्भीर होने से भरना कठिन होता है।

उपाय—१—बिडंग, त्रिफला और पिप्पली इनका सेवन मधु के साथ करना चाहिये। २—अमलतास-मूल की छाल, हल्दी, आक का दूध इन सबकी बत्ती बनाकर व्रण में रखना चाहिये। ३—गुग्गुल, त्रिफला, त्रिकटु इनका लेप नाड़ी-व्रण में उपकारी है ४—कड़ुवी तुम्बी की छाल, मैनफल, सुपारी की छाल, सैन्धव इनके थोर और आक के दूध में मिलाकर, बत्ती बनाकर व्रण में भर देना चाहिये। ५—उत्तम यह है कि शास्त्र-चिकित्सक की सम्मति लेकर इसके विदीर्ण करवा दिया जाय। ६—समुद्र के खारे पानी से अथवा साबुन के पानी से घाव के धोना चाहिये। इसमें हरताल और नौसादर मिला दिया जाय, तो उत्तम है। फिर पुरानी

रुई को शराब में तर करके निम्न लेप में मिलाकर व्रण में रखना चाहिये। लेप जरूर, अञ्जफर अंजरूत, एलुवा, बूल, हीरा दुखी गोंद, कुन्दरू गोंद, अफीम, केशर, ७—नासूर को भरनेवाला लेप—३५ माशे कुन्दरू गोंद, गन्दा पिरोजा, जंगर, प्रत्येक ३२॥ माशे, शहद में मिलाकर लगाना चाहिये। ८—नासूर को सिरके, शहद और शराब से धोना चाहिये। पीछे से मनुष्य के बाल की राख, अङ्गूर की लकड़ी की राख, कनेर की राख, झाऊ की राख, कड़वे बादाम की राख, घाव में भरना चाहिये।

भगन्दर—इस रोग में दो छिद्र होते हैं। एक छिद्र तो स्वाभाविक होता है, और दूसरा रोग-जन्य होता है। उदाहरण के लिये एक छिद्र गुदा का है। अब यदि एक दूसरा छिद्र गुदा के समीप ही में हो जाय, जिसका सम्बन्ध अन्दर-गुदा से हो और बाहर स्वतंत्र मुख रखता हो, तो उसको भगन्दर कहते हैं। नाड़ी-व्रण या नासूर में एक ही मुख रहता है, परन्तु भगन्दर में दो मुख होते हैं। इस रोग का कारण गुदा के पास विद्रधि का होना है। इस स्थान के व्रण की चिकित्सा बहुत होशियारी से करवानी चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि व्रण नीचे से भरना प्रारम्भ करे। इस रोग की चिकित्सा शास्त्र-चिकित्सा ही है।

उपाय—गुह्य-स्थान पर शोथ दिखाई देने पर सबसे प्रथम उपवास, विरेचन करना चाहिये। पीछे जोंक लगवाकर रक्त का दबाव कम कर देना चाहिये।

लेप—१—काले तिल, हरड़, लोध्र, नीमपत्र, हल्दी, दारुहल्दी, बच, कूठ और गृहधूम इनका लेप देना चाहिये। २—खदिर-क्वाथ लगातार पीना चाहिये; अथवा त्रिफला-क्वाथ गुग्गुल के साथ पीना चाहिये। ३—पाताल यंत्र-विधि से मनुष्य की हड्डी के टुकड़े का तेल निकालकर लगाना चाहिये। यदि दैव विपरीत नहीं है, तो अवश्य लाभ होगा। ४—बिल्ली के अस्थि का लेप करना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—नवकार्मिक गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, खदिर-क्वाथ खाने के लिये उत्तम हैं।

पथ्यापथ्य—भगन्दर मिटने के एक साल पीछे तक कसरत, मैथुन, युद्ध और घोड़े की सवारी नहीं करनी चाहिये।

गुमड़ा—कई बार मुँह या अन्य स्थान पर एक छोटी-सी फुंसी

१२५

निकलती है, परन्तु इसके कारण दर्द बहुत होता है। इसकी जड़ बहुत कठोर और फैली होती है। उसकी उपेक्षा करने से यह बढ़ती जाती है। इसका स्पर्श बड़ा कठिन होता है। चक्कर मारकर इसकी जड़ घेर लेती है। फिर धीरे-धीरे पककर मुख पर से फूट जाती है। फूटने पर पीप और एक कील निकलती है। उस कील के निकलने से गड्ढा-सा हो जाता है। उसके पीछे घाव शीघ्र भर जाता है।

उसके लिये जब फुंसी छोटी हो, तो शीत परिसेंक करना उत्तम है। इस अवस्था में बैलेडोना प्लास्टर लगाना चाहिये, अथवा चूने और शहद का लेप करना उत्तम है। यदि अब भी शान्त न हो, तो कार्बोलिक एसिड की १ बूंद रुई से अन्दर डालना चाहिये। इससे लाभ न होता देखे, तो पुल्टिस आदि उपनाह बाँधकर विदीर्ण कर लेना चाहिये और अन्दर से सब मैल निकाल देना चाहिये। पीछे से ठण्डे पानी की गद्दी या पीपल की छाल को घी में मिलाकर लगाना चाहिये। प्रारम्भ में सस का लेप करके ऊपर से सेंक देना उत्तम है। यदि पीप बहुत निकलती हो, तो चन्द्रप्रभा, कञ्चनारगुग्गुल, को मंजीष्ठादि क्वाथ या त्रिफला क्वाथ के साथ खाना चाहिये।

नहरुवा—त्वचा के अन्दर से श्वेत रंग का धागे-जैसा पतला कृमि निकलता है। इस रोग को नहरुवा कहते हैं। इस रोग के अंडे पानी में रहते हैं। गँदला पानी पीने से या उसमें नहाने से ये अण्डे शरीर में चले जाते हैं और वहाँ बढ़ते हैं। जब कृमि बड़ा हो जाता है, तब अपने अंडे बाहर देने के लिये वह अपना मुख त्वचा में निकालता है। इसके निकलने के समय निम्न लक्षण होते हैं—

प्रथम एक फुन्सी उत्पन्न होती है। उसका छाला बनता है। इसमें एक छेद हो जाता है। इसमें से एक पतला धागा-सा निकलता है। इसका रंग लाल स्याही लिये हुए होता है। यह जब बाहर आता है, तो एक बिलान्द तक आजाता है। त्वचा के किनारे कीड़ा चलता प्रतीत होता रहता है। प्रायः यह घुटने के आसपास निकलता है।

चिकित्सा— यत्न यह करना चाहिये कि यह टूटने न पाये। इसके लिये जितना निकले, उतने को लकड़ी पर लपेटते जाना चाहिये। फुन्सी पर पलुवा को धनिये के पानी, लासनी के पत्तों के पानी में मिलाकर लेप करना

चाहिये। २—ईषबगोल, सिरका इनको गुलाब के अर्क में औटाकर लेप करना चाहिये। ३—कनूचा के बीज, सिरका और गुलाब का लेप भी यही गुण करता है। ४—एलुवा को कासनी के पानी के साथ बराबर बढ़ती हुई मात्रा में देने से लाभ होता है। ५—त्रिफला, तुबुंद, सोंठ, कमीला इनको तिगुने गुड़ में मिलाकर माजन बनाना चाहिये। इसकी मात्रा ७ माशे है। इससे इस रोग का मवाद दूर हो जाता है। ६—आक के दूध का या सहजन की छाल का अथवा जहरकुचला तथा संखिये का लेप करना उत्तम है।

अर्बुद (रसौली)—रसौलियाँ कई प्रकार की हैं; परन्तु सादी और दुष्ट दो प्रकार की मुख्य हैं। इनमें किसी प्रकार का दर्द नहीं होता। ये त्वचा के अन्दर, अवयवों के अन्दर, अवयवों के ऊपर किसी स्थान में उत्पन्न हो जाती हैं। कोई-कोई तो इस प्रकार की होती हैं, कि काटने पर फिर निकल आती हैं। कई इस प्रकार की होती हैं, जिनके काटने से आदमी की मृत्यु निश्चित है। कई रसौलियाँ इस प्रकार की होती हैं, जिनसे मनुष्य को कोई हानि नहीं होती।

उपाय—१—अर्बुद के होने पर योग्य चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये। साधारणतः रक्त-शोधन के लिये काढ़ा या गुग्गुल आदि खाना चाहिये। सहजने का स्वरस या त्रिफला के काढ़े में मधु मिलाकर पीना उत्तम है। २—छरीला, राख, कनेर के बीज, चून, साबुन, हरताल, गुलरोगन इनका लेप करना चाहिये। यदि रसौली दिखाई दे और स्थान आज्ञा देता हो, तो उसपर सीसे का भारी टुकड़ा बाँध देना चाहिये।

श्लीपद—इस रोग में पाँव हाथी के समान हो जाता है। यह रोग मदुरा, दक्षिण-भारत में प्रायः मिलता है। जिस देश में बहुत-सा पुराना पानी भरा रहता है और सब ऋतुओं में शीतलता रहती है, उस देश में यह रोग विशेषकर होता है। यह रोग प्रायः पाँव में होता है। इसके अतिरिक्त कान, नाक, लिंग, ओष्ठ और स्त्रियों के गुप्त भागों में भी हो जाता है। इस रोग में पाँव हाथी के समान भारी हो जाता है। अनार्य-चिकित्सा में इस रोग का कारण एक कृमि माना जाता है।

उपाय—१—रोगी को आकाश-बेल का काढ़ा पिलाना चाहिये। २—सहजन की छाल के काढ़े में गो-मूत्र मिलाकर पीना चाहिये। ३—धतूरा, एरण्ड, सम्भालु, पुनर्नवा, सहजन, सरसों, इनको पीसकर लेप करना

चाहिये। ३—सरसों, सहजन, देवदार, सोंठ, इनको गो-मूत्र में पीसकर, ४—चीतामूल, देवदार, सरसों, सहजन-मूल, इनको गो-मूत्र में पीसकर लेप करना चाहिये। ५—गिलोय के काढ़े को सरसों के तेल के साथ पीना चाहिये। ६—नीम की छाल, खैर की छाल समान भाग लेकर, काढ़ा करके पीने से लाभ होता है।

शास्त्रीय औषधि—नित्यानन्द-रस।

अनुपान—शीतल जल।

मेदोरोग—कफ करनेवाले पदार्थों के सेवन करने से, शारीरिक श्रम के अभाव में, आलसी पड़े रहने से, दिन में सोने से शरीर के अन्दर वसा का भाग बढ़ने लगता है। सबसे प्रथम वसा पेट में एकत्रित होने लगती है। इससे पेट बढ़ जाता है। उसके पीछे नितम्ब, भुजा, गाल आदि भी मोटे होने लगते हैं। पेट के भारी होने से फेफड़ों को फैलने का अवकाश कम मिलता है, विशेषतः चित्त लेटने पर। लेटने से हृदय के ऊपर भी दबाव पहुँच जाता है, इससे हृदय भी निर्बल पड़ जाता है। इन व्यक्तियों को पसीना बहुत आता है, खूराक अधिक खाते हैं, चलने पर साँस चढ़ने लगती है, नींद बहुत आती है। पुरुषत्व कम हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति में विसर्प, भगन्दर, मधुमेह, अर्श, श्लीपद आदि रोग बहुत जल्दी असर करते हैं। इस व्यक्ति में जो रोग हो जाता है, वह कठिनता से हटता है।

उपाय—१—कसरत का करना सबसे प्रथम उपाय है। सुश्रुत में कहा है कि व्यायाम से अच्छी कोई वस्तु नहीं, जो शरीर की चर्बी पिघला दे। इसके साथ रूक्ष तथा वायुकारक पदार्थ खाने चाहिये। कफवर्धक पदार्थों को छोड़ देना चाहिये। जागरण, मैथुन, चलना, मुसाफिरी, जौ की रोटी, पुराना धान्य खाना उत्तम है। २—मधु को पानी में मिलाकर पीना चाहिये, मद्य का पीना उत्तम है। ३—गिलोय और त्रिफला का काढ़ा मधु के साथ पीना चाहिये। ४—अग्निमन्थ काढ़ा में शिलाजीत मिलाकर पीना चाहिये। ५—गोमूत्र के साथ हरताल पीसकर मक्खन में मिलाकर लगाने से शरीर की दुर्गन्धि नष्ट होती है। ६—वासक या बिल्व-पत्र के रस में शङ्ख-चूर्ण मिलाकर प्रलेप देने से शरीर की दुर्गन्धि दूर होती है। ७—अजवायन, सौंफ, तुलसी, किर्मानी, जीरा, प्रत्येक १४ माशे, सूखा दौना मरुवा पौने दो माशे, फिटकिरी, जरावन्द, क्रिबिया, पाषाण-भेद, प्रत्येक ९॥

रत्ती। इनको कूट-छानकर १२ रत्ती की मात्रा में देना चाहिये। ८—घुली हुई लाख ३॥ माशे सिरके के साथ देना चाहिये। रोगी को बहुत प्यासा रखना उचित है।

शास्त्रीय औषधि—अमृत-गुग्गुल, नवकार्षिक-गुग्गुल, योगराज-गुग्गुल देर तक खाना चाहिये।

कार्श्य—कई व्यक्ति प्रारम्भ ही से निर्बल होते हैं। निर्बल व्यक्ति मोटे आदमियों से अच्छे हैं। इनके नितम्ब, गाल, भुजायें पतली-पतली होती हैं। इनकी खूराक भी कम होती है। इसके लिये—

१—कफकारी भोजन करना चाहिये। दिन में सोना, मांस-रस, शीतल पानी में स्नान, तेल मलना, नर्म कपड़ों का पहनना, इत्र सूँघना, खेल कूद में भाग लेना, चिन्ता न करना है। २—मीठे बादाम की मींगी, खसखस, बुन्दक, चिरौंजी, सनोवर का फल, इन सबको महीन करके, गौ के घी और बूरे में मिलाकर संध्या-सबेरे खाना चाहिये। ३—लाल तुदरी, सफेद खसखस के बीज, प्रत्येक १७॥ माशे, हब्बुलनौलहब, सोंठ, फुल्की, दालचीनी, शकाकुल, प्रत्येक १०॥ माशे; चिरौंजी, बुज़ीदान जोज; जन्दुम हब्ब, प्रत्येक ३॥ माशे; केशर ३५ माशे, मीठे बादाम की मींगी १ सेर, बुन्दक छिले हुये आधा सेर, अखरोट ६५ माशे, चावल का चून १ सेर, थोड़ा-सा शहद लेकर १ सेर सफेद बूरा, २ सेर सफेद कन्द, १ सेर कतीरा, आधा सेर बाकला का चून, चने का चून, ६५ माशे लेना चाहिये। बूरे और कन्द की चाशनी बनाकर शेष चीजों को कूट-छानकर इसमें मिलाना चाहिये। और पीछे से केशर को गुलाबजल में घोलकर, मिलाकर गरम करे, जिससे मोहन-भोग-सा बन जाय। मात्रा १७॥ माशे। ४—असगन्ध के चूर्ण को घी या दूध के साथ खाना चाहिये। ५—शरीर पर बला-तैल या अश्वगन्धा-तैल मलना चाहिये।

पाषाण-गर्दभ (मम्स)—यह एक संक्रामक रोग है। परन्तु इस रोग में मृत्यु का भय नहीं। इस रोग के कारण हनु-सन्धि की लाल ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं। यह रोग प्रायः बच्चों में होता है। और एक बार होकर दूसरी बार बहुत कम होता है। इसके साथ थोड़ा-सा ज्वर भी होता है। कुछ घण्टों बाद या दो या तीन दिन के पीछे यह शोथ पत्थर की भाँति कठोर हो जाती है। अब दर्द भी बढ़ जाता है। रोगी को बोलने, निगलने में कष्ट होता है। त्वचा

लाल हो जाती है। इस रोग में एक पार्श्व की (कभी दोनों पार्श्वों की) ग्रन्थियाँ आक्रान्त होती हैं। रोगी की जीभ मैली रहती है। श्वास में दुर्गन्धि आती है। कई बार इस रोग की उपस्थिति में अथवा इसके अच्छा होने पर अण्ड-कोष और स्तनों में भी सूजन आजाती है।

उपाय—यदि निगरण में कठिनता हो, तो जलौका लगानी चाहिये। प्राय: गरम पानी का सेंक, बैलोडोना ग्लैसरीन का लेप पर्याप्त होता है। दर्द को कम करने के लिये पोस्त के डोडों से सेंक करना चाहिये, और रुई रखकर पट्टी बाँधनी चाहिये। सनाय या मैगनेशियम सल्फेट को अवश्य देना चाहिये, जिससे रोगी को विरेचन भली प्रकार हो जाय। रोगी को बिस्तर पर लेटे रहना चाहिये और द्रव भोजन खाना चाहिये।

रसायन और वाजीकरण

देवताओं के आदि चिकित्सक भगवान काशीपति धन्वन्तरि ने आयुर्वेद-शास्त्र के दो उद्देश्य बताये हैं—१—रोग से पीड़ित व्यक्तियों को स्वस्थ करना। २—स्वस्थ व्यक्ति जिससे रुग्ण न हों, वह स्वस्थ ही बने रहें, उन बातों की शिक्षा देना। अर्थात् आयुर्वेद-शास्त्र में बाधक (Preventive) और Curative दोनों प्रकार के इलाज हैं। इनमें से Curative चिकित्सा का वर्णन संक्षेप में हो चुका है। अब बाधक (Preventive) चिकित्सा के लिये कुछ लिखना आवश्यक है।

क्षेत्रीकरण—जिस प्रकार बीज बोने से पूर्व खेत का कर्षण करके उसे बीज के योग्य बनाया जाता है, अथवा जिस प्रकार कपड़े पर रंग चढ़ाने से पूर्व उसको धोकर साफ करना आवश्यक है, उसी प्रकार रसायन-विधि का प्रयोग करनेवाले व्यक्ति के लिये शरीर का शोधन आवश्यक है।

इसके लिये तैल-मर्दन, वमन और विरेचन का प्रयोग करना चाहिये। साधारणत: निम्न विधि से शरीर की शुद्धि हो सकती है।

रोगी भोजन में दूध, चावल, शर्करा, दलिया, खीर आदि नर्म और मीठी वस्तुओं का उपयोग करे। यथासम्भव नमक, तामसिक पदार्थों से बचे। यदि दाल लेनी भी हो, तो मूँग की दाल का उपयोग करे। उत्तम यही है कि दूध के ऊपर रहे। भोजन में परिवर्तन करने से पूर्व ३-५-७ दिन का

उपवास अपनी शक्ति के अनुसार करे। उपवास के दिनों में पानी यथेच्छ पीना चाहिये। यदि रोगी पानी पर न रह सके, तो दूध पीना चाहिये। दूध के साथ भी एनीमा लेना चाहिये। यदि टट्टी नियमपूर्वक आये, तो एनीमा लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार १५-२० दिन तक नर्म भोजनों का पथ्य पालन करके, विरेचन और वस्ति से कोष्ठ को साफ़ कर लेना चाहिये।

किस आयु में—रसायन-विधि का प्रयोग करने के लिये युवावस्था का आरम्भ या यौवन के बुझते हुये चिराग का अन्तिम समय उत्तम है। क्योंकि बालक और वृद्ध व्यक्ति दवाइयों की शक्ति को सहन नहीं कर सकते; साथ ही बुढ़ापे में शरीर परिपक्वावस्था में पहुँच चुका होता है। इसलिये जबतक शरीर में पित्त उत्तम अवस्था में रहे, तबतक इस विधि का प्रयोग करना चाहिये।

विधि—औषधि का सेवन प्रातःकाल करना चाहिये, और भोजन में सात्विक भोजन दूध, घी, चावल, मूँग, शर्करा आदि का इस्तेमाल करना चाहिये। इस विधि के पालन करने के समय, क्रोध, धूप, स्त्री-स्पर्श, दिन में सोना, रात्रि में जागना आदि बातों को सर्वथा छोड़ देना चाहिये। अपने नित्य-नैमित्तिक कार्यों का पालन भली प्रकार करना चाहिये, अपने धंधे को करते हुये शारीरिक श्रम, व्यायाम, घूमना आदि भी अवश्य करना चाहिये।

रसायन-कार्य के लिये बहुत-सी वस्तुयें पृथक्-पृथक् या एक साथ ही बरती जाती हैं। इनको बरतने के लिये धैर्य्य और मेहनत, तथा आलस्य-परित्याग की आवश्यकता होती है। रसायन विधि का लाभ रसायन-विधि समाप्त करने के पीछे दिखाई देता है। जैसे कि घोड़े या बैल को खुद खिलाने के पीछे ही उसका लाभ दिखाई देता है।

पशु पालनेवाले एक बात ध्यान में रखते हैं कि फागुन और आश्विन मास में घोड़े या बैल को दूर करके गदरी खिलाते हैं। इसको वे 'खुद देना' कहते हैं। इसको खिलाते समय वे घोड़े या बैल को किसी भी सवारी में नहीं जोतते। यह गदरी कच्चे जौ या कच्ची जवी, अथवा कच्चे चने होते हैं। इस नये और हरे घास के कारण से घोड़े या बैल को अतिसार हो जाता है, उसे ये अपनी भाषा में "छेरा लगाना" कहते हैं। इसके पीछे वे बैल को तेल या घी पिलाते हैं। इससे अतिसार बढ़ता है, और पीछे बन्द हो जाता

है। बस, उनका पशु तैय्यार होगया। अब वे इसको साल भर आराम से बाहते हैं। इस क्रिया से उस पशु के सब पुराने बाल गिर जाते हैं। उसका बदन साफ और सुथरा निकल आता है। उसपर आब आजाती है। हाथ फेरिये, जरा भी मैल आप को नज़र नहीं आयेगी। धूल भी इसके बदन पर नहीं जमती। यह पशु-बालने की अपनी रसायन-विधि है।

जिस प्रकार प्रत्येक पशु के लिये साल में दो बार यह विधि बरती जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिये दोनों आयनों के प्रारम्भ में इस विधि को बरतना चाहिये। अर्थात् दक्षिणायन के प्रारम्भ में आश्विन में, और उत्तरायण के प्रारम्भ में फाल्गुन या चैत्र में इस विधि को बरतना चाहिये। प्रकृति स्वयं चाहती है कि यह विधि बरती जाय, इसीसे वह बसन्त-ऋतु में नाना प्रकार के रोग यथा टाइफाइड, चेचक आदि को उत्पन्न करती है। इसी प्रकार शरद्-ऋतु के प्रारम्भ में मलेरिया रोग को फैलाती है। शायद इसीसे किसीने कहा है कि "रोगाणां शारदी माता"—अर्थात् रोगों की माता शरद् ऋतु है। इस लिये साल में दो बार नहीं, तो कम से कम एक बार शरद्-ऋतु में रसायन-विधि का प्रयोग करना चाहिये।

औषधियाँ

१—रसायन के लिये सबसे सरल और सस्ता उपाय बड़ी काबुली हरड़ का या पीली हरड़ के चूर्ण का सेवन करना है। यह रसायन बारह महीने बदला जा सकता है। यथा—वर्षा-ऋतु में—हरीतकी ६ माशे, नमक सैन्धव २ माशे, शरद्-ऋतु में हरीतकी ५ माशे, शर्करा ४ माशे शीतल-जल से पीना चाहिये। हेमन्त-ऋतु में हरीतकी ३ माशे, शुण्ठी २ माशे, शिशिर ऋतु में हरीतकी ३ माशे, पिप्पली २ माशे, गरम जल से पीना चाहिये। बसन्त-ऋतु में मधु के साथ, ग्रीष्म-ऋतु में गुड़ के साथ, हरीतकी खानी चाहिये।

२—दूसरी वस्तु भाँगरा है। भाँगरे के स्वरस के दूध के साथ पीना चाहिये। भाँगरा वर्षा-ऋतु में बहुत होता है, और पानी के पास मिलता है,

इससे नदी, जोहड़, पोखर आदि के किनारे मिलता है। इसका रस निकालने से बाल या हाथ काले हो जाते हैं। इसको शरद्-ऋतु में उखाड़कर रख लेना चाहिये। इसका चूर्ण गरम दूध या पानी के साथ खाना चाहिये। यह सिद्ध प्रयोग है। इसका प्रयोग करने के समय दूध विशेष-रूप में पीना चाहिये।

३—आमला—चरक में आंवले को सबसे उत्तम रसायन बताया है। जिस अवलेह को खाकर बुड्ढे च्यवन ऋषि भी जवान होगये थे, उस अवलेह में मुख्य वस्तु यह आँवला ही है। लोग पूछते हैं कि आँवले को किस प्रकार खायें? इसका एक उत्तर मेरे पास है, जिस प्रकार भी तुमसे बने, उसी रूप में खाओ, पर खाओ सही। सबसे उत्तम आँवला माघ और फागुन मास का होता है, जिसमें छिलके के ऊपर कुछ लालिमा आजाय, और स्वाद में मधुरता आजाय, कड़ुवा और कषैला रस कम हो जाय। माघ और फागुन में आँवला अपनी पूर्ण उन्नति पर पहुँच जाता है। इसके अन्दर के रस पक चुके होते हैं। इसको कच्चा-कच्चा खाना चाहिये। मुरब्बे के रूप में, चटनी में, अचार में और अवलेह में, चूर्ण के रूप में, शीत कषाय के रूप में जिस प्रकार भी बने, उस प्रकार से खाना चाहिये। आँवला और हरड़ में लोह का भाग है, इससे यह रक्त का शोधन करने के साथ रक्त में रक्ताणुओं को पुष्ट करता है। चरक में आँवले खाने का बहुत लाभ बताया है। यह प्रयोग कम से कम ४-५ मास करके देखना चाहिये।

४—प्रातःकाल गाय का दूध या रात्रि का बासी पानी उठते ही पीना चाहिये। इससे कास, स्वास, कटि-शूल, मेह, मूत्राघात, ऊपर का विकार, अर्श-शोथ आदि शान्त होते हैं।

५—असगन्ध के चूर्ण को घी में मिलाकर या दूध में पकाकर पीना चाहिये।

६—मुलहठी के चूर्ण को दूध के साथ; गिलोय के रस को मधु के साथ; शंखपुष्पी के चूर्ण या स्वरस को मधु के साथ; मण्डूकपर्णी ब्राह्मी के रस को मधु के साथ; इन चारों में से किसी एक प्रयोग का व्यवहार करना चाहिये।

७—दूध और घी को, धारोष्ण दूध को नित्य-प्रति पीना चाहिये।

८—आँवले का चूर्ण, काले तिल और भाँगरे का चूर्ण इनको दूध के साथ खाना चाहिये।

९—बिधारे के चूर्ण को शतावरी-रस की ७ भावना देकर १ तोले की मात्रा में दूध में खाना चाहिये।

१०—आमलकी-चूर्ण ८ सेर को आमलकी-स्वरस से २१ बार भावना देकर' इसमें मधु ८ सेर, घी ८ सेर और पिप्पली-चूर्ण १ सेर, शर्करा २ सेर मिलाकर मिट्टी की हाँड़ी में रख देना चाहिये। इस हाँड़ी को वर्षा-ऋतु के पीछे निकालकर सेवन करना चाहिये।

११—गिलोय, अपामार्ग, विडंग, शंखपुष्पी, वच, हरड़, कूठ, शतावरी, इनके चूर्ण को घी के साथ खाना चाहिये। इससे बुद्धि बढ़ती है।

१२—भाँगरे का चूर्ण १ भाग, तिल आधा भाग, आँवला आधा भाग, इनको शर्करा या गुड़ के साथ खाना चाहिये।

१३—उत्तम लोह-भस्म, प्रवाल-भस्म, अभ्रक-भस्म को लेकर पृथक्-पृथक् मधु के साथ खाना चाहिये।

१४—शिलाजीत को उचित विधि से सेवन करके दूध के साथ खाना चाहिये।

१५—शुद्ध किये हुये भिलावे के चूर्ण को तिल-चूर्ण के साथ गरम दूध या घी में मिलाकर खाना चाहिये।

शास्त्रीय-औषधि—च्यवन-प्राश, अभयावलेह, बसन्त-कुसुमाकर, अभ्रक, लोह-भस्म, वृहत्पूर्ण-चन्द्ररस, मकरध्वज-रसायन, नीलकण्ठ-रस।

अर्थात्—रसायन-विधि के प्रयोग करने से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। उसकी स्मृति-शक्ति और बुद्धि बढ़ती है। वह निरोगी एवं बलवान् रहता है, सदा युवा बना रहता है। उसकी इन्द्रियाँ और शरीर बलवान रहते हैं। मुख पर कान्ति रहती है।

एक बार सुकरात से पूछा गया कि कितनी बार सम्भोग किया जाना चाहिये? उसने कहा—सारी उम्र में एक बार। उससे कहा गया, यदि पुरुष न रह सके तो? उसने कहा—दो बार। उससे कहा गया, यदि इस पर भी संतोष न हो तो? उसने कहा—कफन का सामान तैयार करके जितनी बार चाहे, सम्भोग करे। ऐसे ही गृहस्थियों के लिये यह बाजीकरण-विधि लिखी है।

१—अल्प आयु में या कच्ची आयु में अस्वाभाविक उपायों से शुक्र क्षय करने से असंख्य रोगों का बीज बच्चों के अन्दर बोया जाता है। इसके पीछे जीवन-संगिनी प्राप्त करके उठती हुई जवानी के मद से पागल बनकर, इन्द्रिय-लालसा को पूर्ण करने के लिये, जो शुक्र-नाश किया जाता है, वह स्वास्थ्य का एक प्रकार से श्राद्ध करना है। वेश्याओं के समीप जाने से, या उनके दर्शन से मन का अधिक आकर्षण उनकी ओर होता है। आकर्षण से उत्तेजना होती है, और उत्तेजना से सर्वनाश होता है। इस प्रकार के अन्य उपायों से शुक्र की निर्बलता हो जाती है। सामने देखने से कोई प्रत्यक्ष रोग दिखाई नहीं देता; परन्तु रोगी प्रतिदिन घटता जाता है। उसे रात्रि में भली प्रकार नींद नहीं आती, पेट में वायु भरी रहती है, रोगी को रात्रि में स्वप्न आते हैं।

रोगी को स्वप्न-दोष हो जाता है। थोड़ी-सी उत्तेजना मिलने पर भी शिश्न के अग्रभाग पर चिकना पदार्थ आजाता है। रोगी की स्फूर्ति, कान्ति नष्ट होजाती है। गुरुजनों के सामने आँख रखकर बातचीत नहीं करता। रोगी एक विषय में मन नहीं लगा सकता। एक काम अभी पूरा नहीं होता कि दूसरा काम करने लगता है, उसे अधूरा छोड़कर तीसरा कार्य पकड़ता है। रोगी का चेहरा सदा चिन्ता-ग्रस्त रहता है। उसे सब जगह डर मालूम होता है। बाल अकाल में श्वेत होजाते हैं, बाल गिर जाते हैं। आँखों के नीचे काले दाग़ पड़ जाते हैं। अण्ड-कोष शिथिल एवं नीचे लटक जाते हैं। दृष्टि-शक्ति निर्बल हो जाती है।

जो लड़के प्रथम श्रेणी में आगे रहते हैं, यह रोग होने पर वे पीछे हट जाते हैं। किसी रोगी एक वस्तु पर श्रेणी-बद्ध बात नहीं कर सकता। स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है। कोई-कोई व्यक्ति जीवन से निराश हो जाते हैं। कइयों को मलबन्ध रहता है, और कइयों को अतिसार हो जाता है। रोगी को बवासीर, कास, क्षय, पाण्डु, हाथ-पाँव में जलन, नाक से रक्तस्राव, हृदय पर धड़कन होती है। मूत्र का रंग गँदला हो जाता है, मूत्र के साथ लार की भाँति चिकना शुक्र बाहर आता है। पीछे से शिश्न भी निर्बल हो जाता है, उसमें उत्थान नहीं होता।

२—व्यक्ति कई प्रकार के होते हैं—१—जो स्वभावत: स्त्रियों में शक्त होते हैं। दूसरे वे हैं, जो स्त्रियों में जन्म ही से अशक्त होते हैं। इसके साथ ही स्त्रियों में शक्त पुरुष भी दो प्रकार के हैं।

१—वे लोग, जो हाथी की भाँति वीर्य का रक्षा करते हैं। अर्थात् बहुत दिनों में सम्भोग करते हैं। जब सम्भोग करते हैं, तो बहुत देर में वीर्य च्युति होती है। एक बार वीर्य-च्युति होने के पीछे बहुत दिनों में इच्छा होती है। २—दूसरे व्यक्ति वे हैं, जिनका स्वभाव चिड़ियों की भाँति का होता है। अर्थात् शीघ्र इच्छा होती है, और शीघ्र ही वीर्य स्खलित हो जाता है। वीर्य के स्खलित होने के १॥ या १ घण्टे पीछे फिर इच्छा उत्पन्न हो जाती है। ये दोनों अवस्थायें स्वाभाविक हैं।

प्रथम प्रकार के व्यक्तियों के लिये भी बाजीकरण की आवश्यकता है, और दूसरे व्यक्तियों के लिये तो आवश्यकता है ही। क्योंकि यदि स्त्री का धातु जल्दी क्षरण हो जाय, तो उसे मनुष्य से पहले तृप्ति नहीं मिल सकती। इसलिये पाक में उनके लिये भी प्रयोग दिये हैं। इन व्यक्तियों के लिये शुक्र-वर्धक उपाय बरते जाते हैं। प्रायः यह देखा गया है पित्त-प्रकृतिवाले पतले व्यक्तियों का स्वभाव चिड़ियों की भाँति का होता है, और कफ एवं वात-प्रकृति-वाले व्यक्तियों का स्वभाव हाथी के भाँति का होता है। जो शुक्र का नाश बहुत करता है, उसे बाजीकरण औषधियों का सेवन करना चाहिये।

बाजीकरण औषधियों को १६ वर्ष से पूर्व और ७० वर्ष के पीछे सेवन नहीं करना चाहिये। और न इस आयु से पूर्व या पीछे सम्भोग करना चाहिये। बाजीकरण औषधियों को बरतने से पूर्व शरीर का शोधन कर लेना चाहिये।

३—तीसरा कारण यह है कि काम-शास्त्र में लिंग-भेद से स्त्री और पुरुष के भेद किये हैं। जैसे शश, अश्व, वस ये पुरुषों के और मृगी, बड़वा, एवं हस्तिनी ये स्त्रियों के तीन भेद किये हैं। यदि इनका सम्बन्ध आपस में ठीक प्रकार से हो जाय, तो उत्तम है। यदि विषम रूप में हो जाता है, तो लिंग-वर्धक उपायों का प्रयोग करना होता है। इसी प्रकार योनि-संकोचन के उपायों की ज़रूरत पड़ती है।

औषधियाँ

१—गोखरू, तालमखाना, शतावरी, कौंच के बीज, अतिबला इनके चूर्ण को रात्रि में दूध के साथ खाना चाहिये।

२—बिदारीकन्द के चूर्ण को घी, दूध और गूलर के रस के साथ सेवन करना चाहिये।

३—विदारीकन्द के चूर्ण को विदारी के स्वरस से भावना देकर मधु के साथ खाना चाहिये।

४—मुलहठी-चूर्ण २ तोले, घी और मधु के साथ मिलाकर खाना चाहिये। ऊपर से दूध पीना चाहिये।

५—इमली-चूर्ण को आँवले के रस से सात बार भावना देकर बरतना चाहिये।

६—मूसली के चूर्ण को मखाने के साथ घी और शहद में खाना चाहिये।

७—शतावरी २ तोले, दूध १ पाव, जल १ सेर, शेष १ पाव इसको सिरका के साथ मिलाकर खाना चाहिये।

८—घी और दूध को खानेवाला निरोगी व्यक्ति सदा वीर्यशाली रहता है।

९—अकरकरा, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, कस्तूरी, केशर हिंगुल शुद्ध इनको एक पोटली में बाँधकर दूध के अन्दर डालकर पकाना चाहिये। जब दूध आधा रह जाय, तो पोटली निकालकर इस दूध में मिश्री मिलाकर देना चाहिये।

१०—असली नागकेशर के चूर्ण को दूध में पकाकर पीना चाहिये।

११—संखिया, अफीम, हिंगुल, इनको वट के दूध से पीसकर गोलियाँ बना लेनी चाहिये। दूध में घी और चीनी मिलाकर उसके साथ खाना चाहिये।

१२—छुवारे की मज्जा को दूध के साथ पीना चाहिये।

१३—उटंगन की जड़ के चूर्ण को शर्करावाले दूध के साथ पीना चाहिये।

१४—सोंठ, मोच-रस, मेदा लकड़ी, अकरकरा, लोहबान, तिल, पिप्पली, मिश्री इनके चूर्ण को बराबर मिश्री मिलाकर खाना चाहिये।

१५—सोंठ, मोच-रस, लोहबान, इनके चूर्ण को दूध से अथवा मोच-रस और लोहबान को ६ रत्ती की मात्रा में दूध के साथ पीना चाहिये।

१६—कौड़िया लोहबान १२ तोले, जातिफल, लवंग, हरताल प्रत्येक चार तोले, इन सब वस्तुओं को मिलाकर, पाताल-यंत्र से तैल निकाल लेना चाहिये। इस तैल को तीन बूँद पान में रखकर खाना चाहिये। हरताल को बकरी के दूध में तीन बार भावित करना चाहिये।

१७—बादाम रोगन, कस्तूरी, केशर, जायफल, जावित्री, प्रत्येक एक-एक रत्ती लेकर शिश्न पर मलना चाहिये। और १ रत्ती की मात्रा में पान के साथ खाना चाहिये।

१८—रीछ की इन्द्रिय या कुत्ते की इन्द्रिय किसी इत्र में मिलाकर, लिंग पर मलना चाहिये। कुत्ते की इन्द्रिय को पानी में पीसकर लेप करना चाहिये। इससे स्तम्भन और लिंग-वृद्धि होती है।

१९—अकरकरा के चूर्ण को कपड़े में छानकर सिल पर पीसना चाहिये। इसको घी में मिलाकर शिश्न पर लेप करना चाहिये।

२०—अकरकरा-चूर्ण के साथ नरगिस के फूलों को मिलाकर शिश्न पर रात्रि में मलना चाहिये। इससे शिश्न में शिथिलता नहीं आती।

२१—प्रातःकाल बिना मुख धोये हुये दालचीनी को चबाकर शिश्न पर मलना चाहिये। इससे लिंग में ताकत आती है।

२२—वट के दूध के साथ अफीम एवं बादाम की मींगी को पीसकर गोली बनाकर खाने से वीर्य-स्तम्भन होता है।

२३—अकरकरा, केशर, जायफल, गाँजा इनको वट के दूध में पीसकर गोली बनाना चाहिये। गोली चने के बराबर बनाना चाहिये। ऊपर से दूध पीना चाहिये।

२४—वट के वृक्ष में गड्ढा करके, उसमें अफीम भर देना चाहिये। १५ दिन पीछे इस अफीम को निकालकर केशर, इलायची, कपूर, कस्तूरी, जायफल, स्वर्ण-भस्म इनको मिलाकर वट के दूध में चने के बराबर गोली बनानी चाहिये। इससे वीर्य-रोध होता है।

२५—अम्बर का तेल पाताल-यंत्र से निकालकर पाँव के तलुवे में लगाने से शुक्र-रोध होता है।

२६—माजू-फलों को इनके रस से या जामुन के नये पत्तों के रस से पीसकर बाँधना चाहिये। इससे शुक्र रुक जाता है।

२७—धतूरे के बीज, शुद्ध कुचला, पारा, गन्धक, जायफल इनको पान के स्वरस से पीसकर एक-एक रत्ती की गोली बनाना चाहिये। यह वीर्य-रोधक है।

२८—बथुये के बीजों को मुलहठी के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर खाने से वीर्य-रोध होता है।

२९—विदारीकन्द, गोखरू, कांच-बीज इनको मधु और घी के साथ मिलाकर खाने से शुक्र-वृद्धि होती है।

३०—दूध में भाँग और बड़ की दाड़ी डालकर प्रातःकाल हाँड़ी में पकने के लिये रख देना चाहिये और दिनभर पकने देना चाहिये। रात्रि में इसको छानकर मिश्री के साथ पीना चाहिये।

३१—प्याज के रस में शहद मिलाकर १५ से ३० दिन तक पीने से काम-दीप्ति होती है।

३२—उड़दों का घी में भूनकर, दूध के साथ पकाकर, शर्करा मिलाकर खाना चाहिये।

३३—काँच के बीज, तालमखाना-चूर्ण मधु और चीनी के साथ खाना चाहिये।

३४—उटंकन का चूर्ण, गोखरू, कौंच के बीज का चूर्ण शहद या दूध के साथ पीना चाहिये।

३५—तुलसी या सूरनकन्द को पानी के साथ पीने से वीर्य स्खलित नहीं होता।

३६—गुल-नीलोफर, श्वेत कमल, मधु और शर्करा, इनको मिलाकर नाभि पर लेप करने से वीर्य-स्तम्भन होता है।

३७—बकरी, ऊँटनी और गो-घृत; इन तीनों को मिलाकर पाँव पर लेप करने से वीर्य-स्तम्भन होता है।

३८—काला तिल, गोखरू का बीज इनको बकरी के दूध में पकाकर, शहद मिलाकर खाना चाहिये।

३९—संकल्प—चिन्तन करना सबसे उत्तम उपाय है।

४०—कपूर-टंकण, पारा समान भाग लेकर अगथिया के रस में पीसकर इन्द्रिय पर लगाना चाहिये। और ३ घण्टे तक लगे रहने देना चाहिये। पीछे धो देना चाहिये, स्त्री के पास जाना चाहिये।

४१—असगन्ध, सुहागे की खील को मक्खन और शहद में मिलाकर लगाना चाहिये।

शास्त्रीय औषधि—कामिनी-विद्रावण-रस, अश्वगन्धादि-घृत, अश्वगन्धादि-तैल, चन्द्रोदय-मकरध्वज, कामेश्वर-मोदक, मन्मथाभ्र-रस, बानरी-गुटिका, दशशाङ्क, पूर्णचन्द्र-रस, शुक्र-वल्लभ-रस, कामदेव-घृत, अनङ्ग-कुसुमाकर, भल्लातक-तैल।

योनि-संकोचन—

४२—हल्दी, दारुहल्दी, कमल-केशर, देवदार—इनको पानी में पीसकर योनि में लेप करना चाहिये।

४३—धाय के फूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, जामुन की छाल, मुलहठी इनके चूर्ण को मधु और घी में लगाना चाहिये।

४४—कमल के केशर, कमल के फूल; इनको पानी में पीसकर लेप करना चाहिये।

४५—नीम के पत्ते, हल्दी, कमल, माजूफल, धाय के फूल, जामुन की छाल, इनको समान भाग लेकर लेप करना चाहिये।

४६—पंचवल्कल, मुलहठी, चमेली के फूल; इनके कल्क से पानी पकाकर उससे योनि का प्रक्षालन करना चाहिये।

४७—कस्तूरी, जायफल, कपूर या माजू के फल, इनको मधु के साथ योनि में लेप करना चाहिये।

४८—ढाक के फल, गूलर, तिल का तैल, मधु, इनके मर्दन करने से योनि में दृढ़ता आती है।

४९—बच, कूठ, हल्दी, गुलनीलोफर, मिर्च और असगन्ध, इनका प्रलेप योनि में करना चाहिये।

एक बात—यहाँ पर बाजीकरण के प्रयोग दिये गये हैं। ये प्रयोग और प्रयोगों की भाँति व्यर्थ नहीं हैं। इनको विश्वस्त स्थानों से लेकर लिखा गया है। इनमें से बहुत प्रयोग तो तत्काल फल दिखानेवाले हैं।

पथ्यापथ्य—जो अन्न मधुर, स्निग्ध, बृंहण, पचने में भारी हैं, एवं मन को प्रसन्न करनेवाले हैं, वे सब पथ्य हैं। अत्यन्त उष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, अम्ल एवं क्षार, पत्तों का शाक, अधिक लवण नहीं खाना चाहिये।

प्रकरण दसवाँ

स्त्री-रोग-चिकित्सा

गर्भाधान—स्वस्थ स्त्री और स्वस्थ पुरुष के ऋतुकाल में संयुक्त होने से गर्भ-धृति होती है। इस गर्भ-धृति का ज्ञान किसी-किसी स्त्री को उसी समय हो जाता है, और कइयों को दो या तीन महीने में होता है। गर्भाधान से लेकर जबतक बच्चा बाहर नहीं होता, तबतक इस अवस्था को 'गर्भावस्था' कहते हैं। यह समय साधारणत: २८० दिन या ९ महीने १० दिन का होता है। कइयों में कम या अधिक हो जाता है। इसलिये हम तालिका से प्रसव या बच्चे जानने की तारीख जान सकते हैं। इस तारीख में थोड़ा अन्तर होना संभव है। जिस स्त्री को अन्तिम ऋतु जिस तारीख में आई हो, उसमें २८० दिन जोड़ने से वह दिन आजायगा। (तालिका के लिये देखिये परिशिष्ट)

पशुओं में जब गर्भकाल का समय आता है, उस समय इस इच्छा की प्रबलता के कारण वे चिल्लाना आरम्भ कर देते हैं। पक्षी भी चुलबुलाहट करने लगते हैं। पशुओं में जबतक गर्भ-धृति नहीं होती, तबतक वह साँड़ या भैंसे के आगे से नहीं हटती, और गर्भ-धृति होने पर या उसकी तृप्ति हो चुकने पर वह नर को अपने पास नहीं आने देती। इस गर्भ-धृति से साधारणत: हिसाब लगा लिया जाता है कि अमुक पशु कब बच्चा देगा। प्रत्येक पशु में यह समय भिन्न-भिन्न है। गाय में ९॥ महीने, भैंस में ११ महीने, हाथी में १ साल, इसी प्रकार सब पशुओं का भिन्न है। सिद्धान्त यह है कि गर्भ-धृति की निश्चित तिथि से प्रसव की सम्भवित तिथि सुगमता से जानी जा सकती है।

गर्भ रहने के पीछे स्त्री के शरीर और मन के अन्दर कुछ परिवर्तन आजाता है, और इन परिवर्त्तनों के आधार पर यह समझा जाता है कि यह स्त्री गर्भवती है। यह चिन्ह या परिवर्त्तन कुछ निश्चित और कुछ अनिश्चित हैं। उदाहरण के लिये—

१—गर्भाधान हो जाने पर कामेच्छा नहीं रहती, अर्थात शान्ति और तृप्ति का अनुभव होता है।

२—गर्भ-धृति होने पर आर्त्तव का आना बन्द हो जाता है।

३—प्रातःकाल उठने पर मुँह से पानी या वमन होता है, यह प्रायः दूसरे-तीसरे महीने में होता है।

४—स्तनों में वृद्धि होने लगती है, स्तनों में भारीपन होता है। चूचक के चारोंओर काली रेखा आजाती है। यह अवस्था प्रायः तीसरे महीने में होती है, कइयों में पहले भी हो जाती है।

५—शरीर में भारीपन, गुरुत्व का अनुभव होने लगता है।

६—उदर में वृद्धि होने लगती है, विशेषतः तीसरे मास में।

७—गर्भ की गतियों का अनुभव होने लगता है, प्रायः चौथे या पाँचवें महीने में।

८—गर्भ का हृदय-शब्द सुनाई देने लगता है, चौथे महीने के पश्चात्। यह शब्द तकिये के नीचे रक्खी हुई घड़ी के समान होता है।

९—स्वभाव में परिवर्त्तन, खाने के लिये विशेष अभिरुचि हो जाती है।

गर्भिणी के लिये यह सब लक्षण प्रायः तीन या चार महीने के पीछे स्पष्ट अनुभव होने लगता है। इसलिये तबसे गर्भिणी को विशेष रूप से आहार-विहार की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

गर्भिणी का आहार-विहार

आजकल अकाल प्रसव एवं शिशु-संख्या के आँकड़ों में दिन-प्रति-दिन वृद्धि हो रही है। उसके जहाँ और भी अनेक कारण हैं, वहाँ गर्भिणी-सम्बन्धी कारण मुख्य रूप से हैं। गर्भिणी के आहार--विहार का शिशु (गर्भ) पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है।

कारण—(क) गर्भ का पोषण माता के रक्त से हो रहा है। यह रक्त माता के अन्न से बनता है। अतः इस रक्त के द्वारा, माता के अन्न-द्वारा शिशु को पोषण या शक्ति मिलती है।

(ख) माता का रक्त शरीर के सब भागों में घूमता है। शिर से

पैर तक चक्कर काटकर हृदय में आता है। वहाँ से फिर गर्भाशय की ओर जाता है। इस रक्त में शरीर के विचार घुले रहते हैं।

(ग) उपनिषदों में कहा है कि मन अन्न से बनता है। अतः जैसा आहार होगा, वैसा मन होगा। और जैसा मन होगा, वैसी बुद्धि होगी।

अतः गर्भिणी के लिये आवश्यक है कि वह अपने तथा अपनी आत्मा के प्रतिबिम्ब की रक्षा के लिये आहार-विहार की ओर विशेष ध्यान दे। आहार-विहार को विशेष-रूप से नियमित करें। इसके लिये—

१—तंग वस्त्र न पहने; क्योंकि शरीर के रक्त-संचार में बाधा आ जाती है। विशेषतः कटि-प्रदेश पर तङ्ग वस्त्र के द्वारा रक्त-संचार रुक जाने से एवं उष्णिमा के बढ़ने से गर्भपात या गर्भस्राव का विशेष भय रहता है।

२—ऊँची एड़ीवाला जूता न पहने; क्योंकि इसके द्वारा विषमता आने से चलने में यदि कहीं पैर फिपला, तो निश्चय ही गर्भस्राव होता है। अथवा गर्भाशय का स्थान भ्रंश हो जाता है।

३—बहुत देर तक उत्कट आसन (कुर्सी आदि पर) न बैठे, कारण अधोभाग में रक्तस्राव की वृद्धि होने से गर्भस्राव का भय रहता है।

४—मल, मूत्र आदि का कोई भी स्वाभाविक वेग नहीं रोकना चाहिये; कारण, इससे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। उदावर्त्त, आनाह और मूत्राघात रोग हो जाते हैं।

५—बहुत मेहनत या दारुण व्यायाम नहीं करना चाहिये; क्योंकि इससे शरीर के थक जाने से रक्त की मात्रा थके अङ्गों में विशेष-रूप से बढ़ जायगी, जिससे गर्भ को पूर्ण रक्त नहीं मिलेगा। इसके कारण वह निर्बल रह जायगा। उदाहरण के लिये, एक स्त्री मस्तिष्क-श्रम करती है। इस श्रम के कारण थके हुये अंगों को पोषण देने के लिये रक्त विशेष-रूप से मस्तिष्क में जायगा, जिसके कारण गर्भाशय में रक्त की न्यूनता हो जायगी।

अथवा अति मेहनत के कारण गर्भाशय में रक्त-वृद्धि होने से गर्भ-स्राव होगा या रक्त की न्यूनता के कारण गर्भ सूख जायगा। दोनों ही अवस्थायें अवाञ्छित हैं।

६—बहुत उपवास (व्रतादि) या भूखा न रहना चाहिये ; क्योंकि इसके कारण गर्भ का पोषण घट जाता है। वह निर्बल रह जायगा।

हाँ, शरीर की रक्षा एवं स्वास्थ्य के लिये, अथवा अजीर्ण रोग के प्रतीकार में एक या आधे दिन का पूर्ण उपवास या फलाहार अथवा पानी पर रहकर उपवास किया जा सकता है।

७—बहुत भीड़ में नहीं जाना चाहिये; क्योंकि इससे गर्भपात हो जाता है।

८—डरावने दृश्य नहीं देखने चाहिये; क्योंकि गर्भपात होने के साथ पुत्र भी डरपोक उत्पन्न होता है। अतः सिनेमा, नाटक या जासूसी उपन्यास नहीं पढ़ना चाहिये।

९—अति संक्षोभी सवारी पर न बैठना चाहिये; विशेषतः पांचवें मास के बाद; क्योंकि, गर्भपात का भय रहता है। अथवा असमय ही में प्रसव हो जाता है। बैलगाड़ी, साइकिल, घोड़े की सवारी (नवें मास में रेल-यात्रा) से विशेषतः बचना चाहिये।

१०—अप्रिय वार्ता नहीं सुनना चाहिये; क्योंकि इससे मन, मस्तिष्क पर शोक, चिन्ता की झलक आती है। उसी झलक का प्रतिबिम्ब रक्त-द्वारा शिशु के मन और मस्तिष्क पर भी पहुँचता है, जो अनभिप्रेत है।

११—बहुत देर तक चित्त (पीठ के भार) नहीं लेटना चाहिये; क्योंकि इसके द्वारा पीठ की नसों पर विशेषतः त्रिकवर्ती नसों पर दबाव पड़ता है। जिस प्रकार युवाओं में पीठ के भार सोने से रात्रि में स्वप्न-दोष हो जाता है, उसी प्रकार स्त्रियों में त्रिक की नसों पर दबाव आने से मैथुनेच्छा उत्पन्न होती है, जिसके कारण उत्पादक अंगों में रक्तस्राव बढ़ जाता है और गर्भपात की सम्भावना हो जाती है।

१२—शोक, कलह, चिन्ता आदि न करना चाहिये।

१३—खूब आनन्द मनाना चाहिये; क्योंकि इससे मस्तिष्क की वृत्तियाँ खिली रहेंगी। उनमें रक्त की मात्रा बढ़कर उनकी और भी खिल आयेगी। इन खिली हुई वृत्तियों की छाप गर्भ के ऊपर भी उत्तम-रूप से पड़ेगी। शिशु भी प्रसन्न-चित्त उत्पन्न होगा।

१४—उत्तम विचार करना; क्योंकि जैसा विचार माता करेगी, वैसा ही पुत्र होगा।

१५—मैथुन न करना चाहिये (विशेषत:पाँचवें मास के बाद); क्योंकि इस क्रिया से उत्पादक अंगों का स्राव, उत्पादक अंगों में रक्त-वृद्धि हो जाती है। जिसके कारण एकदम रक्त के बढ़ने से तथा दबाव से एवं गर्भ के निर्बल होने से, इसके साथ ही मैथुन के समय रक्त-संचार में परिवर्त्तन होने से शिशु की (गर्भ की) मृत्यु हो जाती है।

मैथुन की इच्छा या क्रिया से रक्त के गुण एवं उसकी क्रिया तथा उसके संचार में भी परिवर्त्तन आजाता है। इस परिवर्त्तन का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर भी पड़ता है।

१६—दिन में बहुत नहीं सोना चाहिये। क्योंकि दिन में सोने से रात्रि को नींद देर में आती है या पूर्णरूप से नहीं आती। दिन में सोने से कफ बढ़ता है। शरीर में भारीपन आता है। और पाचन-शक्ति निर्बल होती है। स्वास्थ्य गिर जाता है।

१७—शुद्ध वायु में सदा घूमने जाना चाहिये; क्योंकि गर्भावस्था में रक्त विशेष-रूप से अशुद्ध होता है। प्रथम तो माता को केवल अपना ही अशुद्ध रक्त शुद्ध करना पड़ता था और अब गर्भ का तथा अपना दोनों का रक्त शुद्ध करना होता है। इसलिये आवश्यक है कि विशेष खुली वायु मिले। घूमने से शरीर का साधारण व्यायाम भी हो जाता है। शुद्ध वायु मिलने से फुप्फुस और हृदय को जीवन मिलता है। इससे वे अपना कार्य भली प्रकार कर सकते हैं। शुद्ध रक्त पहुँचने से गर्भ का पोषण भी सुचारु रूप से होगा।

१८—रात्रि को नहीं जागना—नींद उत्तमता से लेना; क्योंकि रात को जागने से शरीर में रुक्षता आजाती है। वायु कुपित होती है।

१९—अनन्नास और कच्चा पपैया कभी भी नहीं खाना चाहिये; क्योंकि इनसे गर्भपात एवं शिशु की आँखों में रोग उत्पन्न होता है। अनन्नास से गर्भाशय संकुचित होता है। गर्भ अन्दर ही पिचक जाता है।

२०—तैल की मालिश न करना चाहिये; क्योंकि शरीर का रक्त-स्वकुम्थ रक्त-वाहिनियों की ओर विशेष-रूप से बहने लगता है, जिससे गर्भ और गर्भाशय का पूर्ण रक्त नहीं मिलता।

२१—स्तन धोकर सदा साफ रखना चाहिये, विशेषत: सातवें मास के बाद।

२२—कभी भी पेटेन्ट दवाइयाँ नहीं बरतनी चाहिये; क्योंकि उनकी बनावट मालूम नहीं होती।

गर्भिणी और गर्भ का सम्बन्ध

१—खुले मैदान में सोनेवाली और रात्रि में घूमनेवाली गर्भिणी की प्रजा पगली हो जाती है।

२—लड़ाकू, चुगलखोर और झगड़ालू स्त्री मृगीवाली संतान उत्पन्न करती है।

३—सदा भोग में तत्पर रहनेवाली स्त्री निर्लज्ज एवं स्त्री-स्वभाववाली प्रजा उत्पन्न करती है।

४—सदा शोक-ग्रस्त गर्भिणी की संतान थोड़ी आयुवाली, निर्बल और शुष्क उत्पन्न होती है।

५—ईर्षा करनेवाली स्त्री की संतान ईर्षालु, लड़ाकू और दूसरों को दु:ख देनेवाली होती है।

६—क्रोधी स्त्रियों की सन्तान चण्ड, क्रोधी और निन्दाखोर होती है।

७—रात-दिन सोनेवाली स्त्रियों की सन्तान आलसी, मन्द-बुद्धि और मन्दाग्निवाली उत्पन्न होती है।

८—हमेशा मद्यपान करनेवाली स्त्री की सन्तान मद्य पीनेवाली और अस्थिर चित्तवाली होती है।

९—हमेशा मिठाई खानेवाली स्त्री की सन्तान प्रमेही (मधुमेही), मेदोरोगवाली और बड़े पेटवाली होती है।

१०—सदा खट्टा, अम्ल, चरपरा खानेवाली स्त्री की सन्तान रक्त-पित्त, त्वक्-रोगवाली और शीघ्र बाल सफेद होनेवाली होती है।

११—कड़ुवा, तीखा (मिर्चादि) खानेवाली स्त्री की सन्तान अल्प शुक्रवाली, कृश एवं पुत्र-शून्य उत्पन्न होती है।

१२—बहुत कषाय-रस खानेवाली की संतान मलबन्ध-रोग-ग्रस्त, बड़े पेटवाली एवं निर्बल उत्पन्न होती है।

१३—बहुत मांस-प्रिय स्त्रियों की सन्तान क्रूर, सुअर-जैसे बालवाली या रीछ के बालोंवाली, लाल आँखोंवाली, मूत्र-रोगवाली होती है।

गर्भिणी का दोहद

गर्भिणी को विचित्र प्रकार का अनुभव होता है। गर्भिणी और गर्भ का हृदय रस वाहिनियों-द्वारा बँधा हुआ होता है। इसलिये माता के भावों का असर गर्भ के ऊपर अवश्य पहुँचता है। इसलिये गर्भिणी को कभी भी नाराज नहीं करना चाहिये। जिस वस्तु के खाने, पहनने का मन चाहे, उसको वही लाकर देना चाहिये। यदि कोई इच्छा गर्भ को नुकसान करनेवाली हो (जैसे, लड्डू, खट्टा या तीखा खाने को मन चाहे), तो उसको पूरा नहीं करना चाहिये। गर्भिणी को समझा देना चाहिये कि इस प्रकार करने से गर्भ को हानि होगी। यदि इसपर भी उसकी उत्कट इच्छा बनी रहे, तो हितकारी वस्तुओं के साथ उसको वह भी थोड़ी-सी दे देनी चाहिये। गर्भिणी की प्रार्थना के अस्वीकार करने से गर्भिणी अप्रसन्न हो जाती है, इससे वायु कुपित हो जाती है। वायु के कुपित होने से गर्भ का या तो नाश हो जाता है, अथवा गर्भ विरूप जन्मता है। इसलिये गर्भिणी की इच्छाओं को पूर्ण करना चाहिये।

सगर्भावस्था के कुछ रोग

वमन—यह प्रायः सब स्त्रियों में होता है, विशेषतः जो स्त्रियाँ बहुत कमजोर होती हैं, उनको यह बहुत ही कष्टदायक होता है। साधारणतः इसकी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु कई बार रोग बढ़ने पर दवा की जरूरत पड़ जाती है। इसके लिये—

१—एरण्ड का तेल या कोई मृदु-विरेचक (हरीतकी खण्ड या गुलकन्द) लेकर पेट साफ कर लेना चाहिये, अथवा एनिमा ले लेना चाहिये।

२—बिस्तर से उठते ही गरम पानी में नीबू निचोड़कर, उसमें थोड़ा नमक या खाँड़ मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये। अथवा सोडा डालकर पीना चाहिये। बरफ का पानी भी घूँट-घूँटकर पीना उत्तम है। नितरा हुआ चूने का पानी भी वमन को बन्द कर देता है।

३—भूने हुये चने अथवा जौ का सत्तू खाना चाहिये। पका हुआ आम खाना चाहिये।

४—बरफ का टुकड़ा मुँह में रखकर चूसना चाहिये। नारियल का पानी देना उत्तम है।

५—पूर्ण विश्राम लेना चाहिये ।

६—कई बार राई की पट्टी लगाने से भी आराम हो जाता है, और साथ में शान्त औषधियाँ देनी चाहिये ।

ज्वर—गर्भिणी को ज्वर होने पर हल्का भोजन तथा विश्राम देने के साथ निम्न कषाय देना चाहिये—

१—मुलहठी, लाल चन्दन, उशीरमूल, सारिवा, पद्माख और तेजपत्र, इनका क्वाथ शर्करा और मधु के साथ देना चाहिये ।

२—चन्दन, सारिवा, लोध्र, मुनक्का, इनका क्वाथ शर्करा के साथ देना चाहिये ।

३—क्युनीन और तीव्र-विरेचक औषधि से यथासम्भव बचना चाहिये ।

पाचन-क्रिया के रोग—गर्भावस्था में प्रायः सब भागों में उत्तेजना होती है। इसलिये प्रायः खट्टे डकार, मन्दाग्नि, पेट का चढ़ना, शूल, मलबन्ध, अपचन आदि हैं। इनके लिये साधारणतः—

१—एरण्ड-तैल, कास्करा सैगरेटा लिक्विड या कॉस्करा की गोली ले लेनी चाहिये । तीव्र विरेचक औषधियाँ, जैसे, ऐलोज़-मुसब्बर अथवा मैगनेशियम सल्फास या पारे की बनावटवाली औषधियों से बचना चाहिये ।

२—हल्की, सुपच खूराक खाने को देना चाहिये । अजीर्णावस्था में भोजन नहीं करने देना चाहिये । फलों के रस या गेहूँ का दलिया, मटर आदि का शाक उत्तम है ।

३—अरुचि होने पर खट्टी वस्तुएँ, यथा, शिकञ्जबीन, नीबू आदि दिया जा सकता है । इससे भोजन में रुचि हो जाती है ।

अतिसार—गर्भवती स्त्री को यदि अतिसार या संग्रहणी हो जाय, तो एरण्ड-तैल २ ड्राम देना चाहिये, जिससे कोष्ठ की शुद्धि हो जाय । यदि इसका निश्चय हो जाय कि कोष्ठ शुद्ध है, तो ग्राही और स्तम्भक औषधि देनी चाहिये, जैसे, चूने का पानी, बिल्व का चूर्ण अथवा निम्न योग—

१—मजीठ, कूठा-छाल और लोध्र, इन तीनों को पीसकर काढ़ा करना चाहिये ।

२—आम और जामुन दोनों की छालों का काढ़ा पीने से लाभ होता है ।

३—ह्रीवेरादि क्वाथ उत्तम है।

इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि दवाइयाँ शीत, संग्राही हों, तेज और उष्ण दवाइयाँ अतिसार को तो आराम कर देंगी, परन्तु रक्त में उष्णता उत्पन्न करके शिशु को हानि पहुँचायेंगी।

लार-स्राव—कई बार किसी-किसी स्त्री के मुँह से दिन भर में १॥-२ सेर लार गिरती है। इससे वह तङ्ग आजाती है। इसके लिये साधारणतः मृदु विरेचन देने से और हल्का-सुपच भोजन करने से आराम हो जाता है। यदि इससे भी लाभ न हो, तो स्तम्भक औषधियों के गरारे करवाने चाहिये। जैसे—पंचवल्कल क्वाथ, फिटकिरी के गरारे अथवा कीकर की छाल के गरारे कराने चाहियें। रात्रि को भोजन बहुत देर से नहीं करने देना चाहिये।

पेशाब में सफेदी जाना—कई स्त्रियों में मूत्र के अन्दर धातु (एल्ब्युमन) जाने लगती है। प्रायः थोड़ी मात्रा में सब स्त्रियों को सातवें मास के पीछे जाती है। इसका कारण वृक्क के ऊपर बढ़ते हुए गर्भ का दबाव है। परन्तु जब यह अधिक मात्रा में जाने लगता है (जिसकी निशानी आँखों पर, योनि-प्रदेश पर, पाँव पर सूजन होना है), तो विष का चिन्ह होता है। इसलिये—

१—आवश्यक है कि समय-समय पर मूत्र की परीक्षा करवाते जाना चाहिये।

२—यदि थोड़ी मात्रा में हो, तो गर्भिणी को चाहिये कि मृदु विरेचक का इस्तेमाल करती रहे।

३—पानी यथेच्छ पीना चाहिये, विशेषतः जौ का सत्तू या यवोदक। स्नान गरम पानी में करना चाहिये।

४—भोजन हल्का और सुपच लेना चाहिये। दूध यथेच्छ पीना चाहिये।

शिर-दर्द—कई बार गर्भवती स्त्री को शिर-दर्द इतने जोर का होता है कि उसको नींद नहीं आती। इसके लिये भोजन की मात्रा कम करनी चाहिये। विरेचन देना चाहिये। नित्य-प्रति स्नान, हल्का व्यायाम और यथेच्छ पानी बरतना चाहिये।

भग-कण्डू—कई स्त्रियों के योनि-प्रदेश में कण्डू आरम्भ हो जाती है। इसके लिये स्थान को पूर्णतः कृमि-नाशक साबुन या घोलों से

धोना चाहिये। अथवा त्रिफला या पंचवल्कल काढ़े से साफ करना चाहिये।

दन्त-शूल—किसी समय दाँत में तीव्र दर्द उत्पन्न हो जाय, उस समय दाँत को कभी भी नहीं उखड़ना चाहिये; बल्कि किसी योग्य चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।

मिट्टी खाने की आदत—प्राय: स्त्रियों में चिकनी मिट्टी या चूल्हे की राख खाने की आदत होती है। इस मिट्टी के खाने से या अधिक खट्टी वस्तु के खाने से गर्भ और गर्भिणी दोनों को हानि होती है। इसलिये इस आदत को रोकना उत्तम है। यदि यह आदत न छूटे, तो वंशलोचन थोड़ा-सा दिया जा सकता है।

निद्रा-नाश—गर्भिणी स्त्री प्राय: नींद न आने की शिकायत करती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह दिन में जरा भी मेहनत न करके पड़ी रहती है। वह खाना अधिक खाती है, जो अपचन उत्पन्न करता है। इसके लिये भोजन सुपच, हलका रखना चाहिये। दिन में व्यायाम तथा खुली वायु में सोना, स्नान उत्तम है। मलबन्ध हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। चाय और कॉफी का उपयोग यथासम्भव कम करना चाहिये।

ऋतुस्राव—साधारणत: गर्भ-धृति होने पर ऋतु-दर्शन नहीं होता। परन्तु कई बार यह थोड़ी-थोड़ी मात्रा में ऋतुकाल के दिनों में आता रहता है। उस समय यह चूकर आता है। इसके लिये कोई विशेष औषधि की आवश्यकता नहीं होती। गर्भ-कालीन साधारण आहार-विहार का नियमित रीति से पालन करना पर्याप्त है। ऋतुकाल के दिनों में पूर्णत: आराम करना चाहिये। हल्की, सुपच खुराक लेनी चाहिये। परिश्रम से बचना चाहिये।

बहुमूत्रता—गर्भवती स्त्री को बार-बार मूत्र-प्रवाहण की इच्छा होती है, यह एक स्वाभाविक बात है। इसलिये इसकी विशेष चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

श्वेत-प्रदर—कई बार गर्भवती स्त्री की योनि से श्वेत पानी झरता है। यह रोग का चिन्ह है। इसका कारण मुख्यत: योनि-प्रदेश में विक्षोभ का होना है। यह विक्षोभ चाहे गर्भ-धृति होने से पहले का हो अथवा पीछे का हो, इसके लिये स्तम्भक औषधियों के काढ़े से योनि-प्रक्षालन करना चाहिये।

पंचवल्कल-क्वाथ में भिगोया हुआ कपड़ा योनि में रखना चाहिये। सम्भोग से बचना चाहिये।

रक्त-स्राव—यह रक्त-स्राव दो प्रकार का है—१—गर्भाशय से होनेवाला और २—गर्भाशय के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में; जैसे—नाक, मुख आदि से।

गर्भाशय से होनेवाले रक्त-स्राव—यदि यह अधिक मात्रा में हो, तो भयानक है। उस समय उचित है कि किसी योग्य धात्री या चिकित्सक की सलाह ली जाय। साधारणत: रक्त-स्राव को रोकने के लिये—

१—पूर्ण विश्राम करना चाहिये, बिस्तर के पायंत ज़रा ऊँचे कर देने चाहिये। योनि और योनि-प्रदेश में भीगा हुआ शीतल कपड़ा रखना चाहिये। खाने के लिये द्रव-भोजन के सिवा और कुछ नहीं देना चाहिये।

२—मुलहठी, काकोली, शतावरी, देवदारु, मजीठ, सारिवा, गोखरू, पद्माख आदि प्राप्य शीत वस्तुओं का कषाय देना चाहिये।

३—कबूतर की विष्ठा को चावलों के धोवन के साथ देना चाहिये।

४—पेड़ू पर कर्दम या कुम्हार की चिकनी मिट्टी का लेप करना चाहिये।

नाक आदि से यदि रक्त-स्राव हो, तो शीत उपचार करना चाहिये। भोजन द्रव करना चाहिये।

गर्भिणी के सेवन करने योग्य गर्भस्थापन-औषधियाँ—गिलोय, ब्राह्मी, विदारी, दूर्वा, आँवला, मुलहठी, लक्ष्मणी, नागकेशर आदि। इनको दूध में उबालकर पीना चाहिये, अथवा इनसे बनाया हुआ घी थोड़ा खाना चाहिये। इससे गर्भिणी और गर्भ दोनों का पोषण होता है।

नवम मास में ध्यान रखने योग्य बातें—

१—आँवला, मुलहठी आदि मधुर और वातहर औषधियों से बने तैल में उत्तम रुई का फाहा भिगोकर योनि में रखना चाहिये। इससे योनि-मार्ग और गर्भ-स्थान चिकना रहता है, वायु का अनुलोमन होता है। प्रसव-काल में कष्ट नहीं होता।

२—मल और मूत्र में कब्जियत नहीं रहने देना चाहिये। एरण्ड-तैल

लेते रहना चाहिये। प्रसव के दिन एरण्ड-तैल लेकर बिस्तर पर लेट जाना चाहिये।

३—स्तनों के चूचकों को धोकर साफ रखना चाहिये।

४—अनुभवी और वृद्ध स्त्रियों के पास बैठना चाहिये। उनसे बातें करना चाहिये।

५—पर्यटन (घूमना-फिरना) नहीं करना चाहिये।

६—झूठी दर्द उठने पर एकदम चिल्लाना नहीं चाहिये।

प्रसव

प्रसव—उस अवस्था का नाम है, जबकि शिशु गर्भाशय से बाहर आकर अपना जीवन स्वतन्त्र रूप से व्यतीत करने लगता है। यदि छठे मास से पूर्व शिशु बाहर आजाता है, तो इसका नाम गर्भस्राव या 'मिसकैरेज' है। और यदि पूरे मास तक गर्भ बाहर हो जाता है, तो उसको गर्भपात कहते हैं। यदि ६ से ९ मास के बीच में बाहर आजाता है, तो इसका नाम पूर्व-कालीन प्रसव है। प्रसव को साधारणतः दो भागों में विभक्त कर रक्खा है।

(१) स्वाभाविक प्रसव—जिसमें गर्भिणी को किसी प्रकार की विशेष पीड़ा नहीं होती, चूँकि यह एक स्वाभाविक क्रिया है, जिस प्रकार मलमूत्र का त्याग करना।

(२) अस्वाभाविक प्रसव—जिसमें कठिनता से तथा अन्य बाह्य-साधनों के द्वारा प्रसव कराया जाय।

प्रसूतिका-गृह—अपने देश में प्रसूतिका-गृह सबसे अन्धकारमय और मैला घर चुना जाता है। सर्दियों में उसमें कोयलों की धधकती अंगीठी भी रक्खी जाती है। सारा गन्दा सामान इकट्ठा किया जाता है। यह सब अवस्थायें माता तथा नवजात शिशु के लिये हानिकारक सिद्ध होती हैं। साधारणतः इस कार्य के लिये घर बड़ा प्रकाश-युक्त और स्वच्छ वायुवाला चुनना चाहिये। आवश्यक और उपयोगी सामान के सिवा सब सामान बाहर कर देना चाहिये। घर का दरवाजा पूर्व या उत्तर दिशा में रखना

चाहिये। घर इस प्रकार का होना चाहिये कि प्रत्येक ऋतु में सुखकर हो सके। सब आवश्यक सामग्री उसमें रखनी चाहिये।

सूतिका-गृह में तैयार रखने योग्य वस्तुयें—

१—बिस्तर के लिये दो-तीन वाटर प्रूफ (जो पानी पड़ने से गीले न हो जायँ) रखना चाहिये। यदि इस प्रकार का बिस्तर न मिले, तो नरम, कोमल वस्त्र, नया गद्दा, कम्बल, श्वेत चद्दर रखना चाहिये। मैला, दुर्गन्धित वस्त्र बिलकुल वहाँ पर नहीं आने देना चाहिये।

२—दो चौड़ी, लम्बी पट्टियाँ, पेड़ू और पेट पर बाँधने के लिये।

३—दो चार अँगौछे।

४—शुद्ध रुई किसी जन्तुघ्न घोल में उबाली हुई।

५—उत्तम धारवाली कैंची।

६—हाथ आदि धोने के लिये साबुन।

७—पानी की चिलमची, डोल, ताम्बलोट आदि।

८—लाइजोल आदि कृमिघ्न औषधियाँ।

९—सुख-प्रसवकारक औषधियाँ, जैसे—साँप की केंचुल, बछनाग, एरण्ड-पत्र आदि।

१०—वातघ्न-तैल, जैसे—बला-तैल, प्रसारणी तैल आदि।

११—द्राक्षासव, कुण्डी, एरिपकाक आदि, देवदार्व्यादि क्वाथ आदि औषधियाँ।

१२—पलँग।

१३—दो-चार पत्थर।

बच्चे के लिये तैयार रखने योग्य वस्तुयें—

१—दो, तीन, चार गरम फलालैन के कपड़े।

२—छोटा-सा पलँग और उसकी गद्दी।

३—बच्चों की आँख धोने के लिये बहुत ही हल्का बोरिक लोशन और आधा कास्टिक लोशन।

४—शुद्ध रुई आँखों को धोने के लिये।

५—कृमिघ्न वस्तुओं में उबाला हुआ सूत का धागा नाभि बाँधने के लिये।

प्रसव के लक्षण—

१—प्रसव होने से दो-तीन दिन पूर्व पेट में हल्कापन मालूम होता है। उदर नीचे की ओर, सामने उतर आता है, मूत्र-प्रवाहण की इच्छा बार-बार होती है।

२—योनि में चिकना स्राव आने लगता है, जिससे योनि गीली रहती है।

३—उल्टी अथवा खाली उबकाई आती है।

४—उदर, हृदय, वंक्षण, वस्ति में दर्द होता है।

बिस्तर—प्रसवकालीन लक्षण उपस्थित होने पर बिस्तर तैयार करना चाहिये। एक कठोर गद्दा बिछाकर, इसके ऊपर श्वेत चद्दर बिछा देना चाहिये। चद्दर के ऊपर चार-पाँच तहें करके कम्बल बिछा देना चाहिये। इसके ऊपर फिर चद्दर बिछा देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो कम्बल के नीचे वाटर प्रूफ कपड़ा बिछाना चाहिये। प्रसव होने के पीछे कम्बल आदि वस्तुयें हटाने पर बिस्तर सूखा हुआ मिल सकता है। एक लम्बा अँगोछा पायंत पर बाँध देना चाहिये। इस अँगोछे के सहारे प्रसूता को आराम मिल जायगा। इसको पकड़कर वह प्रवाहण के लिये जोर लगा सकेगी, दर्दों के समय इसको पकड़कर विश्राम ले सकेगी।

गर्भिणी के वस्त्र—इस समय इस प्रकार के वस्त्र होने चाहियें, जो सुगमता से हटाये जा सकें। उत्तम यही है कि कोई वस्त्र शरीर पर न रक्खा जाय, सिवा एक चद्दर के। रात की पोशाक भी काम दे सकती है, जबकि इसको कोष्ठ पर लपेट दिया जाय, जिससे खराब न हो।

यदि छः घण्टों के बीच में कोई मल-त्याग न हुआ हो, तो एनिमा दे देना चाहिये। उत्तम है कि प्रसव के दिन एरण्ड-तैल दे दिया जाय। आँतों के स्वच्छ होने से गर्भाशय की क्रिया बहुत सरल हो जाती है।

प्रसव का प्रारम्भ दर्दों से प्रारम्भ होता है, जो उदर से आरम्भ होकर कटि, नितम्ब, वंक्षण और योनि में आने लगता है। इस समय योनि से पानी भी आने लगता है। इस समय गर्भिणी को चाहिये कि वह बैठ जाय, या घूमना आरम्भ करे, जिससे प्रसव में सहायता पहुँचे। यदि जरूरत हो, तो मल और मूत्र का त्याग कर लेना चाहिये। ज्यों-ज्यों दर्द का वेग बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों दर्द के बीच का अन्तर कम होता जायगा।

स्थिति—प्रसव करने के समय किस स्थिति में रहना चाहिये, इसके लिये मत-भेद है। फ्रांस में स्त्रियाँ चित्त लेटकर बच्चा जनती हैं। किसी देश में बैठकर जनती हैं, और किसी देश में घुटनों के ऊपर हाथों का ज़ोर देकर, आसन से बैठकर जनती हैं। किसी देश में वाम-पार्श्व में लेटकर पाँव को पेट पर मोड़कर, जंघाओं में तकिया रखकर जनती हैं, और कोई दाहिने पार्श्व में लेटकर जनती हैं।

प्रसव-क्रिया—सम्पूर्ण प्रसव-क्रिया को तीन भागों में विभक्त कर रक्खा है। जैसे—

१—दर्द आरम्भ होने से लेकर गर्भाशय के अन्तः-मुख के खुलने तक।

२—गर्भाशय के अन्तः-मुख के खुलने से लेकर शिशु के बाहर आने तक।

३—शिशु के बाहर आने से लेकर कमल के गिरने तक।

प्रथमावस्था—इस अवस्था में प्रायः झूठा दर्द उत्पन्न होता है, अथवा दर्द इस प्रकार का होता है, जो ज़रा मन को दृढ़ता से सहा जा सकता है। इसलिये इस अवस्था में बिस्तर पर न लेटकर घूमना-फिरना चाहिये। जब दर्द बढ़ने लगे, तब गर्भिणी को चाहिये कि वाम-पार्श्व पर बिस्तर के किनारे पर इस प्रकार से लेटे कि उसके नितम्ब बिस्तर के किनारे पर आजाय। घुटने पेट पर मुड़ जायँ, दोनों घुटनों में तकिया दबा लेना चाहिये। अथवा पीठ के भार लेटकर दोनों घुटनों को पेट पर मोड़ लेना चाहिये। जब तीव्र दर्द आरम्भ हो जाय, तब गर्भिणी को चाहिये कि वह श्वास को रोक ले, और पाँवों को पायंत पर बँधे तख्ते के साथ या पायंत की ओर बैठे मनुष्य की ओर तान दे, और हाथों से पायंत पर बँधे अँगौछे को खींचना चाहिये। इस तरह करने से मांस-पेशियों को सहायता पहुँचेगी।

यदि गर्भाशय का अन्तः-मुख खुल जाय और कलायें न फटें, तो धात्री को चाहिये कि उनको जन्तुघ्न कैंची से फाड़ दे, जिससे गर्भोदक बह जाय। कई बार बच्चा इस जरायु में लिपटा हुआ ही बाहर आता है। उस समय प्रसव कठिन और दुःखदायी होता है। जब स्वाभाविक दर्द उठ रहा हो, तभी गर्भिणी को बल-प्रयोग (कींचना) करना चाहिये।

द्वितीयावस्था—कलाओं के फटने पर और गर्भोदक के बाहर

आने से दर्द कुछ समय के लिये रुक-सा जाता है, परन्तु फिर थोड़े समय में ज़ोर से होने लगता है। इस बार के दर्द का वेग बहुत तीव्र होता जाता है और समय घटता जाता है। अन्त में एक तीव्र आह-भरी वेदना के साथ गर्भ का शिर योनि-मुख में आजाता है। इस समय फिर दर्द रुक जाता है, जिससे गर्भिणी को क्षणिक विश्राम मिल जाता है। इसके पश्चात् फिर दर्द आरम्भ होता है, और शिर योनि-मुख से निकलकर सीवन की ओर आजाता है। शिर के पीछे स्कन्ध और धड़ तथा अन्त में पाँव निकल आते हैं। इस समय हाथ रखकर सीवन, गुदा और योनि के बीच के स्थान को बचाना चाहिये। प्राय: १०० प्रसवों में से ९५ प्रसवों में शिर प्रथम आता है। इसका मुख्य कारण इसका गुरुत्व है।

तीसरी अवस्था—गर्भ के आने के पीछे दर्द रुक जाता है। गर्भाशय नीचे की ओर संकुचित होने लगता है। इस संकोच के कारण गर्भाशय में लगा हुआ कमल पृथक् हो जाता है, जो एक तीव्र संकोच के कारण गर्भाशय से बाहर फेंक दिया जाता है। साधारणत: यह क्रिया बच्चे के बाहर आने के १० से २० मिनट के बीच में बाहर आजाती है। कई बार देरी भी हो जाती है। यदि देरी हो जाय, तो इसको खींचना नहीं चाहिये। बल्कि—

१—अरगट लिक्विड १५ बूँद, टिंचर ओपाई ३ बूँद के साथ देना चाहिये।

२—साँप की केंचुल का धुँवा योनि में देना चाहिये।

३—बछनाग हाथ, पाँव, पेड़ू और योनि पर लगाना चाहिये।

४—गले में अँगुली से खारिश करनी चाहिये।

५—गर्भाशय को हाथ से पेड़ू की ओर दबाना चाहिये।

नाल का काटना—जबतक नाल में धड़कन दीखती रहे, तबतक उसको नहीं बाँधना चाहिये। धड़कन बन्द होने पर नाभि से ३ अंगुल ऊपर एक बन्द लगाना चाहिये, और दूसरा बन्द नाभि से १॥ अंगुल ऊपर। इन दोनों के बीच में से नाभि को तेज़ चाकू से काट देना चाहिये। यदि नाल ठीक प्रकार से काटी जायगी, तो किसी प्रकार का रक्त-स्राव नहीं होगा।

प्रसव-काल में धात्री का कर्तव्य—सबसे प्रथम उसका कर्त्तव्य

है कि सीवन की रक्षा करे। दूसरा यह कि शिशु उत्पन्न होने पर उसके श्वास, प्रश्वास का ध्यान रक्खे। जिस समय शिशु उत्पन्न होता है, वह रोता है। रोने से उसके फेफड़े काम करने लगते हैं। उसका पहला खास काम अन्तः-श्वास होता है। यदि उसका मुँह प्रथम साफ़ नहीं किया जायगा,

[illegible]

रुई के फाहे से साफ़ कर देना चाहिये। तीसरा कार्य शिशु के प्रसव के पीछे गर्भाशय की परीक्षा है। जबतक गर्भाशय पेड़ू में आकर एक कठोर गेंद की भाँति अनुभव न हो, तबतक उसको अपने हाथों के साधारण दबाव से दबाये रखना चाहिये। यदि गर्भाशय संकुचित नहीं होगा, तो तीव्र रक्त-स्राव होने का भय है। चतुर्थ काम नाल का छेदन करना है।

प्रसव-क्रिया के समय—चाय, दूध, ठण्डा या गरम पानी दिया जा सकता है। किसी भी प्रकार का ठोस भोजन हानिकारक होता है। यदि दर्द के समय गर्भिणी सो जाय, तो उसको जगाना अच्छा नहीं।

साधारणतः प्रसव में ६ से १२ घण्टे लगते हैं; परन्तु प्रथम बार गर्भ-धारण करनेवाली स्त्रियों में बहुत समय लग जाता है। कई बार प्रसव-क्रिया झूठे दर्दों के कारण कई दिन और कई घण्टे ले लेती है। इस प्रकार का दर्द पेट में मालूम होता है, पीठ में नहीं। झूठे दर्द प्रायः आँतों के विक्षोभ से होते हैं, जो एरण्ड-तैल या मृदु विरेचन से सुगमता से हटाये जा सकते हैं।

प्रसूता की देख-भाल—१—बच्चा जन्मने के पीछे माँ की देख-भाल विशेष-रूप से करने की आवश्यकता है। उसे पूर्ण विश्राम देना चाहिये। जन्मने के पीछे दो-चार घण्टे बिना हिले-जुले पार्श्व के भार सोते रहना चाहिये। प्रथम दो-तीन दिन तक विशेष आराम की आवश्यकता है।

२—प्रसूति के पीछे योनि से से १०-१२ दिन तक रक्त तथा अन्य प्रवाही पदार्थ बाहर आता रहता है। यदि पूर्णतः स्वच्छता का ध्यान न रक्खा गया, तो इसमें से बहुत दुर्गन्धि आती है। इसमें दुर्गन्धि का होना इस बात का चिन्ह है कि प्रसूता भय से खाली नहीं है। जन्तु-नाशक घोल में भिगी हुई रुई का फाहा योनि में रखना चाहिये और समय-समय पर बदलते रहना चाहिये।

३—पेट के ऊपर तैयार रक्खी हुई पट्टियाँ बाँध देनी चाहिये, जिससे

वायु कुपित होकर पेट को फुला न दे। अपने देश में पेट पर पट्टी बाँधने की प्रथा नहीं; परन्तु चलानी चाहिये।

४—प्रसव के पीछे साधारणतः दो-एक दिन प्रसूता को मल-त्याग नहीं होता। इसके लिये तीसरे या चौथे दिन एरण्ड-तैल देना चाहिये, जिससे पेट हलका हो जाय।

५—शरीर पर वातघ्न तैल का मर्दन करना चाहिये। भूख लगी हो, तो दूध में पंचकोल (सोंठ, मिर्च, पिप्पली, पिप्पली-मूल, चित्रक) मिलाकर पीना चाहिये, अथवा जौ की दलिया या अन्य सुपच वस्तु, पुष्टिकारक भोजन देना चाहिये।

६—खट्टा या भारी तथा वायुकारक भोजन नहीं देना चाहिये।

७—गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी अथवा सुवा का पानी पीना चाहिये। सुवा का उपयोग खाने में, पीने में, धूनी देने में विशेष-रूप से करना चाहिये।

८—प्रसूता को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। पति या अन्य आवश्यक आदमियों के सिवा और किसीको ५-६ दिन तक घर में नहीं जाने देना चाहिये।

९—यदि प्रसूता थक गई हो, तो द्राक्षासव, चाय आदि देकर उसको सुला देना चाहिये।

१०—प्रसव के ६ घंटे पीछे तक मूत्र-प्रवाहण होना चाहिये, और यदि न हो, तो पेडू पर सेंक करना चाहिये। यवक्षार को गरम पानी से देना उत्तम है।

११—साधारणतः प्रसव के ३६ या ४८ घण्टे के पश्चात् मलत्याग हो जाता है। यदि न हो, तो एरंड-तैल या सनाय की चाय देना चाहिये। यदि आँतों का निचला भाग अवरुद्ध हो, तो एनिमा देना चाहिये। और यदि माता बच्चे को दूध न पिलाती हो, तो विरेचन दिया जा सकता है।

१२—जबतक स्तनों में दूध न आये और ज्वर का समय बीत न जाय, तबतक माता को दूध या चाय देना चाहिये। इसके पीछे हलकी, शक्ति-वर्द्धक खुराक देनी चाहिये। जैसे—जौ का दलिया।

१३—स्राव की ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिये। साधारणतः प्रसव के समाप्त होने के आध घण्टे के पीछे तक भी स्राव होता है।

बिस्तर से उठते समय या मूत्र-प्रवाहण के समय यह बढ़ जाता है। जबतक स्राव या दर्द बहुत न हो, किसी दवा की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकतानुसार 'क्लोरल हाईड्रेट' को दे सकते हैं। प्रथम इसका रंग थोड़ा या बहुत लाल होता है, फिर पतला और पानी-जैसा; फिर रंग बदलकर हरा-पीला-सा हो जाता है, और अन्त में गँदले पानी की भाँति होकर बन्द हो जाता है। कइयों में थोड़े दिनों में बन्द हो जाता है, और निर्बल स्त्रियों में महीने तक चालू रहता है। योनि-मार्ग को दोनों समय साफ करना चाहिये। गर्भाशय को धोना नहीं चाहिये।

१४—माता को बारह दिन तक बिस्तर पर रहना चाहिये। उसके खराब कपड़ों को बदल देना चाहिये, जिनमें गर्भाशय के रुग्ण होने की सम्भावना हो। उसको एक मास तक बिस्तर पर रहना चाहिये।

१५—उसकी छाती का वस्त्र इस प्रकार का होना चाहिये, जो छाती और स्तनों को दबायें नहीं।

सुख-प्रसव करने के कुछ उपाय—

१—पिप्पली, बच, इनको जल के साथ पीसकर एरण्ड-तैल में मिलाकर नाभि पर लेप करने से सुख-पूर्वक प्रसव होता है।

२—बिजौरा नीबू की जड़, मुलहठी, इनको मधु के साथ पीसकर घी के साथ लेने से सुख-पूर्वक प्रसव होता है।

३—केश-वेष्ठित अँगुली से ग्रीवा के अन्दर घर्षण करना चाहिये।

४—पाठा, लाँगली, वासक, अपामार्ग इनमें से किसीकी जड़ पेषण करके योनि, भग पर लेप करना चाहिये।

५—वासक-मूल पेषण करके नाभि, वस्ति और योनि पर लेप करके, काँजी के साथ गृहधूम खाने से सुख-प्रसव होता है।

६—गर्भिणी के सिर पर स्नुही का दूध लगाने से मृत शिशु बाहर आजाता है।

७—कड़वी तुम्बी, साँप की केंचुल, सरसों इनको कटु तैल में मिलाकर धुवाँ देने से कमल बाहर आजाता है।

अस्वाभाविक प्रसव—

१—प्रसव का लम्बा और कठिन होना—यह कमजोर औरतों

में होता है, दर्द मन्द रहता है, अथवा पानी आने के पीछे मन्द पड़ जाता है। यदि चार घण्टे तक कोई भी दर्द न हो, तो चिकित्सक को बुलाना चाहिये। इस बीच में विश्राम और नींद लाने का यत्न करना चाहिये, पौष्टिक भोजन देना चाहिये।

२—गले में चारोंओर नाल का आना—यह प्रायः नहीं मिलता, प्रायः १२ केसों में १ बार देखने में आता है। जब यह होता है, तब ग्रीवा लम्बी होती है। ज़रा-से खिंचाव से ढीला करके इसमें से उसके कन्धे निकाल देने चाहियें। यदि नाल लम्बी हो, तो इसको बच्चे के सिर पर से फिसला देना चाहिये।

३—नितम्ब के भार उतरना—शिर न आकर कई बार नितम्ब नीचे आता है। यह प्रायः ६० केसों में १ होता है। इसका कारण गर्भाशय, वस्ति-गट्टर या गर्भ का विकार है, जिससे उसका सिर नीचे नहीं आता। उदाहरण के लिये, शिर का बड़ा होना, वस्ति का उथला या चौड़ा होना, गर्भोदक का अधिक होना, जिससे शिशु इसमें तैरता रहता है, और सिर ठीक तरह नहीं बैठ सकता।

चूँकि नितम्ब वस्ति-गट्टर के निचले भाग में उतने ठीक नहीं बैठते, जितना शिर, इसलिये कलायें प्रायः पहले फट जाती हैं और गर्भाशय का अन्तः-मुख पीछे खुलता है। नितम्ब आने की परीक्षा सुगमता से की जा सकती है। कलाओं के फटने से मल भी आता दिखाई पड़ सकता है। और उदर-परीक्षा से गर्भाशय के ऊपरी भाग में नितम्ब न मिलकर सिर का अनुभव होता है। सिर और नितम्ब में इतना अन्तर रहता है कि धड़ से ग्रीवा के द्वारा पृथक् किया जाता है। और नितम्ब में इस प्रकार का कोई भेद नहीं मिलता।

पाँव का अवतरण—यह प्रायः नितम्बोदक में होता है। एक या दोनों पाँव एक साथ पहले निकल आते हैं। यह प्रायः १०० प्रसवों में १ बार होता है। यह उदयन माता के लिये सुरक्षित हो सकता है, परन्तु बच्चों के लिये नहीं, चूँकि इसमें नाल के ऊपर अवश्य थोड़ा या बहुत दबाव आता है। इस अवस्था में शीघ्र प्रसव कराने का कभी भी यत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि नितम्बों के द्वारा भग का विस्तार हो रहा होता है, जिससे सिर के निकलने में आराम रहता है। नितम्ब के निकलने के पीछे नाल की परीक्षा करनी

चाहिये। यदि नाल में स्पन्दन बन्द होगया हो, तो दर्द के समय स्कन्धों को खींचकर बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये। पाँव के अँगूठों को, माता की पीठ को ओर घुमा देने से शिर के निकलने में बहुत सुगमता हो जाती है और जब नितम्ब बाहर आजायँ, यदि इस समय अँगूठे सामने की ओर घुमा दिये जायें और सहायक देनों हाथों से नितम्बों को पकड़कर दूसरे दर्द के वेग में एक चक्कर दे दे, तो सुगमता से सब शरीर बाहर हो जाता है। यदि नाल में धड़कन हो, तो स्कन्धों को शीघ्र निकालने का यत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि धड़कन न प्रतीत हो, तो स्कन्धों को खींचकर शिर शीघ्र बाहर निकाल लेना चाहिये। जब शिर निकल आये, तब यदि नाल में स्पन्दन हो, तो उसे कुछ मिनटों तक माता से अलग नहीं करना चाहिये, जबतक कि वह चिल्लाये नहीं।

मुख का उदयन—शिर के उदयन को अपेक्षा कई बार मुख पहले निकल आता है। जब यह होता है, तब प्रसव लम्बा और कठिन हो जाता है। इसमें बच्चे को कम तकलीफ़ होती है, परन्तु उसके मुँह का आकार बदल जाता है, चेहरा सूज जाता है। इस प्रसव में हस्तक्षेप करने की ज़रूरत नहीं। शान्ति से इस बात की प्रतीक्षा करनी चाहिये।

हाथ का अवतरण—हाथ, कोहनी, स्कन्ध का अवतरण २३० प्रसवों में एक होता है। इस समय चिकित्सक की सहायता आवश्यक है।

युगल-प्रसव—यह ७० प्रसवों में एक होता है। उदयन प्रायः उल्टा होता है। यदि एक शिर के बल निकलता है, तो दूसरा नितम्ब के बल। इसी प्रकार यदि प्रथम प्रसव नितम्ब के रूप में होता है, तो दूसरा शिर के भार। एक बच्चे के निकलने पर दूसरे बच्चे की उपस्थिति सुगमता से जानी जा सकती है, क्योंकि गर्भाशय पूरा संकुचित नहीं होता। साधारणतः एक प्रसव के पीछे दूसरा बच्चा स्वयं सुगमता से बाहर आजाता है। कई बार कई घण्टे लग जाते हैं। इस अवस्था में गर्भिणी को चाहिये कि आराम करे और ठण्डी चाय या जौ का सत्तू पीना चाहिये। दूसरा प्रसव पहले प्रसव की अपेक्षा शीघ्र होता है। दूसरे बच्चे के प्रसव के पीछे तथा कमल निकलने के पीछे गर्भाशय संकोच की ओर ध्यान देना चाहिये। जबतक गर्भाशय कठोर गेंद जैसा अनुभव न हो, तबतक हाथ से दबाना चाहिये। और फिर पट्टी बाँध देनी चाहिये।

रक्त-स्राव—रक्त-स्राव प्रसव के पहले या पीछे हो सकता है। प्रसव के पहले जो रक्त-स्राव होता है, उसका मुख्य कारण यह है कि कमल गर्भाशय के मुख पर स्थित होता है। जब गर्भाशय फैलता है, तो कमल से रक्त-स्राव निकलता है। यह प्राय: ६ मास से पीछे होता है, और अधिकतर ८ वें से ९ वें मास में होता है। सब प्रकार के रक्त-स्रावों में गर्भिणी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। उसका कमरा हवादार होना चाहिये, उसका भोजन द्रव तथा शक्ति-वर्धक होना चाहिये। योनि-प्रदेश पर शीत परिसेक या पंच-वल्कल क्वाथ का परिसेक करना चाहिये। जब रक्त-स्राव अन्तिम मास में हो, तो चिकित्सक की सम्मति लेनी चाहिये।

प्रसव के पीछे जो रक्त-स्राव होता है, वह कमल के निकलने से पहले या पीछे होता है। यह प्रसव के कुछ घण्टे पीछे या कई दिन पीछे होता है। जबकि रक्तस्राव प्रसव के तुरन्त पीछे हो, तब इसका कारण गर्भाशय का मन्द संकोच है। कमल के निकलने के पीछे रक्त-स्राव का होना स्वाभाविक है। इस रक्त-स्राव से गर्भिणी को किसी प्रकार की कमजोरी नहीं आती। इस रक्त-स्राव की मात्रा ८ से १० औन्स होती है। यदि इस राशि से अधिक रक्त-स्राव हो, तो गर्भिणी मूर्च्छित हो जाती है। उसका शरीर पीला और ठण्डा हो जाता है। श्वास-काठिन्य आजाता है। गर्भाशय नर्म होता है। उसको पकड़कर दबाना चाहिये। आँतों के निचले भाग पर दबाव देने से गर्भाशय पर भी दबाव पड़ जाता है। ठण्डे पानी में भीगा हुआ वस्त्र भग-प्रदेश पर रखना चाहिये। बर्फ या ठण्डा पानी पीने को देना चाहिये। बच्चे को दूध पिलाना चाहिये। २ या ३ फीट की ऊँचाई से आँतों पर ठण्डा पानी गिराना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो ठण्डे पानी की पिचकारी योनि-मार्ग में लगाना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो २० ग्रेन एपिकेथाकना २० औन्स पानी के साथ देना चाहिये। किसी प्रकार की उत्तेजक औषधि नहीं देना चाहिये। रोगी को सीधा खड़ा नहीं करना चाहिये। लिक्विड एक्सट्रैक्ट ऑफ आर्ट १ ड्राम मात्रा में प्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

जब रक्त-स्राव प्रसव के कुछ घण्टे या दिनों पीछे हो तो यह प्राय: कमल के कुछ भाग के अन्दर रहने से या रक्त का थक्का जम जाने से; जिससे पूर्ण संकोच नहीं होता अथवा भय के कारण होता है। इसके लिये शीत परिसेक तथा शीत पानी की वस्ति करनी चाहिये।

आक्षेप—प्रसव के पहले या पीछे आक्षेप होते हैं। सब कपड़े ढीले कर देने चाहिये। रोगी को ताजी, शुद्ध वायु पहुँचानी चाहिये। पानी के छींटे मुख पर छिड़कना चाहिये। दाँत कट न जायँ, इसलिये मुँह में एक नर्म लकड़ी फँसा देना चाहिये। यदि सिर गर्म हो, तो माथे पर ठंढा पानी रखना चाहिये।

सीवन का फटना—यह प्रायः प्रथम प्रसव में होता है। सिर के निकलते समय हाथ का सहारा देकर इसको बचाना चाहिये। यदि यह थोड़ा विदीर्ण हुआ होगा, तो स्वयं रोहण हो जायगा। केवल स्वच्छता ही का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि विदीर्णता बहुत अधिक हो, तो गर्भिणी को बिस्तर पर रखकर उसकी टाँगों को मिलाकर रखना चाहिये। व्रण को रोज साफ करना चाहिये। जब यह गुदा तक विदीर्ण हो जाय, तो चिकित्सक की आवश्यकता होती है।

दूध-जन्य ज्वर—साधारण अवस्थाओं में १२ से १८ घण्टों के अन्दर दूध आने लगता है। परन्तु यदि रोगी को सर्दी लग जाय, तो कँपकपी होती है। त्वचा की गरमी रहती है, नब्ज तेज रहती है। दोनों स्तनों में या एक स्तन में सूजन तथा दर्द रहता है। प्रसव के पीछे जब कँपकपी रहे, उस समय रोगी को गरम बोतलों में रखना चाहिये। उसको गरम औषधियाँ मकरध्वज आदि देना चाहिये। एरण्ड-तैल-द्वारा आँतों को खुलाकर देना चाहिये। छाती पर गरम सेंक करना चाहिये। यदि स्तन शोथ-युक्त तथा कठोर हों, तो इनपर सैलड आॅयल मलना चाहिये। और शिशु को बार-बार स्तन पिलाना चाहिये। यदि स्तनों में विद्रधि बन जाय, तो ज्वर उत्पन्न हो जाता है। बहुत पसीना आता है। कई बार बिस्तरों के बहुत गरम होने या कमरों के बहुत अधिक गरम होने से ज्वर आजाता है।

सूतिका-ज्वर—यह बहुत ही खतरनाक ज्वर है, जो प्रसव के पीछे कभी-कभी हो जाता है। इसका कारण रक्त का दूषित हो जाना है, जो गर्भाशय में स्थित दूषित पदार्थ के विलयन होने से होता है। यदि गर्भिणी को प्रसव के पीछे कँपकपी होना बन्द हो जाय, उसको गरम एवं पसीना अनुभव हो तथा स्तनों की सूजन को आराम प्रतीत हो, तो इसे दूध-जन्य ज्वर समझना चाहिये। परन्तु जब नाड़ी का स्पन्दन एक मिनट में १२० से अधिक हो, पसीना आने पर भी आराम न प्रतीत हो, स्तन नर्म और छोटे हो जायँ,

स्राव थोड़ा या बन्द हो जाय, तो समझना चाहिये कि सम्भवतः सूतिका-ज्वर है। यदि अशक्ति हो, श्वास में काठिन्य हो तथा दूध का आना बन्द हो जाय, तो इस ज्वर का निश्चय कर लेना चाहिये। आँतों में दर्द तथा कठोरता का होना एक मुख्य लक्षण है। पित्त-जन्य वमन, प्यास, बहुत पसीना, श्वास में दुर्गन्धि, जिह्वा की मलिनता, चेहरा निस्तेज, अतिसार आदि लक्षण होते हैं। यदि उचित चिकित्सा न की गई, तो रक्त दूषित होकर "पाईयीमा" रोग उत्पन्न होता है। कभी-कभी एक या दो सन्धियाँ भी सूज जाती हैं। यह ज्वर यदि संक्रामक होता है, तो एक स्त्री से दूसरी में भी पहुँच सकता है।

इसमें सबसे प्रथम त्वचा और आँतों को क्रियाशील करना चाहिये। शरीर से विष को निकलने के ये दो मुख्य अवयव हैं। एरण्ड-तैल की वस्ति भी देना उत्तम है। मैगनेशियम सायट्रेट को पानी में घोलकर घूँट-घूँट करके पीने देना को चाहिये। योनि को जन्तुघ्न घोलों से धोना चाहिये। पेट पर अलसी की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। कमरे में शुद्ध हवा आने देना चाहिये। भोजन में दूध देना चाहिये।

प्रसव के पीछे मलेरिया-ज्वर—दुग्ध-जन्य या सूतिका-ज्वर के अतिरिक्त गरम देशों में प्रसव के पीछे शीत लगकर भी ज्वर हो जाता है। इसके लिये सबसे उत्तम यह है कि शिशु उत्पन्न होने के पीछे क्युनीन दे दी जाय। उत्तम यह है कि क्युनीन और आर्ट को मिलाकर दिया जाय। यदि यह हो जाय, तो दूध को बन्द नहीं करना चाहिये। इस ज्वर में सूतिका-ज्वर की भाँति आँतों में दर्द न होगा। इस ज्वर की चिकित्सा साधारण ज्वर की भाँति करनी चाहिये।

सूतिका-जन्य उन्माद—प्रायः प्रसव के पीछे या दूध छुटाते समय, अथवा अधिक दिनों तक दूध पिलाने पर यह रोग मिलता है। इसका प्रारम्भ थोड़े-से ज्वर से या आक्षेपों से अथवा सूतिका-ज्वर से होता है। इसकी पहचान प्रायः हँसने, चिल्लाने, प्रलाप आदि लक्षणों से हो जाती है। कई बार शिशु को मार डालने की अभिरुचि भी देखी गई है। यदि रोग वंश-क्रमागत होगा, तो इसके अच्छा होने में समय लगेगा। शिशु को कृत्रिम दूध देना चाहिये। शक्ति-वर्धक औषधियाँ, पौष्टिक भोजन तथा चित्त को प्रसन्न रखने का यत्न करना चाहिये। आँतों को साफ़ करना चाहिये। यदि रोग बढ़ा हुआ हो, तो चिकित्सक की सम्मति लेनी चाहिये। रोगी को आत्मघात या दूसरे को

हानि पहुँचाने से बचाना चाहिये। क्योंकि इस रोग के आक्रमण की सम्भावना रहती है, इसलिये माता को चाहिये कि वह बच्चे को दूध न पिलाये।

गर्भपात या गर्भस्राव

गर्भपात से अभिप्राय यह है कि ३ मास से पूर्व डिम्ब का गर्भाशय से बाहर आना। कई बार यह पूरा बाहर नहीं आता, इसका कुछ भाग बाहर आजाता है। कई बार मृत डिम्ब बाहर आता है, और कई बार मर जाता है; परन्तु बाहर नहीं आता। कई बार थोड़ा-सा भाग पृथक् होता है, और शेष भाग वहीं लगा रहता है, जीता भी है।

कारण—गर्भपात बहुत साधारण है, प्राय: ५० प्रतिशतक विवाहित औरतों को एक या अधिक बार गर्भपात हुआ करता है। और प्रत्येक अवस्था में कारण का ढूँढ़ना कठिन होता है। प्राय: गर्भपात तीसरे महीने में और गर्भस्राव छठे मास में होता है। क्योंकि तीसरे महीने में एकदम से गर्भ के आकार की वृद्धि होती है, और छठे मास के पश्चात गर्भाशय का सिर नीचे आकर वस्ति-गह्वर में टिकने लगता है। साधारण कारण निम्न हैं—

१—रोग, जिनके कारण गर्भाशय की अन्त:कला को हानि पहुँचती है। जैसे, हृदय रोग, वृक्क, यकृत-रोग, संक्रमण-जन्य गर्भाशय-कला की शोथ, गर्भाशय-भ्रंश, गर्भाशय की दीवारों का मोटा होना, वस्ति-गह्वर के रोग, गठिया, मलबन्ध, उपदंश आदि।

२—चिरकालीन ज्वर, उदर-शूल।

३—पेट के ऊपर आघात, चोट या धक्का पहुँचने से भी गर्भपात हो जाता है। पाँव फिसलकर गिर जाने से भी यही परिणाम होता है।

४—अति मेहनत से, भारी वस्तु उठाने से, मल-त्याग के समय कींचने से, अधिक हँसने से, खाँसने से।

५—गुस्सा, हर्ष, दु:ख आदि मानसिक अवस्था के कारण।

६—पाप-जन्य गर्भपात, जो जानकर औषधियों-द्वारा या अन्य उपाय से किया जाय।

लक्षण—शरीर में बेचैनी, अंगों में दर्द, जोड़ों में दुखाव, अङ्गों का टूटना, निर्बलता, प्रसव-कालीन-जैसे दर्दों का होना। यह दर्द यदि अन्तर से और

अनियमित हो, तब गर्भपात की इतनी आशंका नहीं होती, जितनी नियमित और अन्तर से होनेवाली दर्द में होती है। प्रसव-द्वार में रक्तस्राव, पीठ, कटि, पेट, जंघाओं में तीव्र-शूल होकर गर्भपात हो जाता है। किसी-किसीमें यह लक्षण तीव्र रूप में होते हैं, और किसी में कम। प्रायः प्रथम बार गर्भ धारण करनेवाली स्त्रियों में ये लक्षण तीव्र रूप में देखे जाते हैं। यदि गर्भाशय में दो बच्चे इकट्ठे हों, और उनका जरायु भी इकट्ठा हो, और एक बच्चा मर जाय, तो उसमें गर्भपात या गर्भस्राव के सब लक्षण दिखाई देते हैं, परन्तु बच्चा पूर्ण समय पर आयेगा। गर्भपात या गर्भस्राव जितना शीघ्र होगा, उतना ही रक्त अधिक पड़ेगा।

उपाय—यदि रक्त बहुत न आता हो, और दर्दों का वेग भी अभी बहुत न बढ़ा हो, तो योग्य चिकित्सा से गर्भपात रोका जा सकता है। इसके लिये गर्भिणी को एकदम शान्त, अन्धकारमय, हवादार घर में कोमल बिस्तर पर लेटा देना चाहिये। पायंत को ऊँचा कर देना चाहिये। योनि में शीत परिसेक या पंचवल्कल-क्वाथ का परिसेक करना चाहिये। इसीका फाहा योनि में रखना चाहिये। खाने को केवल दूध या फलों के रस को छोड़कर और कुछ ठोस भोजन नहीं देना चाहिये। मलबन्ध हो, तो एरण्ड-तैल देना चाहिये। मल और मूत्र भी लेटे-लेटे ही कराना चाहिये। स्तम्भक औषधि, जैसे क्लोरोडीन ३० बूँद अथवा लौडेनम १० से १५ बूँद एक औन्स पानी में देना चाहिये। जबतक दर्दों का वेग बिल्कुल शान्त न हो जाय, और गर्भपात का भय दूर न हो जाय, तबतक गर्भिणी को बिस्तर से नहीं उठने देना चाहिये। यदि रक्तस्राव के कारण स्त्री निर्बल प्रतीत हो, तो द्राक्षासव या ब्राण्डी उचित मात्रा में देनी चाहिये। जिन स्त्रियों में गर्भपात की अभिरुचि हो, अर्थात् बार-बार गर्भपात होता हो, उनको चाहिये कि वे एक साल तक गर्भ-धारण न करें। वे पति के पास न जायँ। गर्भपात को रोकने के लिये सबसे सरल और उत्तम उपाय यह है कि गर्भाशय को आराम देकर उसको पुष्ट किया जाय, जिससे वह गर्भ के बोझ को उठा सके। इसके लिये पौष्टिक औषधियाँ, विदारी, मुलहठी, अश्वगन्धा आदि खाना चाहिये। जिन स्त्रियों को तीसरे मास में गर्भपात की अभिरुचि हो, उनको इस मास में विशेषतः बिस्तर पर आराम करना चाहिये, हलकी खुराक खानी चाहिये। मलबन्ध का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

सुवा-रोग

प्रसूति के पीछे या गर्भस्राव के पीछे जो रोग हो जाता है, उसका नाम सुवा-रोग है। इस रोग के मुख्य लक्षण ज्वर, कास, वमन, अतिसार, शूल, अरुचि इत्यादि हैं। प्राय: वात-प्राधान्य लक्षण होते हैं। कइयों को हाथ-पाँव की तलियों में दाह रहता है। मूत्र में दाह रहता है, मुँह पक जाता है, बहुत पसीना आता है, अर्थात् पित्त के लक्षण रहते हैं।

उपाय—१—देवदार्व्यादि-क्वाथ नवीन सुवा-रोग में विशेष उपयोगी है। २—दशमूलादि-क्वाथ प्रसूता की शिकायतों को दूर करता है। वायु के लक्षण हों, तो सौभाग्य-शुण्ठी-पाक देना चाहिये। पित्त के लक्षण होने पर विरेचन देकर स्त्रीवेगादि-क्वाथ देना चाहिये।

शुष्क गर्भ (अर्बुद)

लक्षण—गर्भ रहने के पीछे कुछ समय पश्चात् गर्भ के आकार में वृद्धि होनी रुक जाता है। माता को गर्भ का स्पन्दन जो पहले होता था, वह अब नहीं होता। यह अन्दर शुष्क होकर रक्तस्राव के साथ बाहर आजाता है। परन्तु कई बार ऐसा हो जाता है कि गर्भाशय के अन्दर मांस का अर्बुद बढ़ता जाता है, अथवा कई बार गर्भ नष्ट होकर इसके अस्तर मांस के टुकड़े की भाँति हो जाते हैं, अथवा इन अस्तरों के बीच में रक्तस्राव होने के कारण गर्भ का टुकड़ा बन जाता है। गर्भ की मृत्यु होने पर उसका पोषण इस मांस के टुकड़े को पहुँचता है, जिससे वह बढ़ता जाता है। इसके बढ़ने से पेट भी बढ़ता जाता है, इससे यह प्रतीत होता है कि गर्भ जीवित है। कई बार यह मांस का अर्बुद भी बढ़ता जाता है, और कुछ समय तक गर्भ भी बढ़ता है। परन्तु पीछे से यह अर्बुद उसकी वृद्धि को रोक देता है। अर्बुद की परीक्षा करने का काम कठिन है। अनुभवी धात्रियाँ या चिकित्सक इस बात का निर्णय कर सकते हैं।

गर्भ के मरने पर या शुष्क होने पर माता के चेहरे पर उदासी आ जाती है। उसकी नाड़ी कमजोर हो जाती है।

बाँझपन

सम्भोग के समय दर्द का होना—यह कई कारणों से होता है। उदाहरण के लिये—१—नवविवाहिता स्त्री में भय के कारण, अयोग्य विवाह से, अथवा २—योनि-द्वार के चारोंओर की मांस-पेशियों के संकोच के कारण (विशेषतः गुदोत्थापन पेशी के कारण), ३—रचना-सम्बन्धी विकार से; यथा—योनि-द्वार और भग के छोटा होने से; भग, योनि-द्वार और योनि-मार्ग के शोथ के कारण। गर्भाशय-शोथ के कारण।

चिकित्सा—यदि तृतीय कारण हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि छिद्र छोटा हो, तो उसे वैजलीन आदि से चिकना कर लेना चाहिये। योनि-छेद को काट देना चाहिये। यदि दर्द होने का भय हो, तो आधा से १ ग्रेन कोकीन की पैसरी योनि-द्वार में सम्भोग से १०-१५ मिनट पहले रख देना चाहिये।

यदि स्त्री हिस्टिरीया की अभिरुचि रखती हो, तो शामक औषधियाँ, पोटाशियम ब्रोमाईड और हार्ड सामस आदि देने चाहियें।

वन्ध्यत्व—इसके कारण दो भागों में विभक्त किये हुये हैं—

१—वह अवस्थायें, जिनके कारण शुक्राणु और डिम्ब का पारस्परिक संयोग नहीं होने पाता।

२—वह अवस्थायें, जिनके कारण संयोग होने पर आगे वृद्धि नहीं होती।

प्रथम अवस्थायें—१—आयु—साधारणतः यौवनावस्था से पूर्व गर्भ-धारण नहीं होता। साधारणतः १६ से २५ वर्ष की आयु में गर्भ-धृति विशेष-रूप से होती है; पीछे घटती जाती है।

चालीस साल की आयु के पीछे गर्भ का धारण करना स्त्री के लिये कठिन हो जाता है।

वन्ध्यत्व निश्चय करने के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

१—वन्ध्यत्व का निश्चय विवाह के तीन साल पीछे करना चाहिये।

२—जब गर्भ-धृति होने की आशा शीघ्र हो, तो वन्ध्यत्व की सम्भावना शीघ्र की जा सकती है।

३—कभी-कभी अस्थायी वन्ध्यत्व हो सकता है। उदाहरण के लिये एक औरत दो-तीन बच्चे उत्पन्न करने के पीछे ३ या ४ साल तक और किसी बच्चे का जन्म नहीं दे सकती।

इन सबमें अपवाद हो सकता है। विवाह के दस और पन्द्रह साल पीछे भी बच्चों की उत्पत्ति देखी गई है।

डिम्ब की निर्बलता—यदि डिम्ब-कोष अपूर्ण हों, तो वन्ध्यत्व हो जाता है। इसी प्रकार यदि विवाह की आयु बीत जाय, तो डिम्ब-कोष क्षीण होने लगते हैं। इससे भी बाँझपन आ जाता है। डिम्ब-कोष के रोग, जैसे, अर्बुद, सिष्ट आदि भी वन्ध्यत्व पैदा कर देते हैं।

गर्भाशय की निर्बलता—जब गर्भाशय बहुत छोटा हो, मासिक-धर्म न होता हो, या दुर्गंधि-युक्त हो, तो वन्ध्यत्व निश्चित है। मासिक-धर्म में देरी होना या सर्वथा न आना पूर्ण वन्ध्यत्व का लक्षण है।

अपूर्ण सम्भोग—यह या तो योनि-द्वार के तंग होने से, अथवा योनि-छेद के तंग होने से होता है।

किसी प्रकार की रुकावट—चाहे वह योनि-द्वार में हो, या डिम्ब-प्रणालियों में हो, जिसके कारण शुक्राणु डिम्ब में न मिल सके। योनि-मार्ग का अवरोध प्रायः जन्म ही से होता है।

दुर्गन्धित स्राव—संक्रमण कीटाणु-जन्य और गनोरिया आदि का दुर्गन्धित स्राव शुक्राणु को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार तीव्र कृमिनाशक औषधियाँ, उत्तर-वस्ति से योनि का धोना भी गर्भ-धृति को रोक देता है।

द्वितीयावस्था—जबकि गर्भ-धृति हो जाय, परन्तु गर्भ में वृद्धि न हो, इसका कारण मुख्य रूप से विरूपावस्था है, यथा गर्भाशक के बाहर डिम्ब-प्रणाली में शुक्राणु और डिम्ब का संयोग होना। दूसरा कारण गर्भाशय की रुग्णावस्था है, जिसके कारण गर्भपात हो जाता है।

वन्ध्यत्व की चिकित्सा—सबसे प्रथम चिकित्सक को यह देखना चाहिये कि वन्ध्यत्व का कारण दूर भी हो सकता है या नहीं। गर्भाशय और डिम्ब-कोष की स्थिति देखनी चाहिये। यदि वे अभी अपूर्ण हैं, तो चिकित्सा निष्फल है। अवरोध की चिकित्सा की जा सकती है। यथा योनि-द्वार का

परदा काटा जा सकता है, गर्भाशय-द्वार विस्तृत किया जा सकता है। गर्भाशय की ग्रीवा भी ठीक हो सकती है। गर्भाशय की शोथ की भी चिकित्सा की जा सकती है। नुकसान-दायक स्रावों की भी उचित चिकित्सा की जा सकती है।

शारीरिक कारणों के कारण जब बन्ध्यत्व हो, तो वह प्राय: औषधियों से ठीक नहीं होता। इसके लिये प्राय: आचरण-सम्बन्धी चिकित्सा सफल होती है। इस अवस्था में एक न्यायशील पति अच्छा चिकित्सक होता है, अपेक्षा एक हकीम या डाक्टर के।

गर्भोत्पादक कुछ औषधियाँ—

१—पुष्य नक्षत्र में लक्ष्मणा-श्वेत कण्टकारी का मूल पीसकर दूध के साथ लेने से, अथवा घृतकुमारी का मूल पीसकर घी के साथ ऋतु-स्नान के पीछे तीन दिन लेने से गर्भोत्पत्ति होती है।

२—अश्वगन्धा का क्वाथ करके घी के साथ लेने से गर्भ रहता है।

३—पिप्पली, सोंठ, नागकेशर, मिर्च इनको घी के साथ लेने से बन्ध्या के भी पुत्र उत्पन्न होता है।

४—स्वर्ण-भस्म, रजत-भस्म, ताम्र-भस्म प्रत्येक १ माशा २ तोले घृत के साथ सेवन करने से गर्भ-क्षेत्र शुद्ध हो जाता है।

५—बला, शर्करा, मुलहठी, अतिबला, बड़ की जटा, नागकेशर, इनको मधु में मिलाकर दूध के साथ लेने से पुत्र उत्पन्न होता है।

६—कुरण्ड-मूल, धातकी के फूल, वट की जटा, नील-कमल इनको पीने से गर्भ रहता है।

७—पलाश के पत्ते को दूध के साथ पीसकर पीने से वीर्यवान पुत्र उत्पन्न होता है।

८—नागकेशर का चूर्ण दूध के साथ पीने से अवश्य गर्भ-धारण होता है।

गर्भ-निरोध के उपाय—

१—पिप्पली, बिडंग, सुहागा, इनकी बराबर मात्रा ऋतु-काल में पीने से गर्भोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है।

२—जपा के फूल को कांजी में पीसकर गुड़ के साथ खिलाने से गर्भ-धारण नहीं होता।

३—आमलकी, अर्जुनछाल, हरीतकी, इनका चूर्ण जल के साथ ऋतु-काल में सेवन करने से गर्भ नहीं रहता।

४—रसौंत, हरीतकी, आमलकी, इनके चूर्ण को शीतल जल के साथ लेने से रजोनाश हो जाता है।

५—चूहे की मींगनी को पीसकर स्त्री के मूत्र-स्थान पर लगाने से गर्भ नहीं रहता।

योनि-रोग

आयुर्वेद-शास्त्र में २० प्रकार के योनि-रोग गिने हैं। मिथ्या आहार-विहार, दूषित रज या आर्त्तव, एवं पुरुष के दूषित वीर्य के कारण ये रोग होते हैं। इन रोगों के कारण योनि या योनि-मार्ग में दर्द रहता है। ऋतु कठिनता से आती है। सन्धियों में पीड़ा रहती है, सम्भोग में कष्ट अनुभव होता है। योनि-कन्द आदि रोगों के कारण गर्भाशय में गर्भ-धृति नहीं हो सकती।

भग के त्वचा-सम्बन्धी रोग—एरीथीमा, विसर्प, उपदंश, श्लीपद, भग-शोथ।

एरीथीमा—इसका कारण योनि-मार्ग का दुर्गन्धित या विक्षोभ उत्पन्न करनेवाला स्राव है। साथ ही स्थानिक अस्वच्छता भी है। इसके लिये आराम, स्वच्छता तथा जस्त का या और कोई सुखानेवाले चूर्ण का उपयोग प्रतिसारण में करना चाहिये।

विसर्प—यह शरीर के अन्य स्थानों की अपेक्षा भग-प्रदेश पर भी मिलता है। इसमें छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकलती हैं। वह फटती हैं। उनका रस निकलकर और स्थान पर लगता है। वहाँ फिर फुन्सियाँ हो जाती हैं। फुन्सियों पर खुरण्ड जम जाता है, खाज होती है। इसका कारण आमवात, गठिया अथवा योनि-मार्ग से दुर्गन्धित स्राव का होना है। अथवा मूत्र का बूँद-बूँद करके भग-प्रदेश पर लगना है।

इसकी चिकित्सा के लिये हाइड्राजराई एमोनियेटम १ भाग और लैनोलीन ३२ भाग मिलाकर लगानी चाहिये। पानी बहुत आता हो, तो जस्त के लोशन का चूर्ण छिड़कना चाहिये। खाज बहुत हो, तो इकथ्योल का मलहम लगाना चाहिये।

भग पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ—इस रोग में छोटी-छोटी फुन्सियाँ समूह के रूप में भग-प्रदेश पर हो जाती हैं। इनमें कुछ सूजन भी रहती है। इनकी चिकित्सा विसर्प के समान है।

उपदंश—यह रोग "सैंकर" के रूप में होता है। रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। पारद का प्रलेप लगाना चाहिये।

श्लीपद—इस रोग का कारण लसीका-ग्रन्थियों की चिरकालीन शोथ है। साथ में लसीका ग्रन्थियों का विस्तार हो जाता है। त्वचा की रचना मोटी हो जाती है। लसीका-संस्थान में एक प्रकार का अवरोध हो जाता है। प्राय: वृहत् भगोष्ठ आक्रान्त होता है। भगशिश्निका और लघु भगोष्ठ प्राय: बचे रहते हैं। प्राय: यह रोग गरम प्रदेशों में होता है। इस रोग के साथ प्राय: करके रक्त में कृमि मिलता है।

भग-शोथ—इस रोग में भग की त्वचा में सूजन आ जाती है। इसका कारण नाड़ियों के छोरों का आक्रान्त होना है। प्रथम स्थानिक त्वचा गरम और लाल होती है। पीछे से त्वचा पीली हो जाती है और घसूँटने के निशान-से मालूम होते हैं। इसके लिये "लेडलोशन" या शीत परिसेक करना चाहिये।

कुरोसिस वैल्व—इस रोग में रोगी भग के विक्षोभ की शिकायत करता है। सम्भोग के समय बहुत दर्द होता है, साथ ही मूत्र-प्रवाहण में कठिनता होती है। पीला-सा स्राव आता है। यदि रोगी गरम बिस्तर पर सोये, तो दर्द बढ़ जाता है। स्वास्थ्य गिर जाता है, भूख कम हो जाती है। यह रोग प्राय: ४० साल के पीछे होता है, कारण का अभी पता नहीं।

इस रोग की चिकित्सा के लिये शीत एवं उड़नेवाले परिसेक बरतने चाहिये।

उदाहरण के लिये—बैलेडोना, ग्लेसरीन, अफीम या कोकीन अथवा लेडलोशन। साधारणत: १ औंस ग्लैसरीन, १० औंस हल्का एसिटिक एसिड और १:२० में बना कार्बोलिक एसिड का घोल उत्तम है।

भग-कण्डू—यह साधारणत: लक्षण है, जो निम्न कारणों से उत्पन्न होता है—

१—विक्षोभक स्राव, जैसे, मधु-मेह, मूत्राशय-शोथ, श्वेत-प्रदर।

२—भग-प्रदेश के रोग—शोथ, भग-प्रदेश में रक्त का संचित होना।

विटप के बालों में रहनेवाली जूँ आदि। इसके लिये बालों को साफ़ करके मर्करी परक्लोराइड (१:१०००) के घोल से धोना चाहिये।

३—दूरवर्ती विक्षोभ—गुदा के कारण (जैसे, गुदा में कृमि, गुद-भ्रंश, गुदार्शस) गुदा की खुजली भी भग-प्रदेश में खाज उत्पन्न कर देती है।

मूत्राशय के कारण—बार-बार मूत्र-प्रवाहण करने से भी कण्डू हो जाती है। इसके लिये हाईसोमस और बैलेडोना का उपयोग करना चाहिये।

गर्भाशय के कारण—गर्भावस्था कई बार कण्डू उत्पन्न कर देती है।

चिकित्सा—कारण के अनुसार करनी चाहिये।

भग-प्रदेश पर आघात—यह प्राय: तीन कारणों से होता है—१—आकस्मिक, २—सम्भोग-जन्य, ३—प्रसव के समय।

आकस्मिक आघात—यह प्राय: बहुत कम होता है। यह या तो लात मारने से या गिरने से होता है। चूँकि इस प्रदेश में रक्त-वाहिनियाँ हैं, इसलिये रक्त-स्राव भी बहुत होता है। इसके लिये साधारण शीत-चिकित्सा पर्याप्त होती है। शोथ पर थोड़ा-थोड़ा सेंक भी करना चाहिये। दूर्वा को ख़ूब बारीक पीसकर, शहद में मिलाकर लगाने से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है।

सम्भोग-जन्य आघात—साधारणत: योनि-छेद के फटने पर थोड़ा-सा रक्त-स्राव होता है। परन्तु जब योनि-छेद ज़ोर से विदीर्ण होता है, तब यह योनि की पश्चिमीय भित्ति तक फट जाता है, जिससे बहुत रक्त-स्राव होता है। इसकी चिकित्सा के लिये सब जमे हुये रक्त को बाहर कर देना चाहिये। विदीर्ण प्रदेश को सी देना चाहिये। यदि रक्त चूता हो, तो इसको गद्दी या फाहे-द्वारा रोकना चाहिये।

प्रसवकालीन आघात—इसके साथ प्राय: सीवन भी विदीर्ण हो जाती है। प्राय: योनि की पश्चिमीय भित्ति फटती है। इसका कारण प्रसव-कालीन असावधानी है।

योनि के आघात—यह प्राय: अपूर्ण आयुवाली स्त्री के साथ बलात्कार करने पर मिलते हैं। जबर्दस्ती सम्भोग करने के कारण योनि में बहुत-से चीर आजाते हैं। इसका कारण योनि-मार्ग का तंग होना और शिश्न का दृढ़ होना है।

कई बार औरतें गर्भपात करने के लिये तेज औज़ार से स्वयं आघात कर लेती हैं, अथवा अपनी कामेच्छा को पूर्ण करने के लिये अनुचित वस्तुओं का उपयोग करने से आघात कर बैठती हैं।

चिकित्सा—रक्तावरोध का उपाय करना चाहिये। विदीर्ण प्रदेशों को सी देना चाहिये।

वाह्य वस्तु—छोटी लड़कियाँ अपनी उत्सुकता से या खेलते-खेलते पेंसिल, बटन, बीज, गुठली, पत्थर या पिन आदि अन्दर डाल देती हैं। जवान लड़कियाँ स्पंज, रुई आदि इसलिये डाल देती हैं, जिससे गर्भ-धारण न हो। इसको यथासम्भव निकाल देना चाहिये।

योनि-शोथ—योनि-शोथ के मुख्य दो कारण हैं—पहला आघात-जन्य और दूसरा संक्रमण-जन्य।

आघात-जन्य शोथ—बाह्य वस्तु के कारण, शल्य-कर्म के कारण, पैसरी आदि के रखने से, अनुचित सम्भोग से, गर्भाशय में दाहक औषधि लगाने के समय सावधानी न बरतने से शोथ हो जाता है।

संक्रमण-जन्य शोथ—गनोरिया, सैफ्लिस या यक्ष्मा के कारण होता है।

शोथ के कारण और स्थानों की भाँति यह प्रदेश भी लाल, गरम, रक्त से परिपूर्ण हो जाता है। योनि-मार्ग से जो स्राव आता है, उसको श्वेत-प्रदर के नाम से पहचानते हैं। यह पानी-जैसा पतला होता है।

भेद—साधारणतः योनि-शोथ के चार भेद हैं। जैसे—

१. साधारण योनि-शोथ—यह प्रायः आघात-जन्य या बलात्कार (अनुचित रीति से किया गया सम्भोग) से होता है।

लक्षण—उष्णिमा, योनि में चुभता हुआ दर्द, श्वेत-प्रदर, मैथुन में दर्द और कभी-कभी वाह्य अवयवों में भी शोथ होता है। उपेक्षा करने से रोग बढ़ जाता है।

इसकी चिकित्सा करने से यह शीघ्र शान्त होजाता है। रोगी को बिस्तर पर आराम देना चाहिये। गरम परन्तु विक्षोभ न उत्पन्न करनेवाले लोशन, जैसे, लेड-लोशन, बोरिक-लोशन आदि बरतना चाहिये। सम्भोग से यथासम्भव बचना चाहिये।

२. भग-शोथ से मिश्रित योनि-शोथ (बच्चों में)—१—इसके मुख्यतः कई कारण हैं, जैसे; कमज़ोर और मैले रहनेवाले बालकों में धूल आदि से या यक्ष्मा के कारण हो जाता है। २—बलात्कार से, ३—गनोरिया से ग्रसित बच्चों के कपड़ों से एक दूसरे में फैल जाता है।

लक्षण—रोगी दर्द की शिकायत करता है, मूत्र गँदला या कण्डू पैदा करनेवाला होता है। कई बार यह भी देखा गया है कि 'थ्रेडवर्म' (एक प्रकार का धागे की तरह का कृमि) योनि में जाकर सूजन पैदा कर देता है। रोगी को मूत्र-प्रवाहण और सम्भोग में कष्ट होता है। योनि से स्राव होता है। योनि की दीवारें शोथ-युक्त, लाल और गरम होती हैं। दबाने से इनमें दर्द होता है। स्राव पीला या हरा होता है और बाह्य भागों पर बहता रहता है, यहाँ तक कि योनि पर भी आता है। यदि उचित चिकित्सा न की जाय, तो गर्भाशय भी आक्रान्त हो जाता है।

३. श्लैष्मिक कला के कारण योनि-मार्ग की शोथ—यह प्रायः किसी दाहक वस्तु के कारण या संक्रमण से हो जाता है। इसके लिये योनि को कृमिनाशक घोलों से धोना चाहिये। योनि को आयडोफार्म गौज से भर देना चाहिये।

आर्त्तव-सम्बन्धी रोग

इस शीर्षक के नीचे ऋतु-सम्बन्धी विकारों का वर्णन किया जायगा। जैसे—ऋतु का आना, कष्ट से आना, बहुत आना तथा अकाल में रक्त-स्राव एवं ऋतु का बन्द हो जाना है। साधारणतः यह कोई स्वयं रोग नहीं है, रोगी के लक्षण हैं। इनकी चिकित्सा में सफल होने के लिये आवश्यक है कि असली कारण का पता अवश्य लगाया जाय।

ऋतु का न आना—बहुत-से लेखकों के अनुसार यह रोग दो प्रकार का है, प्राइमरी और सेकन्डरी। इनको फिर चार भागों में विभक्त किया है। जैसे—

१—वह अवस्थायें, जब युवावस्था देर में आये।

२—पूर्ववर्त्ती और स्थिर ऋतु का न आना।

३—द्वितीय कारण से ऋतु का न आना।

४—ऋतु का रुक जाना।

इनमें चतुर्थ प्रकार की ऋतु का रुक जाना इस विभाग के अन्दर नहीं आता। क्योंकि इसका कारण कई बार योनि-छेद का द्वार बन्द रहना है। इसलिये ऋतु नहीं आता। अतः इस अवस्था को इस विभाग के अन्दर नहीं रखना चाहिये।

नष्टार्त्तव—इसका अर्थ यह है कि ऋतु-काल में ऋतु का न आना। प्राइमरी का अभिप्राय यह है कि जो कन्या युवती होगई है, और इस योग्य है कि इसमें ऋतु-दर्शन होना चाहिये, उसमें यदि ऋतु-दर्शन न हो, तो यह अवस्था समझनी चाहिये।

सेकन्डरी एमीनोरिया—इसका अभिप्राय यह है कि ऋतु का अस्थायी रूप से, गर्भ-धृति होने के समय में बन्द हो जाना है।

क्रीप्टो मेनोरिया—इसमें ऋतु तो होती है, परन्तु उत्पादक मार्ग के अवरोध के कारण इसका कुछ भाग अन्दर रुक जाता है।

प्राइमरी एमीनोरिया के कारण—(१) शरीर सम्बन्धी अवस्थायें, जैसे, रक्त की न्यूनता, पाण्डुता, क्षय आदि शरीर को निर्बल करनेवाले रोग, वामनापन भी इसका कारण है।

२—गर्भाशय और डिम्ब-कोष की दूषित रचना।

३—गर्भावस्था।

४—फलने का अभाव, शरीर-सम्बन्धी रोग के बिना, अथवा अन्तः उत्पादक अवयवों की अशुद्ध रचना के कारण।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि ऋतु-दर्शन होने से पूर्व भी गर्भ-धृति हो सकती है।

१००० रोगियों में ऋतु-दर्शन आने का समय निम्न प्रकार से पाया गया है—

२८.८ प्रतिशतक लड़कियों में ऋतु-दर्शन १६ वर्ष की आयु से पूर्व नहीं मिला ।

१३.७	"	"	"	१७	"	"
६.१	"	"	"	१८	"	"
३.३	"	"	"	१९	"	"
१.५	"	"	"	२०	"	"
०.९	"	"	"	२१	"	"
०.६	"	"	"	२२	"	"

यह स्मरण रखना चाहिये कि गरम देशों में ऋतु-दर्शन १२-१३ वर्ष की आयु में हो जाता है ।

पूर्व-कथन—कारण की परीक्षा करते समय वस्ति-गह्वर, अंग-प्रदेशों के बालों की तथा स्तन आदि की परीक्षा करनी चाहिये ।

चिकित्सा—रक्त की न्यूनता के लिये लोह, संखिया, कुचला या अन्य शक्ति-वर्धक औषधि देना चाहिये । बिना कारण निश्चय किये दवाई दे-देकर रोगी को थकावट नहीं देना चाहिये । रोगी को अलग छोड़कर उसका विवाह कर देना चाहिये । विवाहित जीवन से शीघ्र लाभ हो जाता है ।

सेकन्डरी एमीनोरिया के कारण—

१—शरीर-सम्बन्धी अवस्थायें—

२—गर्भावस्था, देर तक दूध पिलाना ।

३—शीत का लग जाना, जैसे, ऋतुकाल में पाँवों को गीला रखना ।

४—मस्तिष्क के कुछ रोग ।

५—मस्तिष्क का धक्का ।

६—कुछ चिरकालीन विष यथा "मार्फोमेनिया" और ज्वर-जन्य विकार ।

परीक्षा—रक्त की न्यूनता के कारण जब ऋतु-दर्शन नहीं होता, तब इसका विचित्र रूप होता है । अर्थात् रोगी का इतिहास बताता है कि ऋतु-दर्शन धीरे-धीरे बन्द हुआ है, सर्वथा बन्द होने से पहले यह गँदला हो जाता है । कई महीनों की या सालों की अनियमितता का इतिवृत्त होता है । रोगी का श्वास छोटा हो जाता है । वह जल्दी थक जाता है, ओष्ठ और नख

पीले हो जाते हैं। और यदि ऋतु-दर्शन में शीत लगा हो या ज्वर हो, तो उसका इतिहास रोगी से पूछा जा सकता है। डिप्थीरिया, चेचक, टाइफाईड, स्कारलेट ज्वर आदि के कारण कई महीनों तक ऋतु-दर्शन नहीं होता। दूध पिलाने का प्रभाव ऋतुकाल पर भिन्न-भिन्न रूप में पड़ता है। कई अवस्थाओं में दूध पिलाने के कुछ दिनों बाद ऋतु-दर्शन होने लगता है, और कइयों में एक साल तक दूध पिलाने पर गर्भाशय में विकार हो जाता है, जिससे दूध छुटाने पर भी कुछ महीनों तक ऋतु-दर्शन नहीं होता। इस अवस्था में यह भी सम्भव है कि समय से पूर्व ऋतु का आना सर्वथा बन्द हो जाता है। मस्तिष्क के रोगों में ऋतु को बन्द करनेवाले कारण मस्तिष्क का अर्बुद, पागलपन हैं।

चिकित्सा—यदि सर्दी के कारण ऋतु बन्द हुआ हो, तो ऋतु-दर्शन के समय से पूर्व पाँव को गरम पानी में रखना चाहिये, नितम्ब स्नान लेना चाहिये, गरम पानी की उत्तर वस्ति लेनी चाहिये। शक्ति-वर्धक औषधि देनी चाहिये। आँतों को साफ करने के लिये तीव्र विरेचक देना चाहिये।

क्रीप्टोमेनोरिया—युवती होने के एक या दो साल बाद सबसे पहले इस रोग का अनुभव होता है। रोगी इस बात की शिकायत प्रतिमास नियत अन्तर से करता है कि उसको रक्त-स्राव होता प्रतीत होता है, परन्तु बाहर किसी प्रकार का ऋतु-दर्शन नहीं होता। उसकी दूसरी शिकायत यह होती है कि कोष्ठ का निचला भाग फूल रहा है, जो प्रतिमास बढ़ता जाता है, और महीने के बीच में कुछ घट-सा जाता है। आसपास के अवयवों पर दबाव पड़ता है। इसकी चिकित्सा के लिये चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।

अत्यार्त्तव—इसका अर्थ यह है कि ऋतु-काल के दिनों में बहुत अधिक रक्त-स्राव होता है। किसीमें यह ३ दिन रहता है, और किसीमें ७ दिन तक रहता है।

अकाल में ऋतु—ऋतु-काल के बिना भी गर्भाशय से रक्त-स्राव होने का नाम अकाल में ऋतु है। प्रायः अत्यार्त्तव ही बढ़कर इस अवस्था को उत्पन्न कर देता है। इसलिये दोनों का विवेचन एक साथ करना अच्छा है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि अत्यार्त्तव या अकाल में ऋतु-दर्शन ये कोई स्वतन्त्र रोग नहीं, बल्कि रोगों के लक्षण हैं। इसलिये चिकित्सा करने से पूर्व कारण का पता अवश्य लगाना चाहिये। इन दोनों में मुख्य भेद यह है कि अत्यार्त्तव का कारण शरीर-सम्बन्धी या रचना-सम्बन्धी कोई विकार होता है। और अकाल में ऋतु-दर्शन का कारण कोई रोग-जन्य विकार होता है।

आयु	अत्यार्त्तव	अकाल में ऋतु
२५ वर्ष से पूर्व का कारण	गर्भाशय की शोथ जो ऋतुकाल में शीत लगने से हो सकती है। गर्भाशय का भ्रंश	म्युकस पोलीपस
२५ वर्ष से ४० वर्ष की आयु में उत्पन्न कारण	गर्भाशय की शोथ-गर्भाशय में रक्त का संचय होना गर्भाशय भ्रंश किसी प्रकार का अर्बुद	म्युकस पोलीपस, गर्भाशय के विकार अर्बुद आदि गाँठ पड़ जाना
४० वर्ष की आयु के पीछे	किसी प्रकार का अर्बुद गर्भाशय शोथ, गर्भाशय में रक्त-संचय, गर्भाशय-भ्रंश	पूर्ववर्ती सब कारण

(१) अत्यार्त्तव के कारण—शरीर-सम्बन्धी अवस्थायें—परच्युरा, शरीर में रक्त की अधिकता, यकृत-शोथ, अधिक खाना या अधिक मद्य-पान, उष्ण ऋतु।

(२) स्थानिक कारण—गर्भाशय में रक्त का संचय होना या स्थान-भ्रंश, गर्भाशय की शोथ, प्रसव के कुछ पदार्थ का अन्दर रुक जाना, गर्भाशय में तन्तुओं का बनना, डिम्ब-प्रणाली का शोथ या अर्बुद।

(३) अकाल में ऋतु—स्थानिक कारण—प्रसव-कालीन किसी पदार्थ का अन्दर रुक जाना, गर्भाशय के बाहर रज और शुक्राणु का संयोग, गर्भावस्था से मिला हुआ रक्त-स्राव, गर्भाशय में नवीन रचना का होना (जैसे, अर्बुद आदि का)।

इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि अकाल में ऋतु का कारण शरीर-सम्बन्धी अवस्थायें नहीं हैं। इसका मुख्य कारण गर्भाशय-सम्बन्धी विकार ही है।

सुगमता के लिये इन दोनों लक्षणों को दो भागों में विभक्त कर रक्खा है। जैसे—

१—वह अवस्था जबकि रुग्णा अविवाहिता हो।

२—वह अवस्था जबकि रुग्ण विवाहिता हो।

वह अवस्था जबकि रुग्णा विवाहिता हो—इसके भी दो भेद हैं। १—जब रुग्णा कभी भी गर्भवती नहीं हुई हो; २—जब रुग्णा गर्भवती हो; या जब गर्भवती हो चुकी हो।

जब रुग्णा गर्भवती नहीं हुई हो—जब रुग्णा का विवाह कुछ समय पूर्व हुआ हो, और वह अत्यार्त्तव की शिकायत करे, साथ में गनोरिया के लक्षणों को भी बताये (जैसे—दुर्गन्धि-युक्त स्राव, गँदला मूत्र), तो वह सम्भवतः गनोरिया से आक्रान्त हुई होगी। परन्तु जहाँ कोई संक्रमण का इतिवृत्त न हो, और अत्यार्त्तव के साथ कटि-शूल, श्वेत योनि-स्राव हो, तो वहाँ पर गर्भाशय में रक्त-संचय की संभावना करनी चाहिये। यदि अकाल में ऋतु-दर्शन गर्भावस्था के किसी लक्षण के बिना होता है, तो 'पोलीपस' का अनुमान करना चाहिये। और यदि अकाल में ऋतु-दर्शन होने पर दर्द भी हो, तथा कुछ समय के लिये ऋतु बन्द हो जाय, और फिर आरम्भ हो जाय, तो समझना चाहिये कि गर्भाशय के बाहर रज और शुक्राणु का संयोग हुआ है। ३५ साल की औरत में यदि अत्यार्त्तव के पीछे अकाल में ऋतु-रोग हो जाय, तो गर्भाशय के अर्बुद की सम्भावना करनी चाहिये।

जब रुग्णा गर्भवती हो—यदि ऋतु-दर्शन बन्द होने के कुछ दिनों बाद फिर रक्त-स्राव हो, तो वह गर्भपात या गर्भ-स्राव को सूचित करता है। अनियमित रक्त-स्राव हो, रक्त की मात्रा थोड़ी परन्तु काला, और थोड़े समय में बन्द होकर आता हो, तो डिम्ब-प्रणाली में गर्भ-क्षति की सम्भावना करनी चाहिये। गर्भावस्था के ६ ठे या ७ वें मास में यदि रक्त-स्राव हो, तो इसका कारण कमल का गर्भाशय के निचले मुख पर लगा होना अथवा उसके

कुछ भाग का गर्भाशय से पृथक् होना है। गर्भाशय-ग्रीवा का अर्बुद भी अकाल में ऋतु उत्पन्न कर देता है।

जब रुग्णा गर्भवती हो चुकी हो—नूतन गर्भावस्था में अपक्व डिम्ब के टूटने से रक्त-स्राव हो सकता है। परन्तु जब यह रक्त-स्राव बन्द न हो और अकाल में भी होता रहे, तो इसका कारण कमल का कुछ भाग गर्भाशय में बचा समझना चाहिये। यदि रुग्णा ४० साल से ऊपर हो, और कई बार गर्भवती हो चुकी हो; उसमें यदि रक्त-स्राव होता है, तो इसका कारण गर्भाशय-ग्रीवा का कैन्सर या गर्भाशय-शोथ होता है। वृद्धावस्था-जन्य गर्भाशय-शोथ के कारण भी ऋतु-दर्शन बन्द होने पर अकाल में ऋतु-रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त अर्बुद आदि के कारण भी रक्त-स्राव हो जाता है।

चिकित्सा—शरीर-सम्बन्धी कारण की चिकित्सा करनी चाहिये। स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों का जैसे, खान पान का, थकान से बचने का, गर्म या दुर्गन्धित वायु-मण्डल से दूर रहने का तथा सम्भोग से बचने आदि का ध्यान रखना चाहिये। अति सम्भोग से गर्भाशय में शोथ हो जाता है।

गर्भाशय के रक्तस्राव को रोकनेवाली औषधियों में उत्तम औषधि अर्गट और अर्गोटीन हैं। प्रथम दवाई लिक्विड एक्सट्रैक्ट के रूप में १ ड्राम की मात्रा में देना चाहिये और अर्गोटीन ३ ग्रेन की मात्रा में गोली के रूप में। यह उत्तम है कि अर्गट को टिंचर हैममैलिड या हाईड्रैसटिस (१५ से २० बूँद) के साथ मिलाकर दें। रोगी को चाहिये कि समय से दो-तीन दिन पूर्व दवाई आरम्भ कर दे।

इसके अतिरिक्त ऋतु आने से दो-तीन दिन पूर्व रोगी को बिस्तर पर रहना चाहिये और विरेचन ले लेना चाहिये। मलबन्ध के कारण बस्ति में प्रायः रक्तसंचय होजाता है।

ऋतु का बन्द होना—जिस समय आर्त्तव बन्द होता है, उस समय यह कई रूप ले लेता है। जैसे—औरतों को बिल्कुल बेचैनी या किसी प्रकार की शिकायत नहीं होती। आर्त्तव ठीक प्रकार से होता हुआ अपने आप बन्द हो जाता है। यह प्रायः अविवाहिता औरतों में होता है। दूसरी अवस्थाओं में मासिक-धर्म अनियमित हो जाता है, रक्त की मात्रा बदल जाती है और

एक लम्बे समय के पश्चात् अन्तिम बार जोर से बड़ी मात्रा में रक्तस्राव होता है और फिर सदा के लिये बन्द हो जाता है। परन्तु कइयों में वातिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। जैसे—चक्कर आना, छाती में दर्द होना और जोड़ों का टूटना। पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है, मलबन्ध तथा अफारा रहता है, चर्बी बढ़ने लगती है। बहुत-सी स्त्रियाँ गिर जाती हैं और पागलपन की सीमा के समीप पहुँच जाती हैं।

वस्ति-गह्वर में रचना-सम्बन्धी अन्तर आने लगता है, डिम्बकोष छोटे हो जाते हैं और सिकुड़ जाते हैं। योनि-द्वार संकुचित हो जाता है। गर्भाशय आकार में छोटा हो जाता है। भग-प्रदेश के बालों का रङ्ग धीरे-धीरे बदल जाता है। भगोष्ठ (वृहत्) छिप जाता है, चूँकि इसके नीचे की वसा क्षीण हो जाती है।

कष्टार्त्तव—इसका अर्थ यह है कि आर्त्तव के समय पीड़ा होती है। साधारणतः ६० से ७० प्रतिशतक औरतों को ऋतु-काल में कष्ट होता है। परन्तु यहाँ पर उस पीड़ा से अभिप्राय है, जिसके कारण रुग्णा को बिस्तर पर सोना पड़े या उचित चिकित्सा की आवश्यकता पड़े।

प्रत्येक रोगी में दर्द का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है। जैसे—किसीमें दर्द कोष्ठ में नाभि या आमाशयिक प्रदेश पर शूल के रूप में होता है। यह दर्द नीचे नितम्ब और जंघाओं में से होकर घुटनों तक पहुँचता है। किसी में दर्द कटि-भाग में होता है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता रहता है कि उसकी कमर टूट रही है। कभी-कभी सारे निचले भाग पर दर्द होता रहता है।

कारण—इस लक्षण के कारण साधारणतः दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। यथा—१—शरीर-रचना-सम्बन्धी, २—स्थानिक।

स्थानिक कारण फिर चार प्रकार के हैं। जैसे—

(१) **वस्ति-गह्वर में रक्त-संचय होना**—इसके कारण जब पीड़ितार्त्तव होगा, तब शरीर के निचले भाग पर दर्द होता रहेगा। पीठ, पार्श्व, कोष्ठ और जङ्घाओं में यह दर्द निकलता है। ऋतु आने से एक या दो दिन पूर्व दर्द आरम्भ होता है, और ऋतु के एक या दो दिन बाद तक रहता है। शरीर में भारीपन मालूम होता है। आर्त्तव के बीच के समय में

श्वेत पानी योनि से आता है। रोगी को प्रायः मलबन्ध रहता है। ऋतु-काल में भग सूजा प्रतीत होता है।

(२) **बनावट-सम्बन्धी दोष**—जब गर्भाशय का मार्ग तंग हो, या गर्भाशय की भित्तियाँ मोटी हों, जिससे आर्त्तव आने में दर्द होता है, गर्भाशय का झुकना या गर्भाशय के मुख का अवरोध होना, जो शोथ के कारण से हो जाता है।

(३) **स्थिति का दोष**—गर्भाशय का बाहर निकल आना या उलट जाना भी पीड़िताार्त्तव को उत्पन्न कर देता है।

(४) **वस्ति-गह्वर की शोथ**—यह प्रायः विवाहित औरतों में पीड़िताार्त्तव या कष्टार्त्तव का कारण होता है। इसमें गर्भाशय की शोथ, गर्भाशय की कला की शोथ, डिम्बकोष की शोथ, वस्ति-गह्वर के आवरण की शोथ का भी समावेश है, जिसके कारण दर्द होता है।

शरीर-सम्बन्धी कारण—अपूर्ण पोषण के कारण जब शरीर निर्बल रह जाता है, गर्भाशय भी साधारण आकार से छोटा रह जाता है। मज़दूर लोगों में, जिनको देर तक काम करना पड़ता है, दूकान में काम-काज करनेवाली अथवा जिनको बहुत देर तक खड़ा रहना पड़ता है, या जो भीड़ या बुरी हवा में काम करती हैं, उनको कष्टार्त्तव की शिकायत रहती है। बाल-प्रकृति की औरतों में भी यह शिकायत पाई जाती है।

चिकित्सा—रोगी के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। व्यायाम, सादा परन्तु पुष्टिदायक भोजन, विश्राम आदि की ओर उसका ध्यान खींचना चाहिये। दर्द कम करने के लिये ऋतु-काल से एक या दो दिन पूर्व विरेचन देना चाहिये। इससे रक्त-संचय घट जायगा। गरम पानी में पाँव रखना या गरम पानी में बैठना उत्तम है। दर्द को कम करने के लिये द्राक्षासव को घूँट-घूँट करके गरम पानी में पीना चाहिये। गर्भाशय के दर्द-युक्त संकोचों को रोकने के लिये 'फिनस्टीन', 'एममोननोल' या 'फिनैले-जीन' १० ग्रेन की मात्रा में सुगमता से दी जा सकती है। इन दवाइयों को लेने के पीछे रोगी को बिस्तर पर लेट जाना चाहिये।

आयुर्वैदिक औषधियाँ

१—दही ६ तोला, सौवर्चल १ मासा, कालाजीरा, मुलहठी, नीला कमल, प्रत्येक ४ आना, मधु आधा तोला इनको २ घंटे के पश्चात् २ तोला मात्रा में खाने से प्रदर नष्ट होता है।

२—रोहितक-मूल को जल के साथ पीसकर, आमलकी को जल के साथ पीसकर मधु और घृत के साथ खाने से अथवा कार्पास मूल को तण्डु-लोदक के साथ पीने से प्रदर को लाभ होता है।

३—रसौत, चौलाई की जड़ इनको शहद और तण्डुलोदक के साथ पीने से प्रदर में आराम होता है।

४—कुशमूल को तण्डुल-जल से पीसकर प्रदर-रोग में पीने से आराम होता है।

५—गूलर के रस को मधु के साथ पीने से सब प्रकार के प्रदर-रोग में आराम होता है।

६—बेर का चूर्ण या लाख का चूर्ण घी के साथ और कच्चा केला दूध के साथ पीने से प्रदर-रोग में आराम करता है।

७—अशोक की छाल को दूध के साथ पीने से प्रदर-रोग शान्त होता है।

८—शङ्ख पुष्पी की जड़ को तण्डुलोदक के साथ पीसकर पीने से प्रदर रोग में लाभ होता है।

९—जपा के फूल को काँजी के साथ पीसकर अथवा मालकंगनी के पत्तों को घी में भूनकर अथवा दूर्वा को पीसकर काँजी के साथ लेने से स्त्री ऋतुमती होती है।

१०—कटुतुम्बी के बीज, दन्तीमूल, पिप्पली, गुड़, मैनफल, सुवा, मुलहट्टी, मिलित ८ माशे और थोरका दूध ८ माशे इनको आग में पकाकर बत्ती बनाकर योनि में रखने से लाभ होता है।

११—ढाक के फल, गूलर, तिल तैल इनको मधु में मिलाकर लगाने से योनि में गाढ़ता आती है।

शास्त्रीय औषध—कुमारिकासव, प्रदरान्तक लौह, रजः प्रवर्त्तनी गुटिका, एलुवा (एलोज़) की गोली।

गर्भाशय शोथ

गर्भाशय की श्लैष्मिक कला में शोथ दे प्रकार का होता है—एक नवीन और दूसार पुराना।

नवीन शोथ का कारण—प्राय: कीटाणुवों का संक्रमण है, जो गर्भपात या प्रसव के समय अथवा योनि परीक्षा के समय शुद्धताई का ध्यान न रखने से हो जाता है। इस रोग के कारण शारीरिक लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे—ज्वर रहता है, जो९९ से १०५ तक पहुँच जाता है। कभी-कभी मृदु ज्वर रहता है, रोगी शिकायत करता है कि वस्ति प्रदेश में दर्द रहता है और दुर्गन्धयुक्त, पीब मिश्रित या रक्त मिश्रित स्राव भी कभी-कभी योनि मार्ग से आता रहता है। परीक्षा करने पर योनि उष्ण मालूम पड़ती है, और स्राव सूखा हुआ होता है। यदि यह रोग सूतिका रोग से मिला हो तो भयानक होता है, नहीं तो उचित उपायें से चला जाता है।

इस रोग की चिकित्सा—रोगी के पूर्ण विश्राम देना चाहिये। ज्वर की साधारण चिकित्सा करनी चाहिये। स्थानिक चिकित्सा के लिये योनि मार्ग और गर्भाशय का प्रक्षालन उत्तर वस्ति से करना चाहिये। इसके लिये निम्न औषधियाँ उत्तम हैं। जैसे—विनी-आयोडाईड ऑफ मर्करी (१:१०००८), कार्बोलिक एसिड (१: ४०), सिल्वर नाईट्रेट (१: ५००), जिंक क्लोराइड (१%)। धोने के पीछे गर्भाशय को किसी तेज दाहक वस्तु से लिप्त कर देना चाहिये। जैसे—आयोडाईज्ड फिनोल (आयोडीन १ भाग, कार्बोलिक एसिड ४ भाग) या, जिंक क्लोराइड १०% का या लिनिमैन्ट आयोडीन इनको रुई में लगाकर उसके द्वारा गर्भाशय में लेप करके रुई को बाहर फेंक देना चाहिये। साथ में रोगी को गरम पानी के अन्दर भी बिठाना चाहिये। दर्द के लिये निचले भागों पर और सीवन पर उष्ण सेक करना चाहिये।

चिरकालीन गर्भाशय शोथ—इसका कारण नूतन शोथ होता है। अथवा गनोरिया या अन्य कोई संक्रमण। तीसरा कारण गर्भपात है।

लक्षण—१—दर्द जो कमर में रहता है, वहाँ से जङ्घाओं में आता है, कोष्ठ में भारीपन रहता है। २—श्वेत प्रदर—योनि-मार्ग से श्वेत अण्डे

की भाँति का स्राव होता है, जिसमें म्युकस-श्लेष्मा तथा एपीथीलीयम होते हैं। कभी-कभी इस स्राव में पीव भी होती है। ३—अत्यार्त्तव—ऋतुकाल में अधिक रक्त आता है।

इस रोग की चिकित्सा—इसके लिये उष्ण वस्ति तथा वातहर तैल बरतने चाहिये। जैसे—एरना तैल, मूसिकादि तैल।

गर्भाशय भ्रंश—इसके कई रूप हैं।

कारण—१—गर्भाशय को बाँधनेवाले स्नायु तन्तुओं का ढीला हो जाना। इसका कारण बार-बार गर्भवती होना होता है।

२—गर्भाशय के सिर ऊर्ध्व भाग में भार का बढ़ना, जो गर्भाशय में रक्त-संचय होने से, गर्भावस्था से अथवा अर्बुद से हो जाता है।

३—गर्भाशय के सन्मुख किसी प्रकार का भार पड़ने से।

४—किसी प्रकार के आकस्मिक आघात से या गिरने से।

५—वस्तिगह्वर की सूजन के कारण तीव्र संकोचों के कारण।

उपरोक्त भेदों के अतिरिक्त कई बार गर्भाशय गुदा की भाँति बाहर भी आजाता है। इस अवस्था में उचित रूप से इसको अन्दर वापिस करके पेसरी या मूषिकादि तैल आदि का उपयोग करना चाहिये।

डिम्ब कोष की शोथ—कई बार कीटाणुओं के संक्रमण के कारण डिम्बकोष में भी सूजन हो जाती है। इससे पेडू की बाजू में दर्द रहता है, मूत्र लाल, पार्श्व में गाँठ आम की गुठली जैसी सूजन प्रतीत होती है। मल-त्याग में दर्द होता है, ज्वर, वमन आदि लक्षण होते हैं। यदि यह पक जाय तो अन्दर फटकर विष को सारे शरीर में फैला देती है। इसकी चिकित्सा विद्रधि की भाँति करनी चाहिये। अफीम और बेलेडोना को ग्लैसरीन में मिलाकर लगाना चाहिये। पकने पर चिकित्सक के चाकू से चिकित्सा करवानी चाहिये। रोगी को पूर्ण आराम देना चाहिये। विरेचन से आँतों को खुला रखना चाहिये।

गर्भाशय-मुख का व्रण—गर्भाशय के मुख पर आघात पड़ने से कई बार रक्तस्राव हो जाता है। प्रायः यह आघात औजार के उपयोग करते समय हो जाता है। इसके कारण कमर में दर्द रहता है, योनि से रक्त या स्राव जाता रहता है।

उपाय—पंचवल्कल काढ़ा से अथवा माजुफल के काढ़ा से धोना चाहिये। फिटकड़ी या जस्त के पानी की पिचकारी मारनी चाहिये। टैनिक एसिड की बत्ती रखनी चाहिये। टैनिक एसिड ग्लैसरीन का लगाना भी उत्तम है।

श्वेत प्रदर

साधारणत: योनि, योनिमार्ग आदि के चिकना रखने के लिये इन स्थानों की ग्रन्थियों से पानी झरता रहता है और सम्भोग के समय संघर्षण के बचाने के लिए पानी कुछ अधिक मात्रा में भी आजाता है। इससे यह भाग तर रहता है। परन्तु निम्न कारणें से यह स्राव बढ़ जाता है, जिससे यह बाहर आकर कपड़ों के भी खराब करने लगता है। इस स्राव में दुर्गन्ध तथा भित्तियों के सैल्स या कोष्ठक भी होते हैं। इसके कारण रोगी का शरीर क्षीण होता जाता है।

कारण—विरुद्ध आहार-विहार से, अति मैथुन से, बार-बार गर्भ-पात होने से, प्रसव के पीछे या निर्बलता की अवस्था में सम्भोग करने से, अनुचित उपायों से कामेच्छा पूरी करने से, या शरीर के निर्बल करनेवाले अन्य रोगों के कारण योनि से श्वेत स्राव जाता रहता है।

लक्षण—स्राव देखने में पतला, पीला श्वेत, यदि पीब से मिला होगा ते हरा और मात्रा में बहुत अधिक होता है। इसकी प्रतिक्रिया बहुत ही हल्की अम्लीय होती है, या उदासीन होती है अथवा बहुत ही तीव्र क्षारीय होती है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से इसमें पीब के सैल, भित्तियों के सैल्स और कीटाणु मिलते हैं। शारीरिक लक्षणों में—जोड़ों का टूटना, दर्द, शरीर में दुर्बलता, भ्रम, चक्कर आना, कटि में शूल, प्यास आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—(अन्त: उपाय)—साधारणत: रोगी की शक्ति बढ़ाने का यत्न करना चाहिये। पौष्टिक औषधियाँ तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना आवश्यक है। रसायन चूर्ण, चन्द्रप्रभा, बसन्त-कुसुमाकर, वंगेश्वर, मधूकाद्यवलेह, न्यग्रोधादि चूर्ण उत्तम है। अथवा—१—गूलर को मधु के साथ खाना चाहिये। २—अशोक की छाल को दूध में उबालकर पीना चाहिये।

३—रस-सिन्दूर को वासा के रस के साथ लेना चाहिये। स्वर्णमाक्षिक-भस्म को शहद के साथ देना चाहिये।

(बाह्य उपाय)—पंचत्वक् कषाय से, कदम्ब की छाल के काढ़े से, त्रिफला के काढ़े से, फिटकड़ी के पानी से योनि का प्रक्षालन करना चाहिये।

सोम रोग

स्त्रियों में यह रोग बहुत कम होता है। परन्तु कभी-कभी अति मैथुन करने से, शोक से या श्रम आदि से मूत्र-मार्ग से बहुत पानी जाने लगता है। यह पानी श्वेत, निर्मल, शीत, निर्गन्ध, बिना दर्द के प्रवाहित होता है, इसका रङ्ग श्वेत होता है। इसके कारण स्त्री निर्बल हो जाती है, उसमें शिथिलता आ जाती है, मुख, तालू और गला सूख जाता है। हाथ-पाँव में जलन, अरुचि हो जाती है।

इसकी चिकित्सा के लिये पक्का केला, आँवले का रस, मधु तथा शर्करा खानी चाहिये। २—केला, विदारी, शतावरी इनको दूध के साथ। ३—मुलहठी, विदारी इनको दूध के साथ खाना चाहिये। ४—नागकेशर को खट्टी छाछ के साथ लेना उत्तम है।

न्यग्रोधादि-चूर्ण, चन्द्रप्रभा, बसन्तकुसुमाकर, बंगेश्वर, धात्री-घृत उत्तम हैं।

स्तन का पकना

कई बार स्त्रियों का स्तन पक जाता है। इसका मुख्य कारण यह होता है कि चूचुक का मुँह इतना तङ्ग होता है कि वह बह नहीं सकता या थोड़ा-थोड़ा करके आता है। अथवा दूध के विकार से दुग्ध ग्रन्थियाँ पककर विद्रधि उत्पन्न कर देती हैं। अथवा शिशु के मर जाने पर जब दूध नहीं निकलता उस समय विद्रधि बन जाती है।

लक्षण—प्रायः सब लक्षण विद्रधि से मिलते हैं। स्तन सूज जाता है, उसका स्थान गरम और लाल होता है। छूने से दर्द होता है। कभी-कभी इसके साथ ज्वर, अनिद्रा आदि लक्षण भी मिल जाते हैं।

चिकित्सा—ब्रेस्ट पम्प के द्वारा स्तनों से दूध निकाल देना चाहिये, दर्द के कम करने के लिये उष्ण उपनाह, पुल्टिस (अलसी, आटा, हल्दी, नमक की) या पोस्त के डोडों का सेंक करना चाहिये। जबतक लक्षण तीव्र न हों, तबतक शीत उपचार करना चाहिये। जैसे, चन्दन और लाल-चन्दन का लेप करना चाहिये। जोंक लगवाकर रक्त को निकलवा देना चाहिये। दर्द की वेदना को कम करने के लिये धतूरा और हल्दी का लेप करना चाहिये। पकने पर विद्रधि की चिकित्सा करनी चाहिये।

जिस स्त्री के स्तन या चूचक छोटे हों, उसको चाहिये कि वह उनको खींचे, बार-बार बच्चे के मुँह में देवे अथवा काशीसादि तैल का उपयोग करे।

मेद-रोग

कई स्त्रियाँ शरीर से इतनी फूल जाती हैं, कि वह रोग की भूमि बन जाती हैं। शरीर में चर्बी के बढ़ने से ऋतु आना बन्द हो जाता है, इससे ये औरतें प्रायः बाँझ रहती हैं। इसके अतिरिक्त पेट विशेष फूल जाता है। कइयों में यह रोग एक बच्चे के जन्मने के पीछे ही हो जाता है।

कारण—व्यायाम न करने से, दिन में सोने से, श्लेष्माकारक भोजन के खाने से पेट में चर्बी बढ़ जाती है। इस चर्बी के बढ़ने से अन्य धातुओं का पोषण नहीं होता। इससे स्त्री सब कामों में अशक्त हो जाती है।

उपाय—इस रोग की चिकित्सा में औषधि उतना कार्य नहीं करती, जितना आहार-विहार के नियम करते हैं। स्त्रियों को चाहिये कि (१) सादी खूराक (जौ आदि) लेवें, परिश्रम करें, दिन में न सोयें, व्यायाम करें (२) पेट को साफ करनेवाली औषधियाँ तथा जैलेप, एलुवा, हींग आदि देने चाहिये। (३) ऋतु लाने का उपाय करना चाहिये।

औषधियाँ—१—त्रिफला क्वाथ को मधु के साथ पीना चाहिये।
२—अमृतादि गुग्गुल (गिलोय १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, विडंग ३ भाग, कुटज ४, इन्द्रजौ ५, हरीतकी ६, आमलकी ७ और गुग्गुल ८

भाग) इनको मधु के साथ सेवन करना चाहिये। योगराज गुग्गुल, रास्नादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ भी उत्तम है। जौ या गेहूँ का सत्तू खाना चाहिये।

हिस्टीरिया

आर्य-चिकित्सा के पण्डित इस रोग का समावेश वात-व्याधि में या अपस्मार में करते हैं, और अनार्य चिकित्सा के विद्वान इसकी गिनती मस्तिष्क रोगों में करते हैं, जो बहुत कुछ समान ही है।

कारण—इस रोग का कारण मस्तिष्क-स्नायुवों की निर्बलता है। यह निर्बलता या तो पैतृक होती है, अथवा स्वयं उत्पन्न हुई होती है। उदाहरण के लिये यदि अपूर्ण अवस्था ही में उसके मष्तिष्क में प्रेम तथा कामेच्छा को उत्पन्न कर दिया जाता है, तो उसको यह रोग हो जाता है। कइयों में यह रोग ऋतु के बन्द होने से या ऋतु-विकार के कारण होता है। भय, शोक, मैथुनेच्छा, काम-विकार आदि मानसिक अवस्थायें भी इस रोग का कारण बन जाती हैं। कई बार पुरुष या पति से विरक्ति होने पर या पेट में कृमि या मलबन्ध रहने से भी यह रोग हो जाता है।

लक्षण—इस रोग के लक्षण असंख्य हैं। रोगी अचानक गिर पड़ता है, हँसता है, रोता है, मुँह लाल हो जाता है, चिल्लाता है। इन रोगों की शिकायतें प्राय: भय-सम्बन्धी होती हैं। जैसे—मैं जल रही हूँ, पानी दो। मुँह से बदबू आती है। जीभ बेस्वाद हो जाती है। दाँत भिंच जाते हैं।

उपाय—इस प्रकार का यत्न करना चाहिये कि रोगी किसी प्रकार से अपने शरीर को नुक़सान न पहुँचाये। उसको बिस्तर पर लेटाकर ठण्डे पानी के छींटे देने चाहिये, पंखे से वायु करनी चाहियें, गले आदि के सब तंग वस्त्र खोल देने चाहिये। बेसुधि दूर करने के लिये नौसादर और चूना मिलाकर सुँघाना चाहिये। जबतक रोगी होश में न आये, तबतक कोई भी दवाई मुँह से नहीं देनी चाहिये। दौरा शान्त होने पर कारण के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। पेट को साफ़ करने के लिए विरेचन देना चाहिये। ऋतु-सम्बन्धी विकार हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। साधारणत: पौष्टिक औषधियाँ एवं सम्भोग की तृप्ति इस रोग को शान्त कर देती हैं।

पौष्टिक औषधियों में—योगेन्द्ररस, स्वर्ण बसन्तमालती, चिन्तामणि चतुर्मुख, योगराज गुग्गुल, रास्नादि काढ़ा के साथ देना चाहिये।

रोग को शान्त करने के लिये हींग को जिङ्क वेलरीयन के साथ (जिंग वैलरीनास ३ ग्रेन और पिलएसे फिटेडा कम्पाउन्ड २ ग्रेन) देना चाहिये। इसके साथ एक्स्ट्रैक्ट वैलेडोना तिहाई ग्रेन एक्स्ट्रैक्ट कैनेबिस इन्डिका चौथाई ग्रेन भी मिला सकते हैं।

कुछ युनानी औषधियाँ

रज न आने पर—१—बूल १०॥ माशे, तिर्बिस १७॥ माशे, तुलसी के पत्ते, पोदीना, पहाड़ी पोदीना, मजीठ, हींग, कुन्दल, गोंद, जवाशीर प्रत्येक ७ माशे, इनकी टिकिया बनाकर देवदारु के काढ़े के साथ देना चाहिये। २—जुन्दबेदस्तर १॥ माशे, नीले सौसन की जड़ ९ माशे, पुदीने का पानी दो गिलास, शहद ३१॥ माशे, ये दो बार में पिलावे। ३—लाल लोबिया, मेथी, रूमी सौंफ प्रत्येक १०॥ माशे, मजीठ अधकुचली १४ माशे, इनका काढ़ा करके शिकंजबीन ४५ माशे के साथ दे। ४—पुदीना १४ माशे, देवदार २८ माशे, तुलसी ३५ माशे, मुनक्का ७० दाने इनको कूट-छानकर बेल के पित्ते में मिलाकर भग, योनि-द्वार पर लगाने से रज आने लगता है।

अत्यार्त्तव में—१—कतीरा, नशास्ता, सभग अर्बी, ककड़ी, खीरे की मींग प्रत्येक ३॥ माशे, अनार के फूल ७ माशे, अकाकिया कहरुवा ३॥ माशे, बारतंग के पानी में इनकी गोली बनावे। मात्रा ४ माशे। अनुपान खुर्फा का शरबत या शर्बत अंजवार। २—सुर्मा, अनार के फूल, फिटकिरी, सुहागा, कुन्दरू के गोंद का बुरादा, माजू अकाकिया समान भाग लेकर, इनकी लम्बी-लम्बी बत्ती बनाकर योनि-द्वार में रखने से रज बन्द हो जाता है।

गर्भ रहने की दवाई—पाषाण भेद और मेंहदी को पीसकर हाथ पर लगाने से गर्भ नहीं रहता। संभोग से पूर्व पुदीने को योनि में रखने से भी यही लाभ होता है।

गर्भवती स्त्री की पहचान—२२॥ माशे शहद को ठण्डे पानी में मिलाकर सोती औरत को पिला देना चाहिये। यदि नाभि के आसपास दर्द

मालूम पड़े, तो स्त्री गर्भवती है, नहीं तो नहीं। २—अगर अथवा किसी सुगन्धित वस्तु को किसी बर्तन में बन्द करके, इस प्रकार से धुंवा मूत्रमार्ग पर दे कि कहीं और जगह से धुंवा न जाय। यदि अगर की गन्ध स्त्री की नाभि पर पहुँचे, तो गर्भवती है, नहीं तो नहीं। ३—जराबन्द को कूटकर शहद में मिलावे। इसमें ऊन मिलाकर मूत्रमार्ग में रक्खे, दोपहर तक कुछ न खाये। यदि स्त्री गर्भवती होगी, तो मुँह में इसका स्वाद मालूम होता है, नहीं तो नहीं। मीठा स्वाद मालूम पड़े, तो लड़का, और कड़ुवा स्वाद मालूम होने पर लड़की होती है।

गर्भपात को रोकने के लिये—१—कचूर, दरूनज अकरबी प्रत्येक ७ माशे, अनबिधे मोती, कहरवा, अगर, प्रत्येक १०॥ माशे, छड़ीला बालछड़ प्रत्येक १० माशे, कूट-छानकर शहद में मिलावे। मात्रा ४॥ माशे।

२—**दिवालमुश्क**—अनविधे मोती, कहरुवा, मूंगे की जड़, कच्चा रेशम, कतरा हुआ कचूर, दरूनज अकरबी, प्रत्येक ४॥ माशे, बहमन सफेद, इलायची, बालछड़, लौंग, तेजपात, छरीला, प्रत्येक ३॥ माशे, जुन्दबेदस्तर, पीपल, सौंफ, प्रत्येक १॥। माशे कोई-कोई हकीम जुन्दबेदस्तर ३॥ माशे कस्तूरी २ रत्ती मिलाते हैं। इनको कूट-छानकर तिगुने शहद में माजून बनावे। मात्रा ४॥ माशे।

शीघ्र प्रसव के उपाय—१—अमलतास का छिलका १८ माशे कूट-कर बनफशे के शर्बत के साथ देना चाहिये। २—हींग और जुन्दबेदस्तर, दालचीनी इनके चूर्ण को शहद में खाना चाहिये। ३—जुन्दबेदस्तर शिलारस १॥ माशे प्रत्येक, दालचीनी और देवदार प्रत्येक १॥ माशे, इनको शहद में चटावे।

मृत बालक को बाहर निकालना—१—इन्द्रायन का गूदा, कूठ, सूखी तुलसी प्रत्येक १०॥ माशे, दूल ३॥ माशे, कूट-छानकर बेल के पत्ते में मिलाकर नाभि पर लेप करना चाहिये। २—कूल, जवाशील, कन्दल, गोंद बराबर लेकर गोली बनावें। मात्रा १०॥ माशे। ३—इन्द्रायन का गूदा योनि में रक्खे या कबूतर की बीट और सांप की केंचुल की धूनी देनी चाहिये।

प्रसव के पीछे का रक्त रुक जाने पर—अजवायन के बीज,

सौंफ, हन्सराज, जङ्गली पुदीना, इनको औटाकर, मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिये। गधी के दूध से गर्भ-स्थान को धोना चाहिये।

गर्भ गिराने का उपाय—हजार स्पन्द के बीज खाना और बिलासाँ का तेल कपड़े में लगाकर मूत्र के स्थान पर रखना बालक को गिराता है। हींग, गन्दा पिरोजा, बखूर मरियम इनका भग-स्थान पर लेप करना चाहिये। इन्द्रायन का गूदा, कूठ, तुलसी के पत्ते, प्रत्येक ७ माशे सबको महीन करके, बेल के पत्ते में मिलाकर नाभि पर लेप करना चाहिये।

अँग्रेज़ी दवाइयाँ

गर्भपात को रोकने के लिये—अफीम और इसके समास, हाई-ड्रैसरिस, वाईवरनम।

एमैनोरिया नष्टार्तव—सीमीसीप्युज, एलोज, नौसादार, अरगट एविओल, पलसेटिल्ला, आरसैनिक क्युनीन, गरम स्ट्रिजवाल, ग्वायकम।

कष्टार्तव—सीमीसीप्युज, स्प्रिट ईथर नाईट्रोसी, एनीमोनीन, फीनेजोन, एपिओल, क्युराईल क्लोरल हाईड्रेट. कैनविस इंडिका, गोसोफाई, सोडियम ब्रोमाइड, पलसेटिल्ला, वाइवरनम, एकोनाईट, एलोज।

अत्यार्तव—एसिड गैलिक, कैलशियम क्लोराईड, अरगट, डिजीटेलस आयर्न, फिटकिरी, बर्फ, फीनेजोन, कैटक्यु, एडरनैलिन क्लोराईड।

रक्त-स्राव प्रसूति के पीछे का—अर्गट, कैनविस इंडिका, एक्स-ट्रैक्ट गोसिफाई, लिक्डि हाईड्रैसरिस, नक्सवोमिका, अफीम, डिजीटैलिस सीमीसीप्युज।

दूध बढ़ाने की—लैकटिक एसिड, टिंचर जैवरैन्डि, पिलोकारपीन मौल्ट, ग्लीसरी फौस्फेट, एरण्ड-तैल को मालिश।

दूध घटाने की—औरेसीन, वैलेडोना एड्रोपीन, अरगट, तीव्र विरेचन, आयोडाइड ब्रोमाईड। लगाने के लिये ग्लैसरीन वैलेडोना।

प्रकरण ग्यारहवाँ

बाल-रोग-चिकित्सा

इस शीर्षक के नीचे तीन बातों का समावेश किया जाता है।

१—शिशु की परिचर्य्या

२—प्रसवकालीन रोग

३—प्रसव के पीछे होनेवाले रोग

शिशु-परिचर्य्या—नवजात शिशु के जीवित होने का साक्षी मिल जाने पर सबसे प्रथम कार्य नाभिनाल को काटना होता है। नाभिनाल के पीछे जबतक पानी गरम हो, शिशु को फुलालेन में या और वस्त्र में लपेटकर रखना चाहिये। शिशु चूँकि इस प्रकार के गर्म स्थान से आ रहा होता है, जहाँ का ताप-परिमाण १०० अंश फारनाहिट के करीब होता है, इसलिये उसे एकदम शीत से बचाना चाहिये। इसके पीछे शिशु की आँखों को हल्के बोरिक लोशन से धोकर साफ कर देना चाहिये और इनमें कास्टिक लोशन (½) डाल देना चाहिये। इसके कारण यद्यपि शिशु की आँख लाल हो जायगी, तथापि वह कई संक्रामक रोगों से उत्पन्न होनेवाली अक्षि-शोथ से बच जायगा।

इससे पीछे उसके स्नान का प्रबन्ध करना होता है। स्नान के पानी की उष्णिमा ९७ अंश फारनाहिट के लगभग होनी चाहिये। यदि थर्मामीटर पास में न हो, तो कोहनी से छूकर देख लेना चाहिये, जिसको कोहनी की त्वचा सहन कर सके। पानी में स्नान कराने से पूर्व उबटन मलने की प्रथा है। इसके द्वारा शरीर पर की मैल जो गर्भोदक से शिशु की त्वचा की रक्षा करती है, उतर जाती है। कक्षा, वंक्षण, पलकों आदि पर विशेष रूप से मलना चाहिये, जिससे वह उतर जाय। उत्तम है कि साबुन यथा-सम्भव न बरता जाय, चूँकि आँख पर लगाने से कष्ट होता है। स्पंज बहुत ही कोमल होना चाहिये। शिशु को पानी के टब में ३ या ४ मिनिट से अधिक

नहीं रखना चाहिये, और इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसको गोता न दें, जिससे नाल गोली हो जाय। स्नान कराने से पूर्व नाल पर कपड़े या रुई की गद्दी बाँध देनी चाहिये। इस गद्दी में छेद करके नाल को बाहर निकाल देना चाहिये। इसपर पाउडर या कोई शुष्क चूर्ण छिड़क देना चाहिये। इसके पीछे शिशु को आराम देना चाहिये। इसके लिये शिशु को कोमल बिस्तर पर या धात्री के घुटनों पर रखना चाहिये, और वहीं पर शुष्क अँगोछे से साफ़ कर देना चाहिये। उसके पीछे एक पतले फ़लालैन के कपड़े पर लपेट देना चाहिये।

नाभि-नाल—इसके पीछे अब नाल का ध्यान करना चाहिये। एक चार या पाँच इंच का बोरिक लिन्ट का टुकड़ा या किसी स्वच्छ कपड़े की चार पाँच तहें करके उसको आग पर जरा गरम करके, उसमें एक गोल छिद्र बना देना चाहिये। इस छिद्र में से नाल को निकालकर इस कपड़े के दोनों सिरे पीठ की ओर बाँध देने चाहिये। पाँच-छ: दिन में नाल सूखकर अपने आप गिर जाती है। यदि यह स्वयं न गिरे, तो इसको खींचना नहीं चाहिये।

नवजात शिशु को औषधि देना—बहुत-सी दाइयाँ जन्मते हुए शिशु को एरण्ड तैल, या अन्य औषधियाँ देना पसन्द करती हैं; परन्तु साधारणत: इस प्रकार की किसी औषधि की आवश्यकता नहीं होती। शिशु को प्राय: सोने देना चाहिये। उसकी आँखों को प्रकाश से और त्वचा को शीत वायु से बचाना चाहिये। किसी भी प्रकार के पोषण आदि के निमित्त उसको जगाना नहीं चाहिये। साधारणत: ५ या ६ घण्टे के पीछे बच्चा रोता हुआ जागेगा। उस समय इसको स्तन देना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे, १—माता के स्तनों से दूध आयेगा। २—गर्भाशय संकुचित हो जायगा। प्रथम दूध जो स्तनों से आता है, वह मृदु विरेचक गुण रखता है। इससे उसकी आँतें साफ़ हो जाती हैं, और किसी अन्य विरेचन की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु जहाँ पर यह दूध प्राप्त न हो सके, एरण्ड तैल आधा ड्राम की मात्रा में शिशु को दे देना चाहिये। शिशु का मल प्रथम पीला होता है, जिसको 'म्युकोनियम' कहते हैं। यदि तीसरे दिन मल पीला होने की अपेक्षा काला हो, तो आधा ड्राम एरण्ड तैल अवश्य देना चाहिये।

नवजात शिशु का भोजन—जन्मते ही बच्चे को दूध पिलाना अच्छा नहीं है। साधारणत: १० या १२ घण्टे तक शिशु कोई भोजन नहीं माँगता। माता के स्तनों का दूध इतना पर्याप्त होता है, कि शिशु की सब आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकता है। द्वितीय प्रसव में माता प्रथम घण्टों में पर्याप्त दूध शिशु को दे सकती है। यदि दूध न आये, तो अपर्याप्त हो, तो शिशु को दूध और पानी मिलाकर देना चाहिये। और जब माता के स्तनों में दूध उतर आये, तो उसको यह देना चाहिये। प्रथम दस दिनों में जब बच्चा जागे, उस समय दूध देना चाहिये, और पिछले बीस दिनों में दिन के समय प्रत्येक दो घण्टे के अन्तर से और रात्रि मेंप्रत्येक ३ घण्टे के अन्तर से दूध पिलाना चाहिये। अथवा प्रथम महीने मे अधिकतर स्तन पिलाना चाहिये। इससे स्तनों मे दूध का जोर कम हो जाता है। यदि इस बात का अभ्यास डाल दिया जाय कि १० बजे सायङ्काल से ५ बजे प्रात:काल तक बच्चे को दूध न दिया जाय, तो माता को बड़ा आराम रहता है। प्राय: शिशु जब रोता है, तो वह भूख से नहीं रोता, बल्कि प्यास के कारण रोता है। इसलिये उसे गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी थोड़े शहद के साथ देना चाहिये। शहद से उसे मृदु विरेचन भी होगा। बच्चे को बदल-बदलकर स्तन पिलाना चाहिये।

वस्त्र—शिशु के वस्त्र हल्के, ढीले और गरम होने चाहिये। इसके लिये पतली फुलालेन या रेशम और सूत का कपड़ा उत्तम है। कपड़े इस प्रकार से सीने चाहिये कि सुगमता से निकल सकें, पहनाये जा सकें और उनसे शिशु की गति में किसी प्रकार की बाधा न हो। वस्त्र सदा स्वच्छ और शुष्क रहना चाहिये। बच्चा मूत्र और मल प्राय: प्रवाहण करता रहता है। इसके लिये उसके कपड़े उसी समय बदल देने चाहिये। यदि यह न बदले जायँगे, तो त्वचा लाल और सूज जायेगी। पोतड़ा इस प्रकार के कपड़े का होना चाहिये, जो पानी को चूस ले। जब यह ख़राब हो, उसी समय बदल देना चाहिये। कभी भी उन्हें खुश्क नहीं होने देना चाहिये।

शिशु को दूध पिलाना—सबसे उत्तम है कि माता अपना दूध बच्चे को पिलाये। इस दूध से जहाँ उसका शरीर विकसित होता है, वहाँ उसकी मानसिक वृत्तियों पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिये माता को चाहिये

कि दूध पिलाने के समय सदा प्रसन्न रहे। क्रोध के आवेश में, मानसिक चिन्ता में या विमनस्कता में बच्चे को दूध न देवे। यदि वह थोड़ा ध्यान देगी, तो सुगमता से उसके दूध पीने का समय अनुमान कर सकती है। दूध पिलाते समय शिशु की नाक स्तन पर नहीं लगनी चाहिये। दूध पिलाने का समय निश्चित होना चाहिये। प्रथम महीने में दो-दो घण्टे के अन्तर से, दूसरे महीने में भी ढाई-ढाई घण्टे के अन्तर से, और फिर तीन घण्टे के अन्तर से, और फिर चार घण्टे के अन्तर से दूध देना चाहिये। रात्रि में एक या दो बार से अधिक दूध नहीं देना चाहिये। शिशु को पास में अलग बिस्तर पर सुलाना चाहिये। रोते हुये शिशु को चुप करने के लिये दूध देना बुरी आदत है। जबतक रोने का कारण भूख न हो, स्तन नहीं देना चाहिये। माता के गुण बच्चे में इस दूध के साथ उतरते हैं, यह समझकर दूध पिलाना चाहिये। यदि दूध न आता हो, तो दूध बढ़ाने का उपाय करना चाहिये। जैसे—

१—दूध और बिदारी कन्द का उपयोग विशेष रूप में करना चाहिये।

२—वीरण की जड़, शाठी चावल, तालमखाना, दर्भ, कुश, कास, गन्ना, मोथा आदि औषधियों का सेवन करना चाहिये।

३—खूब आनन्द में रहना चाहिये। बार-बार स्तन बच्चे को चुसाना चाहिये।

४—जिस प्रकार प्रेयसी को देखने से, या प्रेम की बातों से कामेच्छा उद्दीप्त हो जाती है, उसी प्रकार बच्चे का शब्द सुनने से, या उसको देखने से माताओं के स्तनों से दूध झरने लगता है। जिस प्रकार गाय बच्चे का शब्द सुनकर दूर से रम्भाने लगती है।

धात्री—कई बार माता के स्तनों में दूध नहीं आता, उस समय दाई का बन्दोबस्त करना पड़ता है और कई बार ऐसा होता है कि फैशन-परस्त औरतें बच्चे को दूध पिलाना अच्छा नहीं मानतीं। तीसरी अवस्था यह है कि (जो प्रायः यूरोपियन औरतों में होती है) एक या दो बच्चे जन्मने के पीछे उनके स्तनों में दूध नहीं आता। इसका कारण स्तनों को अधिक भींच के रखना है। गुजरात में भी बहुत तङ्ग आँगी पहनने की प्रथा है,

इससे उनके स्तन प्रायः छोटे होते हैं।

बच्चे को यदि माता दूध पिलाये, तो उसमें निम्न लाभ होते हैं—

१—बच्चे को दूध पिलाने का काम माता को सन्तोष देनेवाला है।

२—बच्चे को दूध पिलाने से माता और पुत्र में प्रेम बढ़ता है।

३—दूध पिलाने से कामेच्छा उद्दीप्त नहीं होती। स्तनों का और गर्भाशय का आपस में बड़ा सम्बन्ध है।

४—सम्पूर्ण पशु या पक्षी-जगत में यही दिखाई देता है कि माता बच्चे को दूध पिलाती है।

धात्री के गुण—युवती, बच्चे की माँ के समान वर्णवाली, विश्वासी, निरोगी, व्यसन-रहित, देखने में सुन्दर, हँसमुख, गुस्सा न करनेवाली, समान जाति की, कुलवती, जिसका बच्चा जीता हो और दूसरे बच्चे की समान आयु का हो, पुष्कल दूधवाली, कुशल, योग्य कद-वाली, स्वच्छता-प्रिय और उत्तम दूधवाली होनी चाहिये।

उसके स्तन न तो बहुत ऊँचे, न बहुत नीचे, न बहुत लम्बे या न बहुत छोटे, न बहुत मोटे या न बहुत पतले होने चाहिये। स्तनों के चूचक खड़े हुये, कोमल और सुगमता से बच्चे के मुँह में आने योग्य होने चाहियें।

दूध की परीक्षा—शुद्ध दूध पानी में गेरने से तुरन्त पानी में घुल जाता है, पचने में हल्का होता है, मधुर स्वाद-युक्त एवं पानी-जैसा पतला होता है। इसका रङ्ग नीला, श्वेत होना चाहिये। प्रतिक्रिया क्षारीय होनी चाहिये। यदि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखें, तो वसा के टुकड़े पृथक-पृथक तैरते हुए दिखने चाहिये, यह नहीं कि एक चक्का बना हो। पानी में गिराने से शुद्ध दूध डूब नहीं जाता। दूध की परीक्षा धात्री के बच्चे को भी देखकर की जा सकती है। इस बात का विश्वास कर लेना चाहिये कि जो बच्चा धात्री ने दिखाया है, वह उसी-का है।

कृत्रिम दूध—कई बार जब माता के स्तनों में दूध नहीं होता, या रोग के कारण माता का दूध पिलाना उचित नहीं होता, अथवा शिशु दूध स्तनों से न पी सकता हो, या धात्री का प्रबन्ध न हो, तब कृत्रिम दूध का प्रबन्ध करना पड़ता है।

१—गाय, भैंस, बकरी, जिसका भी दूध देना हो, वह निरोगी होना चाहिये। उसको शुद्ध पानी पिलाना चाहिये। उत्तम खाना देना चाहिये,। उसको स्वच्छ रखना चाहिये। उसका दूध स्वच्छ बरतन में दुहकर रखना चाहिये। उसपर मक्खी आदि नहीं पड़ने देना चाहिये। ग्वाला निरोगी होना चाहिये।

२—कभी भी दो प्राणियों का दूध मिलाकर बच्चे को नहीं देना चाहिये।

३—बासी, ठण्डा दूध कभी भी नहीं देना चाहिये।

४—दूध को गरम करके, ठण्डा करके पिलाना चाहिये। बच्चे का दूध जब गरम करना पड़े, तो इसको गरम पानी में रखकर गरम करना चाहिये, सीधा आग पर गरम नहीं करना चाहिये।

५—दूध पचता न हो, तो इसमें एक छोटा चम्मच चूने का पानी मिला देना चाहिये। अथवा बीच-बीच में 'डिल वाटर' देना चाहिये।

६—दूध को बराबर ढककर रखना चाहिये।

७—निम्नलिखित विधि से दूध को हलका करके देना चाहिये :—

	गाय का दूध	पानी
१ मास के बच्चे को	दूध एक भाग	२ भाग पानी
२ मास से ३ मास के बच्चे को	दूध एक भाग	१ भाग पानी
३ " ४ " " "	"	½ " "
४ मास से ५ " " "	"	⅓ " "

छठे मास के बच्चे को गाय का दूध दिया जा सकता है।

८—यदि दूध बोतल से पिलाया जाता है (प्याले की अपेक्षा बोतल से दूध पिलाना उत्तम है) तो इसको पूर्णतः साफ़ रखना चाहिये। उत्तम यह है कि दो शीशियाँ बरती जायें। इनको राख, गरम पानी और सोडे से साफ़ करना चाहिये। साथ ही टोंटियों को भी भली प्रकार साफ़ कर लेना चाहिये।

९—बोतल में दूध छानकर डालना चाहिये, जिससे मलाई न चली जाय। जितना दूध एक बार में पिलाना हो, उतना ही दूध बोतल में डालना चाहिये।

पेटेन्ट फूड्स(डिब्बों का दूध)—भारतवर्ष जैसे अपने देश में इस प्रकार के भोजनों की आवश्यकता नहीं है, जो कई सालों के बन्द हुये डिब्बों में बन्द होकर यहाँ दिन प्रतिदिन आ रहे हैं, और सुन्दर मन-मोहक विज्ञापनों के द्वारा औरतों का चित्त लुभाते हैं। जहाँ पर शुद्ध दूध नहीं मिलता, वहाँ पर शायद इनका कुछ उपयोग भले ही हो। साधारणतः इनकी आवश्यकता नहीं है। ग्लैक्सो, एलनवरी, मैलन्स आदि अनेक प्रकार के दूध चल रहे हैं। कुछ दूध चूर्ण रूप में होते हैं, और कुछ द्रव रूप में। इस प्रकार के दूध पर पाले हुए बच्चे शरीर में निर्बल होते हैं। उनके दाँत टेढ़े-मेढ़े तथा जल्दी सड़ जाते हैं। इनकी पाचन-शक्ति कमजोर रहती है। उत्तम यही है कि यथाशक्ति इनसे बचाया जाय। इनकी अपेक्षा जौ का पानी थोड़े से शहद या नमक के साथ अधिक उपयोगी है।

दूध छुटाना—शिशु का दूध कब छुटाना चाहिये ? इसमें मत-भेद है। बच्चे को दाँत छठे मास में निकलने प्रारम्भ होते हैं। इधर शिशु का शरीर भी बढ़ रहा होता है। इस अवस्था में केवल दूध उसके शरीर के लिये सब प्रकार का पोषक भोजन नहीं दे सकता, इसलिये आवश्यक होता है कि भोजन में कुछ मिलावट की जाय। यह मिलावट इस प्रकार की होनी चाहिये, जो उसको पचा जाय अर्थात् अब उसके भोजन में थोड़ा-सा ठोस भाग मिला-कर आधा द्रवित कर देना चाहिये। इसके लिये सागु, अरारूट या काँजी उत्तम है। इस प्रकार करने से शिशु में जहाँ शक्ति बढ़ती है, वहाँ वह दूध को शनैः-शनैः छोड़ता हुआ ठोस भोजन पर आजाता है। इसका यह अभि-प्राय नहीं कि अब उसको दूध दिया नहीं जायगा। दूध तो दिया जायगा; परन्तु वह माता का या धात्री का न होकर गाय आदि का होगा। साथ में उसका भोजन दूध के अतिरिक्त और ठोस वस्तु भी होगी। इस प्रकार करने से नौ मास में या बारह मास में स्तन का दूध छुटाया जा सकता है। १॥ साल के पीछे कभी भी स्तन का दूध नहीं पिलाना चाहिये। इससे माता का स्वास्थ्य गिर जाता है।

बालकों की सँभाल

१—कभी भी बहुत ठण्डक में या गरमी में बालक को बाहर नहीं

घुमाना चाहिये।

२—इसके वस्त्र साफ-सुथरे खुश्क रखने चाहियें। मल-मूत्रवाले कपड़े तुरन्त बदल देने चाहिये। यदि नये कपड़े न हों, तो उनको सुखाकर, धूप देकर काम में लाना चाहिये।

३—बालक को कभी भी डराना नहीं चाहिये। उनके खिलौने इस प्रकार के होने चाहिये, जिनसे उनको नुकसान न पहुँचे। कैंची, चाकू आदि वस्तुयें नहीं देना चाहिये। या जो वस्तुयें मुख में आसकें, वह नहीं देनी चाहिये।

बालकों के लिये दवाइयाँ

१—सोने को दूध में घिसकर या सोने को आग में तपाकर दूध में बुझाकर देना चाहिये।

२—मधु के साथ सोना घिसकर या स्वर्णभस्म $\frac{1}{2}$ चावल देना चाहिये।

३—बच, ब्राह्मी और शंखपुष्पी का चूर्ण शहद के साथ चटाना चाहिये।

४—बच और अकरकरा को पानी में घिसकर, इसमें थोड़ा शहद मिलाकर देने से बुद्धि बढ़ती है, श्वास या फेफड़ों के रोगों को आराम होता है।

५—अश्वगन्धा $\frac{1}{2}$ तोला, दूध $\frac{1}{2}$ सेर, पानी $\frac{1}{2}$ सेर इनको उबालकर जब दूध शेष रहे, तब छानकर, शहद मिलाकर देना चाहिये। इससे शरीर पुष्ट होता है।

६—सितोपलादि चूर्ण या वंशलोचन, प्रवाल, मोती आदि की पिष्ठि या भस्म शहद के साथ देना चाहिये।

साधारणत: किसी प्रकार की औषधि की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु जिन लोगों को सबर नहीं आता, और अँग्रेजी पेटन्ट दवाइयों पर या डिब्बों के दूध पर विश्वास जमा हुआ है उनको चाहिये कि एक बार आर्य-चिकित्सा की अश्वगन्धा, बिदारी, प्रवाल आदि औषधियों को योग्य वैद्य की सम्मति से बरतकर देख लें।

स्वस्थ शिशु का भार और ऊँचाई—

आयु	ऊँचाई	भार
जन्मते समय		७ पौण्ड
१ म मास	१९॥	७॥ "
२ यं मास	२०॥	९॥ "
३ य मास	२१	११ "
४ र्थ मास	२२	११॥ "
५ म मास	२३	१४ "
६ ष्ठ मास	२३॥	१५ "
७ म मास	२४	१६ "
८ म मास	२४॥	१७ "
९ म मास	२५	१८ "
१० म मास	२६	१९ "
११ वाँ मास	२६॥	२० "
१२ वाँ मास	२७	२१ "

यह भार और ऊँचाई स्तन पीनेवाले शिशु की है।

प्रसवकालीन रोग

कई बार शिशु रुग्ण उत्पन्न होता है, और उसको चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिये कई बार शिशु की गुदा के स्थान पर एक झिल्ली रहती है, जिसको काटना होता है।

शिशु में श्वास-अवरोध—कई बार ऐसा होता है कि उत्पन्न होने पर शिशु चिल्लाता नहीं। उसका चेहरा मुरझाया हुआ, त्वचा लाल, और नाल कठोर तथा स्पन्दन-युक्त रहती है। इस अवस्था में सबसे प्रथम उसके मुँह को, तालु को, गले को रुई के फाहे से अँगुली भर की सहायता द्वारा साफ़ कर देना चाहिये। सब श्लेष्मा या द्रव बाहर निकाल देना चाहिये। तब एक बन्धन नाभि से तीन इञ्च की दूरी पर बाँधना चाहिये, और दूसरा बन्धन १ इञ्च की दूरी पर इसको बहुत कसकर नहीं बाँधना चाहिये। अब नाल को बीच से काटकर ऊपर के बन्धन को कस देना

चाहिये। और जबतक थोड़ा-सा रक्त नाल से न निकल जाय, निचला बन्धन नहीं कसना चाहिये। जिस समय शिशु रोयेगा या श्वास लेगा, उस समय थोड़ा-सा रक्त बाहर हो जायगा। यदि श्वास न चले, तो बारी-बारी से शीत एवं गरम पानी-द्वारा शिशु के हाथ-पाँव, कमर मलना चाहिये, और हृदय तथा छाती पर थोड़ा-सा दबाव देना चाहिये।

कई बार शिशु का चेहरा पीला, शरीर मूर्च्छित, ओष्ठ नीले, जबाड़ी गिरी हुई, हाथ-पाँव ठण्डे होते हैं। नाल में किसी प्रकार का स्पन्दन नहीं होता। इससे पूर्व की नाल बाँधी और काटी जाय, गरम और ठण्डे पानी के छींटे छाती पर देने चाहियें। और मुँह को, गले को साफ़ करना चाहिये। मुँह और नितम्बों पर ठण्डा पानी लगाना चाहिये। गले में अँगुली या एरण्ड-नाल से गुदगुदी करानी चाहिये। नाल के काटने पर शिशु को गरम पानी का स्नान देना चाहिये।

स्तनों का सूजना—प्राय: लड़का और लड़की दोनों में देखा जाता है कि दबाने से श्वेत स्राव चूचकों में से आता है। इसके लिये ठण्डे पानी की गद्दी बाँधनी चाहिये। स्तनों को साफ़ रखना चाहिये।

शिर में शीत लगना—यह प्राय: होता है। उत्पन्न होते ही शिशु को छींके आती हैं। इसके लिये शिशु को शीत से बचाना चाहिये। उसके शिर पर तेल का फाहा रखना चाहिये।

क्लेफ्ट पैलेट (तालु का गिरना)—कई बार शिशु का तालु गिरा होता है, इसके कारण वह दूध चूचकों से नहीं पी सकता। इसके लिये शिशु को चम्मच से दूध देना चाहिये और शल्य-चिकित्सा करनी चाहिये।

नीलिमा—यह स्थिति प्राय: अस्थाई होती है। शरीर की त्वचा ठण्डी और काली रहती है। यह हृदय के विकार के कारण होती है।

शिर के आकार में परिवर्तन—कई बार प्रसव होते समय (विशेषत: औजारों के द्वारा) शिर का आकार बदल जाता है। कई बार इसमें रक्त या पानी भी भर जाता है। इन पिछली अवस्थाओं के लिये बहुत ही कोमल सेंक तथा हलका दबाव करना चाहिये।

नाल से रक्त-स्राव—नाल में दिये हुये बन्धन के खुल जाने से या ढीले हो जाने से रक्त-स्राव हो जाता है। इसके लिये दूसरा बन्धन बाँध देना

चाहिये। रक्त-स्राव को बन्द करने के लिये रुई की गद्दी या बोरिक लिन्ट रख-कर वहीं बाँध देना चाहिये। यदि इससे आराम न हो, तो फिटकिरी २० ग्रेन १ औन्स पानी में मिलाकर लगानी चाहिये।

अक्षि-शोथ—इस रोग के कारण आँखें सूजी हुई, लाल तथा स्राव-युक्त होती हैं। यह प्रायः अस्वच्छता के कारण, प्रसव-मार्ग के संक्रमण से अथवा साबुन के लगाने से, या गनोरिया के कारण होती है। इसके लिये आँख को मृदु बोरिक लोशन से तीन-चार बार दिन में साफ़ करना चाहिये। और आँख में आरजीऐल ५ ग्रेन १ औन्स में डालना चाहिये।

मूत्र की अम्लता—कई बार शिशु बार-बार मूत्र-त्याग करता है, परंतु राशि १०-१५ बूँद होती है। इसका कारण मूत्राशय का विक्षोभ है। जिसका कारण मूत्र की अम्लता है। इतना मूत्र वस्त्रों में सूख जाता है, इससे मूत्र-त्याग का पता नहीं चलता। परन्तु मूत्र बहुत गाढ़ा होता है, इससे कपड़े पर दाग आजाता है। इसके लिये जौ का पानी और साईट्रेट आफ़ मैगने-शिया (२ या ३ ग्रेन) देना चाहिये।

मूत्राघात—कई बार शिशु प्रथम २४ घण्टों में मूत्र-प्रवाहण नहीं करता। जब ऐसा होता है, तो बच्चा रोता है, पाँवों को नाभि पर मोड़ता है, दर्द होता है। इसके लिये उष्ण सेंक आदि पेड़ू पर करने चाहिये। थोड़ा जौखार ½ रत्ती गरम पानी में चम्मच से दे देना चाहिये। यदि शिशु पुल्लिङ्ग हो, तो त्वचा को हटाकर कारण को देखना चाहिये। कई बार छिद्र के तङ्ग होने से या त्वचा के तङ्ग होने से (फाईमोसिस या पैरा फाईमोसिस) ऐसा हो जाता है। इसलिये यदि यह कारण हो, तो इसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

वमन—कई बार शिशु स्तन पीने के पीछे तुरन्त ही वमन कर देता है। इसका कारण दूध का अधिक मात्रा में भरना है या शिशु का जल्दी-जल्दी पीना है, जिसको उसका आमाशय पचा नहीं सका। इसको रोकने के लिये चूची के पास अँगुली रखनी चाहिये, जिससे वह शीघ्र पी न सके।

कामला—प्रायः थोड़ी मात्रा में कामला प्रत्येक नवजात शिशु में मिलता है। साधारणतः इस रोग की चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं होती। यदि त्वचा, आँख पीली हो जाय, मूत्र का रङ्ग गाढ़ा पीला हो, मल श्वेत आता हो,

तो हाइड्राजराई कमकोटा ½ ग्रेन, सोडा बाई कार्ब १ ग्रेन के साथ देना चाहिये और एरण्ड तैल १ ड्राम देने से विरेचन करा देने पर भी आराम हो जाता है। हल्दी, देवदार, सालकाष्ठ, गजपिप्पली, बृहती, कण्टकारी, पीठ-पर्णी, सौंफ इनको मधु और घी के साथ खाने से कामला, ग्रहणी ज्वर रोग नष्ट होते हैं।

प्रसव के पीछे होनेवाले रोग

जिस प्रकार कई रोग बड़ी आयु में मिलते हैं, उसी प्रकार कई रोग छोटी आयु में भी मिलते हैं। जैसे, दाँत के आने से उत्पन्न विकार, अथवा गर्भिणी स्त्री का दूध पीने से विकार बच्चों में मिलते हैं।

बालकों के रोगों का कारण—ऋतु, हवा, पानी, संक्रमण आदि सामान्य कारणों के अतिरिक्त और बहुत-से कारण माता के साथ सम्बन्ध रखते हैं। उदाहरण के लिये—(१)माताओं का मिथ्या आहार-विहार शिशु को भी रोगी बना देता है। माता को दी हुई विरेचक दवाई (एरण्ड तेल या अफीम) या स्तम्भक दवाई शिशु पर भी प्रभाव करती है। (२) दूसरा कारण दाँतों का निकलना है। इस समय प्रायः सब शिशु थोड़े या बहुत रोगी हो जाते हैं। (३) खाने या भोजन-सम्बन्धी विकार से।

परीक्षा—बच्चों के रोग की परीक्षा बहुत ही कठिन काम है। डाक्टर हैचिन्सन के शब्दों में "बच्चों की चिकित्सा करनी उसी प्रकार की है, जिस प्रकार किसी देश की भाषा न जानते हुये वहाँ के मनुष्यों का इलाज करना है"। शिशु अपरिचित आदमी को देखकर रो पड़ता है, हाथ से छूने नहीं देता, मुँह से बोल नहीं सकता, दूसरे से बता नहीं सकता। उसके विषय में जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है, वह उसकी माता से या दाई से मिलता है। साधारणतः शिशु का मल, मूत्र और दूध लेने की अवस्था बहुत कुछ बता देती है। साधारणतः दर्द वाले स्थान पर शिशु हाथ नहीं लगने देता। पेट में दर्द होने पर पाँव को नाभि या कोष्ठ पर मोड़ लेता है। मूत्र में शर्करा या पथरी होने पर इन्द्रिय को खींचता है।

ज्वर—इस रोग का कारण अजीर्ण, कोष्ठ-बद्धता या शीत होता है। यदि प्रथम दो कारण हों, तो उत्तम यह है कि शिशु को हरड़ या

रेवतचीनी अथवा एरण्ड तैल का मृदु विरेचन देना चाहिये। और लंघन कराकर गरम पानी यथेष्ठ थोड़ा-थोड़ा चम्मच से देना चाहिये। इसमें थोड़ा-सा सेंधा-नमक मिला देना चाहिये। यदि नमक न ले, तो शहद मिला देना चाहिये। कैलोमल या हाइड्राजराई कमक्रीटा को उचित मात्रा में सोडा बाई कार्ब के साथ मिलाकर देना चाहिये। जब मल साफ हो जाय, तो अतीस को (२ से ५ ग्रेन) मधु में मिलाकर चटाना चाहिये। कृष्णादि चूर्ण और घनादि चूर्ण को मधु के साथ देना चाहिये। क्युनोन को भी उचित मात्रा में पल्व रिह्राई कम्पाउन्ड के साथ देने से लाभ होता है। दवाई को माता के दूध में या गरम पानी में घोलकर देना चाहिये।

अतिसार और मरोड़ा— मेद रोग प्रायः शिशुओं में होता है। इन रोगों का वास्तविक कारण माता का शिशु-पालन-सम्बन्धी अज्ञान है। अजीर्ण और मलबन्ध प्रायः इसके कारण होते हैं। इस अवस्था में प्रायः एरण्ड तैल या कोई भद्र विरेचन देना उत्तम है। और दूध पिलाने का अन्तर बढ़ाकर गरम पानी या चूने का पानी देना चाहिये। अतिसार या मरोड़ा रोग में बिना यह निश्चय किये कि आतें साफ होगई, किसी प्रकार की स्तम्भक औषधि अफीम आदि नहीं देनी चाहिये। यदि दस्तों का रङ्ग हरा पीला हो, तो कैलोमल या ग्रे पाउडर को पल्व रिह्राई कम्पाउंड के साथ देना चाहिये। और जब यह निश्चय हो जाय कि आँतें साफ हैं, तो पल्व एपिकाक कम्पाउन्ड सोडाबाई कार्ब के साथ दे सकते हैं।

कुछ सरल उपाय—(१) मजीठ, धाय के फूल, पद्माख, आँवला, शूकशिम्बी मूल इनके कल्क को मधु के साथ देने से; (२) मोचरस, मजीठ, धातकी, पद्मकेसर मधु के साथ देने से, (३) तिल और मुलहठी के चूर्ण को तिल तैल, शर्करा और मधु से मिलाकर सेवन करने से अतिसार, (४) अंकोठ की जड़ या बड़ की जड़ इनको पीसकर देने से, (५) बिल्व, इन्द्रजौ ह्रीबेर, मोचरस और नागरमोथा मिलित २ तोला, बकरी का दूध १ पाव, जल एक सेर पाक करके १ पाव दूध शेष रखकर देने से अतिसार नष्ट होता है (६) आम, जामुन इनकी छाल के चूर्ण को मधु के साथ देना चाहिये। माता को लङ्घन करना चाहिये।

ज्वरातिसार—ज्वर के साथ यदि अतिसार रहता हो, तो पाचक औषधि देनी चहिये। जैसे अतीस इसको दिन में तीन बार मधु के साथ

(१ से ३ रत्ती मात्रा में) चाटना चाहिये। शृंग्यादि चूर्ण भी उत्तम है।

(१) धाय के फूल, बिल्व, धनिया, लोध्र, इन्द्रजौ, बाला इनको मधु के साथ (२) बिल्व, धातकी, लोध्र, गजपिप्पली, इनको काथ को मधु के साथ (३) सोंठ अतीस, मेथी, इन्द्रजौ बालक, इनका काथ प्रातः देना चाहिये।

कास—यह एक ऐसा रोग है, जिसके साथ बहुत-से रोग लगे हुये हैं। अतः इसकी उपेक्षा कभी भी नहीं करनी चाहिये। शिशु को शीत से बचना चाहिये, उसकी छाती पर कपूर और मीठा तेल मलना चाहिये। खाँसी का वेग वमन करने से कम हो जाता है।

(१) पोहकर मूल, अतीस, काकड़ाशृंगी, पिप्पली, धमासा, इनके चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से (२) द्राक्षा, धमासा, हरीतकी, पिप्पली, इनके चूर्ण को घी और मधु के साथ सेवन करने से, (३) पिप्पली, नागरमोथा, अतीस, काकड़ाशृंगी के चूर्ण को मधु के साथ देने से कास रोग शान्त होता है।

कुकुर कास—यह रोग संक्रामक माना जाता है। इसमें शिशु लगातार १ या दो मिनट तक खाँसता रहता है, फिर एक 'हुप' की आवाज के साथ समाप्त करता है। इस तरह खाँसने में उसे श्वास में कठिनता होती है, चेहरा लाल होना है, आँखें बाहर आजाती हैं, कोष्ठ की मांस-पेशियां कड़ी हो जाती हैं, और कभी-कभी इस परिश्रम से उसे ज्वर भी हो जाता है। यदि इस परिश्रम में उसे वमन हो जाय, तो कुछ समय के लिये शान्ति पड़ जाती है। यह रोग एक बच्चे से दूसरे बच्चे में पहुँच जाता है। खाँसते-खाँसते कभी आक्षेप भी हो जाते हैं, विशेषतः यदि पेट में कृमि होते हैं तो।

इसके लिये शिशु को गरम रखना चाहिये। और शामक औषधियाँ यथा—ब्रोमाईड, टिंचर वैलेडोना, टिंचर कैनबिस इन्डिका, अफीम आदि का समास देना चाहिये।

काकड़ाशृंगी, नागरमोथा और अतीस इनके चूर्ण को मधु के साथ चटाने से कास, श्वास, ज्वर रोग शान्त होते हैं। अथवा अतीस ही को शहद के साथ चटाना चाहिये।

ससर्णी—इस रोग का कारण फेफड़ों में श्लेष्मा का रुक जाना है। बच्चे के अन्दर इतनी शक्ति नहीं होती कि वह बाहर फेंक सके। इसके लिये

चार देने चाहियें, जिनसे श्लेष्मा पिघलकर बाहर आजाय। इसके लिये एमोनिया कार्ब, पोटाशियम आयोडाईड, वाइनम एन्टोमेनियल, स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक उत्तम औषधियाँ हैं। अथवा पिप्पली, कायफल और काकड़ाश्रृंगी के शहद में चाटना चाहिये। छाती पर पान और आक के पत्ते घी लगाकर गरम करके बाँधने चाहिये। मयूरपिच्छा (मोर के पङ्ख) के भस्म के पिप्पली चूर्ण के साथ चाटना चाहिये।

वमन—अजीर्ण के कारण प्रायः वमन होता है। कभी-कभी दूध के दोष से भी वमन होता है। यदि शिशु दूध पीकर तुरन्त या कुछ समय पश्चात् वमन करता है, ते इसका कारण अजीर्ण होता है। इसके लिये मृदु विरेचन देकर चूने का पानी या डिलवाटर देना चाहिये। भोजन में दूध और गरम पानी देना चाहिये। अथवा छोटी इलायची, लैांग और पोदीने का पानी पकाकर देना चाहिये। आम की गुठली, लाजा और सैन्धव इनको मधु के साथ मिलाकर चटाने से; छोटी और बड़ी कटेरी का रस अथवा पंचकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चविका, चित्रक, सोंठ) के साथ दूध पकाकर देना चाहिये।

शूल—वायु के कारण, कृमि के कारण अथवा कब्ज के कारण या कीज आदि के सबब पेट में दर्द होता है। इसके लिये विरेचन देकर मल को साफ करना चाहिये। हरड़ के घिसकर उसमें काला नमक या सोडा मिलाकर देना चाहिये। एरण्ड तैल पिलाना चाहिये। आँतों को साफ करने के लिये 'ग्लैसरीन सपोजैटरी' गुदा में रखनो चाहिये अथवा ग्लैसरीन को पिचकारी करनी चाहिये। गरम पानी में फुलालेन उबालकर उस पर तारपीन के तेल के छींटे देकर पेट पर बाँधना चाहिये। पेट के ऊपर हींग, सेन्धा-नमक, यवक्षार, शोरा, बकरी की लेंड़ी का गरम लेप करना चाहिये।

सैन्धव, बिल्व, इलायची, हींग, भारंगी इनके चूर्ण को घी के साथ चाटने से अथवा जल के साथ पान करने से बालकों का वातिक शूल नष्ट होता है।

कृमि-रोग—बालक के पेट में छोटे-बड़े कृमि होते हैं। इससे वमन, पेट में दर्द, आक्षेप, नींद में रोना या चौंक उठना, नींद में दाँत बजाना, अतिसार आदि उपद्रव होते हैं। इसके लिये सैन्टोनीन के उचित मात्रा में

कैलोमल या सोडा बाइ कार्ब के साथ देकर ऊपर से विरेचन देना चाहिये। इन्द्रजौ, वायविडङ्ग, अतीस, अजवायन खुरासानी, ढाक के बीज, ये सब वस्तुयें कृमियों को मारनेवाली हैं। ऊपर से विरेचन अवश्य देना चाहिये। भोजन में दूध देना चाहिये। मिठाई या गेहूँ आदि वस्तु नहीं देनी चाहिए।

पेट में भार (मलबन्ध)—इसके लिये बच्चे को एरण्ड-तैल देना सबसे उत्तम है। अथवा आजकल बाजार में 'लीक्विड-पैराफीन' के कई रूप बिक रहे हैं, जैसे, केलोल, पेट्रोगोल आदि। इनमें से कोई एक वस्तु नियमित रूप में देनी आरम्भ कर देनी चहिये। यदि माता के दूध में वसा कम हो, तो ऊपर का दूध देना चाहिये। यदि यह सम्भव न हो, तो रेवतचीनी को घिसकर देना चाहिये।

दाँत फुटने लगें—इस समय साधारणतः किसी विशेष चिकित्सा को आवश्यकता नहीं होती। जो उपद्रव खड़े होते हैं, वे सब स्वयं शान्त हो जाते हैं। दाँतों के निकलने के समय यदि मृदु विरेचन बालक को दे दिया जाय, तो उत्तम रहता है। मसूड़ों पर पिप्पली को घिसकर मधु के साथ लगाना चाहिये। अथवा आँवला घिसकर लगाना चाहिये। साधारण रूप में बच्चों के बीचवाले दो दाँत सबसे प्रथम निकलते हैं; परन्तु यदि ऊपर के दाँत पहले निकल आयें, तो यह अशुभ लक्षण है। बालकों में यह समय इस प्रकार का होता है, जब कि सारा शरीर दुःखी होता है।

आक्षेप—बच्चों में रोग विशेषतः पाया जाता है। इसके कारण मलबन्ध या पेट के कृमि हैं। इनके कारण इतने जोर से आक्षेप होते हैं कि शिशु के दोनों हाथों की मुट्ठी बन्द हो जाती है। वह पाँव को मारता है या कोष्ठ पर मोड़ लेता है। रोता है, आँखें बन्द होती हैं या सो जाता है। कोष्ठ के आकुञ्चनों के साथ हाथ-पाँव तन जाते हैं।

चिकित्सा के लिये—साधारणतः शिशु को गरम रखना चाहिये। उसको गरम राई के पानी में स्नान कराकर पोंछ देना चाहिये। यत्न करना चाहिये कि किसी प्रकार दस्त हो जाय। यदि दवाई का मुख से देना सम्भव न हो, तो गुदा में साबुन की बत्ती ग्लैसरीन सपोजैटरी लगानी चाहिये। मुख से पीड़ा-शामक औषधियाँ देनी चाहिये। योग्य चिकित्सक २-३ मिनट तक गरम और ठंडे पानी का स्नान शिशु को देते हैं। इससे उसके आक्षेपों का

वेग कम हो जाता है। पेट में कृमि हों, तो उसका उपाय करना चाहिये।

अपस्मार—बालकों में यदि यह रोग मिलता है, तो इसका कारण पैतृक क्रमागत है। इसलिये साधारणतः चिकित्सा निष्फल होती है। तथापि मस्तिष्क स्नायुओं को पुष्ट करनेवाली औषधियाँ देनी चाहिये, जिससे कि सम्भवतः भविष्य में लाभ हो। वे औषधियाँ ये हैं—(१) स्वर्ण-भस्म, बच, शङ्खपुष्पी का चूर्ण मधु के साथ। (२) पेठे के रस में मुलहठी का चूर्ण देना चाहिये। ब्राह्मी का स्वरस मधु के साथ देना उत्तम है।

पारिगर्भिक—इस रोग का कारण गर्भवती स्त्री का बच्चे को दूध पिलाना है। इसके कारण बच्चे को पूरा पोषण नहीं मिलता। उसका पेट बढ़ जाता है और हाथ-पाँव निर्बल रह जाते हैं। गर्भवती स्त्री के दूध में कुछ अन्तर आ जाता है। क्योंकि साधारणतः प्रकृति का यह नियम है कि एक समय एक ही को पोषण मिलना चाहिये। इस रोग की चिकित्सा के लिये छोटी पिप्पली सबसे उत्तम है। पिप्पली का चूर्ण मधु के साथ चटाना चाहिये, अथवा दूध में पिप्पली उबालकर देना चाहिये। पिप्पली से उतरकर दूसरी वस्तु बंशलोचन, प्रवाल भस्म या पिष्ठि है। इनको मधु के साथ चटाना चाहिये।

मुख-पाक—यह रोग मुख की अस्वच्छता से अथवा स्तनों के मैला रहने से होता है। इस रोग में कोष्ट बहुत सहायक होती है, आवश्यक है कि स्तनों को पिलाने से पूर्व और पीछे गरम पानी से (जिसमें एसिड बोरिक या सेंधानमक पड़ा हो) धो लेना चाहिये। दूध पिलाने के पीछे शिशु के मुख को गीली रुई से साफ कर देना चाहिये। जब यह रोग हो जाय तो सुहागे को शहद में मिलाकर या तबाखीर को मुँह में लगाना चाहिये। पेट साफ करने के लिये एरण्ड तेल अवश्य देना चाहिये। चन्दन (गोपी) को दूध में पीस-कर लगाना भी उत्तम है।

नाभि-पाक—कई बार असावधानी से नाभि पक जाती है। उस समय इस पर गरम पानी का सेंक करना चाहिये। हल्दी, लोध्र अथवा जस्त तथा टैनिक एसिड का चूर्ण छिड़कना चाहिये। हरिद्रादि तैल नाभि पर लगाना चाहिये। बकरी की लेंडी दूध में पीसकर जरा गरम करके नाभि पर लगाना चाहिये। दालचीनी और चन्दन का चूर्ण उत्तम रूप से पीसकर लगाना चाहिये।

गुद-पाक—कई बार अतिसार के कारण शिशु की गुदा और नितम्ब लाल हो जाते हैं। या कृमि के कारण इस भाग पर कण्डू होती है और फिर पक जाती है। इसके लिये शीत और स्तम्भक औषधियाँ लगानी चाहिये। उदाहरण के लिये—मुर्दाशङ्ख, कत्था, इलायची या स्वर्ण गैरिक मक्खन में अथवा घी में मिलाकर लगाना चाहिये। रसौंत को पानी में घिसकर लगाना चाहिये। गुदा को पंचवल्कल क्वाथ से धोना चाहिये। चूने के पानी का तर कपड़ा भी गुदा पर रखना उत्तम है। मलबन्ध का उपाय करके शिशु की पाचन-क्रिया की ओर ध्यान रखना चाहिये।

मूत्र-स्राव—बहुत-से बच्चों में यह शिकायत रहती है कि वह रात्रि में बिस्तर पर पेशाब कर देते हैं। इसका मुख्य कारण यह होता है कि उनके अंदर मूत्र-निग्रह का केन्द्र जागृत नहीं होता। और जबतक यह जागृत नहीं होता, तबतक औषध से लाभ नहीं होता। साधारणतः इसके लिये यही उपाय है कि उसको सुलाते समय और बीच में उठाकर मूत्र करवा देना चाहिये। मूत्र रोकने के लिये स्तम्भक औषधि देनी चाहिये। अफीम का उपयोग करना उत्तम नहीं। इससे बच्चे में नशे की आदत नहीं पड़ती। तवाखीर या बंश-लोचन, पिप्पली, सोंठ, मिरचा, छोटी इलायची, सेंधानमक इनके बारीक चूर्ण को शर्करा के साथ चाटना चाहिये। असगन्ध तथा पुष्टिदायक वस्तु खाने को मक्खन के साथ देना चाहिये।

मिट्टी खाना—बच्चों में यह आदत बहुत पड़ती है। इसके लिये उनकी पूरी देख-रेख रखनी चाहिये। चूल्हे की पक्की मिट्टी, या खारी मिट्टी वे बहुत खाते हैं। इसके कारण बच्चों को यकृत के रोग हो जाते हैं। जिन बच्चों में यह आदत हो, उन्हें यह आदत छुटाने के लिये बन्शलोचन का चूर्ण शहद के साथ देना चाहिये। इन बच्चों को विरेचन दूसरे-तीसरे दिन देते रहना चाहिये। यह विरेचन इस प्रकार का होना चाहिये, जिससे पित्त का निकास होता रहे। पारा या कैलोमल एक उत्तम विरेचक दवाई है। साइ-ट्रेड ऑफ मैगनेशिया भी उत्तम है। साधारण विरेचन के लिये मिल्क आफ मैगनेशिया भी बरतना उत्तम है। औषधियों के लिये मण्डूर-भस्म, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक, वायविडङ्ग के साथ अथवा अकेली मण्डूर भस्म मक्खन के साथ देनी चाहिये।

दुर्बलता—कई शिशुवों में वसा नहीं चढ़ती। इसका कारण दूध में वसा की न्यूनता है। इसलिये इस न्यूनता को बढ़ाने के लिये शिशु के भोजन की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि दूध में वसा कम हो, तो उसको पृथक देना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो सितोपलादि चूर्ण को मक्खन के साथ देवे। शरीर पर अश्वगन्धा तैल या बला तैल मलना चाहिये। औषध में अश्वगन्धा घृत देना चाहिये। चेहरे पर फीकापन हो, तो मण्डूर भस्म या लोह भस्म चटाना चाहिये।

अस्थि-दोष—इसका कारण अस्थियों की निर्बलता है। यह निर्बलता भोजन की न्यूनता, स्वच्छ वायु की कमी तथा पैतृक निर्बलता से होती है। साधारणतः इस निर्बलता के कारण पसलियों के और उप-पर्शुकाओं के सन्धि-स्थान सम्मुख भाग में सूजे रहते हैं। ये बच्चे यदि शीघ्र खड़े होने दिये जायँ, या चलने दिये जायँ, तो इनकी टाँगें मुड़-सी जाती हैं। इसका कारण यह है कि टाँगों के अन्दर इतना बल न था कि वह सारे शरीर के भार को उठा सकतीं। इस निर्बलता को दूर करने के लिये हाई पोफॉस्फेट उत्तम औषधि है। इसको शरबत के रूप में या 'डोंगरे का बाला-मृत' के रूप में देना उत्तम है। अनार्य-चिकित्सा में 'ऑस्टेलीन' का अन्तः उपयोग तथा 'काड लिवर आयल' की मालिश करना उत्तम गिना जाता है। आर्य-चिकित्सा में इस रोग के लिये खपरिया भस्म या अश्वगन्धा घृत तथा बला तैल या माष-तैल की मालिश उत्तम कही जाती है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि निर्बल बच्चा जल्दी खड़ा न हो। जब उसे खड़ा करना या चलाना हो, तो सहारा देकर चलाना या खड़ा करना चाहिये। उसकी टाँगों पर प्लास्टर आफ पैरिस की पट्टी बाँध देनी चाहिये। धूप में और खुली वायु में अवश्य रखना चाहिये।

शीतला का टीका—भारतवर्ष में बच्चों की मृत्यु के जितने कारण हैं, उनमें से एक कारण टीका-सम्बन्धी अज्ञान है। परन्तु यदि देखा जाय, तो इससे हानि की अपेक्षा लाभ कई गुना अधिक होता है। टीका लगवाने के लिये सबसे उत्तम समय शीतकाल होता है। शीतला का टीका लगाने की आयु ६ मास के पीछे है। आजकल माता-पिताओं की स्वाभाविक प्रतिशक्ति (रोगों से बचने की शक्ति) निर्बल होगई है, इसीसे कृत्रिम साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। जो बच्चे माता के स्तन से मोटे नहीं हो सकते,

अथवा जिनके लिये माता का दूध अपर्याप्त रहता है, वे बच्चे रोगों से किस प्रकार स्वयं अपनी रक्षा कर सकते हैं ? इसीसे कृत्रिम उपाय (टीका लगवाने) की आवश्यकता पड़ती है। टीका लगवाने से या तो शीतला निकलती नहीं और निकलती है तो उसका जोर कम रहता है ।

बच्चों की औषधि-विधि तथा मात्रा

साधारणत: बालकों के सब रोगों के कारण वे ही हैं, जो बड़े पुरुषों के, जैसे, मिथ्या आहार-विहार । इसलिये कुछ एक रोगों को छोड़कर प्राय: सब वही रोग हैं, जो बड़े पुरुषों में होते हैं। और जो रोग अपवाद हैं, वे प्राय: दूध-सम्बन्धी हैं। इसलिये रोगों की चिकित्सा भी वही है, जो बड़े पुरुषों के रोगों की है। केवल मात्रा छोटी होती है। यथा—

१—प्रथम मास में औषधियों की मात्रा १ रत्ती होनी चाहिये ।

२—एक वर्ष तक प्रत्येक मास में एक-एक रत्ती मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये ।

३—एक वर्ष के पीछे प्रति वर्ष ५-५ रत्ती मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये ।

४—औषधि मधु, मक्खन, मिश्री के शरबत अथवा दूध में मिलाकर देना चाहिये ।

५—जो दवाई देनी हो, उसका चूर्ण शहद में मिलाकर स्तनों के चूचकों पर मल देना चाहिये । बच्चा धोखे से पी जायगा ।

६—कोई भी तीक्ष्ण, उष्ण अथवा पेटेन्ट दवाई बच्चे को नहीं देनी चाहिये, विशेषत: जिसका कम्पोजीशन मालूम न हो, या योग्य वैद्य के हाथ से नहीं दी गई है ।

७—यदि बच्चा स्तनों का दूध पीता हो, तो दवा उसकी माता या धात्री को देनी चाहिये ।

थोड़ी-सी सामान्य सूचनायें

१—सोते समय बच्चे का मुँह खुला नहीं रहना चाहिये। यदि खुला रहता हो, तो उसको बन्द कर देना चाहिये । अथवा उसके मुँह पर

पट्टी बाँध देनी चाहिये। मुँह से श्वास लेने के कारण उसका गला खराब हो जाता है।

२—नाक से श्वास लेने की और दाँतों से रोटी चबाकर खाने की आदत डालनी चाहिये।

३—प्रातः या सायं, विशेषतः सायंकाल स्नान देकर कपड़े से शरीर को पोंछना चाहिये।

४—बच्चों को कभी डराना नहीं चाहिये। उसे यथासम्भव खुली वायु में रखना चाहिये।

५—दूध, घी, मक्खन, फल आदि पदार्थ विशेषतः देने चाहिये।

६—बच्चे को बहुत प्यार नहीं करना चाहिये।

प्रकरण बारहवाँ

विष

विवेचन—विष क्या वस्तु है ? इसका निर्णय करना कठिन है। जो भोजन शरीर के लिये आवश्यक और पुष्टिदायक समझा जाता है, वही भोजन विसूचिका और अलसक आदि भयानक रोगों को उत्पन्न करके मृत्यु का कारण बनता है, और जो संखिया या अफीम ।'विष' गिने जाते हैं, वे भी लोगों के प्राण बचाने में काम आते हैं। इसलिये कौन-सी वस्तु विष मानी जाये, इसका कोई निर्णय नहीं है। साधारणत: जिस वस्तु को सुगमता से व्यवहार में प्रत्येक मनुष्य न ला सके, और जिससे बहुत शीघ्र नुकसान या हानि पहुँचने की अधिक सम्भावना रहती है, वह 'विष' माना जाता है।

विष दो प्रकार का है। एक स्थावर और दूसरा जंगम। स्थावर विष में खनिज विष तथा संखिया आदि का समावेश होता है, जङ्गम विष में साँप, बिच्छू आदि के विष का। इन दोनों के सिवा एक तीसरे प्रकार का भी विष है, जिसको 'गर' शब्द से कहा जाता है, यह दो अविष पदार्थों के संयोग से होता है।

विष-सम्बन्धी सामान्य ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को रहना चाहिये।

कारण—इस सामान्य ज्ञान के कारण मनुष्य स्वयं सर्प विष आदि से बच सकता है और दूसरों को बचा सकता है। विष प्राणी अनेक हैं, विष भी बहुत प्रकार के हैं। यहाँ पर मुख्यत: विषों ही का उल्लेख किया जायगा।

संखिया—दूसरे आदमी के प्राण लेने के लिये भारत में जो विष दिये जाते हैं, उनमें संखिया सबसे प्रथम विष है। क्योंकि इसमें कोई स्वाद नहीं होता रङ्ग श्वेत होता है। इसके देने से वैसे ही लक्षण उत्पन्न होते हैं,

जैसे विसूचिका या हैजे के होते हैं। उदाहरण के लिये—खाने से पेट में दर्द उत्पन्न होता है, दस्त होते हैं, वमन होते हैं, उदर में आकुञ्चन होते हैं, शरीर में आक्षेप होता है। यह दर्द दबाने से बढ़ जाता है। शरीर ठण्डा हो जाता है, पसीना आता है, मूत्र में जलन होती है और मूत्र थोड़ा-थोड़ा आता है। कई बार पेशाब बन्द हो जाता है, या उसमें रक्त पड़ता है। दर्द के कारण रोगी चिल्लाता है, नाड़ी पतली, कँपकपी-युक्त और निर्बल रहती है। इस विषयवाला रोगी साधारणतः होश में रहता है।

उपाय—२॥ ग्रेन संखिया आदमी के प्राण लेने के लिये पर्याप्त है। परन्तु संखिया का बहुत कुछ भाग वमन और विरेचन के मार्गों से बाहर।हो जाता है। इसलिये इस विषय के बहुत-से रोगी उचित उपायों से बचाये जा सकते हैं।

विष को निकालने के लिये सबसे उत्तम उपाय वमन है। रोगी को वमन कराने के लिये मैनफल या सुवा का काढ़ा देना चाहिये। राई का घोल भी उत्तम है। यदि रोगी दवाई पीकर वमन न कर सके, तो रबर की नली-द्वारा (अभाव में एरण्ड-नाल से) वमन करवा देना चाहिये। इसके लिये प्रतिविष लोह का जङ्ग है। इसको पानी में घोलकर देना चाहिये। दाह को शान्त करने के लिये ईसबगोल को, बिहीदाने को, गुलाबजल में लुवाब बनाकर, मिश्री डालकर देना चाहिये। अण्डे की सफेदी भी उत्तम है। खाने के लिये चिकनी लुवाबदार, ठण्डी वस्तु के सिवा और कुछ नहीं देना चाहिये।

चूने का पानी भी उत्तम माना जाता है। तिब्बे अकबरी में लिखा है कि "पुरानी शराब, शहद का पानी, लेसदार चीजें, खितमी का पानी और भूसी का शीरा देना चाहिये।" वमन कराने के लिये ताजे करैले को कूटकर उसका पानी निचोड़कर पीना चाहिये। इससे वमन हो जाता है। पपड़िया कत्था महीन पीसकर पानी में घोलकर पिलाने से झटपट उसके काम को नष्ट कर देता है। घी और दही का देना बहुत उत्तम है।

हरताल और मनःशिला—ये दोनों संखिया के समास हैं। इसलिये संखिये के भाँति इसकी चिकित्सा करनी चाहिये। इसमें गर्म पानी, बादाम का तेल, गौ का घी और मक्खन ये सब वस्तुयें मिलाकर

देनी चाहिये, जिससे वमन हो जाय और दाह शान्त हो जाय। फिर जौ का दलिया गेहूँ या अलसी की दलिया शहद के साथ खाना चाहिये। खम्बाजी का पानी और शहद भी लाभदायक है।

पारा—पारा अपने आप इतना भयानक विष नहीं, जितने इसके समास। रस कपूर या हाइड्राजराई परक्लोराईड, कैलोमल आदि यदि मात्रा से अधिक लिये जायँ, तो शरीर में विष उत्पन्न करते हैं। इनके विष का अधिक प्रभाव मूत्र-संस्थान पर पड़ता है, क्योंकि पारा विशेषत: इस मार्ग से निकलता है। पारे के विष में वमन से बचना चाहिये। लुवाबदार वस्तुवें, जैसे—ईसबगोल, अण्डे की सफेदी, अलसी की दलिया, गोंद को दूध में घोलकर, घी आदि वस्तुवें देनी चाहियें। यदि पारा कच्चा दवाई के रूप में खाया जाय, तो यह शरीर में इकट्ठा होता रहता है, और कालान्तर में शरीर पर फुंसियों के रूप में फूटता है। इसके लिये भाँगरे का रस पीना चाहिये। तिब्बे अकबरी के अनुसार नील के पौदे को जड़-समेत उखाड़कर, उसको पानी में खूब बारीक पीसकर, बहुत-से पानी में घोलकर पीने लगे। इस प्रकार आध-आध घण्टे के अन्तर से पीने पर सब पारा मूत्र-मार्ग से निकल जायगा। इस मूत्र को अलग प्याले में एकत्रित करना चाहिये, जिससे पारे के आने का प्रमाण मिल जाय। इस दिन सर्वथा भोजन नहीं करना चाहिये। एक रोगी को अमृत भल्ला तक के खाने से आराम होगया था।

नीलातुत्थ—कभी तो धोखे से या कभी भूल से यह विष खाया जाता है, या दूसरे को दिया जाता है। नीलातुत्थ ताँबे का समास है। यह साधारणत: वमन के लिये दिया जाता है। इसलिये बड़ी मात्रा में दिये जाने से यह स्वयं वमन के रूप में बाहर हो जाता है। परन्तु यदि कदाचित् बाहर न हो, तो शूल, अतिसार, आक्षेप उत्पन्न करता है। इसके लिये सबसे प्रथम वमन कराना चाहिये। इसके पीछे लुवाबदार वस्तुवें, दूध, गेहूँ का या अलसी की दलिया देना चाहिये। नीबू का रस और शक्कर देनी चाहिये। कत्थे का पानी भी देना उत्तम है।

सीसक—इसका विष "पलम्बाई एसिटेट" (शुगर ऑफ लैड) से होता है; क्योंकि यह देखने में श्वेत और तौल में भारी है। इससे मर्करी परक्लोराइड के धोखे में बरते जाने का भय है। इसके खाने से मुँह में धातु

का मीठा स्वाद, गले में अम्लता, वमन, मल का अवरोध, पेट में तीव्र शूल, हाथ-पाँव में खैंच-तान होती है।

उपाय—एप्सम साल्ट देना चाहिये। सिरके को पानी मे घोलकर देना भी उत्तम है। गोंद का पानी, दूध, काञ्जी और दूसरी लुवाबदार वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। तिब्बे अकबरी में लिखा कि अंजीर, सोया और पापड़ी नोन के काढ़े से वमन करना चाहिये। दस्तावर जवारीश देनी चाहिये। साढ़े तीन माशे करफयून डेढ़ माशे मिर्च को शराब के साथ देने से पसीना आता है। मुँह से लार लाने का यत्न करना चाहिये। अजवायन के अर्क के साथ अफसन्तीन, बूल और अजवायन के बीज ९ माशे प्रत्येक देना चाहिये, इससे मूत्र आता है। दस्तों के लिये ७ रत्ती सकमूनियां देना भी उत्तम है।

काँच—जबतक इसका चूरा अधकचरा रहे तभी तक यह खतरनाक है। बहुत बारीक चूर्ण इतना नुकसान नहीं देता। इसके कारण आँतों और आमाशय से रक्त-स्राव होता है। पेट में दर्द और तीव्र आकुञ्चन होते हैं।

उपाय—दूध, दही या इमली खूब पिलानी चाहिये। घी का उपयोग विशेषतः करना उत्तम है। साधारणतः काँच कोई विषैली वस्तु नहीं; परन्तु इसके खाने से व्रण होकर आमाशय और आंत्रों में हानि पहुँचती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती को यही विष दिया गया था।

हाइड्रो सोनिक एसिड या साईनाइड—यह विष प्रायः आत्महत्या के प्रयोग में बरते जाते हैं। इसलिये चिकित्सा को सहायता पहुँचे, उससे पूर्व काम हो चुका होता है। ये विष बहुत तीक्ष्ण हैं। यदि चिकित्सा का अवसर मिल जाय, तो बहुत शीघ्रता करनी चाहिये। शिर और छाती पर ठण्डा पानी या बर्फ का टुकड़ा रखना चाहिये। कृत्रिम श्वास चलाना चाहिये। स्मेलिंग साल्ट या लाइकर एमोनिया एसिटेट सुँघाने के लिये देना चाहिये, जिससे रोगी होश में आजाये। स्प्रिट एमोनिया एरोमैटिक पीने के लिये देना चाहिये। इसका प्याला रोगी की नाक के सामने कर देना चाहिये। खुली वायु में रखना, पङ्खा करना चाहिये। सम्भव हो तो वमन कराना चाहिये। वमन के लिये घी का उपयोग करना सबसे उत्तम है।

यदि मुँह से वमन देना सम्भव न हो, तो १⁄३ ग्रेन एड्रोपीन सल्फेट का इंजेक्शन देना चाहिये। यदि हाइड्रोजन पर-ऑक्साइड का सैल्युशन या क्लोरीन वाटर मिल जाय, तब रोगी को पिला देना चाहिये।

फौस्फोरस—इसका विष दियासलाई का मसाला खाने से अथवा कभी टॉनिक-शक्ति की दवाई के खाने में भूल से अधिक चले जाने से होता है। इससे धीरे-धीरे विष में यकृत विकृत होकर कामला रोग हो जाता है। इसके लिये पुराना या फ्रेन्च टरपनटाइन ४० बूँद और पानी १ औन्स। इसको प्रत्येक १५ मिनट बाद देना चाहिये। 'म्युरल' का कहना है कि ३ ग्रेन कॉपर सल्फेट को पानी में घोलकर प्रत्येक ५ मिनट के अन्तर से देना चाहिये, जबतक रोगी को वमन न हो। विरेचन के लिये एप्सम साल्ट देना चाहिये। पोटाशियम पर-मैगनेट का हलका घोल या हाइड्रोजन पर ऑक्साईड पीने को देना चाहिये। यदि दर्द बहुत हो, तो मोरफिया सल्फेट को इन्जेक्शन की रीति से देना चाहिये। तेल और चर्बी से यथासम्भव बचना चाहिये।

एसिड (अम्ल)—सल्फ्युरिक, नाईट्रिक एसिड आदि दाहक विष माने जाते हैं। इनके पीने से शरीर के अन्दर की श्लैष्मिक कला जल जाती है। इस अवस्था में कभी भी वमन नहीं देना चाहिये। मैगनेशिया आधा औन्स से १ औन्स पानी में मिलाकर देना चाहिये। चौक, कलई दीवारों पर से खुरचकर पानी में घोलकर देना चाहिये। सोडाबाई कार्ब या वाशिंग सोडा दूध में या पानी में देना चाहिये। नीबू का शरबत पीने को देना चाहिये। लुवाबदार वस्तुयें, जैसे, अण्डे की सफेदी, ईसबगोल का लुवाब चीनी के साथ देना चाहिये।

एलकीलीज (क्षार)—अमोनिया, पोटाशियम, सोडा आदि के कारण कई बार विष हो जाता है। इसके लिये सिरका और पानी समान भाग लेकर पिलाना चाहिये। नीबू का शर्बत उत्तम है। किसी प्रकार का वमन नहीं देना चाहिये। तैल या चिकनी वस्तु का देना उत्तम है।

एन्टीमनी—इस विष के कारण रोगी को वमन हो जाता है। इस वमन को बढ़ाने के लिये गरम पानी पीने के लिये देना चाहिये। कत्था

अथवा माजूफल का पानी या टैनिक एसिड देना चाहिये। मैगनेशिया विरेचन के लिये देना चाहिये।

जस्ता—दूध, सोडा, मैगनेशिया को यथासम्भव शीघ्र पीने के लिये देना चाहिये। पम्प या वमन नहीं देना चाहिये।

लोह—इसके खाने से शिर-दर्द, मुँह में खुश्की और पेट में दर्द होता है। इसके लिये वमन और विरेचन देना उत्तम है। तिब्बे अकबरी में लिखा है कि "इस रोग में बहुत-सा ताज़ा दूध पिलाना चाहिये, जिससे दस्त हो जाय। इसके पीछे मक्खन और गाय का घृत खाने को देना चाहिये। गुलरोगन, बनफसे का तेल और वेद का तेल सिर्के में मिलाकर सिर में लगाना चाहिये। खाने को चकमक पत्थर खिलाना चाहिये, जिससे बिखरा हुआ लोहचूर इकट्ठा हो जाय। जब तक लोहे के टुकड़े आमाशय से न निकल जायँ, वमन बहुत लाभदायक है।"

सिल्वर नाईट्रेट—यह दाहक विष है। इसके लिये सेंधानमक पानी में मिलाकर वमन कराना चाहिये। पम्प नहीं करना चाहिये।

मद्य—शराब को अधिक मात्रा में पीने से आदमी बेहोश हो जाता है। श्वास में शराब की गन्ध रहती है। उसकी पुतली फैल जाती है। रोगी को वमन कराना चाहिये। एमोनिया सूँघने को तथा पीने के लिये देनी चाहिये। शिर पर ठण्डा पानी डालना चाहिये। रोगी को आवाजों से, उठाये रखना चाहिये। कृत्रिम श्वास प्रचलित कराना चाहिये। भुजाओं को गरम रखना चाहिये।

कोकीन—इसका व्यवहार प्रायः बाजीकरण या कामेच्छा की तृप्ति के लिये किया जाता है। इसका विष होने पर शरीर में उत्तेजना होती है। शरीर प्रायः ज्ञान-रहित हो जाता है। पुतलियाँ संकुचित रहती हैं, रोगी बेसुध पड़ा रहता है। इसके लिये आमाशय को पम्प के द्वारा धो देना चाहिये। उत्तेजक औषधियाँ जैसे, ब्रांडी या अमोनिया मुँह से पानी के लिये देनी चाहिये। एमाईल नाइट्रेट या एमोनिया के वाष्प नाक पर सुँघाने चाहिये। कृत्रिम श्वास देना चाहिये। मौरफिया सल्फेट चौथाई ग्रेन को इंजैक्शन से देना चाहिये।

अफीम—भारतवर्ष में जिस प्रकार संखिया दूसरे के प्राणों को लेने के लिये काम में आता है, उसी प्रकार अफीम आत्म-हत्या के काम में आती है। कई बार दाइयाँ बच्चे को सुलाने के लिये अफीम का प्रयोग करती हैं। उनकी गल्ती से प्रायः मृत्यु हो जाती है। दूसरी अवस्था में शिशु-हत्या के लिये मातायें बच्चे को अफीम दे देती हैं। अथवा मातायें यह समझकर कि उनके अफीम खाने से गर्भ मर जायगा, इसलिये अफीम का इस्तेमाल करती हैं। अफीम चूँकि सुगमता से मिल सकती है, इसीसे इसका व्यवहार अधिक होता है। अफीम के खाने से या खिलाने से रोगी को चक्कर आता है, शिर में दर्द होता है, अफीमची की भाँति झोंका खाता है, बोलने से सुनता नहीं, जोर से आवाज देने पर चौंकता है और फिर गिर जाता है। आँखों की पुतली बहुत ही अधिक संकुचित होती है। श्वास बहुत धीरे-धीरे चलता है। श्वास में अफीम की गन्ध रहती है। यदि वमन होता है, तो उसमें अफीम मिल जाती है। अफीम के विष में चिकित्सा का समय मिल जाता है। तीन रत्ती अफीम प्राण नाश कर सकती है।

इसकी चिकित्सा के लिये रोगी को आवाजों से या शोर आदि से उठाते रहना चाहिये। उसको वमन कराना चाहिये। पम्पों द्वारा सम्भव हो, तो "पोटाशियम पर मैगनेट" को ६ से १० ग्रेन २० औन्स पानी में घोलकर आमाशय में पहुँचाना चाहिये। और थोड़ी-थोड़ी देर बाद लेते रहना चाहिये। रोगी के मुँह पर ठण्डा पानी छिड़कना चाहिये। भुजाओं को गरम बोतलों से गरम रखना चाहिये। गरम चाय या काँफी पीने को देना चाहिये। "कैफीन सायट्रेट" का उपयोग उत्तेजना देने के लिये करना चाहिये। आँख की पुतली जब फैलने लगे, तब समझना चाहिये कि रोगी स्वस्थ होगया। कृत्रिम श्वास चलाना चाहिये। आधा ग्रेन एट्रोपीन सल्फेट का इंजैक्शन करना चाहिये। तिब्बे अकबरी में लिखा है कि सोया और मूली के काढ़े में शहद और नमक मिलाकर वमन कराना चाहिये। अकरकरा और तिरियाक अरवा भी लाभदायक है। मिर्च, हींग, देवदार समान भाग लेकर, इनकी गोली बनाकर खाना चाहिये। हकीम खंजंदी का कहना है कि शराब में अकरकरा, जुन्दबेदस्तर, दालचीनी मिलाकर देवे। इसी प्रकार केसर और कस्तूरी आदि से बने हुये गरम माजूम भी देने चाहियें।

ज़हरकुचला (नैक्सवोमिका)—यह विष प्राय: गल्ती से खाया जाता है; क्योंकि इसका स्वाद बहुत कड़वा है। इस विष का रोगी सदा सचेत रहता है। इसका एक एलक्लोईड निकलता है, जिसको 'स्ट्रिकनोन' कहते हैं। यह रंग में श्वेत, स्वाद में कड़वी है, इसीसे इसका धोखा क्युनीन से हो जाता है। इस रोग का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि रोगी के मुंह की जबाड़ी खिंच जाती है। पीठ ज़मीन से उठ जाती है, हाथ-पाँव तन जाते हैं। प्राय: सब लक्षण 'टिटैनिक' से मिलते हैं। इस विष का प्रभाव नसों पर और स्नायुवों पर बहुत होता है। अत: उनको ढीला करने का उपाय करना चाहिये। रोगी को क्लोरोफार्म रूमाल पर गेरकर सुँघाना चाहिये। आमाशय तथा गुदा-द्वारा पोटाशियम ब्रोमाईड अथवा क्लोरल हाईड्रेट पानी में घोलकर देना चाहिये। वमन कराना सम्भव हो, तो वह भी उपाय करें। यदि मुँह से दवाई न जाय, तो एपो-मॉर्फीन हाइड्रो क्लोराईड को इंजैक्शन से देना चाहिये। कृत्रिम श्वास चालू करना चाहिये। टैनिन का देना भो उत्तम है। घी को यथेष्ट मात्रा में पिलाना चाहिये।

धतूरा—यह विष किसीके प्राण लेने के उद्देश्य से नहीं दिया जाता; परन्तु किसीका माल लूटने के उद्देश्य से इसके बीजों का व्यवहार मिठाई में, तम्बाकू में किया जाता है। इस विष के कारण गला और मुँह सूख जाता है, निगरण कठिन हो जाता है, पुतली फैल जाती है, श्वास में रुकावट आजाती है, मूत्र बन्द हो जाता है और कठिनता से आता है। आँखों के सामने तारे से दिखाई देता है। रोगी उनको पकड़ना चाहता है। इस विष के प्रतीकार के लिये यथासम्भव सबसे प्रथम वमन देना चाहिये। रोगी को अफीम का उपयोग कराना चाहिये। एक औन्स पानी में आधा ड्राम अफीम का टिंचर मिलाकर देना चाहिये। पिलोकार्पिन नाइट्रेड आधा ग्रेन अथवा मॉरफीन सल्फेट तिहाई ग्रेन सूची वेध विधि से देना चाहिये। उत्तेजक औषधियाँ और गरम चाय पिलानी चाहिये। कैथेटर से मूत्र निकालना चाहिये। कृत्रिम श्वास प्रचलित करना चाहिये। समुद्र-फल गोमूत्र में घिसकर देना चाहिये। घी का यथेष्ट उपयोग कराना भी अच्छा है। अफीम धतूरे का प्रतिविष माना जाता है। दूध चावल या दही भात खाने को देना चाहिये।

बछनाग (एकोनाइट)—इसके खाने से मुँह, जीभ और ओष्ठ पर जलन और झनझनाहट होती है। मुँह से पानी निकलता है, आँखों के सामने अँधेरा होता है, शरीर में कँपकँपी रहती है, कान में आवाज़ सुनाई देती है, श्वास धीमा, नाड़ी निर्बल और छोटी हो जाती है। हाथ-पाँव ठण्डे हो जाते हैं, और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

उपाय—शलगम के बीज से वमन करना चाहिये। शाहबलूत के काढ़े में ३ रत्ती कस्तूरी घोलकर देना चाहिये। अधिक शराब पिलाये, जिससे रोगी को वमन हो जाय। अथवा शलगम के बीजों का काढ़ा करके घी, जैतून का तेल और तिल के तेल के साथ देना चाहिये। कॉफ़ी पिलानी चाहिये। ईथर, डिजीटेलस या स्ट्रिकनीन इनको इंजैक्शन द्वारा देना चाहिये। रोगी के बिस्तर की पाँयत को सिर से ऊँचा कर देना चाहिये। सूंघने के लिये एमाईल नायट्रेट का उपयोग करना चाहिये। कृत्रिम श्वास चालू करना चाहिये। अश्वगन्धा का चूर्ण घी के साथ देना चाहिये।

भाँग—इसका विष प्रायः लूटने के लिये अथवा मज़ाक में बरता जाता है। इसके खाने से जिस भी स्थिति में रहकर दौरा उठता है, उसी स्थिति में वह जाता है। रोगी हँसता रहता है या रोता है, थोड़ी-थोड़ी देर में सो जाता है, अचेतनता आ जाती है, चक्कर आता है। इसकी चिकित्सा के लिये वमन कराना चाहिये, विरेचक औषधियाँ देनी चाहिये। शिर के ऊपर ठण्डा पानी गिरवाना चाहिये। रोगी को पानी की धारा के नीचे बाँध देना चाहिये। रोगी को अमोनिया सुँघानी चाहिये। रोगी को सोने देना चाहिये। दही या खट्टी छाछ खाने को देना चाहिये। वमन कराने के पीछे अंजीर का काढ़ा तथा बादाम का तेल, मक्खन तथा शराब देनी चाहिये।

कनेर—यह एक विषैला वृक्ष है। इसके पत्ते पशु भी नहीं खाते। मूल विषैला तथा तीक्ष्ण है। इसके कारण मूठ गर्भ सुगमता से बाहर हो जाता है। चिन्ह—वमन, चक्कर, बेशुद्धि, खींच-तान, नाड़ी निर्बल रहती है। रोगी ठण्डा हो जाता है, श्वास बन्द हो जाता है। मूत्र बन्द हो जाता है, जीभ में सूजन और पेट में गुड़गुड़ाहट रहती है। रोगी को वमन कराना चाहिये। वमन के पीछे ताजे दूध का कुल्ला करना चाहिये। जौ के दलिये में

गुलरोगन मिलाकर पीना चाहिये ।

तमाखू—तमाखू एक विषैला पदार्थ है। नवजात शिशु के पेट पर यदि तमाखू का पत्ता मिला करके या किसी बढ़िया सिगरेट का तम्बाकू पानी के साथ पीसकर बाँध दिया जाय, तो बच्चा २४ घण्टे में मर जाता है। इसमें से 'निकोटीन' नाम का विषैला पदार्थ निकलता है। नये आदमी को यदि पान में तम्बाकू खिला दिया जाय, तो उसको चक्कर आने लगते हैं। इसके विष के कारण नाड़ी तेज चलती है, उल्टी आती है और पीछे नाड़ी मन्द पड़ जाती है। शरीर में अशक्ति मालूम पड़ती है। रक्ताशय की क्रिया बन्द होकर परिणाम में मृत्यु होती है। वमन कराकर घी पर्याप्त मात्रा में पिलाना चाहिये। माजूफल का काढ़ा भी वमन के लिये उत्तम है। एरण्ड-तैल का, सनाय का विरेचन देना उत्तम है।

भिलावा—भिलावा अग्नि के समान गरम है। इसके खाने से मुख, गाल, जिह्वा और गले में फफोले पड़ जाते हैं। पेट में जलन, शूल होता है। ९ माशा भिलावा मृत्यु का कारण बन सकता है। शरीर की त्वचा पर लगने से त्वचा लाल हो जाती है, सूज जाती है, फुन्सियाँ निकल आती हैं, उनमें पानी पड़ जाता है। इस रोग के लिये ठण्डी और चिकनी वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। बादाम का तेल, घी, घिया का तेल खिलाना चाहिये। अखरोट की गिरी और पिस्ता भी खाना उत्तम है। बाहर लगने पर स्थान खट्टे मट्ठे से धोना चाहिये और अखरोट की मींग, नारियल की गिरी, चिरौंजी, काले तिल इनको महीन कूटकर लेप करना चाहिये। फिर मट्ठे से धो डालना चाहिये। यदि इमली का निर्मल पानी मिल जाय, तो इसमें नारियल की गिरी चन्दन की तरह घिसकर लेप करना चाहिये। बिना ब्याई हुई भैंस का गोबर मलना चाहिये। विरेचन देना चाहिये। दूषित रक्त को निकालने के लिये रक्तमोक्षण (शिराबेध) करवाना चाहिये। दशांग लेप का उपयोग भी उत्तम है।

जमालगोटा—इसके खाने से वमन, अतिसार एवं पेट में, गले में जलन होती है। इसके लिये इलायची दही में पीसकर खाने को देनी चाहिये। दही, भात, शर्करा तथा घी खाना चाहिये। पीने के लिये लुवाबदार वस्तुयें ईसबगोल, बिहीदाने का लुवाब या अण्डे की सफेदी देना चाहिये। दर्द को

कम करने के लिये टिंचर ओपयाई २० बूँद या मॉर्फिया लाइकर हाइड्रोक्लोर देना चाहिये। मक्खन को तवाशीर आदि के साथ देना चाहिये।

आक—इसका दूध विषैला होता है। इसका दूध लगाने से छाला उठ आता है।

उपाय—इमली के पत्ते पीसकर लगाने चाहिये।

वाष्पीय विष—क्लोरीन, कार्बनडाई ऑक्साइड, कोलगैस आदि कई प्रकार की वायु इस प्रकार की हैं, जिनके कारण आदमी का मरण हो जाता है। उदाहरण के लिये—कोयलों या गन्धक को जलाने से जो वायु उत्पन्न होती है, उसको सूँघने से आदमी मर जाता है। दूषित वायु के कारण मनुष्य का साँस तंग हो जाता है। इसके लिये रोगी को यथासम्भव एकदम से खुली वायु में ले जाना चाहिये। उसको कृत्रिम श्वास देना चाहिये। ऑक्सीजन को सूँघना चाहिये। रोगी को गरम रखना चाहिये और उत्तेजक औषधि देनी चाहिये।

जान्तविक विष

सर्प-विष—सर्प के काटने पर रक्त थोड़ा-सा निकलता है और दाँत के निशान व्रण के दोनों ओर दो-दो होते हैं। सर्प के काटने पर जहर रक्त-वाहिनियों द्वारा शरीर में फैल जाता है। इससे मनुष्य में बेहोशी आती है।

उपाय—(१) सबसे प्रथम दंश के स्थान से ऊपर रबड़ की नली या कोई कपड़ा कसकर बाँध देना चाहिये, जिससे रक्त-संचार रुक जाय। अब इसस्थान को मुँह से चूसना चाहिये। चूसने से पूर्व इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि मुख में किसी प्रकार का व्रण न हो। चूसने से पहले मुख को गुलरोगन और बनफसे के तेल में चिकना कर लेना चाहिये। चूसने से पूर्व कुछ खा लेना चाहिये। खाली पेट चूषण करना उत्तम नहीं। पीछे से सब थूक निकालकर शराब से कुल्ला करना चाहिये और थोड़ा-सा पी भी लेना चाहिये।

(२) दंश के स्थान पर चाकू से चीरा देकर रक्त निकालना चाहिये। रक्त निकालने पर नमक, कार्बोलिक एसिड या पोटाशियम पर मैंगनेट, एसिड, नाइट्रिक आदि से जला देना चाहिये। यदि यह सम्भव न हो, तो अग्नि में शलाखा को लाल करके उससे जला देना चाहिये। अथवा प्याज को कूटकर रक्त निकलने पर बाँध देना चाहिये।

(३) रोगी को उत्तेजक औषधियाँ स्ट्रिकनीन, शराब आदि देनी चाहिये। रोगी को शोर आदि से जगाते रहना चाहिये।

(४) पोटाशियम पर मैगनेट का घोल, नमक का घोल या गरम घी पिलाना चाहिये, जिससे रोगी को भली प्रकार वमन होता रहे। जबतक पित्त बाहर न आये, घी पिलाते रहना चाहिये। घी के पिलाने से रोगी के बचने की बहुत सम्भावना है।

(५) अनार्य-चिकित्सा की 'एन्टी वेनोम सीरम' को भी सूची वेध द्वारा देकर देखना चाहिये।

(६) हुक्के का गुल या गाँजे का गुल इस विष में उपयोगी माना जाता है। रासायनिक दृष्टि से यह 'निकोटीन' तीव्र विष है। दंश के स्थान पर रक्त निकालकर इसको मलना चाहिये। यदि दंश के स्थान पर रक्त न मिले, तो दंश से ऊपर कहीं भी जहाँ पर कि लाल रक्त मिल जाय, वहीं पर इसको मलना चाहिये। इसके मलने से यह विष सर्प-विष को नष्ट कर देता है।

(७) हुक्के का पानी, तुलसी का रस, केले का रस, लहसुन का रस, ये वस्तुयें यथासम्भव शीघ्र पिलानी चाहिये। इनसे रोगी को वमन होगा।

(८) साँप को पकड़कर काटने से भी साँप का जहर कम हो जाता है। अथवा दंश के स्थान पर मुर्गी की गुदा को रखना चाहिये। इस विष की गरमी से मुर्गी मर जायगी, फिर दूसरी मुर्गी रखनी चाहिये। इस प्रकार जबतक मुर्गी का मरना बन्द न हो, तबतक मुर्गी को रखना चाहिये। बकरी की मींगनी का लेप भी उत्तम है।

(९) (१) गृह-धूम, हल्दी, दारुहल्दी, चौलाई, इनको दधि और घृत में मिलाकर लगाने से, पीने से साँप का काटा हुआ अच्छा होता है। (२) घृत, मधु, मक्खन, पिप्पली, शृङ्गबेर, मिर्च और सेंधव इनको पीना चाहिये। (३) हुब्बविलसा, सूखा जूफा, जङ्गली शलगम के बीज, सफेद मिर्च, कालीमिर्च, पिप्पली, बच, रूमी सौंफ, अजवायन, तगर, जीरा, भाँग के बीज प्रत्येक १४ माशे, बालछड़, फूका हुआ गन्दबेल प्रत्येक २१ माशे, इनको कूट-छानकर शहद में मिलाना चाहिये। (४) कलौंजी, हजार स्पन्द के बीज, जीरा प्रत्येक ७ माशे, गोल जराबन्द, पाषाणभेद प्रत्येक ३॥ माशे,

सफेद मिर्च, बूल प्रत्येक १३ माशे, इनको शहद में मिलाकर पीछे से शराब में घोलकर देना चाहिये।

(१०) साँप के काटे हुये को नीम का पत्ता कड़वा मालूम नहीं होता। परन्तु विष उतर जाने पर कड़वा मालूम होने लगता है।

(११) दंश पर राल और जैतून का तेल औटाकर लगाने से भी दाह हो जाता है। इसमें नमक भी मिला लेना चाहिये।

बिच्छू का विष—बिच्छू के काँटा होता है। जिस प्रकार ततैया अपना काँटा चुभो देता है, उसी प्रकार बिच्छू भी अपना काँटा चुभो देता है। इस काँटे के चुभने से विष शरीर में पहुँच जाता है।

उपाय—(१) दंश पर लाइकर अमोनिया कैम्फर लगा देना चाहिये, अथवा कोई ऐसी दवाई जो स्थान को बेभान बना दे। जैसे—क्लोरोफार्म, कोकीन का इन्जैक्शन आदि।

(२) एपिकॉक क्वैना पाउडर या टार्टरिक एसिड को पानी में मिलाकर लगाना चाहिये।

(३) सुहाञ्जने के गोंद को पानी में पीसकर स्थान पर चिपका देना चाहिये।

(४) मीठा तेलिया, जमालगोटा, नौसादर, नमक, हरताल, नीले-तुत्थ में से किसी दवाई को पानी में पीसकर लगा देना चाहिये।

(५) जीरे को पीसकर घी और सेंधानमक में लगाने से लाभ होता है। घी को गरम करके नमक के साथ मिलाकर उस प्रदेश पर लगाना चाहिये।

(६) पुल्टिस का बाँधना भी उत्तम है। नमक का खाना भी उत्तम है।

(७) गिले इरमानी और सिरके का लेप भी उत्तम है। जुन्दबेदस्तर और परफ्यून को लगाना चाहिये।

(८) पछने लगाकर रक्त निकलवा देना चाहिये।

चूहे का विष—कई बार चूहा सोते हुये काट लेता है। इसमें ज्वर भी चढ़ता है।

उपाय—(१) टार्टर एमेटिक का इंजैक्शन देना चाहिये।

(२) गृहधूम, मजीठ, हल्दी, नमक के लगाने से और रक्तमोक्षण कराने से चूहे का विष अच्छा हो जाता है। पारा, गन्धक, कपूर और शिरीष इनको आक के दूध में मिलाकर लेप करना चाहिये।

(३) आखुकर्णी के पत्तों का रस और सनाय को बहुत दिनों तक पीना चाहिये।

कुत्ते का विष—पागल कुत्ता जब आदमी को काट खाता है, तब वह आदमी पानी से डरने लगता है। इसका उत्तम इलाज 'कसौली' में जाने से होता है। स्थानिक उपाय निम्न है—

(१) काटने के स्थान को जला देना चाहिये, या लाल मिरचों को पीसकर लगा देना चाहिये।

(२) अंकोल की जड़ या धतूरे के पत्तों या मूल का रस पिलाना चाहिये। और इतना पिलाना चाहिये कि वह आदमी पागल कुत्ते के समान पागल हो जाय। फिर उसको धूप में बाँधकर घी पिलाना चाहिये, जिससे खूब वमन हो। जब लक्षण शान्त हो जायँ, तब उसको छोड़ देना चाहिये।

(३) शिरीष के बीजों को थोर के दूध में पीसकर लगाने से लाभ होता है।

(४) कुचले को घिसकर ज़ख्म पर लगाना चाहिये।

(५) आकाश बेल और हरड़ का काढ़ा देना चाहिये। सनाय साढ़े सत्रह माशे, काबुली हरड़ साढ़े चौबीस माशे, आकाशबेल सवा दो माशे, नमक साँभर पौने दो माशे, बिस्फायज, हिब्ब इरमानी प्रत्येक साढ़े चार माशे, गारीकून, बेल का गूदा प्रत्येक पौने दो माशे महीन पीसकर बिल्ली लोटन के पानी में गोली बनानी चाहिये। मात्रा ९ माशे।

मधुमक्खी या ततैया—इनके दंश से प्रायः काँटा वहीं रह जाता है। इसके लिये ताली को इस पर रखकर जोर से दबा देना चाहिये, जिससे रक्त के साथ डंक भी बाहर निकल आये। ताली इस प्रकार की लेनी चहिये, जिसमें छिद्र हो। (२) लाइकर अमोनिया या स्प्रिट अमोनिया, या सिरका अथवा मिट्टी का तेल लगाना चाहिये। (३) मुलतानी मिट्टी या कपूर का लेप करना चाहिये। (४) धनिये के रस में सिरका और कपूर मिलाकर लगाना चाहिये।

मकड़ी—मकड़ी के मूत्र में विष होता है। इनके लगने से त्वचा लाल हो जाती है और फुन्सियाँ निकल आती हैं, जलन होती है।

उपाय—१—ठण्डे पानी की गद्दी बाँधनी चाहिये। २—सिरका और पानी को मिलाकर बरतना चाहिये। ३—लेड लोशन उत्तम है। ४—हल्दी, दारुहल्दी, पद्माख मजीठ, नागकेसर इनको गुलाबजल में पीसकर लेप करना चाहिये।

रक्त में विष—कई कारणों से रक्त के अन्दर विष पहुँच जाता है। कई रोगों में रक्त थोड़ा या बहुत विषैला बन जाता है, जैसे, टाइफ़स और टाइफ़ाइड में। पर यहाँ पर 'रक्त में विष' का अभिप्राय यह है कि कीटाणु अस्वास्थ्यकारक वस्तु को उत्पन्न करें, और वह वस्तु शरीर के अन्दर लीन हो जाय, जिससे दूषित संक्रमण "सैप्टिक इन्टॉक्सिकेशन" हो जाता है। इस विष से दो प्रकार के रोग होते हैं—एक 'शैप्टीसीमिया और दूसरा पाईयीमिया।

यह संक्रमण यकृत विद्रधि से, गर्भाशय से, मिश्रित अस्थि-भङ्ग से, जलने से अथवा शवच्छेद के समय की भूल से हो जाता है।

इसका कारण निर्बलता, कँपकपी, नाड़ी का तेज होना, त्वचा का गरम होना, सूखी जिह्वा, पृष्ठ पर शोथ, श्वास में विशेष गन्ध, गाढ़ा और अमोनिया की गन्धवाला मूत्र और अस्थायी रूप से व्रण के स्राव का बन्द हो जाना है। यदि "पाईयीमीया" का प्रथम लक्षण मालूम हो जाय, जो २४ घण्टे में मालूम पड़ जाता है, जैसे, चुभता हुआ दर्द, भिन्न-भिन्न भागों में शोथ, तो विद्रधि के मुख का होना होता है।

इस अवस्था में रोगी की शक्ति को बनाये रखना चाहिये। इसके लिये पोषक भोजन, उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहिये। दर्द कम करने के लिये क्लोरल देना चाहिये। विद्रधि की स्थानिक चिकित्सा करनी चाहिये।

भोजन के कारण विष—कई बार अजीर्ण के कारण आमाशय में भोजन विद्रधि होकर विष उत्पन्न कर देता है। यह विष शरीर के अन्दर लीन होकर विष के लक्षण उत्पन्न कर देता है। इससे वमन, अतिसार या मलावरोध, ज्वर, कँपकपी होती है।

इसके लिये रोगी को लंघन करना चाहिये। आमाशय को साफ़ करने

के लिये वमन देना चाहिये। नमक का पानी या साईट्रेट ऑफ मैगनेशिया का देना उत्तम है। रोगी यदि ठण्डा हो रहा हो, तो उसे गरम रखने के लिये उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहिये।

कई बार सड़े हुये फल या मांस के खाने से भी विष के लक्षण हो जाते हैं। इसके लिये भी ऊपर ही की चिकित्सा उत्तम है।

विषैले जानवरों को भगाने का उपाय

१—गोरखर की सींग, बकरी के खुर, सौसन की जड़ और अकरकरा की जड़, धनिया इनके धुवें से या इनको रखने से साँप भाग जाता है।

२—बच, राई, लहसुन या कोई तेज गन्धवाली वस्तु, कपूर, क्लोरोफार्म, अमोनिया आदि से साँप भाग जाता है। राई का पानी साँप पर गिरने से वह कुछ समय के लिये सुस्त हो जाता है।

३—तुलसी के वृक्ष से साँप डरता है।

४—शिलारस, बकरी की मींगनी, हरताल और बकरी की चर्बी, इनको मिलाकर बिच्छू के छेद पर रखने से बिच्छू नहीं निकलता। मूली के पत्तों के स्वरस से बिच्छू मर जाता है।

५—इन्द्रायन का पानी मकान में छिड़कने से या गन्धक का धुवाँ देने से अथवा कनेर के पत्ते जलाने से पिस्सू भाग जाते हैं।

६—यदि सेह की चर्बी एक लकड़ी पर लगाकर रख दें, तो सब पिस्सू उसपर इकट्ठे हो जाते हैं।

७—छरीला और फिटकिरी के धुएँ से या सर्स की लकड़ी या पत्ते को बिस्तर पर रखने से मच्छर भाग जाते हैं। भूसी को जलाने से या धुएँ से भी मच्छर भाग जाते हैं।

८—चिनार के पत्तों की धूनी से दीमक भागती है।

९—हरताल, और नकछिकनी के धुएँ से मक्खियाँ भागती हैं। अथवा पीली हरताल को पीसकर दूध में मिला दे। इसको खुले बर्त्तन में रखने से सब मक्खियाँ इसमें गिरकर मर जाती हैं।

१०—नेवला तुलसी की गन्ध से भागता है। चूहा फिटकिरी की गन्ध से भागता है।

११—यदि किसी चूहे को पकड़कर, उसको नीला रङ्ग कर या उसके अण्ड-कोष निकालकर अथवा उसका चमड़ा उतारकर छोड़ दें, तो और सब चूहे भाग जाते हैं।

१२—मुर्दाशङ्ख, कूठ, लोहे का मैल, भाँग के बीज, केसर, सुक इनकी गोली बनाकर बिलों में डालने से चूहे मर जाते हैं। संखिये को आटे में मिलाकर देना भी यही गुण करता है।

१३—चींटियों के बिल में हींग, हल्दी, नमक और लहसुन का धुँवा देने से ये भाग जाती हैं।

१४—गन्धक के धुएँ से या लहसुन से बर्रे भागती है।

१५—अफसन्तीन, कलौंजी, नीम के पत्ते, नीबू का छिलका, पुदीना अथवा फिनैल की गोलियाँ रखने से 'सूत' नाम का कीड़ा भाग जाता है। यह वह कीड़ा है, जो गरम कपड़ों में लगकर कपड़ों को खराब कर देता है।

१६—सर्प, मनुष्यों के बाल, चौपायों के खुर, हींग, राल, इनके धुएँ से सब कीड़े-मकोड़े भाग जाते हैं।

१७—प्लास्टर ऑफ पेरिस ६ भाग, चीनी का चूर्ण एक भाग, आटा २ भाग, इनको मिलाकर खुले स्थान में एक तश्तरी में रख देना चाहिये। तश्तरी के किनारे पर थोड़ा-सा घी मल देना चाहिये। इससे चूहे खिंचकर आयँगे।

१८—मच्छरों से बचने के लिये लोशन—

क्युनीन सल्फेट	१ ड्राम
अलकोहल (९५%)	४ औन्स
पानी	१॥ औन्स

शरीर के नंगे भाग पर लगाना चाहिये।

१९—मच्छरों से बचने के लिये प्रलेप—

कैरोसिन ऑयल मिट्टी का तेल	१ औन्स
नारियल का तेल	१ औन्स
सिट्रोनीला ऑयल	१ औन्स

त्वचा पर लगाना चाहिये।

२०—मच्छरों और खटमलों से बचने के लिये—

नैपथीलीन का चूर्ण	९६ भाग
क्रीयेजोट	२ भाग
आयडोफार्म	२ भाग

इसको कपड़ों पर छिड़क देना चाहिये और कपड़ों पर मलना चाहिये।

प्रकरण तेरहवाँ

तात्कालिक चिकित्सा

आवश्यक वस्तुयें—

औजार—(१) प्रोब—चाँदी की तार का बना होता है, इसकी सहायता से किसी वस्तु को व्रण में ढूँढ़ सकता है, पर्याप्त मजबूत होता है और मुड़ने से नहीं टूटता।

२—**डायरेक्टर (राघणी)**—यह जरा मोटे तार का बना होता है। किनारे पर चम्मच-सा बना होता है और दूसरी तरफ एक लम्बा 'प्रव' (कुल्या) सी बनी होती है। इस कुल्या में चाकू रखकर चिकित्सक आराम से व्रण को चीर सकता है। इस प्रकार करने से नीचे की ओर पार्श्व की रचनायें बच जाती हैं और चिकित्सक का काम सरल हो जाता है।

३—**एब्सस नाइफ (उत्पन्न पत्र)**—इसका फलका चौड़ा और सीधा होता है।

४—**कर्व्ड नाइफ (वृद्धि पत्र)**—यह चाकू बीच से घूम खाये हुये होता है। इसलिये गहरी विद्रधियों को सुगमता से काटने में काम आता है, और पहला चाकू त्वचा की विद्रधियों में काम आता है।

५—**ब्लन्ट नाइफ**—इसकी नोक आगे से कुन्द होती है।

६—**टैनेक्युलम**—यह एक तार के हुक की भाँति होता है। इसकी सहायता से रक्तवाहिनी को पकड़ सकते हैं।

७—**फ़ोरसेप्स (संदश)**—यह किसी वस्तु को पकड़ने के काम आता है।

८—**गमलैन्सट**—यह मसूड़ों को काटने के काम आता है।

९—**वैक्सी नेकहींग लैनसिट**—छोटी विद्रधियों को खोलने में या लेखन करने के काम आता है।

१० —**सुइयाँ टेढ़ी**— व्रणों को सीने के लिये टेढ़ी, चपटी सुइयाँ चाहियें।

११—**कैंची**—तेज और जिसका एक फलका आगे से कुन्द हो।

१२—**कैथेटर**—यह रबर और धातु के बने होते हैं। इनमें रबर के कैथेटर साधारण काम के लिये उत्तम हैं। बाजार में ये १ से १२ नम्बर के आते हैं। इनमें से २, ४ और ८ नम्बर के ये तीन कैथेटर पर्याप्त हैं। इनको सँभालकर रखना चाहिये। प्रयोग करने से पूर्व इनको देख लेना चाहिये कि इनकी आँख खुली है, या नहीं; कड़े तो नहीं हो गये।

१३—**पट्टियाँ**—श्वेत कोमल वस्त्र की पट्टियाँ गोल लपेटकर रखनी चाहिये। हाथों के लिये २ इञ्च चौड़ी और ८ गज लम्बी, टाँगों के लिये २॥ इञ्च चौड़ी और १० गज लम्बी, छाती आदि के लिये ३ इञ्च चौड़ी १२ गज लम्बी पट्टियाँ चाहियें। पट्टी में सिलावट, सिकन किसी प्रकार का नहीं होना चाहिये। इसके अतिरिक्त T (टी) के आकार की या अन्य प्रकार की पट्टियाँ भी रखनी चाहिये।

१४. **प्लास्टर**—प्राय: एड्‌जैसिटव प्लास्टर बरता जाता है। यह बाज़ार में तैयार मिलता है। जहाँ पर पट्टी बाँधना मुश्किल होता है, वहाँ पर इसकी सहायता से ड्रेसिंग को रोका जाता है।

१५. **लिन्ट**—यह व्रणों को धोने के लिये या गद्दी बनाने के काम आता है।

१६. **स्पंज और रुई**—व्रणों पर पानी गेरने के लिये या व्रणों को धोने के लिये रुई की आवश्यकता रहती है।

१७. **टौर्नीक्वेन्ट (बन्धन)**—१॥ इञ्च चौड़े मजबूत कपड़े के पट्टे होते हैं, जिनमें पैड (गद्दी) और बकल लगा होता है। दो-चार रुमालें भी इनका काम दे सकती हैं।

१८. **रेशम का धागा**—व्रणों को सीने के लिये, रक्त-वाहिनियों को बाँधने के लिये यह काम आता है। रेशम के धागों को प्रथम उबाल लेना चाहिये।

अच्छा नहीं। हाथ के रोगी इस नियम में अपवाद हैं। इसके लिये चारपाई या किसी मज़बूत कपड़े में चारोंओर चारपाई के आकार से बाँस बाँधकर काम लिया जा सकता है।

रक्त-स्राव—यह रक्त-वाहिनियों से होता है। यह रक्त-वाहिनियाँ दो प्रकार की हैं—एक लाल रक्त को बहानेवाली और दूसरी काले (नीले) रक्त को बहानेवाली है। लाल रक्त को बहानेवाली रक्त-वाहिनियों में स्पन्दन मालूम होता है। इसलिये जो रक्त इनमें से निकलता है, वह लाल होता है। इसमें रुक-रुककर धक्के के साथ रक्त-स्राव होता है। नीली रक्त-वाहिनियों में से रक्त काला (नीला) बहता है, इसमें स्पन्दन नहीं होता। रक्त सीधा धारावाहिक रूप से बहता है। हृदय के समीप व्रण के पास दबाव देने से धमनी का रक्त-स्राव रुक जाता है। इसी प्रकार हृदय से दूर व्रण के पास दबाव देने से शिरा का रक्त रुक जाता है। दूसरे अर्थों में व्रण के ऊपरी भाग में दबाव देने से धमनी का रक्त-स्राव रुक जाता है। व्रण के निचले हिस्से पर दबाव देने से शिरा का रक्त बन्द होता है। परन्तु शिर और ग्रीवा के रक्त-स्रावों में इससे विपरीत नियम है। बड़ी धमनी से होनेवाला रक्त-स्राव ख़तरनाक है। यह बिना शास्त्र-क्रिया के बन्द नहीं होता; परन्तु जो धमनी आक्रान्त नहीं हुई, उससे होनेवाला रक्त-स्राव इतना भयानक नहीं होता। शिरा का रक्त-स्राव भयानक नहीं होता। यह प्राय: अपने-आप बन्द हो जाता है। धमनी और शिरा की बनावट में तथा रक्त-संचार के बहाव में अन्तर है। इस कारण धमनी का रक्त-संचार स्वयं बन्द नहीं होता तथा भयानक होता है। और शिरा का रक्त स्वयं बन्द हो जाता है और वह भयानक नहीं होता।

धमनी से होनेवाला रक्त-स्राव—रक्त चमकता हुआ लाल होता है, धक्के के साथ बाहर आता है, व्रण के उपरी भाग में हृदय के समीप दबाव देने से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। बड़ी धमनी का रक्त-स्राव खतरनाक है और बन्द नहीं होता।

शिरा से होनेवाला रक्त-स्राव—रक्त काला होता है, लगातार एक धार बहता है। व्रण के निचले भाग में हृदय से दूर दबाव देने से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। यह प्राय: खतरनाक नहीं है और अपने आप बन्द हो जाता है।

रक्त-स्राव को रोकने का उपाय जब वह तीव्र न हो—जब व्रण से रक्त-स्राव बह रहा हो और वह तेज न हो, तो स्थान को बहुत गरम या बहुत ठण्डे पानी से स्पंज करने पर रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। यदि रक्त-स्राव अधिक हो, तो धमनी को अस्थि की तरफ अँगुली से, रुई से, गद्दी से या कार्क से दबाना चाहिये। रक्त-स्राव के स्थान को यथासम्भव हृदय से ऊँचा उठा देना चाहिये; परन्तु यदि इसमें सफलता न मिले, तो व्रण के दोनों किनारे ऊँचा करके धमनी को देखना चाहिये कि रक्त-स्राव कहाँ से हो रहा है। धमनी के मुख को ढूँढ़कर संदश से पकड़कर मरोड़ना चाहिये; परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह टूटे नहीं। यदि इससे भी रक्त-स्राव बन्द न हो, तो इसको रेशम के धागे से बाँध देना चाहिये। इस समय धमनी को 'टैनीक्युलम' से ऊँची करके (हुक की नोक को धमनी की दोनों दिवारों में फँसाना चाहिये) इसके नीचे बाँध देना चाहिये। गाँठ बहुत कसकर नहीं बाँधनी चाहिये। फिर व्रण के दोनों किनारों को पास में रखकर प्लास्टर से बन्द कर देना चाहिये। गाँठ के दोनों प्रान्त व्रण से बाहर रखना चाहिये। चार-पाँच दिन में, जब व्रण अच्छा हो जायगा, रेशम के तागे स्वयं बाहर आ जायँगे। टैनीक्युलम के स्थान में संदश भी काम आ सकता है।

यदि ऊपर की किसी विधि से रक्त-स्राव बन्द न हो, तो व्रण को गद्दियों से भर देना चाहिये। व्रण में थोड़ी-सी गद्दी रखकर, उस पर दूसरी गद्दी रख देनी चाहिये। इस पर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। इस दबाव से रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। यह पट्टी २४ घण्टे तक रखनी चाहिये। उतारते समय इस पट्टी को गरम पानी से गीला करके उतारना चाहिये। यदि प्लास्टर न मिले, तो गीले, नर्म वस्तु की गद्दी बाँध देनी चाहिये।

रक्त-स्राव को रोकने का उपाय जब वह तीव्र हो—जब रक्त-स्राव बहुत तेज़ हो, तो वह शीत परिसेक, बाँधने से, मरोड़ने से रुक जाता है।

शिर और ग्रीवा से होनेवाले रक्त-स्राव को रोकने के लिये व्रण को गद्दी से भरकर ऊपर से पट्टी बाँध देनी चाहिये। शिर और मुख से होनेवाला रक्त-स्राव को रोकने के लिये "कैरोटिड आर्टरी" पर दबाव देना

चाहिये। क्योंकि शिर और मुख से जो रक्तस्राव होता है, वह इस धमनी का होता है। धमनी को अन्दर और पीछे की ओर दबाना चाहिये, जिससे वह पृष्ठ-वंश की अस्थियों को ओर पहुँचे। अँगूठे और अँगुली से बहुत उत्तम दबाव दिया जा सकता है।

भुजा से कक्षा के पास से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये कॉलर बोन के मध्य में और पीछे को और सबक्लेवियन (कक्षा) धमनी पर दबाव देना चाहिये। दबाव देने के लिये बड़ी चाभी, या किसी ऐसी वस्तु को कपड़े में लपेट करके तीन-चार कपड़ों की तह में लपेटकर कॉलर बोन के मध्य में रखकर दबाना चाहिये। इससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

भुजा से होनेवाले रक्तस्राव को ब्रेकियल आर्टरी (प्रगण्डास्थि-धमनी) पर दबाव देने से रोका जा सकता है। इस धमनी को कोहनी से ऊपर भुजा के मध्य में दोनों हाथों की अँगुलियों से अस्थि की तरफ दबाना चाहिये। यदि इससे काम न चले, तो रूमाल को बाँधकर उसमें लकड़ी फँसाकर ऐंठना चाहिये, अथवा 'टैर्नीकेन्ट' बन्धन बाँध देना चाहिये।

हथेली से होनेवाले रक्तस्राव—इसके रोकने के लिये रेडियल आर्टरी (बहि: प्रकोष्ठास्थि धमनी) पर गद्दी रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये और इसी प्रकार की गद्दी अल्ना आर्टरी (अन्त: प्रकोष्ठास्थि) पर रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। गद्दी रखने का स्थान वही है, जहाँ पर नब्ज या नाड़ी देखते हैं। इससे रक्तस्राव बन्द हो जायगा। यदि बन्द न हो, तो व्रण को पिचु से भर देना चाहिये। फिर हथेली पर तथा हथेली की पीठ पर गद्दी रखकर उन पर कोई कड़ी वस्तु रखकर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। फिर प्रकोष्ठ पर भी पट्टी बाँध देनी चाहिये। कोहनी को मोड़कर हाथ को दूसरे कन्धे पर रखना चाहिये और हाथ को स्लिंग में लटका देना चाहिये। इस प्रकार २४ घण्टे तक रखना चाहिये। अथवा हाथ में गेंद (रबर) या कोई कड़ी गोल वस्तु पकड़ाकर उसपर अँगुलियों को मोड़कर पट्टी बाँध देनी चाहिये।

घुटने से ऊपर होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये जंघा के बाहर की तरफ मध्यरेखा में फीमरल (और्वी) धमनी पर दोनों अँगूठों से

दबाव देना चाहिये, क्योंकि प्रायः सब रक्त-वाहिनियाँ इससे निकलती हैं। लाले की चर्बी का दबाव भी उत्तम है।

जंघा के मध्य में से घुटने के नीचे से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये 'हौर्नीक्वेन्ट' या रूमाल या हौर्नीक्वेन्ट बन्धन बाँधना चाहिये। रूमाल को एक या दो बार अङ्ग के चारोंओर लपेटकर (व्रण से थोड़ी ऊँचाई पर) लकड़ी को रूमाल और त्वचा के बीच में से गुजरना चाहिये। फिर लकड़ी को ऐंठना चाहिये, इससे उस रूमाल को कस देना चाहिए। इसके कारण रक्तस्राव बन्द हो जायगा। रूमाल के नीचे कार्क या पैड रखने से भी काम निकल सकता है।

पाँव से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये—यदि तलुवे से रक्तस्राव हो रहा हो, तो रुई की गद्दी रखकर दोनों टखनों के मध्य में कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। यदि रक्तस्राव न रुके, तो व्रण पर गद्दी रखनी चाहिये और पैड भर देना चाहिये। सब अवस्थाओं में पाँव को शरीर से ऊँचा उठाकर रखना चाहिये।

धमनी को दबाने के पीछे रक्तस्राव को रोकने का उपाय—जब दबाव से रक्तस्राव रुक जाय, तब सब कपड़े, पट्टी, पिचु आदि को धीरे-धीरे हटाकर ठण्डे पानी से व्रण को धोना चाहिये। इसमें से जमे हुए रक्त को पानी से धोकर बाहर कर देना चाहिये। बन्धन या दबाव को थोड़ा-सा ढीला कर देना चाहिये। व्रण के किनारे उठाकर अच्छी प्रकार से देख लेना चाहिये कि अब रक्तस्राव कहीं से हो तो नहीं रहा है। फिर ऊपर से पट्टी बाँधनी चाहिये।

नाक से होनेवाला रक्तस्राव—यह रक्तस्राव या तो चोट से होता है, अथवा नकसीर के रूप में स्वयं हो जाता है। इसके लिये नाक पर ठंडा पानी लगाना चाहिये। माथे पर, शिर पर ठंडा पानी गिराना भी उत्तम है। यदि इससे रक्तस्राव बन्द न हो, तो पानी में फिटकिरी और नमक घोलकर नाक में पिचकारी लगानी चाहिये। यदि पिचकारी न मिले, तो फिटकिरी का चूर्ण सूँघना चाहिये। नाक से होनेवाले सब प्रकार के रक्त-स्रावों में रोगी को सीधा रखना चाहिये। उसके दोनों हाथ शिर के ऊपर सीधे रखने चाहिये। शिर के ऊपर बर्फ का टुकड़ा या शीत पानी की पट्टी

रखनी चाहिये। माथे और ग्रीवा पर भी शीत परिसेक करना उत्तम है। यदि सम्भव हो, फेशियल आर्टरी पर जहाँ गाल और नाक पर सम-कोण बनाकर जाती है, तो वहाँ पर दबाव देना चाहिये। नथनों को थोड़ी देर दबाकर रखना चाहिये। पाँव और टाँगों को राई के गरम पानी में रखना चाहिये। यदि इनसे सफलता न मिले, तो नथनों को बत्ती से भरना चाहिये

साधारणतः रोगी की स्थिति का ध्यान रखना चाहिये। उसको विरेचन, हल्का भोजन देना चाहिये। फलों के रस उत्तम हैं। हैजेलीन की पिचकारी भी उत्तम है। रुई को एन्टीपाईरीन के घोल में एन्टीपाईरीन ३० ग्रेन, पानी गरम १ चम्मच छोटा या एडरनैलीन क्लोराईड के घोल में अथवा स्टील के टिंचर में भिगोकर रुई को रखना चाहिये। रोगी को हल्का सल्फ्युरिक एसिड पिलाना चाहिये।

दाँत से निकलनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये—जहाँ से दाँत उखाड़ा हो, उस स्थान को रुई से अथवा टिंचर आफ स्टील में रुई को भिगोकर रखने से आराम हो जाता है। बाहर चिबुक पर पट्टी बाँध देना चाहिये, जिससे रोगी मुख को न खोल सके। दूध के गलाले भी उत्तम हैं।

दाँत से निकलनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिये—शीत पानी का परिसेक या फिटकिरी का चूर्ण छिड़कना चाहिये।

अन्तः अवयवों से रक्तस्राव—कई बार फेफड़ों से, आमाशय से, आंत्रों से और मूत्र-मार्ग से रक्त आने लगता है। इस रक्तस्राव के कारण निर्बलता, मूर्च्छा, शीत स्वेद, निर्बल, रुक-रुककर धमनी चलती है। शिर के अन्दर रक्तस्राव होने से श्वास-काठिन्य भी हो जाता है। इसकी चिकित्सा के लिये पूर्ण विश्राम देना चाहिये। अम्ल पीने को देना चाहिये जैसे, नीबू का रस और पानी। रोगी के शरीर को ठण्डा रखना चाहिये। पाँव गरम रखना चाहिये।

हीमोफीलिया—यह प्रायः स्त्रियों में होती है और उनसे वंश के अनुक्रम में पुरुषों में भी आ जाती है। इस रोग में थोड़े-से भी आघात से रक्तस्राव होने लगता है। कई बार बिना आघात के स्वयं हो जाता है, विशेषतः नाक और मसूड़ों से रक्तस्राव के होने पर जोड़ प्रायः सूज जाते हैं। कपड़े को फिटकिरी के पानी में भिगोकर रक्तस्राव के स्थान पर रखना

चाहिये। खाने के लिये लोह-भस्म, खण्ड कुष्माण्ड, दूर्वाद्य घृत, बासा घृत देना चाहिये।

रक्तस्राव में किस समय गरम दवाई देनी चाहिये—गरम दवाई देने में जल्दी नहीं करना चाहिये। रोगी का ठण्डा होना रक्तस्राव को रोकता है। गरम दवा रक्तस्राव को बढ़ाती है। परन्तु यही शीतलता यदि अधिक मात्रा में हो जाती है, तो खतरनाक है। यदि रोगी मूर्च्छित हो, रक्तस्राव अधिक न हुआ हो, चोट भी भयानक या तीव्र न हो, तो मूर्च्छा का कारण रक्तस्राव नहीं, बल्कि भय है। इस अवस्था में रोगी को गरम कम्बलों और गरम बोतलों के बीच में लेटाना चाहिये। ब्राण्डी और गरम पानी, दूध, अरिष्ट आदि मद्य देने चाहिये। मद्य को दूध में मिलाकर देना उत्तम है; परन्तु यदि रक्तस्राव अधिक हो, तो ब्रांडी मद्य की मात्रा थोड़ी रखनी चाहिये और इसको ठंडी देनी चाहिये। प्यास को रोकने के लिये बर्फ चुसानी चाहिये।

छाला—इस शब्द से यह अभिप्राय है कि त्वचा के ऊपर और मध्य स्तर में पानी एकत्रित हो जाय। यह प्रायः रगड़ से हो जाता है, जैसे, बूट के पहनने से या जिमनास्टिक में झूलने से। यह जलने से या गरम वस्तु के लगने से भी पैदा हो जाता है। यदि यह छोटा हो तो इस पर 'कोलो-डियम फलैक्सीवल' लगाकर गद्दी और पट्टी से दबाव देना चाहिये। इससे पानी विलीन हो जायगा और ऊपर की त्वचा अपने आप गिर जायगी। यदि छाला बड़ा हो, तो इसमें छेद करके पानी निकाल देना चाहिये और बहुत बड़ा हो, तो इसको चाकू से काटकर सब पानी निकाल देना चाहिये। ऊपर से जन्तुघ्न गद्दी रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। ऊपर की त्वचा को यथासम्भव बचाना चाहिये। लिन्ट पर वैजलीन या चिकनाई लगाकर स्थान पर रख देना चाहिये।

क्षत—इन आघातों में त्वचा विदीर्ण नहीं होती। ये आघात तीव्र और छोटे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। छोटे आघातों में त्वचा आक्रान्त होती है। पृष्ठवर्त्ती रक्त-वाहिनियाँ फट जाती हैं। रक्त त्वचा में जम जाता है, जिससे त्वचा का रङ्ग बदल जाता है। पहले यह काला होता है, पीछे जामुनी; हरा या पीला हो जाता है और अन्त में दस-पन्द्रह दिन में सर्वथा लोप हो जाता है।

जब तीव्र क्षत होता है, तो त्वचा का रङ्ग २४ घण्टे के पीछे या और भी पीछे जाकर बदलता है। इस अवस्था में रक्तस्राव बहुत होता है, त्वचा बची रहती है। छोटे आघातों में भूरे काग़ज़ को ब्रांडी या स्प्रिट कैम्फर मे भिगोकर लगा देना चाहिये। तीव्र क्षतों की अवस्था में रोगी के आघात-वाले अवयव को ऊँचा उठाकर रखना चाहिये, और उस स्थान पर गरम पानी तथा फुलालेन का सेंक करना चाहिये। अथवा ह्विस्की तथा पानी को समान भाग मिलाकर इसका कपड़ा रखना चाहिये। यदि क्षत तीव्र होगा, तो छाला उत्पन्न हो जायगा। इसको चाकू से छेदकर पानी निकाल देना चाहिये, और ऊपर की त्वचा को बचाकर रखना चाहिये। प्रथम दो दिन के पीछे गरम सेंक को धीरे-धीरे कम करके शीत परिसेक (सिरका १ भाग, पानी ४ भाग) करना चाहिये। पीछे से ब्रांडी या सोप लिनीमैन्ट की मालिश करवानी चाहिये।

कई बार ऐसा होता है कि क्षत वाला भाग सूज जाता है, बड़ी रक्त-वाहिनियाँ फट जाती हैं और तन्तुओं में रक्त एकत्रित हो जाता है। इस अवस्था में विद्रधि बन जाती है, त्वचा फट जाती है और अन्दर से पीव आती है। इस अवस्था में पुल्टिस का बाँधना उत्तम है, जिससे व्रण साफ़ हो जाय।

अग्नि से जलना — इसकी तीन अवस्थायें होती हैं। १—जब त्वचा लाल हो जाय या सूज जाय। २—जब अधिक गरमी से छाला उत्पन्न हो जाय। ३—जब त्वचा और इससे निचली रचनायें नष्ट हो जायँ और स्थान काला या पीला हो जाय, और इस स्थान में जीवन न रहे।

थोड़े-से जलने के लिये सैलड ऑयल में कपड़ा भिगोकर अथवा बर्फ कूटकर उस स्थान पर बिछा देनी चाहिये। बर्फ को तथा स्थान को यथासम्भव खुश्क रखना चाहिये। यदि यह न मिले, तो रुई को रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। मुख्य उद्देश्य यह है कि क्षतवाले स्थान से वायु को निकाल दिया जाय। अग्नि से जले हुवों के लिये चूने का पानी और नारियल का तेल (कैरन ऑयल) सबसे उत्तम चिकित्सा है। कपड़ों में आग लगाने से कई बार भयानक आघात पहुँचता है। आक्रान्त व्यक्ति को चाहिये कि वह भागे नहीं। भागने से वायु आग को और बढ़ायेगी। उसको चाहिये कि वह भूमि पर लेटकर लेटता फिरे। इससे आग बुझ जायगी। यदि पानी

मिल जाय, तो रोगी पर तुरन्त गेर देना चाहिये। पीछे से रोगी को बिस्तर पर लेटा देना चाहिये, और यदि रोगी मूर्छित हो (जैसा कि प्रायः हो जाता है,) ठण्डा हो जाता हो, कम्पकपी हो, शरीर और चेहरा पीला हो, तो रोगी को गरम चाय, ब्रांडी देना चाहिये। पाँव पर गरम बोतलें रखनी चाहिये।

जब मूर्छा कम हो जाय, पीछे से अफीम और क्लोरल उचित मात्रा में रोगी को पीने के लिये देनी चाहिये। कपड़ों को काटकर उतारना चाहिये। जो त्वचा जलकर गिराने हों, उसको वहीं पर छोड़ देना चाहिये, और जो जल गई हो, उसको अलग कर देना चाहिये। दस्तानों को थोड़ी देर ठण्डे पानी में भिगोकर रक्खा जाय, तो सुगमता से उतर सकते हैं। स्थान को अँगौछे से पूर्ण शुष्क कर देना चाहिये। पीछे से कैरन ऑयल में कपड़ा भिगोकर रख देना चाहिये। कैरन ऑयल न मिले तो मैदा और पानी के घोल में अथवा दूध तथा पानी के घोल में कपड़ा भिगोकर रख देना चाहिये। तीव्र जलने की अवस्था में शीत परिसेक हानिकारक है। कैरन ऑयल को गरम करके लिन्ट पर मोटा-मोटा चुपड़कर स्थान पर रख देना चाहिये। इसको दो दिन से पहले नहीं हटाना चाहिये। यदि सम्भव हो, तो ५ ग्रेन बोरिक एसिड भी मिला देना चाहिये। लिन्ट को उतारने से पूर्व इनको गरम पानी से गीला कर लेना चाहिये। जब त्वचा स्वस्थ हो जाय, तो ठण्डे पानी की गद्दी रखनी चाहिये। कोष्ठ का जलना हाथ-पाँव को जलने की अपेक्षा अधिक भयानक है।

कुछ शीतल लेप—१—तिल और जौ को भस्म करके उस स्थान पर लगाना चाहिये। २—कीकर के बुरादे की बुरकी देनी चाहिये। ३—तिल और मक्खन का लेप, ४—वंशलोचन, चन्दन, पिलखन, पीपल, गेरू इनका लेप करना चाहिये। ५—ओलों का पानी लगाना भी अच्छा है।

(१) गिले इरमानी का पानी सिर्के में मिलाकर लगाना चाहिये। २—लिखने की काली स्याही में कपड़ा भिगोकर अथवा अण्डे की सफेदी का लगाना शीतल करता है। ३—गुलरोगन और मुर्ग के अण्डे की सफेदी या जौ का आटा, मुर्ग की अण्डे की सफेदी और गुलरोगन मिलाकर लगाना चाहिये। काशभरी सफेदी और गीले धनिये का पानी, खुब्बाजी का शीतल काढ़ा, इनको मिलाकर मलहम बनाकर लगाना भी उत्तम है।

मूर्च्छा—यह बहुत तीव्र चोट के कारण होती है, यथा बन्दूक का आघात, सन्धि का फटना, आमाशय पर या गुह्य-प्रदेश पर चोटें। मूर्च्छा ज्वर से, शीत से और कुछ विषों से भी हो जाती है। कई रोगियों में बेचैनी, हिचकी, वमन प्रथम आरम्भ होते हैं। वमन का होना स्वस्थ होने का भी चिन्ह है। जो रोगी स्वस्थ होने लगते हैं, उनकी त्वचा गरम हो जाती है, रोगी बेचैनी का अनुभव करने लगता है और पार्श्व के भार लेटने को चाहना करता है। थोड़ी देर पीछे चेहरा लाल हो जाता है, शरीर गरम और नाड़ी तेज हो जाती है। अच्छे रोगियों में ये लक्षण कुछ समय पीछे अपने आप शान्त हो जाते हैं। बुरे रोगियों में शरीर ठण्डा, नाड़ी धीमी, हिचकी, प्रलाप बेचैनी रहती है।

चिकित्सा—इसमें यह सिद्धान्त रखना चाहिये कि हृदय और फेफड़ों का कार्य भली प्रकार चलता रहे और रोगी की शारीरिक उष्णिमा बनी रहे, जबतक रोगी खतरे से पार नहीं हो जाता है। यदि किसी स्थान पर रक्तस्राव हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। रक्तस्राव न होने पर रोगी को गरम बोतलों में, कम्बलों में रखना चाहिये। गरम पानी की बोतलें कक्षा में, पाँव में रखनी चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोगी इनसे जल न जाय। रोगी को ब्रांडी, कस्तूरी, मकरध्वज आदि उष्ण वस्तुयें देनी चाहियें। जबतक रोगी स्वस्थ न होने लगे, उसको खड़ा न होने देना चाहिये। स्वस्थ होने के पीछे रोगी को ज्वर आ जाता है। इस अवस्था में शीत विरेचन (साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया) देना चाहिये। बुरे रोगों में वातिक उपद्रवों को रोकने के लिये क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये और चाय आदि से उसकी शक्ति बचानी चाहिये।

सन्धि-भ्रंश और अस्थि-भंग

कई बार गिरने से या आघात से अस्थि टूट जाती है, अथवा जोड़ अपने स्थान से खिसक जाता है। बच्चों में अस्थियाँ नरम होती हैं, इसलिये ये टूटती कम हैं और टूटने पर शीघ्र जुड़ जाती हैं।

लक्षण—स्थान पर दर्द होता है। रोगी उस स्थान को बचाता है। असाधारण स्वरूप आजायगा, अर्थात् दूसरे पार्श्व से उसकी स्थिति नहीं

मिलेगी। तीसरा लक्षण यह होगा कि वह अंग अपना कार्य नहीं कर सकेगा। स्थान पर शोथ होती है।

चिकित्सा—सन्धि-भ्रंश को उसके वास्तविक स्थान पर बैठाकर पट्टी बाँध देनी चाहिये, और अंग को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। अस्थि-भंग में भी अस्थि को उसकी वास्तविक स्थिति में लाकर फलक आदि से सहारा देकर बाँध देना चाहिये।

वाह्य वस्तुओं का निकालना

नाक के अन्दर वाह्य वस्तु का जाना—मटर, बीज, पत्थर की कंकीर, पेंसिल के टुकड़े आदि वस्तुओं को बच्चे खेलते हुये नाक में डाल देते हैं। नाक को पकड़कर सिड़कने से या नाक से साँस को बलपूर्वक बाहर करने से यह वस्तुयें निकल जाती हैं। यदि इनसे सफलता न मिले, तो नकछिकनी या छींकों की दवाई सुँघानी चाहिये। नाक में पिचकारी मारनी चाहिये। और इससे भी सफलता न मिले, तो राई को घोलकर वमन देना चाहिये। वमन करते समय मुँह को हाथ से बन्द कर लेना चाहिये। इससे पानी नाक से निकलेगा, जिससे वस्तु भी निकल आयेगी। यदि नाक में जोंक चली जाय, तो नमक के पानी का नस्य लेना चाहिये, या पिचकारी मारनी चाहिये।

कान के अन्दर वाह्य वस्तु का जाना—सबसे प्रथम कान की परीक्षा करके वस्तु का आकार और उसकी स्थिति जाननी चाहिये। जब वस्तु इस प्रकार की हो, जो पानी से न फूले, जैसे, मटर, तब पिचकारी का उपयोग करना चाहिये। प्रथम गरम पानी की पिचकारी मारनी चाहिये। पिचकारी से पूर्व यदि तेल की दो-तीन बूँदें कान में डाल दी जायँ, तो कार्य सरल हो जाता है। यदि कोई वस्तु रत्ती आदि हो और वह पिचकारी से बाहर न आये, तो शलाखा पर गोंद लगाकर उसको कान में डालकर रत्ती के साथ चिपकाकर कुछ देर तक वहीं छोड़ देना चाहिये। पीछे खुश्क होने पर खींच लेना चाहिये अथवा पतले संदंश से पकड़कर वस्तु को निकाल लेना चाहिये। सब बातों में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि परदे पर आघात न पहुँचे।

कर वस्तु निकाली जा सकती है अथवा नाक को बन्द करके श्वास रोकने से (जिससे आँखों में रक्त का दबाव बढ़ जाय) निकाली जा सकती है। अथवा आँख को खोलकर रूमाल की नोक से वस्तु को निकाल देना चाहिये। यदि वस्तु खुरदरी हो, तो कैस्टर ऑयल या मधु आँख में लगा देना चाहिये। पलक को उलटने की सरल विधि यह है कि प्रोब या झाड़ू के तिनके को पलक के समानान्तर रखकर इसको जरा आगे की ओर दबाकर पलक को इसके ऊपर मोड़ देना चाहिये।

आँख में चूना गिरने पर चूने को चुन-चुनकर बाहर करना चाहिये। और आँख को नीबू का पानी या सिरके से (१/३ भाग सिरका २/३ भाग पानी) धोकर कैस्टर ऑयल लगा देना चाहिये।

गले में या अन्न-प्रणाली में वाह्य वस्तु के फँस जाने से— प्रायः मृत्यु हो जाती है। यह वस्तु कृत्रिम दाँत, भोजन का टुकड़ा, मछली की अस्थि आदि होती है। इससे श्वास-प्रणाली का अवरोध हो जाता है। इसके लिये रोगी को प्रकाश में इस प्रकार से बैठाना चाहिये कि प्रकाश गले में सीधा आ सके। फिर अँगुली को जिह्वा के पीछे तक पहुँचाकर देखना चाहिये। यदि यह वस्तु कठोर प्रतीत हो, तो इसको नीचे आगे की ओर ढकेल देना चाहिये, और यदि नरम हो, तो इसको बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये। इस समय रोगी को चाहिये कि वह जीभ को बाहर निकाल-कर कपड़े से पकड़ रक्खे। यदि अँगुली वहाँ तक न पहुँच सके, तो पीठ पर हाथ से एक प्रहार करना चाहिये। यदि रोगी बच्चा हो, तो इसको घुटनों में दबाकर, जिससे पेट खिंचा रहे, प्रहार करना चाहिये। अथवा गले में अँगुली डालकर वमन कराने से भी वस्तु बाहर आजाती है। कृत्रिम दाँत आदि को लम्बे संदश से पकड़कर निकालना चाहिये।

यदि यह सब उपाय निरर्थक जायँ, तो रोगी को कुरसी पर बैठाकर उसका सिर पीछे की ओर मोड़ देना चाहिये। फिर एरण्ड नाल या कमल नाल अथवा पतली लकड़ी लेकर उसके साथ स्पंज के छोटे-से टुकड़े को बाँधकर गले में ले जाना चाहिये। वहाँ से इसको शनैः-शनैः आगे और नीचे, आमाशय की ओर प्रविष्ट करना चाहिये, जिससे वस्तु को शनैः-शनैः आमाशय में उतार दे। यह कार्य चिकित्सक ही को करना चाहिये।

श्वास-प्रणाली में वाह्य वस्तु—इसके फँसने से श्वास में कठिनता होती है, खाँसी आती है; जिससे कभी-कभी वस्तु बाहर भी आजाती है। यदि रोगी बच्चा या औरत हो, तो पाँव से पकड़कर शिर के भार उलटा करके पीठ पर हल्के-हल्के प्रहार करने चाहिये। यदि रोगी युवा हो, तो उसको तिरछा लेटाना चाहिये, जिससे टाँगें ऊपर रहें और शिर नीचे। पैसे आदि वस्तुयें इस प्रकार से बाहर निकल आयेंगी। यदि इससे सफलता न हो और बेचैनी बढ़ रही हो, तो तुरन्त चिकित्सक को बुलाना चाहिये।

आमाशय में वाह्य वस्तु—सिक्का, दाँत आदि कड़ी वस्तु जब आमाशय में पहुँच जायँगी तो, वह स्वयं मल के रास्ते बाहर हो जायँगी। इनमें किसी प्रकार के विरेचन की आवश्यकता नहीं होती। रोगी को पानी अधिक पीना चाहिये। यदि कोई धातु पेट में चला गया हो, तो किसी प्रकार का अम्ल नहीं देना चाहिये। भोजन गरिष्ठ करना चाहिये, जिससे मल कठिन बनकर वस्तु को बाहर निकाल दे।

जोंक के पेट में चले जाने पर नमक का पानी पीना चाहिये। इससे या तो जोंक मर जायगी अथवा वमन के रास्ते बाहर आजायगी।

त्वचा में वाह्य वस्तु—लकड़ी की फाँस, काँट, सुई, पिन आदि वस्तुयें त्वचा में चुभ जाती हैं। फाँस, काँटे आदि को नखचिमटी, मोचना या संदश से पकड़कर निकाल देना चाहिये। अथवा व्रण को थोड़ा-सा बढ़ाकर फिर निकाल लेना चाहिये। इनको एक या दो दिन वहीं छोड़कर ऊपर से पुल्टिस बाँधनी चाहिये, या सेंक करना चाहिये, जिससे वह स्थान पक जाय अथवा ये ढीले हो जायँ, तब निकालना चाहिये। सुई आदि वस्तु की जबतक वास्तविक स्थिति और स्थान मालूम न हो जाय, तबतक निकालना कठिन होता है। क्योंकि सुई चुभती है किसी रूप में और अन्दर किसी रूप में रहती है। इसलिये स्थान मालूम करके, इसको चीरकर बाहर करना चाहिये।

नाखून के नीचे वाह्य वस्तु—फाँस, काँटा आदि निकालने के लिये नाखून को बारीक काटना चाहिये, जिससे वस्तु चिमटी में पकड़कर खींची जा सके। यदि इस प्रकार से सफलता न मिले, तो फाँस के अगले भाग को नष्ट नहीं करना चाहिये, बल्कि नाखून को यथासम्भव पतला

छीलना चाहिये। इसमें त्रिभुजाकार टुकड़ा ऊपर से काटना चाहिये। अब फाँस सुगमता से पकड़ी जा सकेगी। यदि इसमें भी सफलता न मिले, तो दो-तीन पुल्टिस बाँधनी चाहिये, जिससे फाँस ढीली पड़ जाय।

अन्य भागों में बाह्य वस्तु—कई बार बाह्य वस्तु गुप्त भागों में, स्त्रियों के योनि-द्वार में और पुरुषों के मूत्र-मार्ग में फँस जाती है। इसके लिये चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिये।

पानी में डूबना

पानी में डूबने की कई अवस्थायें हैं। यदि मनुष्य गरम पानी में गिरेगा, तो श्वास-काठिन्य होगा, श्वास बन्द हो जायगा। पानी इतना ठंडा होता है कि रोगी मूर्च्छित हो जाता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य पानी में गिरकर भय से या आघात से मर जाता है।

पानी में डूबे हुये व्यक्ति के लिये कृत्रिम श्वास का चलाना सब से आवश्यक है। इसके पीछे उसको गरम रखना तथा रक्त-संचार का चालू करना दूसरा काम है।

रोगी को समान भूमि पर पीठ के भार लेटा देना चाहिये। यदि संभव हो, तो पाँव की ओर जरा-सा नीचा रखना चाहिये और शिर को थोड़ा-सा ऊँचा। उसके गले और छाती तथा पेट के सब वस्त्र ढीले कर देने चाहिये। उनको लपेटकर कन्धे और शिर के नीचे रख देना चाहिये। अनावश्यक भीड़ को हटा देना चाहिये। रोगी के मुँह और नाक को साफ कर देना चाहिये और जीभ को बाहर निकालकर पकड़ लेना चाहिये। यदि पास का आदमी रूमाल से पकड़ ले, तो उत्तम है। रोगी को पेट के भार लेटाना चाहिये। उसके पेट के नीचे कपड़ों को लपेटकर रख देना चाहिये। पीछे से पीठ को दबाना चाहिये। इस दबाव से पेट का पानी बाहर आ जायगा। फिर फेफड़ों को दबाना चाहिये। इसके पीछे जल्दी से रोगी को पीठ के भार लेटा देना चाहिये और जिह्वा को मुँह से बाहर रखना चाहिये।

कृत्रिम श्वास—चलाने के लिए चिकित्सक को रोगी के सिरहाने खड़े होकर दोनों होठों को शिर के पार्श्व में सीधा पकड़कर, ऊपर उठाकर दो सेकन्ड तक तानना चाहिये। इस प्रकार से पसलियों के ऊपर

खींची जाने पर रोगी अन्तःश्वास न लेगा। श्वास निकलने के लिये दोनों हाथों को कोहनी पर मोड़कर, छाती पर रखकर दबाना चाहिये। यह भी दो सेकण्ड तक करना चाहिये। पसलियों के दबने से श्वास बाहर निकल जायगा। इस विधि को १ मिनट में १५ बार दुहराना चाहिये।

इस उपाय के साथ-साथ स्मेलिंग साल्ट, सुँघनी आदि वस्तुएँ सुँघानी चाहिये। गले में गुदगुदी करनी चाहिए। छाती को मलना चाहिये। मुँह और छाती पर क्रमशः ठंडे और गरम पानी के छींटे देने चाहिये। शुष्क फलालैन से सोंठ से, कांसी के गरम बर्त्तन से हाथ-पाँव को मलना चाहिए। यह काम तबतक करते रहना चाहिए, जबतक चिकित्सक न आए अथवा नाड़ी और श्वास को बन्द हुए एक घंटा न हो जाय।

जब श्वास चलना आरम्भ हो जाय, तब रोगी को गरम करने का उपाय करना चाहिए। रोगी को कम्बलों में लपेटकर फलालैन से हाथों-द्वारा मलना चाहिए। रबरों की बोतलों में पानी भरकर पाँव, कक्षा, पेट पर रखना चाहिए। जब रोगी निगलने लगे तब दूध, चाय, ब्रांडी, गरम पानी पीने को देना चाहिए। रोगी को बिस्तर पर रखना चाहिए और उसको सुलाने का यत्न करना चाहिए। छाती पर या पीठ पर कन्धों के नीचे राई का प्लास्टर लगाने से श्वास-काठिन्य हट जाता है।

फाँसी—यदि लटकाने के पीछे शरीर कुछ ऊँचाई पर से गिर जाय, जिससे ग्रीवा का सन्धि-भ्रंश हो जाय, तो मृत्यु तुरन्त हो जाती है। यदि ऐसा न हो, तो रस्सी का दबाव धमनियों को दबा देता है, जिससे मस्तिष्क में रक्त-वाहिनियाँ फट जाती हैं। रक्त-वाहिनियों के फटने से—संन्यास के कारण मृत्यु हो जाती है। तीसरी अवस्था यह है कि रस्सी का दबाव (शनैः-शनैः) श्वास-नलिका पर पड़े और श्वास-काठिन्य हो जाय। यदि इस अवस्था में रोगी मिल जाय, तो उसमें कृत्रिम श्वास चलाकर देखना चाहिये।

बिजली से आघात—मनुष्य जब बिजली से पीड़ित होता है, तो उसकी चेतनता थोड़ी या बहुत अवश्य नष्ट हो जाती है। यदि भय से चेतनता नष्ट हुई होती है, तो वह शीघ्र अच्छी हो जाती है। रोगी ऐसा अनुभव करता है कि वह मूर्च्छा से उठा है। बिजली के कारण दाह हो जाता है। कई बार थोड़ा त्वचा का लाल होना, कई बार छाला पड़ना और कई बार

अधिक दाह होता है। इसी प्रकार का प्रभाव आजकल की बिजली के तारों से होता है। इसके अतिरिक्त अस्थि का टूटना, आँख से न दीखना, कम दीखना, कान, नाक, वाणी की शक्तियों का नष्ट होना हो जाता है, जो स्थायी या अस्थायी होता है। इन रोगियों की चिकित्सा के लिये कृत्रिम श्वास तथा मूर्च्छा की चिकित्सा करनी चाहिये।

बिजली के गिरने से बचने का उपाय

१—किसी ऊँची वस्तु के समीप नहीं खड़ा होना चाहिये, जैसे, वृक्ष, ऊँचे मकानात।

२—किसी बहती हुई दरिया के पास नहीं खड़ा होना चाहिये, जब तक तुमसे ऊँची कोई वस्तु पास में न हो।

३—भीड़ में नहीं जाना चाहिये।

४—रत्न (हीरा), माणिक्य आदि अथवा धातु को, अँगूठी, चाभी, घड़ी आदि वस्तुओं को दूर कर देना चाहिये, चूँकि ये वस्तुवें बिजली को अपनी ओर खींचती हैं।

५—घर के बीच में, दीवारों से दूर होकर बीच में बैठना चाहिये।

६—चटाइयों पर बैठना उत्तम है। इसी प्रकार लोहे के पलँग पर सोना भी उत्तम है।

७—यदि बरसात में वस्त्र गीले हो गये हैं, तो तुम बिजली से सुरक्षित हो गये।

गरमी से आघात—सफेद त्वचावाले व्यक्ति प्रायः सूर्य की गरमी से आक्रान्त हो जाते हैं। इनको बचाने के लिये सिरके का पानी, या कपूर का मरहम लगाना चाहिये।

गुप्त अङ्गों पर चोट—अण्ड-कोषों पर प्रायः आघात से चोट लग जाती है। इसके कारण अण्ड-कोष सूज जाते हैं, रोगी मूर्च्छित हो जाता है सब से प्रथम रोगी को उत्तेजित रखना चाहिये। स्थान पर शीत परिसेक करना चाहिये। यदि इससे लाभ न हो, तो उष्ण परिसेक करना चाहिये। इन चोटों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। यथासम्भव चिकित्सक की सहायता प्राप्त करनी चाहिये।

मूत्राघात—इस रोग में वृक्कों से मूत्र उत्पन्न होता है, मूत्राशय में

भी आता है; परन्तु मूत्राशय से बाहर नहीं आता। मूत्र-मार्ग में अवरोध होने से अथवा अष्ठोला के बढ़ने से मूत्र-मार्ग में अश्मरी के फैंसने से, मूत्राशय की पेशियों के पक्षाघात होने से, हिस्टीरिया से, जंघास्थि के टूटने से मूत्र रुक जाता है। कई बार गिरने से मूत्र-मार्ग फट जाता है। उस समय मूत्र भी रुक जाता है। प्रत्येक कारण की चिकित्सा भिन्न-भिन्न है। परन्तु जब मूत्र आघात के कारण रुक जाय, उस समय टाँगों के बीच में आँतों पर सेंक करना चाहिये। रोगी को क्लोरल हाईड्रेट पानी के लिये देना चाहिये, अन्यथा शलाका यंत्र (कैथीटर) गुजारना चाहिये।

ज़ख़्म और कटाव

शस्त्र या औजार के स्वभाव के कारण आघात या जख्म का स्वभाव भी भिन्न-भिन्न होता है। किसी शस्त्र से त्वचा सीधी कट जाती है, जैसे, चाकू से, किसी औजार से जर्की थोड़ी रह-रहकर कटती है, जैसे, आरे से, किसी से सीधा गहरा छेद होता है, यथा लम्बी सुई से। भाले और गोली का स्वभाव और ही प्रकार का होता है। किसी अवस्था में अङ्ग कुचला जाता है।

सीधे कटाव में सबसे प्रथम रक्त को रोकना चाहिये। सब धूल आदि को दूर करना चाहिये। रक्त-स्राव को रोकने के लिये अङ्ग को ऊँचा करना चाहिये, शीत परिसेक करना चाहिये, स्पंज से दबाव देना चाहिये। दूब को कूटकर मधु से मिलाकर लगा देना चाहिये। धूल आदि को हटाकर, व्रण को जन्तुघ्न घोल से धोकर दोनों किनारों को पास में लाकर सी देना चाहिये, अथवा प्लास्टर से दोनों किनारों को समीप में रखकर चिपटा देना चाहिये। इसके ऊपर सूखी रुई रखकर पट्टी बाँध देनी चाहिये। यदि कटाव छोटा हो, तो व्रण के दोनों किनारों के पास लाकर कोलोडियम फ्लैक्सीबल लगा देना चाहिये।

सीते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि व्रण में धूल आदि न रहे। व्रण के किनारे ठीक मिल जायँ, धागा और सुई उबाल लिये जायँ, सुई बहुत गहरी न जाय, जिससे मांस-पेशियाँ स्नायु में न फँस जायँ। इसी प्रकार इतने पास से न ले जाना चाहिये कि व्रण का किनारा कट जाय। प्रत्येक इंच के लिये एक टाँके की आवश्यकता होती है।

कटे हुये, घिसे हुये या छिले हुये व्रणों में, जहाँ व्रणों के किनारे पास में लाना सम्भव न हो, वहाँ पर पुल्टिस बाँधकर पीछे से पानी की पट्टी बाँधनी चाहिये। नाखूनों के घावों को गरम पानी से धोना चाहिये।

जबतक ड्रेसिङ्ग तैयार हो या ड्रेसिङ्ग बदला जाय, तबतक एन्टी-सैप्टिक लोशन में कपड़े को भिगोकर व्रण पर रख देना चाहिये। जो कटाव सीधे और साफ हों, उनकी पट्टी तीसरे दिन बदलनी चाहिये। प्लास्टर को उतारते समय प्रथम दोनों किनारों को अलग करके फिर दोनों किनारों को पकड़कर केन्द्र की ओर प्लास्टर उतारना चाहिये। सड़े हुये सब स्राव को दूर कर देना चाहिये।

व्रणों की चिकित्सा में सबसे मुख्य सिद्धान्त स्वच्छीकरण (ऐन्टी-सैप्टिक) है। जो व्रण जितना स्वच्छ रहेगा, वह उतना ही शीघ्र भरेगा। कटे हुये भागों को सुरक्षित रखना चाहिये। सम्भव है कि वे उचित उपाय से जोड़ जा सकें। जैसे, अँगुली का कटना, नाक या कान का अलग हो जाना।

स्वच्छीकरण के लिये कार्बोलिक एसिड लोशन और टिंचर आयोडीन सबसे उत्तम वस्तु हैं। व्रण में यदि कोई दूषित पृष्ठ जम जाय, तो उसे उखाड़ देना चाहिये। जिस व्रण में किसी प्रकार का स्राव न हो, किनारे लाल और त्वचा के समान हो; पृष्ठ लाल तथा दानों (लाल अंगारों) से भरा हो, वह व्रण शीघ्र भर जाता है। जिस व्रण के भरने पर दर्द न हो, गाँठ न बने, चिबुक न मारे, वह व्रण भली प्रकार भरा हुआ समझना चाहिये। व्रणों में रोगी को आवश्यकतानुसार विश्राम देना चाहिये।

गोली आदि के व्रण प्रायः घातक होते हैं। विशेषतः जब इनमें धूल आदि चली जाय। धूल आदि के साथ कीटाणु जाकर धनुर्वात रोग उत्पन्न कर देते हैं। इन व्रणों में यथासम्भव रक्त को रोकने के लिये शीत परिसेक करना चाहिये। यदि रोगी को ज्वर हो जाय, तो व्रण पर पुल्टिस बाँधनी चाहिये, रोगी को विरेचन देना चाहिये। साइट्रेट ऑफ मैगनेशिया का देना उत्तम है।

आँतों में व्रण—इसकी दो अवस्थायें हैं। जब आघात कोष्ठ की पेशियों तक ही सीमित रहता है, तो आँतों को आघात का स्पर्श नहीं होता। यदि इसमें से आंत्र दिखाई दें, तो उनकी परीक्षा करनी चाहिये कि वे आक्रान्त हुई हैं या नहीं। यदि मल के साथ रक्त आये अथवा व्रण में से

मल दिखाई दे, तो इस बात की साक्षी है कि आँतें आक्रान्त हुई हैं। यदि आंत्र आक्रान्त न हुई हों, तो व्रण को साफ करके दोनों किनारों को पास लाकर सुई से सी देना चाहिये अथवा प्लास्टर से चिपका देना चाहिये। पीने के लिये द्रव भोजन देना चाहिये। जहाँ सींग आदि से आंत्र के विदीर्ण होने का भय हो, वहाँ पर चारकोल की पुल्टिस बाँधनी चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि आमाशय और आंत्र भरे होने पर जल्दी आक्रान्त होते हैं।

यदि आंत्र आक्रान्त हो जाय, तो गरम पानी से धोकर सब धूल साफ कर देनी चाहिये। यदि आँतें स्वयं फटी हैं, तो व्रण छोटा होगा, जो सिल सकेगा। व्रण के किनारे अन्दर की ओर मोड़ देना चाहिये, जिससे पृष्ठ समीप में आजाय। सीने के लिये रेशम बारीक लेना चाहिये और पास-पास सीना चाहिये। रेशम के प्रान्त भी छोटे-छोटे काटने चाहियें। फिर से आँतों को उसके स्थान पर बैठा देना चाहिये। जब व्रण अच्छे होंगे तब धागे वहीं गिर जायँगे। बाहर के व्रण को सी देना चाहिये। उस पर बर्फ लगानी चाहिये। २४ घण्टे तक किसी प्रकार का भोजन नहीं देना चाहिये और ३ सप्ताह तक द्रव भोजन देना चाहिये।

वृक्क—मूत्र-पिण्ड के आघात से मूत्र में रक्त आने लगता है। बार-बार मूत्र-प्रवाहण करने की इच्छा होती है। अण्ड-कोष ऊपर को खिच जाते हैं और रोगी सीधा खड़ा नहीं हो सकता। इसकी चिकित्सा के लिये कटि-प्रदेश और आँतों पर वृक्क के स्थान पर क्रमशः सेंक करना चाहिये। पीने के लिये द्रव वस्तु नहीं देना चाहिये। यह यत्न करना चाहिये कि रोगी को पसीना आये। जब मूत्र में रक्त की मात्रा आनी कम हो जाय, तब समझना चाहिये कि रोगी अच्छा हो रहा है। प्यास को रोकने के लिये बर्फ या दूध और पानी देना चाहिये। यवोदक भी देना उत्तम है।

गले का व्रण—यह व्रण प्रायः आत्मघात करने के उद्देश्य से किये जाते हैं। इसमें शिरा, धमनी तथा श्वास-नलिका कट जाती है। यदि बड़ी धमनी न कटे, केवल श्वास-नली कटी हो, तो बड़ी धमनी के कटने पर बचने की आशा बहुत कम रहती है।

इसकी चिकित्सा के लिये सबसे प्रथम रक्त-स्राव बन्द करना चाहिये। रक्त-स्राव बन्द होने पर रोगी को गरम कमरे में रखना चाहिये। रक्त-स्राव

बन्द होने पर (उससे पहले नहीं) रोगी को तकिये का सहारा देकर इस प्रकार से बिठा देना चाहिये कि कन्धे उठे रहें और सिर आगे झुका रहे। इस स्थिति में रोगी को स्थिर कर देना चाहिये। व्रण पर लगाने के लिये स्पंज को उबालकर उस पर एरीस्टोल छिड़ककर रख देना चाहिये। यदि श्वास-नलिका आक्रान्त हो गई हो, तो रुई से ढीला ढक देना चाहिये। यदि अन्न-प्रणाली भी कट गई हो, तो रोगी को नलिका से भोजन देना चाहिये। प्यास के लिये बर्फ या गीला कपड़ा चुसाना चाहिये। रोगी की पूरी देख-भाल रखनी चाहिये।

जिह्वा का व्रण—ये व्रण मृगी, हिस्टीरिया, मूर्च्छा आदि रोगों में हो जाते हैं। विशेषतः जब दाँतों में जीभ फँस जाती है। ये प्रायः अपने आप अच्छे हो जाते हैं। यदि ये अच्छे न हों, तो मधु और ग्लैसरीन लगानी चाहिये।

प्राणियों के काटने से उत्पन्न व्रण

घोड़े और ऊँट के काटने से उत्पन्न व्रण—कई बार तेज दाँत धमनी में आघात पहुँचा देता है, यथा अन्तः प्रकोष्ठास्थि धमनी में। रक्त-स्राव को बन्द करके गरम पानी से धोना चाहिये। इस पर पुल्टिस बाँधनी चाहिये, और पीछे से सादा ड्रेसिंग करना चाहिये।

कुत्ते और बिल्ली के काटने पर—व्रणों को गरम पानी से धोकर चारकोल या नीम की पुल्टिस भी बाँधनी चाहिये। यदि दर्द हो, तो स्थान पर पोस्त के ढोड़ों का सेंक करना चाहिये। जब व्रण अच्छा हो जाय, तो पानी की पट्टी बाँधनी चाहिये।

बिल्ली का नोचना—स्थान को गरम पानी से धोकर पुल्टिस बाँध देनी चाहिये और पीछे से शीत परिषेक करना चाहिये।

शेर और भालू का काटना—यदि हाथ काटता है, तो वह टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, छाती में आघात होने पर दाँत और पंजे फेफड़ों को जख्मी कर देते हैं। जङ्घा की अवस्था में बड़ी धमनी विदीर्ण हो जाती है। रक्त-स्राव को सबसे प्रथम बन्द करके व्रण को ऐन्टी सैप्टिक लोशन से धोना चाहिये। यदि आघात थोड़े हों, तो प्रथम कुछ दिनों तक पुल्टिस बाँधकर पीछे से पानी

का परिषेक करना चाहिये। यदि कार्बोलिक एसिड मिल जाय, तो उसका तेल या घोल लगाना चाहिये।

मच्छर का काटना—साधारणतः इसका कारण भयानक नहीं होता है। परन्तु कई बार मच्छर विष को, जैसे मलेरिया के कीटाणु को, शरीर के अन्दर पहुँचा देता है। मच्छर के काटने से केवल ज़ख्म ही नहीं होता, बल्कि उसमें से पानी भी निकल आता है। इसके लिये अमोनिया स्प्रिट लगानी चाहिये। सिरका या कार्बनेट ऑफ पोटाश का घोल भी बरतना उत्तम है।

जोंक के काटने पर—कुछ रक्त-स्राव होता है। इसके काटने से थोड़ा दर्द होता है। सबसे प्रथम रक्त-स्राव को बन्द करना चाहिये, पीछे से शीत परिषेक करना चाहिये।

खटमल का काटना—इससे खुजली, शोथ, रक्तिमा और कभी श्वेत चिन्ह होता है। सिरके को पानी में मिलाकर लगाना चाहिये। सामान को जिसमें खटमल हों, गरम पानी से या तारपीन के तेल से धोना चाहिये।

जूँ का काटना—जूँ के काटने से खुजली होती है, ये प्रायः बालें में रहती हैं और वहीं अण्डे देती हैं। इनको मारने के लिये बालों को कार्बोलिक लोशन से धोना चाहिये। बालें को उस्तरे से साफ़ कराकर मर्क्युरल ऑयन्टमेन्ट लगाना चाहिये। मिट्टी के तेल से सिर को धोना भी अच्छा है। जिस समय मिट्टी का तेल सिर पर लगा हो, उस समय आग के पास नहीं जाना चाहिये। पीछे साबुन से धो देना चाहिये।

सर्प-दंश-जन्य व्रण—भारत में २१३ प्रकार के साँप हैं। इनमें ३३ साँप विषैले हैं। इन तैंतीस साँपें के दो भेद हैं। एक 'वीपेरीन' और दूसरा 'कोल्युब्रीन'। वीपेरीन साँपों की पूँछ मोटी होती है और इनका शिर त्रिभुजाकार होता है। 'कोल्युब्रीन' साँप फनदार होते हैं। विषैले साँपें के ऊपर के जबड़े में दो दाँत होते हैं, जिनपर विष की रेखा का चिन्ह होता है। तलुवे पर और भी दाँत होते हैं; परन्तु असली जबड़े पर और कोई दाँत नहीं होता। दाँतें की जड़ में एक छेद होता है। इस छेद से विष दाँत में आता है और काटने पर शरीर में पहुँचता है।

लक्षण—विषैले साँप के काटने पर दंश के स्थान पर..इस

प्रकार का चिन्ह होता है । परन्तु यदि दंश पर : : इस प्रकार का चिन्ह हो, तो यह दंश विष-रहित साँप का होता है अथवा विष-युक्त दाँत से नहीं बना होता। साँप प्राय: अँगुली, अँगूठे, गिटके, हाथ आदि पर सोते समय काटता है । इसके कारण दर्द होता है, जो एक लहर के रूप में उठता है; परन्तु बहुत तीव्र नहीं होता । काटने से मूर्च्छा, रुग्णावस्था, टाँगों में निर्बलता, निद्रा का आना, सम्भवत: वमन भी होता है । श्वास कठिनता से आता है और छोटा हो जाता है । नाड़ी तेज़ और रुक-रुककर चलती है । बोलने और निगरण को शक्ति नष्ट हो जाती है, जीभ मुड़-सी जाती है और मुँह से लार बहने लगती है। मांस-पेशियों में ऐंठन आरम्भ हो जाती है, उनमें हिलने-डुलने की शक्ति नहीं रहती । दर्द ऊपर की ओर चढ़ता प्रतीत होता है। विलीन करनेवाली रक्त-वाहिनियाँ सूज जाती हैं । व्रण बे रंग हो जाता है, अङ्ग सूज जाता है । आक्रान्त स्थान के पास छाला उठ आता है । कक्षा और वंक्षण की लसिका-ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं । कई बार अतिसार हो जाता है । दंश से रक्तस्राव होता है । कई बार मूत्र में रक्त आता है, अथवा नाक, आँतों या मसूड़ों से रक्तस्राव होता है।

चिकित्सा—बाँधना, चूसना और जलाना है । ब्राण्डी की मात्रा रोगी को सबसे प्रथम पिलानी चाहिये । रोगी को उत्तेजित रखना चाहिये। कक्षा या वंक्षण में सूजन होने पर पुल्टिस बाँधनी चाहिये । यदि बन्धन के आध घण्टे के पीछे तक विष का कोई लक्षण न हो, तो बन्धन खोल देना चाहिये । एन्टीवीनाइन का इञ्जेक्शन भी उत्तम है ।

मस्तिष्क-सम्बन्धी विचार

यह एक मशहूर कहावत है कि 'जितने मुँह उतनी बात'। अर्थात् सब लोग एक विचार के नहीं हो सकते । वास्तव में बात भी यही है कि आप सब बच्चों को एक ही नियम में रखिये । उनको एक ही प्रकार की शिक्षा दीजिये । फिर भी सब में अन्तर दिखाई देगा । कोई छात्र आगे निकल जायगा, कोई बीच में रह जायगा और कोई फेल हो जायगा । इसी तरह किसी को गणित भली प्रकार आती है और किसी को बिल्कुल नहीं आती । इसी प्रकार किसी को संगीत में प्रेम और अभिरुचि बहुत होती है

और किसी को उसमें बिल्कुल ही रुचि नहीं होती। 'साँप' बीन के ऊपर जान दे देता है और भैंस के आगे वही बीन रेते में पानी की भाँति फ़िज़ूल है।

इसी प्रकार आप बहुत-से छात्रों को एकत्रित करके उनके ब्रह्मचर्य की शिक्षा दीजिये और कड़े नियमों में भी रखिये। परन्तु इनमें कुछ छात्र ऐसे निकलेंगे, जो 'संयम' या निग्रह को सुगमता से पाल सकते हैं। साथ ही कुछ व्यक्ति इस प्रकार के होंगे, जिनमें यत्न करने पर भी सफलता नहीं मिल सकती, अर्थात् वे संयम नहीं कर सकते। वे स्वयं समझते हैं कि हमको संयम करना चाहिये, पर हो नहीं सकता।

एक तीसरी बात यह है कि बहुत-से रोगों में पैतृक कारण भी होता है। उदाहरण के लिये—क्षय-रोग से ग्रस्त माता-पिता की सन्तान में क्षय-रोग हो जाता है। अपस्मार रोगवाले माता-पिता से मृगी-रोगवाला बच्चा होता है। जिस बच्चे के माता-पिता पागल हों, उस बच्चे के पागल होने की ९८ प्रतिशत आशा रहती है। यह एक नियम है, जैसा बीज बोया जायगा, वैसा ही उत्पन्न होगा।

परन्तु साथ में यह भी देखना पड़ता है कि अन्धे माता-पिता से सूजाखे बच्चें उत्पन्न होते हैं और सुजाखे माता-पिता से सूरदास उत्पन्न हो जाते हैं। इस विषमता का कारण भी कुछ होता ही है। लोग श्वेत कबूतरों से नीले या गुलाबी कबूतर भी बना लेते हैं। इसके लिये वे कबूतर को जिस रंग का बनाना चाहते हैं, उस रंग में दोनों नर और मादा को रंग देते हैं। और उनके रहने के स्थान में भी वही रंग दीवारों पर, छत पर, ज़मीन पर करवा देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी सन्तति उसी रंग की होती है। अर्थात् परिस्थितियों का प्रभाव उन पर पड़ जाता है।

जिस प्रकार प्रत्येक वृत्ति में शारीरिक विषमतायें देखने में आती हैं, उसी प्रकार मानसिक विषमतायें भी प्रत्येक व्यक्ति में मिलती हैं। जो कारण शारीरिक विषमताओं के हैं, वे ही कारण मानसिक विषमताओं के हैं; क्योंकि दोनों का उत्पत्ति-कारण वह शुक्र और रज का संयोग है, अथवा वही पंच महाभूत दोनों को बनाते हैं। इन मानसिक विषमताओं का केन्द्र-स्थान अपना देव-कोष (हिरण्यमय कोष) मस्तक है। क्योंकि सब

प्रकार के मानसिक कार्य यहीं से फैलते हैं।

इस मस्तक में पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ रहती हैं और कर्मेन्द्रियों को नियंत्रित करनेवाले साधन भी इसी अपने मस्तक में हैं। इन्द्रियों को उपनिषदों में 'देव' या 'देवता' शब्द से कहा गया है। चूँकि इसमें देवताओं का निवास होता है, इसलिये इसको 'देव-कोष' कहते हैं।

इस देव-कोष की उपमा भगवान् कृष्ण ने "अश्वत्थ" वृक्ष से दी है। "अश्वत्थ" का शब्दार्थ कभी नष्ट न होनेवाला है। इस पाँच भौतिक शरीर के अन्दर एक आत्मा ही ऐसी वस्तु है, जो कि कभी नष्ट नहीं होती। इस अविनाशी वस्तु का स्थान देव-कोष है। साथ ही इस "अश्वत्थ" का रूप इस प्रकार से बताया है कि इसकी शाखायें नीचे को फैली हैं और जड़ ऊपर को है। साधारणत: अश्वत्थ पीपल वृक्ष की शाखायें ऊपर को होती हैं और जड़ नीचे। शास्त्र में लिखा है कि जो आदमी इस अश्वत्थ को समझ लेता है, उससे कोई भी वस्तु अविदित नहीं रहती; अर्थात् वह सब कुछ समझता है। इस अश्वत्थ को समझने के लिये ही नचिकेता ने यम से प्रश्न किया था। उसने इस उत्तर को बहुत कठिनाई से दिया है; क्योंकि यह वस्तु ही ऐसी है कि कोई व्यक्ति इसे आश्चर्य के साथ देखता है, कोई व्यक्ति इसे आश्चर्य के साथ कहता है और कोई आश्चर्य के साथ इसे सुनता है, और कोई सुनकर भी इसको समझ नहीं सकता।

इस देव-कोष-मस्तक से सब प्रकार की 'संज्ञावहा' और 'चेष्टावहा' क्रियायें उत्पन्न होती हैं, और यहीं आकर समाप्त होती हैं। अर्थात् 'चेष्टावहा' तन्तु त्वचा के उपरि पृष्ठ से, नखों के प्रान्तों से चलकर मस्तिष्क में पहुँचते हैं, और मस्तिष्क से संज्ञावहा तन्तु चलकर त्वचा के पृष्ठ एवं नखों के प्रान्तों तक पहुँचते हैं। इन तन्तुओं से सारा शरीर ओत-प्रोत है। ये ही तन्तु मस्तक में फैले हुये हैं। इन तन्तुओं के अन्दर 'प्राणवहा' रस बहता है। यह रस भी तन्तुओं के या सूत्रों के रूप में चलता है। यदि ये तन्तु कट जाते हैं, तो स्थानिक पक्षाघात या लकवे की बीमारी हो जाती है। उदाहरण के लिये हाथ के तन्तु कटने से हाथों का पक्षाघात हो जाता है। इसलिये आचार्य ने इसको 'प्राणों का स्थान' कहा है; क्योंकि सब प्राणवहा स्रोतसों का यही केन्द्र है। प्राणों का स्थान होने से इसको "उत्तमांग" (सब अंगों में श्रेष्ठ) कहते हैं।

जिस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में श्रोत्र, जिह्वा, नाक, कान आदि में परस्पर भेद दिखाई देता है, उसी प्रकार से मस्तिष्क के अन्तरावयवों में भी अन्तर-भेद है। इन अवयवों को मानस-अवयव या प्राणावयव कहते हैं। इस भिन्नता के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति अपनी भिन्न मानसिक रुचि रखता है।

जिस प्रकार शरीर के अन्य भागों में वृद्धि या क्षय होता है, उसी प्रकार मस्तक के अवयवों में वृद्धि या क्षय होता है। यथा—यकृत के बढ़ने से या घटने से जिस प्रकार शरीर के अन्दर परिवर्त्तन आ जाता है; उसी प्रकार मानसिक अवयवों में वृद्धि या क्षय होने से रोगी को मानसिक अवस्थाओं में भी अन्तर आ जाता है। अर्थात् रोगी को नींद नहीं आती या बहुत आती है; चित्त विभ्रम हो जाता है; क्रोध, लज्जा, आदि बहुत हो जाते हैं; मनुष्य की स्मृति नष्ट हो जाती है। ये सब लक्षण मानसिक अवयवों में अन्तर आने से होते हैं।

इन मानसिक अवयवों को सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से देखने पर विशेष लाभ होता है। यथा—

१—स्त्री, पुरुष एवं बालकों के स्वभाव, चारित्र्य आदि की योग्यता की परीक्षा।

२—बालकों के स्वभाव और शिक्षण का निर्णय।

३—विवाह-योग्य स्त्री-पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभाव की परीक्षा।

४—नौकर-चाकर, गुमाश्ता आदि की पसन्दगी।

५—सदाचारी, दुराचारी, धर्मात्मा या पापी आदि मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव की परीक्षा।

६—पागल, उन्माद रोगी की परीक्षा एवं अनेक प्रकार के मानस-रोगों की परीक्षा।

७—मुख-सामुद्रिक शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य की आँख, नाक, कान, ओष्ठ, भ्रमर, चिबुक आदि चेहरे के अवयव, एवं चेहरे के ऊपर की रेखाओं को देखकर मनुष्य के मानसिक अवयवों को देख सकते हैं। इससे स्त्री एवं पुरुष तथा बालकों के चारित्र्य या स्वभाव का निर्णय सुगमता से हो सकता है। इसलिए मुख-सामुद्रिक शास्त्र के सामान्य सिद्धान्तों का ज्ञान भी अति आवश्यक और उपयोगी है। चेहरा मनुष्य के भावों के लिये एक रण-स्थली है इस पर सब अवयव आकर अपना-अपना भाव दिखाते

हैं। एक ही चेहरा प्रेम, क्रोध, लज्जा, उपेक्षा आदि अनेक भावों को एक-एक क्षण में दिखाता है।

इन भावों को समझाना ही मस्तक-विद्या और मुख-सामुद्रिक शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। इस स्थानों पर इन विद्याओं के सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इन सिद्धान्तों का उपयोग हम प्रतिदिन और अनेक प्रसङ्गों में कर सकते हैं।

मानसिक वृत्तियों को आठ समूहों में बाँटा गया है। ये समूह शरीर के अवयवों की भाँति अपना कार्य पृथक्-पृथक् रूप में करते हैं। जिस प्रकार रक्त-संचार का कार्य और श्वास प्रचार का कार्य पृथक्-पृथक् है, उसी प्रकार इन वृत्तियों का कार्य और स्थान भी मस्तक में भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक अवयव का स्थान, रूप और कार्य भी सर्वथा परस्पर भिन्न है।

आगे का नक़शा देखिये।—

मानस-वृत्तियों के समूह, प्रमाण, विभाग, नाम, स्थान नम्बर आदि

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
१	जीलीविषा	कान का पिछला मस्तक का उन्नत भाग...नं० १	कान के निचले खण्ड की लंबाई और चौड़ाई	लम्बी अस्थियोंवाला, लम्बे हाथ-पाँववाला, पूर्ण संधियों-वाला, भरावदार मांसपेशियों वाला, कठोर अँगुलियों एवं तलुवोंवाला।
२	क्षुधावृत्ति	कान के समीप का मस्तक का उन्नत भाग...नं० २	कान के पास का गालों का भरावदार भाग	करभ—हथेली का निचला भाग मोटा, खुरदरा और बिना ढङ्ग की लिखावट होती है।
	सुस्वाद	अनुभाग	,,	,,
	सुप्रमाण	पिछला भाग	,,	
३	पिपासा	नं० ३ वाला चौड़ा और भराव-दार भाग	मुख के समीप का गाल का ऊपरवाला विभाग	
४	वैश्यवृत्ति	दोनों कान के बीच का विशाल चौड़ा प्रदेश		अँगुलियाँ तथा पहुँचा अन्दर की तरफ झुका होता है।
	१ प्राप्ति	कान का ऊपर का उन्नत और अग्रभाग	नासिका का मूल भाग चौड़ा-मोटा होता है।	
	२ योगक्षेम	मध्य भाग	मांस से भरी हुई चिबुक	
	३ लोभ	पिछला भाग	नाक की डंडी मोटी और विस्तृत	
५	निग्रह वृत्ति	कान के शिखर के ऊपर का मस्तक का उन्नत भाग		धीरे-धीरे करके लिखावट

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	संयम	पीछे का ,, ,,	नाक के चौड़े नथने	
	युक्ति	मध्य ,, ,,	नोकदार झुकी हुई नाक	
	निग्रह	अग्र ,, ,,	,, ,, ,,	
६	उद्योग—कार्य-शक्ति	कान के ऊपर का समीप का उन्नत भाग	बाहर की तरफ गिरते हुये कान	अँगूठा और अनामिका के पास का मांसवाला भरावदार भाग, मोटे अक्षर।
	१—क्रिया-शक्ति	अग्रभाग	गाल की अस्थि उन्नत होती है।	
	२—विनाशक शक्ति	पिछला भाग	कान का परदा मोटा होता है।	
७	शौर्य या युयुत्सा	नं० ७ वाला भाग ऊँचा उठा हुआ होता है।	नाक की ऊँचाई	करतल पृष्ठ उठा हुआ होता है।
	हिम्मत	,,	नासिका की मूल की ऊँचाई होती है।	
	बचाव	अग्रभाग	नासिका का मध्य उठा हुआ भाग	
	हमला करना	पीछे का और नीचे का विभाग	तोते के समान नाक	
८	कामवासना, प्यारवृत्ति	लघु मस्तिष्क के उन्नति प्रमाण में नं० ८	उपरिओष्ठ भरावदार, रक्त से परिपूर्ण, वर्ण, मध्य भाग आगे को लटकता रहता है।	अँगुष्ठ की जड़ मोटी, एवं अक्षर बड़े और मोटे मोटे होते हैं।
	संयोगाभिलाष	गरदन का मध्य भाग मोटा और मांसपेशी युक्त	बीच में विस्तृत चिबुक, चौड़ा नीचे का जबड़ा	
	सहवास-प्रियता	विस्तृत गरदन और लघु मस्तिष्क	शरीर का घनश्याम रङ्ग	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
९	दाम्पत्य-प्रेम	लघु मस्तिष्क का भरावदार मध्य प्रदेश नं० ९		मज़बूत और प्रमाणों में मोटा अँगूठा।
	विवाहेच्छा	अन्तर विभाग		
	एकान्तिक प्रेम	बाह्य विभाग		
१०	वात्सल्य-स्नेह	मस्तिष्क का निचला भरावदार प्रदेश		बहुत गोल-मरोड़वाले अक्षर
	अपनी संतति पर का प्रेम	ऊपर का विभाग	बाहर की तरफ गिरता हुआ ऊपर का लाल ओष्ठ	
	बच्चों पर का स्नेह	मध्य का विभाग	ऊपर की ओठ के दोनों तरफ़ के प्रान्त मोटे होते हैं	
	प्रजा-पालन-वृत्ति	अधोविभाग	निचले ओष्ठ के नीचे गड्ढा रहता है	
११	मैत्रीभाव	वात्सल्य स्नेह के ऊपर का भाग उन्नत होता है।	गोल विस्तृत चिबुक	अनामिका की जड़ के समीप में हथेली का मांस उन्नत होता है।
	जल्दबाज़ी	अधो विभाग		
	कौटुम्बिक-स्नेह	मध्य विभाग	गाल का उपरला भाग पूर्ण होता है	
	सहवास-प्रियता	ऊपर का विभाग	गाल का निचला भाग भरा होता है	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
१२	स्वदेशानुराग	मस्तिष्क का पिछला उन्नत मध्य विभाग	ओष्ठ के रक्त विभाग से निचला चिबुक की तरफ़ ढलता हुआ गड्ढेवाला भाग	
	निवासेच्छा	मैत्री भाव के ऊपर का मध्य विभाग।		
१३	तत्परायणता	निवासेच्छा के ऊपर का नं० १३ वाला विभाग		
	संलग्नता	मध्य भाग	ओठ और नासिका के बीच का विस्तृत विभाग	
	संवाध्यता	वाह्य विभाग	ओष्ठ का मध्य वी० (v) के आकार का	
१४	सावधानता	नं० १४ का उन्नत प्रदेश	दोनों ओष्ठ भली प्रकार से बन्द हो जाते हैं।	
	अक्लमन्दी, बुद्धिमानी	अग्रभाग	चौड़े नथने और लम्बी नोकीली नाक	
	संभाल	मध्य भाग		
	भीरुता	पीछे का अधोविभाग		
१५	उत्कर्षाभिलाष	'स्वमान' अवयव के दोनों प्रान्तोंवाले अवयव उन्नत होते हैं।	छोटे नथने	
	चारित्र्य			

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	ढोल-दमाम	स्वभाव के बाजु का भाग	गाल पर पड़ती हुई रेखायें	
		ऊपर का भाग	गाल पर पड़ती हुई तथा ऊपर	
	उत्कर्ष	अधोविभाग	का ओष्ठ छोटा होता है।	
१६	स्वमान	माथे के पीछे का उन्नत भाग	जिससे कि दाँत खुले हुए दिखाई देते हैं, या मुख का कोण ऊपर को खिंच जाता है	
	स्वतन्त्रता	अधो विभाग	सीधी और लम्बी गर्दन	
	प्रतिष्ठा	मध्य ,,	ऊपर का ओष्ठ सीधा होता है	
	अहंभाव	अग्र ,,	नाक का मूल प्रदेश उन्नत होता	
१७	दृढ़ता		है, उस पर आड़ी रेखा पड़ी होती है।	घुमे हुये छोटे अक्षर
	मनोबल	नं० १७ का उन्नत भाग	मोटी नाक और भरी हुई दाढ़ी	
		पीछे काग	कान के पास में से निकलती हुई अधो हनुसन्धि का अधिक कोण।	
	धैर्य	मध्य भाग		
	खन्त (दृढ़ता)	अग्र भाग	दाढ़ के पास लबड़ा चौड़ा होता है	
१८	पूज्यभाव	मध्य मस्तिष्क का ऊपर का भाग	आगे को गिरती हुई चिबुक	
	अन्ध-विश्वास	पिछला भाग	नासिका का सेतु का ऊँचा होना	
	भक्ति-भाव	मध्य भाग	आँख के पलक नीचे को ढलते हुये दिखाई देते हैं।	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	विनय या मानवृत्ति	अग्र भाग	ऊपर के ओष्ठ का मध्य भाग नीचे को झुकता हुआ	
१९	अध्यात्म-रति	नं० १९ का उन्नत प्रदेश	आँख की पलकों और भ्रमरों के मध्य का चौड़ा भाग	
	श्रद्धा	ऊपर भाग	आँख और भ्रमर के अन्तः प्रान्त (नाक की तरफ से) की दूरता	
	विश्वास	मध्य ,,	दोनों भ्रमरों के बीच का अन्तर अधिक होता है	
	आश्चर्य-प्रियता	अधो ,,		
२०	आशा	नं० २० की उन्नतवाला भाग		
	सट्टा	अधो विभाग	आँख के पलकों पर और ओष्ठ के उपरले प्रान्तों पर पड़ती हुई रेखायें	
	वर्त्तमान-आशा	मध्य ,,		
	भावी-आशा	अग्र ,,	माथे पर पड़ती हुई तरङ्गों जैसी रेखायें	
२१	आत्म-निष्ठा	मस्तिष्क के पिछले भाग की लगभग चौरस उन्नत दिखाई देना		
	न्याय निष्ठा	ऊपर का विभाग	दोनों भ्रमरों के बीच में दो,	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
			तीन, चार खड़ी रेखाओं का होना	
	सत्य-प्रियता	मध्य-भाग	आँख की बराबर सीधी स्थिति	
	बुद्धिमानी	अधो-भाग	एक समान बढ़ते हुये बाल	विस्तृत चिबुक
२२	परोपकार-वृत्ति	नं० २२ का गोल उठा हुआ भाग		
	दया	अग्र भाग	भरा हुआ अपूर्ण ओष्ठ	
	उदारता	मध्य भाग		
	सहानुभूति	पीछे का भाग	आँख की ऊपर के पलक के बाल मुड़े हुये	
२३	कला-कौशल्य	पार्श्व कपाल का भरावदार-परिपूर्ण दर्शन	नथुनों के उपरले भाग में नाक के दोनों पार्श्वों की भरावदार स्थिति	अंगुलियों का अगला नाखून वाला पोटा बड़ा होता है। अक्षर और लिखावट एक खास प्रकार की घूमी हुई होती है।
	योजना-शक्ति	अग्र-विभाग		
	शोधक-शक्ति	मध्य-विभाग		
	चापल्य	पिछला भाग		
२४	सौन्दर्य-प्रेम	माथे के ऊपर का पूर्ण से खिला हुआ नं० २४ का विभाग		अँगूठे की जड़ का मांस वाला भाग भरा हुआ होता है, और कलई का भाग चौड़ा होता है। स्टाइल लिखावट, मरोड़दार अक्षर स्पष्ट लाइन।
	प्रावीण्य	अग्र-भाग	नाक के नथुने चौड़े	

नम्बर	मानस अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	सुसंस्कारिता	मध्य भाग में		
	कवित्व	पिछले भाग में		
२५	औदार्य	नं० २५ वाला मस्तिष्क का विस्तीर्ण भाग		हथेली के अनुपात में छोटी अँगुलियाँ
	आश्चर्य-प्रियता	अग्र विभाग		मोटे अक्षर वाली लिखावट
	गाम्भीर्य-भाव	पिछला विभाग		
२६	अनुकरण-शक्ति	शिर के अन्दर नं० २६ वाला विस्तृत भाग		नम्र और मृदु अँगुलियाँ, अस्थिर ढङ्ग की लिखावट, लिखते समय काग़ज़ को हिलाने-डुलाने की आदत।
	मानसिक-अनुकरण	ऊपर का भाग	नासिका के नस्करों की लंबाई	
	हाव-भाव	मध्य का भाग	आँख और मुख के स्नायुओं की नम्रता, मृदुता।	
	शाब्दिक-अनुकरण	अधो भाग	चौड़ा मुख	करभ—हथेली का निचला भाग मोटा एवं स्नायुओंवाला; चञ्चल और चपल लिखावट।
२७	हास्यवृत्ति	शिर का २७ वाँ पूर्ण भाग		
	आनन्द	अधो विभाग	मुख के प्रान्त पर से ओष्ठ का ऊपर को चढ़ा होना।	
	खिलवाड़	ऊपर का विभाग	आँख के पलकों पर से ऊपर जाती हुई रेखायें	

नम्बर	म	ा अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
२८	आकृ	ज्ञानशक्ति	नं० २८ वाला विस्तृत विभाग	नासिका की मूल के समीप में अस्थियों की चौड़ाई	तर्जनी अँगुली का प्रथम पोरा चौड़ा मोती की भाँति एक समान लिखावट।
२९	क़द ा	प्रमाण ज्ञान	नं० २९ का खिला हुआ विभाग	एथिमौयड अस्थि का विस्तार	एक सीधी रेखा में, समान अंतर से; अक्षरों की लिखावट।
३०	अवल	ान-शक्ति	नं० ३० वाला विस्तृत विभाग	आंख के अमर नाक की तरफ़ कुछ झुके होते हैं और इनके बीच का स्थान मांसल होता है।	अँगुली के पोरे प्रायः चौरस दीखते हैं। अक्षरों की बनावट बारीक, परन्तु पढ़ने में स्पष्ट रहती है।
		मानसिक अवलोकन	ऊपर का विभाग		
		पदार्थ सम्बंधी ,,	नीचे का विभाग		
३१	गुरुत्व	ौर वज़न	नं० ३१ वाला उन्नत विभाग		बराबर सीधी रेखा और अक्षरों की एक समान बनावट, एक समान झुकाव।
३२	रंग ः	ाशक्ति	नं० ३२ वाला मस्तिष्क का बढ़ा हुआ भाग		अक्षरों के मूल स्वरूप को छोड़कर शेष लिखावट में मोटाई रहती है।
३३	क्रम ः	ा व्यवस्था	नं० ३२ वाला मस्तिष्क का भाग	अमर एक समान लम्बी, गोल और बाहर का प्रान्त एक समान झुका होता है।	अँगुलियों के पोटवे चौरस, अँगुलियों के पोरवों की सन्धि मोटी होती है। विराम, अल्प विराम, काउंस आदि चिन्हों का पूर्ण ध्यान रखता है।

नम्बर	मानस-अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	स्वच्छता	अन्दर का विभाग		
	व्यवस्था	बाह्य-विभाग		
३४	गणित-ज्ञान	नं० ३४ वाला मस्तिष्क का भाग उन्नत होता है		स्वच्छता, स्पष्टता और व्यवस्था-युक्त लिखावट
	अङ्क-ज्ञान	भ्रमरों के अन्दर का भाग भरा होता है।	बाह्य पार्श्व की तरफ वृद्धि होती है,	
	अटसटा [झगड़ालू]	भ्रमरों का बाह्य-विभाग	आँख के प्रान्त और भ्रमरों के बाह्य प्रान्तों के बीच का अधिक होता है।	
३५	स्थल-ज्ञान	नं० ३५ वाला मस्तिष्क का भाग भरा हुआ होता है	माथे के नीचे का भरावदार प्रदेश	बहुत लम्बे, पूँछवाले, विस्तृत-अक्षर जल्दी की लिखावट
	शोधक-शक्ति	नीचे का विभाग		
	भूगोल-शक्ति	ऊपर का विभाग		
३६	ऐतिहासिक-ज्ञान अथवा स्मृति	मस्तिष्क में नं० ३६ का उन्नत प्रदेश	माथे के मध्य में उठा हुआ होता है।	लिखावट स्पष्ट होती है।
	घटनाओं का ज्ञान	अधोभाग		
	सांवधिक-ज्ञान	ऊपर का भाग		
३७	समय-ज्ञान	नं० ३७ का मस्तिष्क का प्रदेश	माथा लगभग चौकोर दिखाई देता है।	हाथ और अँगुलियाँ चौरस होती हैं
	काल-ज्ञान	अन्दर का विभाग		एक समान लिखने की झड़प

नम्बर	मानस-अवयवों के नाम	मस्तक के अन्दर इनका स्थान	सामुद्रिक लक्षण	अन्य चिन्ह
	ताल-ज्ञान	बाह्य-विभाग		
३८	संगीत-शक्ति	भ्रमर के बाह्य प्रदेश पर उठा हुआ मस्तिष्क का नं० ३८ वाँ भाग	कपाल का झुकता हुवा भाग भरावदार, लम्बी भ्रमर, विस्तृत आँख और पलकें, छोटी नाक और भरे हुये गाल	अक्षरों के ऊपर और बाहर के भाग में घुमाव
	सुस्वर	ऊपर का भाग (कपाल पर का)		,,
	आलाप	नीचे का भाग ,, ,, ,,		,,
३९	वक्तृत्व-शक्ति	आँख के ऊपर के और नीचे के विस्तृत भरावदार पलक	आँख के निचले पलकों का भरावदार भाग	संयुक्ताक्षरवाली लिखावट
	शब्द-स्मरण-शक्ति	नं० ३९ वाला मस्तिष्क का भाग		,,
	वक्तृत्व-शक्ति	,,		,,
४०	तर्क-शक्ति	ऊपर का मस्तिष्क ऊँचा और विस्तृत	विशाल-कपाल	
	समाज-शक्ति	अन्तर-विभाग		
	योजना	बाह्य-विभाग		
४१	तुलना-शक्ति	मस्तिष्क के उपर का भरावदार मध्य विभाग	नाक के नथने अन्दर की ओर झुके होते हैं	शब्दाक्षरों का यथार्थ सम्बन्ध स्पष्ट लिखावट
	समालोचना-शक्ति	मध्य-विभाग	नाक के नथने चौड़े होते हैं	,,
	पृथक् करण	अधोविभाग	नासिका का पड़दा नीचे की तरफ़ झुका रहता है	,,

हमारी पूरी कोशिश है कि आपको हिंदी की अधिकतम पुस्तकें मुफ्त उपलब्ध करायी जायें और इन्टरनेट पर हिंदी की उपस्थिति को अधिक से अधिक बढ़ाया जाए | इसी क्रम में मैं आपके सामने एक से एक अधिक पुस्तकें प्रस्तुत कर रहा हूँ |

परन्तु जैसा कि आप जानते हैं इंटरनेट पर किताबें अपलोड करने , उन्हें हमेशा उपलब्ध रखने , तथा साईट अच्छी तरह और सरल रूप से काम करे इसके लिए अत्यंत मेहनत के साथ साथ संसाधनों की भी आवश्यकता होती है , और यही वह कारण है जिसकी वजह से अभी तक हिंदी भाषा की कोई भी वेबसाइट एक दो साल से ज्यादा नहीं चली है और बहुत ही अल्प समय में एक से एक अच्छी वेबसाइट बंद हो चुकी हैं |

यह चुनौती हमारे सामने भी है , लेकिन एक विश्वास भी कि हिंदी के जागरूक हो रहे पाठकों को इस समस्या के बारे में अंदाज़ा है और वे इस बारे में केवल मूकदर्शक नहीं है | हम आपको हिंदी की पुस्तकें देंगे , हिंदी में जानकारी देंगे और बहुत कुछ देंगे और हमें आशा है कि आप भी हमे बदले में अपना प्यार देंगे और हमारी मदद करेंगे हिन्दी को सम्म्रद्ध बनाने में |

अपना हाथ बढाइये और हमारी मदद कीजिये | मदद करने के लिए जरूरी नहीं है कि आप पैसे या आर्थिक मदद ही करें , आप जिस तरह चाहें उस तरह हमारी मदद कर सकते हैं | हमारी मदद करने के तरीकों को आप यहाँ देख सकते हैं |

आशा है आप हमारी सहायता करेंगे |

अगर आपको हमारा प्रयत्न पसंद आया हो तो सिर्फ 500 रू. का सहयोग करे| आपका सहयोग हिंदी साहित्य को अधिक से अधिक विस्तृत रूप देने में उपयोगी होगा | आप Paypal अथवा बैंक ट्रान्सफर से सहयोग कर सकते हैः | अधिक जानकारी के लिए मेल करें preetam960@gmail.com अथवा यहाँ देखें

धन्यवाद